

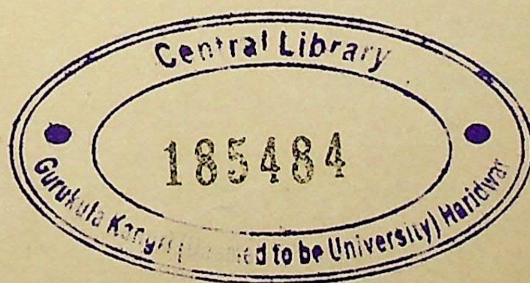
'नवीन' जी के परम श्रद्धालु और हिन्दी के
प्रतिष्ठित आलोचक--

—आदरणीय डॉक्टर नगेन्द्र—

को

सादर समर्पित--

—लक्ष्मी नारायण दुबे





प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ—"हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा"—सागर विश्व-विद्यालय द्वारा पीएच्० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। यह विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की वित्तीय सहायता से प्रकाशित हुआ है।

आशा है कि यह ग्रन्थ अनुसंधान-कर्त्ताओं एवं पाठकों के लिए उपादेय सिद्ध होगा।

सागर (म० प्र०)

दिनांक—२ दिसम्बर, १९६७.

महादेव प्रसाद शर्मा

कुलपति,

सागर विश्वविद्यालय, सागर

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

निवेदन

मेरे शोध-प्रबन्ध का मूल विषय था : 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवि और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का विशेष अध्ययन। इस शोध प्रबन्ध में से दो स्वतंत्र तथा पृथक्-पृथक् ग्रन्थ बना लिए गए। प्रथम और स्वतंत्र ग्रन्थ—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्ति एवं काव्य—विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की वित्तीय सहायता से हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग ने यथा-समय प्रकाशित किया था। द्वितीय और स्वतन्त्र ग्रन्थ—हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा—को अब प्रकाशित किया जा रहा है। 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवियों के ही शीर्षक को परिवर्त्तित तथा परिवर्द्धित कर, यह नवीन एवं सार्थक नाम दिया गया है। मैं 'प्रभा' तथा 'प्रताप' को हिन्दी राष्ट्रीय काव्य का व्यासपीठ मानता हूँ। इसीलिए हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा का यह अध्ययन एवं अनुशीलन 'प्रभा' एवं 'प्रताप' के विशेष सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। 'प्रभा' और 'प्रताप' के माध्यम से हिन्दी के राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य को सर्वाधिक सशक्त, चिरन्तन एवं प्रभविष्णु वाणी प्राप्त हुई। ये दोनों पत्र राष्ट्रीय काव्य-चेतना के लिए विन्ध्य-हिमालय सिद्ध हुए। गंगोत्री तथा जमनोत्री के समान इन पत्रों ने हिन्दी-साहित्य में गंगा-यमुना रूपी राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को चिर प्रवहमान बनाया। इन पत्रों का भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन, आधुनिक युग, वर्त्तमान इतिहास, सक्रिय राजनीति, राष्ट्रीय पत्र-कारिता तथा हिन्दी-काव्य में वरेण्य स्थान रहा है।

इस ग्रन्थ में विपुल एवं अभिनव सामग्री जोड़ी गयी है जिससे हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा की सांगोपांग तथा सर्वतोमुखी गवेषणा के साथ न्याय किया जा सके। तृतीय अध्याय और सभी परिशिष्टों की सामग्री सर्वथा नूतन है। यह सामग्री मेरे परवर्त्ती खोज एवं शोध-कार्य का परिणाम है। मैंने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया हैं कि 'नवोन' जी वाले ग्रन्थ के समान, इस पुस्तक में भी प्रभूत तथा अनुसन्धानोपयोगी नयी सामग्री दी जा सके। यह शोध-प्रबन्ध पर्याप्त संशोधन तथा परिष्कार के पश्चात् प्रकाशनार्थ प्रस्तुत किया गया है।

मेरी उत्कट अभिलाषा है कि स्व० श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के गद्य-साहित्य का उद्धार कर, उसका समुचित प्रकाशन किया जाए। इस दिशा में, प्रस्तुत

ग्रन्थ एक विनीत प्रयास तथा अकिंचन चेष्टा है। भविष्य में 'समुचित' स्थिति होने पर, यह प्रयास पूर्णता प्राप्त कर लेगा—ऐसी आशा है। 'नवीन' जी के पत्रकार तथा गद्यकार के रूप को यह ग्रन्थ अपनी विषय-परिधि में समेटता है। हिन्दी के शताधिक राष्ट्रीय कवियों और उनसे सम्बन्धित पुष्कल सामग्री को मैंने अपने विवेचन का आधार बनाया है। बहुसंख्यक उपेक्षित, विस्मृत तथा त्यक्त राष्ट्रीय कवियों को समीक्षावर्त्त में समाविष्ट किया गया है।

यह शोध-प्रबन्ध स्वर्गीय आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के पावन निर्देशन में लिखा गया था। इस अवसर पर मैं उनकी पुण्यस्मृति को सादर प्रणाम करता हूँ।

मैं आचार्य डॉ० महादेव प्रसाद शर्मा, कुलपति, सागर विश्वविद्यालय, सागर का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के 'प्राक्कथन' लिखने की कृपा की। आचार्य डॉ भागीरथ मिश्र ने न केवल इस पुस्तक का 'आमुख' लिखा प्रत्युत मुझे अनेक सुझावों से लाभान्वित किया है। मैं उनके प्रति अपनी अशेष कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

सागर विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के पदाधिकारियों का मैं अनुगृहीत हूँ जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका। सागर विश्वविद्यालय के माध्यम से विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग ने प्रस्तुत शोधकृति के प्रकाशनार्थ अर्द्ध वित्तीय सहायता प्रदान कर, मुझे विशेष शक्ति दी है। ये दोनों मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

विन्ध्याचल प्रकाशन के संचालक श्री महेन्द्रकुमार 'मानव' एम० ए०, 'साहित्य-रत्न' सदा-सर्वदा मेरे साधुवाद के पात्र रहे हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ को तत्परतापूर्वक एवं यथा निर्देशानुसार प्रकाशित कर मुझे कृतार्थ किया है।

इस शुभावसर पर मैं अपने पूज्यजन, बाबूजी पं० महादेव प्रसाद हजारी और अग्रज पं० रामनारायण दुबे को सादर प्रणति और आत्मीय जन चिं० हृदयनारायण दुबे, डॉ० जय प्रकाश नारायण दुबे और श्री मोतीलाल त्रिपाठी को निःशेष स्नेह अर्पित करता हूँ जिन सबके मंगलाशीष तथा स्नेह-सहयोग से मैं कृतकार्य हुआ।

यदि यह ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी की थोड़ी भी सेवा कर सका तो लेखक को अपार सन्तोष तथा सुख मिलेगा।

हिन्दी-विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर
दिनांक——१७-१२-१९६७.

—लक्ष्मीनारायण दुबे

(क) परीक्षक-प्रतिवेदन

(१) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी :

"+++यह विपुल सूचनाओं सम्पन्न विस्तृत कार्य है। +++ 'प्रभा' तथा 'प्रताप' निकाय के कवियों की विवेचना के लिए कुल तीन सौ पृष्ठ समर्पित किए गए हैं। यह उस पूर्व-पीठिका का कार्य करता है जिसके आधार पर श्रीबालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपने काव्य-कृतित्व का समारम्भ किया था। +++इस प्रकार यह देखा जायगा कि अनुसंधायक ने सूचनाओं की वृहद् राशि के संचयन और उनके काव्य के प्रमुख प्रकार तथा प्रवृत्तियों के वर्गीकरण एवं विश्लेषण में महत् धैर्य प्रदर्शित किया है। +++ अनुसंधित्सु द्वारा जिस रूप में शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया गया है, वह मार्ग-दर्शक कार्य की प्रकृति का है। +++ कुछ नहीं तो शोध-प्रबंध स्वयं अपने आप में एक अद्भुत कृति है और इसी कारण विशेष प्रशंसा के योग्य है।"

(२) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी :

"+++प्रबंध-लेखक ने कोई पौने तीन सौ पृष्ठों में 'प्रभा' और 'प्रताप' के कवियों की चर्चा की है। ++प्रबन्ध-लेखक ने बड़े परिश्रम से 'प्रभा' और 'प्रताप' के कवि ों के सम्बन्ध में उपयोगी सामग्री एकत्र की है और अनेक विस्मृतप्राय कवियों को और भी विस्मृत होने से बचा लेने का साधु प्रयत्न किया है। +++प्रबन्ध-लेखक बड़े परिश्रमी जान पड़ते हैं। उन्होंने सामग्री-संकलन का कार्य बड़ी लगन और निष्ठा के साथ किया है। वे कुछ दुर्लभ सामग्री संकलित करने में सफल भी हुए हैं। +++ मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि प्रबन्ध लेखक ने इस कठिन कार्य को धैर्य के साथ किया और सफलता प्राप्त की है। +++परन्तु सब मिलाकर उनकी विश्लेषण-पद्धति युक्ति संगत है और निष्कर्ष स्पष्ट और ग्राह्य हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य के भावी शोधार्थी के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। +++भाषा प्रौढ़ और विषयानुकूल है। +++लेखक चाहे तो अलग पुस्तक में 'प्रभा' और 'प्रताप' के कवियों की चर्चा प्रकाशित कर सकते हैं। यह चर्चा उपयोगी अवश्य है। +++ सब मिलाकर मुझे प्रबन्ध से सन्तोष है। इसके लेखक ने अपना कार्य बहुत अच्छी तरह

किया है। इस प्रबंध में उनकी विश्लेषण-पटुता और ठीक निष्कर्ष पर पहुँचने की चमत प्रमाणित हुई है।" .

(३) डॉक्टर नगेन्द्र :

"+++ 'प्रभा' और 'प्रताप' के कवि—(जोकि) शोध का पृथक् विषय है। +++ परन्तु उन्होंने शोध-प्रबन्ध में इतनी कठोर साधना की है, प्रायः समग्र उपलब्ध स्रोतों से इतनी उपादेय सामग्री एकत्र की कि उनका कार्य ऐतिहासिक गरिमा का चिरस्मरणीय लेखा (A monumental document of historical Signifi cance) बन गया है। शोध-प्रबन्ध नूतन सामग्री को विपुल मात्रा में, प्रकाश में लाता है जिसे अनुसंधित्सु ने योग्यतापूर्वक क्रमबद्ध किया और विश्लेषित किया। इस प्रकार, शोध-प्रबन्ध सफल अनुसंधान की दो आवश्यक परिसीमाओं की परिपूर्त्ति करता है यथा—(क) तथ्यों का अन्वेषण (जिसका कि हम प्राचुर्य पाते हैं) और (ख) तथ्यों की अभिनव व्याख्या और लेखक के आलोचनात्मक अनुशीलन तथा परिपक्व निर्णय के सामर्थ्य को निर्दिष्ट करता है। यह स्वच्छ साहित्यिक शैली में लिखा गया है और सन्दर्भ, तालिकाएँ एवं परिशिष्ट सर्वथा पूर्ण हैं। एतदर्थ, मैं संस्तुति करता हूँ कि 'डॉक्टर आफ फिलासफी' की उपाधि से अनुसन्धायक को 'विभूषित' किया जाय जिन्होंने हिन्दी की सच्ची सेवा की है।"

———

(ख) अभिमत

(१) "सागर विश्वविद्यालय के हमारे सहयोगी प्राध्यापक डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे ने 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवियों पर शोध-कार्य किया है जो हिन्दी-साहित्य की राष्ट्रीय काव्य-धारा के विशेष युग से सम्बन्धित है और यह भी कहा जा सकता है कि 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवियों का अध्ययन राष्ट्रीय कविता का केन्द्रीय अध्ययन है। डॉ० दुबे ने इस विषय की विस्तृत और व्यापक छान-बीन की है और अनेक लुप्तप्राय कवियों और उनकी कृतियों को विस्मृति के अन्धकार से खींचकर नए प्रकाश की दीप्ति में ला रक्खा है। मेरे विचार से उनका यह कार्य आधुनिक कविता के विकास की एक अनिवार्य कड़ी का निर्माण करता है और इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। + + + डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे ने—'प्रभा' और 'प्रताप' के राष्ट्रीय कवि—शीर्षक एक शोध-ग्रन्थ तैयार किया है जो हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीय धारा का एक उल्लेखनीय इतिवृत्त है। राष्ट्रीय कविता का कोई भी अध्ययन इसके बिना सम्पूर्ण या समग्र नहीं बन सकता। डॉ० दुबे हिन्दी के एक अध्ययनशील लेखक हैं और उनका यह कार्य मेरी दृष्टि में अतिशय उपयोगी है। मुझे आशा है कि पुस्तक लोकप्रिय भी होगी। की शैली में स्पष्टता और धारावाहिकता है।"

—(स्व०) आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी

(२) "इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री दुबे ने प्रत्येक प्राप्त सामग्री के आधार पर यह शोध-प्रबन्ध बड़े परिश्रम से लिखा है।"

—डॉ० रामकुमार वर्मा
एम० ए०, पीएच्० डी०

(३) "आपकी साधना तो स्वयं बोलती है। 'प्रभा' और 'प्रताप' के राष्ट्रीय कवि—के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित विद्वानों की सम्मति पढ़कर प्रसन्नता के साथ आश्वस्त भी हुआ कि आपकी लगन ने निश्चय ही 'नवीन' जी के व्याज से हिन्दी-साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण अध्याय का उद्घाटन किया है। निश्चय ही आपकी अप्रतिहत साधना

भविष्य में साहित्य-सरणि के नये पथ प्रशस्त कर सकेगी।"

—डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'
एम० ए०, डी० लिट्०

(४) "हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा के व्यापक अनुशीलन और गहरे विश्लेषण की आवश्यकता का अनुभव बराबर किया जाता रहा है परन्तु उसका सम्यक अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया था। यह एक बड़े सन्तोष तथा प्रसन्नता की बात है कि इस आवश्यक किन्तु उपेक्षित विषय को लेकर डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे ने अपना महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा किया है। + + + प्रस्तुत ग्रन्थ चार खण्डों में है और ये चारों ही खण्ड अपने विशिष्ट महत्त्व से युक्त हैं। + + + इस बहुमूल्य और अत्युत्कष्ट शोधप्रबन्ध के परिशिष्टों के माध्यम से डॉ० दुबे ने हिन्दी में प्रथम बार 'नवीन' जी के गद्य साहित्य के विविध रूपों को प्रस्तुत कर रहे हैं। + + + इसमें अत्युक्ति नहीं है कि हिन्दी में प्रथम बार इतनी उपादेय, बहुमूल्य एवं प्रेरणादायिनी सामग्री आ पायी है। डॉ० दुबे ने इस सामग्री का स्तरीय तथा गहराई से प्रतिपादन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया है।"

—डॉ० भगीरथ मिश्र
एम० ए०, पीएच्० डी०,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी—विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर (म०प्र०)

(ग) सम्मति

(१) "आपकी रचना तो एक अधिकारी की रचना होगी।"

—(स्व०) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

(२) "उन्होंने (डॉ० दुबे) उपलब्ध सामग्री का बहुत ही गहरा और विवेचना-पूर्ण अध्ययन किया है।"

—(स्व०) डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

(३) "आपने एक आवश्यक कार्य सम्पन्न किया है और मुझे आशा है, उससे जिज्ञासुओं को आगे बढ़ने में सहायता मिलेगी और आपकी परम्परा दूर तक फैलेगी।"

—(स्व०) कविवर सियाराम शरण गुप्त

(४) "× × × उनके शोध का विषय आरम्भ में—'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवि और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का विशेष अध्ययन—रक्खा गया था और इसी रूप में वह प्रस्तुत भी किया गया था। परन्तु शोध-प्रबन्ध का प्रथम अंश जो 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवियों से सम्बन्धित था और जो 'नवीन' जी के काव्य को प्रशस्त पीठिका देने के आशय से तैयार किया गया था, इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया। उसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का विचार है। × × × कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अपने विषय का मौलिक शोध-प्रबन्ध है और इसमें व्यक्त किये गये विचार तर्कपूर्ण और पुष्ट हैं। × × × इस अभिनन्दनीय कार्य के लिए डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे हिन्दी-संसार के धन्यवाद और प्रशंसा के अधिकारी हैं।"

—(स्व०) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

(५) "आपने निःसन्देह एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।"

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

(६) "आपने बड़ा परिश्रम किया है।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,
डी० लिट्०,
प्रोफेसर, पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़ (पंजाब)

(७) "बड़े अध्ययन और सन्तुलन के साथ लिखा है।"

—डॉ० रामकुमार वर्मा

एम० ए०, पीएच्० डी०

(८) "निबन्ध बहुत शोध के साथ लिखा गया है।"

—डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'

एम० ए०, पीएच्०, डी० (कैण्टब)

(९) "मालुम पड़ता है आपके हाथों हिन्दी के एक उपेक्षित अंग की विशेष पूर्त्ति होनी है। पत्रकारिता तथा राष्ट्रीय धाराओं से प्रभावित साहित्य की विविध विधाओं का साहित्य अभी तक अछूता ही पड़ा है। उत्सर्ग के उपकरण साहित्य को किन-किन साँचों में ढ़ालते हैं और किस-किस रूप में सँवारते हैं, इसका इतिहास कोरी साहित्यिक आलोचनाओं में उपलब्ध नहीं हो सकता। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में ही उसके भावबोध का आकलन किया जा सकता है। आप इसी भूमिका को सँवारने में दत्तचित्त हैं; बड़ी निष्ठा से, अस्तु हम सबकी बधाई के पात्र हैं।"

—डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

एम० ए०, डी० लिट्०

(घ) शुभाशंसा

(१) "आप साहित्य की बहुत अच्छी सेवा कर रहे हैं।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

(२) "आपकी साधना क्रमशः उदात्त हो रही है और यही क्रम बना रहा तो आपकी गणना साहित्य के मर्मियों में अवश्य होगी।"

—डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

(३) "आपके लेखन में मेरी आस्था है।"

—डॉ० रामकुमार वर्मा

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

पृष्ठ

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

परिशिष्ट

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

भूमिका

विषय प्रवेश :

आधुनिक हिन्दी-कविता में अनेक तत्त्व, मोड़ और आयाम दिखाई पड़ते हैं। विविध प्रवृत्तियों और विचारधाराओं ने अपने द्वीप इस ज्ञान-सागर में निर्मित किये हैं।

हिन्दी में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक उपकरणों की झलकियाँ तो पूर्ववर्ती काव्य-साहित्य में भी दिखायी दे जाती हैं परन्तु उनका विशेष और घनिष्ठ सम्बन्ध आधुनिक काव्य से ही प्रतीत होता है। इस कृति में आधुनिक हिन्दी राष्ट्रीय काव्य-धारा का अनुशीलन एवं विवेचन किया गया है।

समूची राष्ट्रीय धारा के साथ, हमारा 'ध्यान' 'प्रभा' और 'प्रताप' की ओर विशिष्ट रूप से गया है। उसके कुछ आधार और कारण हैं।

'प्रभा' और 'प्रताप' का कृतित्व इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन पत्रिकाओं के कर्णधारों का राष्ट्रीय जागृति एवं जन-आन्दोलन से अत्यन्त समीपी सम्बन्ध रहा है। इन पत्रिकाओं का क्षेत्र भी व्यापक और बहुमुखी रहा है। इनकी परिधि में द्विवेदी-युग और छायावाद-युग ही नहीं आते अपितु हिन्दी-पत्रकारिता के विकास और पोषण का महिमामय इतिहास भी समाविष्ट है। ये प्रगतिवादी तत्त्वों को भी अपने अंक में समेटे हैं।

'प्रभा' और 'प्रताप' के काव्य का अनुशीलन राष्ट्रीय काव्य-धारा का मूलवर्ती अथवा केन्द्रीय अध्ययन है। इन पत्रिकाओं ने तत्कालीन युग के राष्ट्र-जागरण और काव्य-प्रवर्तन में व्यासपीठ का ऐतिहासिक कार्य किया है। इनकी अवहेलना, हमें समूचे युग के भाव-संवेदन एवं अविस्मरणीय उपलब्धि से, वंचित कर सकती है।

समूचे राष्ट्रीय काव्य की समृद्ध पीठिका में, 'प्रभा' और 'प्रताप'-परिवार से सम्बद्ध राष्ट्रीय कवियों और उनकी प्रसंगानुकूल काव्य-सृष्टि का अनुसंधान ही इस शोध-ग्रन्थ का मूलोद्देश्य है।

मैथिलीशरण गुप्त, 'एक भारतीय आत्मा', 'सनेही', 'नवीन', सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान आदि अनेक कवियों के महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कृतित्व को इस ग्रन्थ में विशद् व्याप्ति एवं समीक्षा मिली है।

विषय का नामकरण एवं स्वरूप :

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय है : "हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा।"

आधुनिक राष्ट्रीय काव्य-धारा के सम्यक् अध्ययन के लिये उसकी पूर्ववर्ती

स्थितियों से परिचय प्राप्त करना अत्यावश्यक है। इसीलिए राष्ट्र, राष्ट्रीयता, प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास को विशद् रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार संस्कृत-काव्य की राष्ट्रीय-चेतना को भी उपस्थित किया गया है जिसका मूलोद्गम हमारे वेद, उपनिषद् और पुराणों से है। राष्ट्रीय कवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंश' में समस्त भारत का एकीकृत रूप प्रस्तुत किया है।

हिन्दी की पृष्ठभूमि का भी सिंहावलोकन किया गया है। वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल की राष्ट्रीयता के विभिन्न विकासों और दृष्टियों का विश्लेषण किया गया है।

'प्रभा' और 'प्रताप' का आधुनिक हिन्दी गीति-काव्य तथा राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा में युगान्तकारी एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

'प्रभा' तथा 'प्रताप' का हमारे मूल विषय से प्रवत्यागत, प्रत्यक्ष और वैयक्तिक सम्बन्ध है।

'प्रभा' तथा 'प्रताप' के द्वारा हम राष्ट्रीय-काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हैं। इसके साथ ही, इन दोनों पत्रों से उभर कर हुतात्मा गणेश शंकर विद्यार्थी का भी व्यक्तित्व हमारे समक्ष आ जाता है, जिन्होंने वास्तव में राष्ट्रीय-सांस्कृतिकक ाव्य-धारा के एक 'स्कूल' का ही निर्माण किया था। गणेश जी ने न केवल हिन्दी पत्रकारिता में नूतन युग का प्रवर्त्तन किया, राष्ट्रीय-संग्राम को उद्दीप्त करने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया, अपने प्राणार्पण के द्वारा मानवता का एक उज्ज्वल तथा अविस्मरणीय आदर्श उपस्थित किया अपितु अपने युग-प्रेरक व्यक्तित्व के द्वारा अनेक साहित्यकारों को प्रोत्साहित एवं निर्देशित कर 'मूर्तिमंत संस्था' के सुकृत्य सम्पन्न किए। गणेश जी के ही दिव्य आलोक-मण्डल के अंग-प्रत्यंग के रूप में, 'प्रभा', 'प्रताप' एवं 'नवीन' जो आते हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक साहित्यिक एवं राजनैतिक जीवन के सम्वर्द्धन एवं परिष्कार में 'प्रभा' तथा 'प्रताप' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 'नवीन' जी की पत्रकारिता एवं काव्य का भी इन्हीं पत्रों से ही सम्बन्ध है। 'नवीन' जी का प्रायः समग्र साहित्य, कविता, निबन्ध, कहानी आदि 'प्रताप' में ही प्रकाशित हुआ। 'नवीन' एवं 'प्रताप' दोनों का ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से रहा है। राष्ट्रीय संघर्ष एवं काव्य के सृजन में 'प्रताप' की सेवाएँ अपनी अनूठी आभा विकीर्ण करती हैं। 'प्रताप' पत्र और उसके प्रवर्त्तक, उनका परिवार, 'प्रताप'-मण्डल और यहाँ तक कि उसका आवास-स्थल, सभी कुछ राष्ट्रीय-काव्य एवं जीवन के ही अंग-प्रत्यंग रहे हैं। कवियों के व्यक्तित्व-निर्माण में इन समग्र उपादानों का अप्रतिम महत्त्व है, जिनके ऋण को 'नवीन' जी और अनेक कवियों ने आजीवन तथा अनेक बार स्वीकार किया।

इस प्रकार, प्रस्तुत शोध-विषय के संगठन, उपादेयता एवं अन्विति में कोई दुविधा उत्पन्न नहीं होती। विषय स्पष्ट, सार्थक एवं सोद्देश्य है, जो अपने मन्तव्य को स्वत: ही विश्लेषित करता है।

शोध की विषय-परिधि :

प्रस्तुत शोध-विषय अपने साथ कतिपय परिसीमाओं एवं स्थितियों को लेकर चलता है, जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है।

मासिक पत्रिका 'प्रभा' का प्रकाशन खण्डवा एवं कानपुर, दोनों स्थानों से हुआ और प्रस्तुत प्रबन्ध में दोनों ही के काव्य का विवेचन किया गया है।

'प्रताप' साप्ताहिक एवं दैनिक, दोनों ही रूपों में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत ग्रंथ में 'प्रताप' के साप्ताहिक रूप के काव्य का ही अनुशीलन किया गया है। इसके दो कारण हैं : एक तो 'प्रताप' का जन्म साप्ताहिक के ही रूप में हुआ था और उसका साप्ताहिक रूप ही काव्य-प्रकाशन एवं राष्ट्रीय-संग्राम में वरेण्य रहा है। दैनिक में काव्य-प्रकाशन के लिए उतना स्थान एवं अवसर नहीं होता, जितना साप्ताहिक में होता है। इसीलिए ही, हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान युग के दैनिक पत्र प्रति रविवार को अपना साप्ताहिक अंक निकालते हैं, जिसमें साहित्य को ही प्रमुखतया एवं विशिष्ट रूप से स्थान दिया जाता है। दैनिक 'प्रताप' में उतना काव्य-प्राचुर्य नहीं आ पाया, जितना साप्ताहिक 'प्रताप' में। दूसरे, 'प्रताप' का साप्ताहिक रूप प्राय: निरन्तर रूप से प्रकाशित ही होता रहा, जब कि दैनिक 'प्रताप' को लम्बी समयावधि तक अन्धकार में ही रहना पड़ा। इन कारणों से, साप्ताहिक 'प्रताप' के काव्य को ही, विषय-प्रतिपादन का श्रेयस्कर रूप माना गया।

साप्ताहिक 'प्रताप' में प्रकाशित काव्य को भी कालावधि के आधार पर ग्रहण किया गया है। गणेश जी के युग (सन् १९१३-१९३१ ई०) के साप्ताहिक 'प्रताप' के काव्य को ही विवेचन का प्रमुख आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त भी परवर्ती काव्य-रचनाओं का भी उपयोग किया गया है, परन्तु विशेष रूप से नहीं। इस युग-सापेक्ष काव्य के ग्रहण करने के भी दो कारण हैं : प्रथम, 'प्रताप' का जो महत्त्व, गरिमा एवं ऐतिहासिक मूल्य गणेश जी के समय में रहा, वह परवर्ती युग में उतना नहीं रह गया। द्वितीय, आधुनिक हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के विशेष 'स्कूल' के रूप में, जो 'प्रताप' की प्रभा रही है, उसका भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध गणेश जी के युग से ही रहा है। इस प्रकार गणेश जी के 'प्रताप' के समय के काव्य को ही विवेचन का प्रमुख आधार बनाना, हमें अनौचित्य की दिशा की ओर नहीं ले जाता।

'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवियों का विशिष्ट रूपेण, वही काव्य लिया गया है,

जो कि उपर्युक्त पत्रों में प्रकाशित हुआ है। यत्र-तत्र प्रसंगानुसार एवं आवश्यकता के मुताबिक, उनकी अन्य काव्य-कृतियों का भी उल्लेख एवं विवेचन कर दिया गया है।

विषय-विवेचन का दृष्टिकोण :

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनुसन्धान की तथ्य एवं भाव-परक पद्धतियों को ग्रहण किया गया है। वैज्ञानिक विभाजन के आधार पर प्रबन्ध की सामग्री सुनियोजित की गयी है।

विशिष्ट कवि अथवा कवि-क्रम को आलोचना का आधार न बनाकर काव्य-प्रवृत्तियों को विवेच्य विषय बनाया गया है। प्रधान कवियों के काव्य का प्रतिपादन है और इसके साथ ही साथ गौण कवियों का भी पर्याप्त विवेचन किया गया है। इनके काव्य-उद्धरणों से भी अभिलषित उपकरणों की पुष्टि और तुष्टि की गयी है।

शताधिक उपेक्षित, विस्मृत एवं त्यक्त कवियों के कृतित्व की विवेचना यहाँ प्रथम बार प्रस्तुत की गयी है।

कवियों के महत्त्व एवं प्रधानत्त्व के आधार पर विस्तार अथवा विवेचन को स्थान देने की प्रणाली अपनायी गयी है। अनावश्यक, अनपेक्षित अथवा न्यून महत्त्व के विषयों को सांकेतिक वाणी दी गयी है।

काव्यालोचना में निरपेक्ष दृष्टि एवं तटस्थ वृत्ति को अपनाने का प्रयास किया गया है। युगीन, ऐतिहासिक, सम-सामयिक, साहित्यिक प्रवृत्ति और काव्य-शास्त्रीय आधार को समीक्षा के समय ध्यान में रक्खा गया है। अन्त में, संक्षेप में, निर्णय या निष्कर्ष उपस्थित किये गये हैं।

ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं प्रभूत सामग्री—जिसकी ओर अब हमारा ध्यान जाना बन्द हो गया है और जो कि अनुपलब्ध, दुष्प्राप्य एवं नष्ट हो रही है—को सांगोपांग रूप में प्रस्तुत करना—अनुसंधित्सु अपना धर्म मानता है।

विषय की उपलब्ध सामग्री :

शोध-विषय की सामग्री को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) मौलिक सामग्री और

(ख) आलोचनात्मक सामग्री।

(क) मौलिक सामग्री :

मौलिक सामग्री से हमारा तात्पर्य 'प्रभा' एवं 'प्रताप' की पुरानी संचिकाओं से है। प्रस्तुत शोध-विषय का प्रथम एवं अत्यावश्यक कार्य, आधारभूत सामग्री के संचयन से ही संबंध रखता है। 'प्रताप' की पुरानी संचिकाओं तथा राष्ट्रीय कवियों के असंगृहीत साहित्य की उपलब्धि के विषय में, आज के युग के प्रायः सभी साहित्य-कार वस्तुस्थिति से भली-भाँति परिचित ही हैं और उसे 'कहने' अथवा 'लिखने' की अपेक्षा, उसको 'समझ' लेना ही उचित है। इस स्थिति का, यहाँ पर, सिर्फ 'संकेतात्मक

विवरण' ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

खण्डवा एवं कानपुर की 'प्रभा' की प्रायः समग्र संचिकाएँ प्राप्य हैं।[१] इनकी प्राप्ति के विषय में कोई विशेष अवरोध अथवा असुविधा नहीं है।

'प्रताप' की प्राचीन संचिकाओं की उपलब्धि हिन्दी संसार के लिए एक समस्या बनी हुई है। 'प्रताप' के जन्म से लेकर आज तक की समग्र, व्यवस्थित एवं अनवरत संचिकाएँ प्राप्त नहीं हो पा रही हैं। 'प्रताप' की पूर्ण तो नहीं किन्तु अनेक संचिकाएँ एवं अंक अवश्य प्राप्य हैं।[२]इस संबंध में मैंने जो व्यक्तिगत प्रयास एवं परिभ्रमण[३] किया और विभिन्न ग्रन्थालयों[४] में स्वतः जाकर जो कुछ देखा-समझा, किन्तु

१—**व्यक्तियों के पास**—

(क) श्री माखनलाल चतुर्वेदी, खण्डवा; आचार्य शिवपूजन सहाय, पटना', श्री मुकुटधर पाण्डेय, रायगढ़; 'श्री रामनाथ 'सुमन', लखनऊ,' श्री गणेशदत्त शर्मा इन्द्र, आगरा (म० प्र०), श्री भानुसिंह बाघेल, भरतपुर (म० प्र०)।

(ख) **ग्रन्थालयों में**—माधव रजत जयंती पुस्तकालय, शाजापुर (म० प्र०); मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली; बड़ा बाजार पुस्तकालय, कलकत्ता; भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; मारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर; चिरंजीव पुस्तकालय, आगरा; भाषा एवं शोध संस्थान, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर; नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी; श्री गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक समिति, कानपुर।

२—(i) **संस्थाओं के पास** :—

(क) **साप्ताहिक प्रताप**—बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना; मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली।

(ख) दैनिक 'प्रताप'—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

(ग) गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति, कानपुर (उ० प्र०)।

(ii)—**व्यक्तियों के पास**—श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा', हटा (म० प्र०) और श्री भानुसिंह बाघेल, भरतपुर (म० प्र०)।

३ (ख)—नयी दिल्ली, कानपुर, नर्वल, लखनऊ, वाराणसी, पटना, कलकत्ता, जबलपुर, भोपाल, शाजापुर, उज्जैन, इन्दौर और खण्डवा।

४—दिल्ली विश्वविद्यालय ग्रन्थालय; मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली; दिल्ली निगम ग्रन्थालय; अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, दिल्ली; गया प्रसाद पुस्तकालय, कानपुर; मारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी; बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना; बड़ा बाजार पुस्तकालय, कलकत्ता; नेशनल

इस दिशा में संतोषजनक स्थिति नहीं दिखायी दी। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है: 'इस समय तो वे (गणेश जी एवं 'नवीन' जी की) रचनाएँ सर्वथा अप्राप्य हो गयी हैं। इन दोनों महान् लेखकों की गद्य रचनाएँ 'प्रताप' की पुरानी फाइलों में बन्द पड़ी हैं। गणेश जी तथा 'नवीन' जी के उत्तराधिकारियों में या तो इतनी कल्पना-शक्ति नहीं या इतनी सामर्थ्य नहीं कि वे उनका संग्रह करके उन्हें छपा दें। ऐसी हालत में व्यावहारिक बात यही है कि उन रचनाओं के प्रकाशन का अधिकार सरकार द्वारा खरीद लिया जाय। उन रचनाओं का जहाँ का तहाँ पड़े रहना एक साहित्यिक अपराध है, जिसकी जिम्मेदारी हम सब पर है।[१] इस संबंध में, श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी मुझे लिखा था कि "मुझे आशा नहीं कि 'प्रताप' की फाइलें मिल सकेंगी। कई लोगों ने भिन्न कार्यों के लिए उन्हें देखने का प्रयत्न किया परन्तु उन्हें यही उत्तर मिला कि वे मिल नहीं रहीं।"[२]

'प्रताप' के पुराने काव्य का प्रकाशन, कतिपय संकलनों के रूप में हो चुका है जिनमें इस विषय की अच्छी सामग्री मिल जाती है, यथा 'राष्ट्रीय वीणा', 'राष्ट्र भारती' आदि।

राष्ट्रीय कवियों के साहित्य की मौलिक सामग्री भी समस्या एवं चिन्ता का विषय बनी हुई है।

(ख) आलोचनात्मक सामग्री—

प्रस्तुत विषय की समीक्षात्मक सामग्री को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) प्रकाशित सामग्री और

(आ) स्व-प्रयत्न द्वारा प्राप्त सामग्री।

(अ) प्रकाशित सामग्री—

(i) ग्रन्थ :

इस खण्ड की सामग्री ग्रन्थों एवं निबंधों के रूप में मिलती है—

(१) नारायण प्रसाद अरोड़ा अभिनन्दन ग्रन्थ—

इसमें 'प्रताप' के एक संस्थापक एवं प्रवर्तक श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रशस्ति-परक निबंध हैं। 'प्रताप' के काव्य से इसका सम्बन्ध नहीं है।

लायब्रेरी, कलकत्ता; विक्रम विश्वविद्यालय पुस्तकालय, उज्जैन; माधव रजत जयंती पुस्तकालय, शाजापुर (म० प्र०)।

१—'नर्मदा, अक्टूबर, १९६१' पृष्ठ १४७।

२—श्री मैथिलीशरण गुप्त का मुझे लिखित दिनांक १५-७-१९६१ का पत्र।

(२) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ—

राष्ट्रकवि के समूचे व्यक्तित्व और कृतित्व का सुन्दर संकलन है। 'प्रभा' और 'प्रताप' के प्रधान कवि होने के नाते इसका अध्ययन आवश्यक है।

(३) आचार्य 'सनेही' अभिनन्दन ग्रन्थ—

सम्पादक : श्री छैल बिहारी दीक्षित 'कण्टक' और श्री शम्भूरत्न त्रिपाठी; सन् १९६४।

'प्रभा' और 'प्रताप' के प्रमुख कवि श्री गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' एवं 'त्रिशूल' के समूचे साहित्यिक और राष्ट्रीय व्यक्तित्व पर यह स्तरीय ग्रन्थ है। इसमें कवि के राष्ट्रीय काव्य का यत्र-तत्र विवेचन है यथा, 'प्रभा' और 'प्रताप' के प्रधान कवि—'सनेही' जी : डॉ० लक्ष्मी नारायण दुबे।

(४) माखन लाल चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रथ—

हिन्दी के प्रमुख राष्ट्रीय कवि डॉ० माखन लाल चतुर्वेदी के बहुमुखी जीवन और सर्वतोमुखी साहित्य पर प्रचुर सामग्री का इसमें संकलन है। अभी यह प्रकाशित नहीं हुआ है। शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

(५) विविध शोध-प्रबंध—

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के अनेक कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पीएच् डी० के शोध-प्रबंध लिखे जा चुके हैं और उनमें से कतिपय प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें डॉ० कमलाकान्त पाठक और डॉ० उमाकान्त के मैथिलीशरण गुप्त, डॉ० अच्युदानन्द मिश्र का 'सनेही', डॉ० लक्ष्मी नारायण दुबे का बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और डॉ० रामखिलावन तिवारी का माखनलाल चतुर्वेदी पर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। सुभद्राकुमारी चौहान, माधव शुक्ल आदि पर शोध-कार्य हो रहे हैं।

(६) राष्ट्रीय काव्य-धारा पर शोध-प्रबंध—

समूची राष्ट्रीय काव्य-धारा अथवा युग-विशेष की राष्ट्रीय चेतना पर पीएच् डी० और एम० ए० के शोध-प्रबंध लिखे जा चुके हैं। अभी भी अनेक दृष्टियों से इस दिशा में कार्य किये जा रहे हैं।

इस प्रसंग में दो शोध-प्रबंध प्रकाशित हो चुके हैं और कतिपय प्रकाशन के मार्ग पर हैं। डॉ० सुषमानारायण मिश्र की आलोचनात्मक कृति—भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति—और डॉ० विद्यानाथ गुप्त की शोध-कृति—हिन्दी-कविता में राष्ट्रीय भावना—दृष्टव्य हैं। इन कृतियों में राष्ट्रीय काव्य के मूलाधार 'प्रभा' और 'प्रताप' के प्रथुल और अप्रतिम सामग्री की विवेचना का आधिक्य नहीं है।

(७) गणेशशंकर विद्यार्थी पर लघु शोध-प्रबंध—

श्री गंगानारायण त्रिपाठी ने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० में विद्यार्थी

जो पर लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया था। यह अभी तक अप्रकाशित है।

अब विद्यार्थी जी पर पर्याप्त सामग्री मिल जाने के कारण, यह उपक्रम किया जा रहा है कि उन पर पीएच् डी० का शोध-प्रबंध लिखा जा सके।

(८) 'कर्मवोर —

गणेशशंकर विद्यार्थी के निबंधों का संकलन 'कर्मवीर' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। इसका सम्पादन श्री राधाकृष्ण कर रहे हैं।

(९) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का श्रेष्ठ गद्य-साहित्य—

डॉ० लक्ष्मी नारायण दुबे ने 'नवीन' जो के गद्य-साहित्य का संकलन कर लिया है। इसका सम्बन्ध 'प्रभा' और 'प्रताप' से है। इसका शीघ्र प्रकाशन हो रहा है। राष्ट्रीय आन्दोलन और युगीन भावनाओं का इसमें समाहार है।

पुस्तकें :

(१०) हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर—

लेखक : श्री नरेश चन्द्र चतुर्वेदी, 'प्रभा' : पृष्ठ १९५-१९७ तथा पृष्ठ २९५-२९७; 'प्रताप' : पृष्ठ १९०-१९४।

इस पुस्तक में अनेक सूचनाएँ मिलती हैं, जिनका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है।

(११) माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी—

लेखक : श्री ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ' : 'प्रभा', पृष्ठ २७४-३१०। इसमें खण्डवा की 'प्रभा' का ही विवेचन मिलता है। 'प्रभा' के काव्य-विवेचन का अभाव है।

(१२) गणेशशंकर विद्यार्थी—

लेखक : श्री देवव्रत शास्त्री; प्रतापी 'प्रताप' : पृष्ठ ११८-१६२।

इसमें गणेश जी के व्यक्तित्व तथा 'प्रताप' की पत्रकारिता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है, परन्तु 'प्रताप' के काव्य की समोक्षा का पूर्णाभाव है।

(१३) गणेश स्मारक ग्रन्थ—

सम्पादक : श्री बनारसी दास चतुर्वेदी। इसमें विशिष्टतया 'प्रताप' पर कोई निबन्ध प्राप्त नहीं होता। गणेश जी के व्यक्तित्व एवं पत्रकारिता पर लिखे गये विभिन्न लेखकों के निबन्धों में कहीं-कहीं 'प्रताप' का महत्त्वांकन मिलता है।

(१४) गणेशशंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबन्ध :

सम्पादक : श्री राधाकृष्ण। गणेश जी के ४५ निबन्ध, अग्रलेख व भाषणों को संकलित किया गया है। इसमें चिरापेक्षित गणेश जी का कुछ कृतित्व सुन्दरतापूर्वक आ गया है। 'प्रताप' के काव्य से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है।

(१५) समाचार-पत्रों का इतिहास—

लेखक : सम्पादकाचार्य श्री अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी। इसमें 'प्रभा' तथा 'प्रताप' का सामान्य विवरण एवं उल्लेख मिलता है। तथ्यात्मक सूचनाएँ भी अधिक प्रामाणिक नहीं हैं, जिनका यथास्थान शुद्धीकरण कर दिया गया है। सम्बन्धित विवरण पृष्ठ २६६, २७४ एवं ३४२ पर दृष्टव्य है।

(१६) The Rise and Growth of Hindi Journalism—

लेखक : डॉ० रामरतन भटनागर, इसमें 'प्रभा' एवं 'प्रताप' का नामोल्लेख (पृष्ठ २७१, ३७४ एवं ३८७) मात्र ही प्राप्त होता है।

(१७) हिन्दी कविता में युगान्तर—

लेखक : डॉ० सुधीन्द्र, इस पुस्तक में 'प्रताप' के कवियों का थोड़ा विवेचन (पृष्ठ १८१-१८३, १९७-१९९) प्राप्त होता है।

(ii) पत्र-पत्रिकाएं :

(१) मासिक 'हंस', काशी—

इसमे आचार्य शिवपूजन सहाय के दो निबन्ध—'हिन्दी के दैनिक पत्र' (सितम्बर, १९३१ ई०) और 'हिन्दी के साप्ताहिक पत्र' (नवम्बर, १९३१ ई०) प्रकाशित हुए थे जिनमें 'प्रताप' के दैनिक एवं साप्ताहिक रूप का महत्त्वांकन किया गया है।

(२) मासिक 'त्यागभूमि', अजमेर—

इसमें श्री विष्णुदत्त शुक्ल का 'हमारा साप्ताहिक साहित्य' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें (आश्विन, सं० १९८५) 'प्रताप' का भी उल्लेख (पृष्ठ ४५-४६) मिलता है।

(३) मासिक 'नर्मदा', ग्वालियर—

इसका अक्तूबर सन् १९६१ में 'अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी स्मृति-अंक' प्रकाशित हुआ जिसमें गणेशजी के व्यक्तित्व पर विभिन्न विद्वानों के सारगर्भित लेख हैं जिनमें, ''प्रताप' और स्वर्गीय विद्यार्थी जी', (पृष्ठ ४६-४८); 'सम्पादकाचार्य विद्यार्थी जी' (पृष्ठ १०२-१०४); 'विद्यार्थी जी, और प्रताप' (पृष्ठ १०९-११४) आदि लेखों में 'प्रताप' का विवरण भी यत्र-तत्र मिलता है। 'प्रभा' का विवेचन नहीं मिलता।

उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त, कतिपय स्फुट लेखों में भी, संबंधित विषय का सामान्य आकलन प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'प्रभा' एवं 'प्रताप' की पत्रकारिता, प्रकाशन के इतिहास एवं उनके विविध पक्षों का समग्र एवं पूर्ण आकलन नहीं किया गया है। प्रामाणिक सूचना एवं अधिकृत विवरण प्रस्तुत करने के लिए इस संबंध में, समीक्षात्मक सामग्री का प्रायः कम प्रश्रय ग्रहण कर, मौलिक सामग्री के उत्स से ही तथ्य लाये गये हैं।

(आ)—स्व-प्रयत्न द्वारा प्राप्त सामग्री :

'प्रभा' को प्रायः सम्पूर्ण संचिकाओं का अध्ययन कर एवं साप्ताहिक 'प्रताप' की पटना एवं अन्य स्थानों तथा व्यक्तियों के पास अनेक संचिकाओं का अवलोकन कर, उससे विश्वसनीय सामग्री ग्रहण कर, यहाँ उसका उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त, सम-सामयिक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में, आलोच्य पत्रों के विषय में, जो जहाँ तहाँ टिप्पणियाँ, समीक्षा आदि निकला करती थीं, उनको भी एकत्र करके, उनका विधिवत् प्रयोग किया गया है।

'प्रभा' तथा 'प्रताप' की पत्रकारिता, छद्म नामों को वास्तविक नाम-जानकारी एवं अन्य पार्श्वों के उद्घाटन हेतु, मैंने प्रत्यक्ष सम्पर्क और पत्र-व्यवहार का माध्यम भी अपनाया। इस अभियान के अन्तर्गत, 'प्रभा' एवं 'प्रताप' के पुराने सम्पादक यथा श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री गौरीशंकर त्रिवेदी, श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, श्री रामनाथ गुप्त, श्री देवदत्त मिश्र, श्री सत्यदेव शर्मा, पं० विष्णुदत्त शुक्ल (अब स्वर्गीय), श्री देवव्रत शास्त्री (अब स्वर्गीय) आदि से प्रामाणिक सूचनाएँ ग्रहण कीं। इन पत्रों के लेखकों एवं कवियों यथा श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री उदय शंकर भट्ट (अब स्वर्गीय), श्री रायकृष्ण दास, श्री शालग्राम द्विवेदी, प्रो० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, डॉ० मुंशीराम शर्मा, श्री दयाशंकर दीक्षित 'देहाती', श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद', श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री यशपाल, श्री गुरुप्रसाद टण्डन, श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' से भी भेंट की और तत्संबंधी जानकारी प्राप्त की।

प्रामाणिक सूचनाएं जानने के लिये, प्रत्यक्ष भेंट के अतिरिक्त, विस्तृत पत्र-व्यवहार का मार्ग भी अपनाया गया जिसके अन्तर्गत श्री शिवपूजन सहाय,[१] डॉ० विनय मोहन शर्मा[२], पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी[३], श्री रामनाथ सुमन[४], श्री मैथिलीशरण गुप्त (अब स्वर्गीय)[५], डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र[६], श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी[७],

---

१—प्राप्त पत्रों की तिथियाँ—४-१०-१९६०, १४-१०-१९६०, ११-७-१९६१, २७-७-१९६१, १०-१०-१९६१, १०-९-१९६२।

२—दिनांक १०-८-१९६० का पत्र।

३—दिनांक ३१-१०-१९६० तथा १६-११-१९६० के पत्र।

४—दिनांक २-३-१९६१ व १७-८-१९६१ के पत्र।

५—दिनांक ५-११-१९६०, ४-४-१९६१, २१-८-१९६१, २३-१०-१९६१, २-११-१९६१, १५-७-१९६१, ३१-१-१९६२ एवं २९-८-१९६२ के पत्र।

६—दिनांक ६-१०-१९६० का पत्र।

७—दिनांक १९-८-६० १६-८-१९६१, ६-१-१९६२ तथा के पत्र।

श्री श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल[१], श्री देवव्रत शास्त्री[२], श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'[३], श्री उदयशंकर भट्ट[४], श्री प्रताप नारायण, श्रीवास्तव[५], डॉ० पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी[६], श्री वृन्दावन लाल वर्मा[७], श्री राघवेन्द्र[८], श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'[९] श्री रामनाथ गुप्त[१०], श्री गणेशदत्त शर्मा इन्द्र[११]', श्री मुकुटधर पांण्डेय[१२], श्री उमादत्त सारस्वत[१३], श्री विष्णुदत्त शुक्ल[१४], श्री श्रीराम शर्मा[१५], श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव[१६], श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी[१७], श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा',[१८] श्री गुरु

१—दिनांक १२-१०-१९६०, १५-७-१९६१, १५-८-१९६१, १९-१०-१९६१, ११-११-१९६१, ३१-१-१९६२ एवं २०-८-१९६२ के पत्र।

२—दिनांक २१-८-१९६१ का पत्र।

३—दिनांक ३१-८-१९६१ का पत्र।

४—दिनांक ३०-१०-१९६१ का पत्र।

५—दिनांक १२-४-१९६१, १६-८-१९६१, १-९-१९६१ एवं २८-९-१९६१ के पत्र।

६—दिनांक १४-११-१९६१ का पत्र।

७—दिनांक १८-११-१९६१, २६-११-१९६१, १४-१२-१९६१, ३०-१-१९६२, १५-२-१९६२, १५-७-१९६२ तथा २१-७-१९६२ के पत्र।

८—दिनांक ५-८-१९६१ २२-११-१९६१ व के पत्र।

९—दिनांक ६-१२-१९६१ व ३१-७-१९६२ के पत्र।

१०—दिनांक १५-१२-१९६१ का पत्र।

११—दिनांक २२-१२-१९६१, ७-१-१९६२, ६-२-१९६२, ३१-३-१९६२, ३०-७-१९६२, ७-८-१९६२, १६-८-१९६२ के पत्र।

१२—दिनांक २७-१२-१९६१ व ९-१-१९६२ के पत्र।

१३—दिनांक ३-१-१९६२ व ९-३-१९६१ के पत्र।

१४—दिनांक ९-१-१९६२ के पत्र।

१५—दिनांक ९-१-१९६२ व ३०-८-१९६२ के पत्र।

१६—दिनांक ९-१२-१९६०, १२-४-१९६१, १७-११-१९६१, २९-११-१९६१ तथा २१-८-१९६२ के पत्र।

१७—दिनांक ३-८-१९६०, ४-१-१९६१, २०-७-१९६१, ११-१२-१९६१ तथा २३-३-१९६२ के पत्र।

१८—दिनांक १२-३-१९६१, २१-८-१९६१, ७-९-१९६१, ३१-९-१९६१, २५-१०-१९६१, ९-१२-१९६१ तथा २१-१२-१९६१ के पत्र।

प्रसाद टण्डन[१], श्री सीताचरण दीक्षित[२], श्री बनारसी दास चतुर्वेदी[३], डॉ० उदयनारायण तिवारी[४], डॉ० मुंशीराम शर्मा[५], श्री लक्ष्मीकांत त्रिपाठी[६], श्री सियाराम शरण गुप्त (अब स्वर्गीय)[७], श्री त्रिभुवन नाथ सिंह 'सरोज'[८], श्री सद्गुरु शरण अवस्थी[९], श्री मार्तण्ड उपाध्याय[१०], श्री सूर्यनारायण व्यास[११], श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'[१२], श्री हरिभाऊ उपाध्याय[१३], श्री परिपूर्णानन्द वर्मा[१४], श्री मोहन लाल महतो 'वियोगी'[१५], डॉ० हरिशंकर शर्मा[१६], श्री रायकृष्ण दास[१७], श्री रामचन्द्र शुक्ल[१८], श्री देवीदत्त मिश्र[१९], श्री गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'[२०] आदि से समय-समय पर पत्र-व्यवहार किया गया।

१—दिनांक २९-१०-१९६१ तथा १३-४-१९६२ के पत्र।

२—दिनांक २४-९-१९६१ तथा ३-१०-१९६१ के पत्र।

३—दिनांक २-९-१९६०, ६-९-१९६०, १०-५-१९६१, १२-७-१९६१, १-९-१९६१, १-११-१९६१, ८-१-१९६२, ६-२-१९६२ व १३-२-१९६२ के पत्र।

४—दिनांक २५-९-१९६१ का पत्र।

५—दिनांक ६-१०-१९६०, १५-८-१९६१, २२-८-१९६२ तथा ६-९-१९६२ के पत्र।

६—दिनांक २-११-६०, ३०-१-१९६१ एवं २४-७-१९६१ के पत्र।

७—दिनांक १९-४-१९६१ का पत्र।

८—दिनांक १५-३-१९६१ का पत्र।

९—दिनांक २८-९-१९६० तथा ११-७-१९६१ का पत्र।

१०—दिनांक २१-१२-१९६० का पत्र।

११—दिनांक ७-११-१९६०, १०-४-१९६१, १४-७-१९६१, १८-११-१९६१ तथा २७-११-१९६१ के पत्र।

१२—दिनांक ९-१-१९६२ तथा २२-१-१९६२ के पत्र।

१३—दिनांक १६-११-१९६० तथा १४-११-१९६१ के पत्र।

१४—दिनांक १३-१-१९६२ का पत्र।

१५—दिनांक १३-१२-१९६१ तथा २२-८-१९६२ के पत्र।

१६—दिनांक २६-९-१९६० का पत्र।

१७—दिनांक ११-१०-१९६० का पत्र।

१८—दिनांक १८-१-१९६२, ३०-१-१९६२ तथा ७-४-१९६२ के पत्र।

१९—दिनांक १०-२-१९६२ तथा २८-५-१९६२ के पत्र।

२०—दिनांक १७-२-१९६२ तथा २७-५-१९६२ के पत्र।

पत्रकारिता के अतिरिक्त, 'प्रभा' एवं 'प्रताप' के काव्य के अनुशीलन एवं विश्लेषण का भी, उपलब्ध सामग्री में प्रायः पूर्ण अभाव है। इसके लिये मौलिक काव्य-सामग्री का अध्ययन कर उसका प्रस्तुत ग्रन्थ में विधिवत विवेचन किया गया है।

सामग्री समीक्षा :

'प्रभा' और 'प्रताप' की संचिकाओं की प्राप्ति अभी तक भयावह समस्या बनी हुई है। इनकी संचिकाएँ यत्र-तत्र और कम संख्या में मिल पाती हैं। सम्पूर्ण और अनवतरत अंकों का अभाव है। कुछ अधिक संचिकाएँ अभी प्रकाश में आयी हैं परन्तु उनको भी देखने का अवसर उनके अधिकारी नहीं देते हैं। इसी कारण यह क्षेत्र सर्वथा अछूता पड़ा रहा। इन पत्रों और अन्य राष्ट्रीय-राजनैतिक पत्र-पत्रिकाओं यथा 'मर्यादा', 'अभ्युदय' आदि में प्रभूत तथा बहुमूल्य सम्पदा भरी पड़ी है।

इस विस्मृत तथा उपेक्षित साहित्य के अनुशीलन के बिना, आधुनिक राष्ट्रीय काव्यधारा का कोई भी ग्रन्थ या इतिहास सर्वाङ्गीण नहीं कहा जा सकता। अभी तक इस विषय पर स्वल्प सामग्री ही प्रकाश में आयी और वह भी विकीर्ण एवं स्फुट रूप में।

प्रस्तुत पुस्तक में मूल स्रोतों से मौलिक सामग्री को ग्रहण किया गया है। सभी उपलब्ध एवं बिखरी सामग्री को एकत्र कर, उसको व्यवस्थित रूप से रक्खा गया है। इसके अतिरिक्त, कवियों के अपने काव्य-संग्रहों, तत्कालीन युग के विविध कविता-संकलनों (जो कि अब सहज प्राप्य नहीं हैं) और पुरानी पुस्तकों का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है।

ग्रन्थ को सभी प्रकार के साक्ष्यों के आधार पर, प्रामाणिक एवं विशद् बनाने की विनम्र चेष्टा की गयी है। फुटकर लेखों या रचनाओं में वह सामर्थ्य नहीं होती है कि, जिससे सम्पूर्ण युगीन चित्र एवं विशाल काव्य-प्रवृत्ति की झाँकी दिखायी जा सके। जो स्फुट सामग्री मिलती है—उसमें सामयिकता तथा प्रचारवादिता के तत्त्व भी दृष्टि-गोचर होते हैं।

इस प्रकार, अभी तक, प्रस्तुत विषय पर, ऐसा कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें मूल सामग्री को आधार बनाकर, स्रोतों से जल खींचकर, व्यवस्थित और सन्तुलित प्रतिपादन किया गया हो।

शोध-प्रबंध की संक्षिप्त रूपरेखा :

प्रस्तुत शोध-कृति को तीन खण्डों और सात अध्यायों में बाँटा गया है। अन्त में दो परिशिष्ट हैं। जहाँ 'प्रथम खण्ड' में भूमिका, राष्ट्रीय पीठिका तथा हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा का विवेचन है और 'द्वितीय खण्ड' में 'प्रभा' का प्रकाशन इतिहास एवं उसके कवि तथा उनका काव्य है; वहाँ 'तृतीय खण्ड' में 'प्रताप' के प्रकाशन के

इतिहास के साथ, उसके कवि और उनके काव्य का विस्तृत विवेचन है।

प्रथम खण्ड में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में 'भूमिका' शीर्षक के अन्तर्गत विषय का महत्त्व, विविधमुखी सामग्री, विशेषताओं आदि पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में राष्ट्रीय पीठिका का वृहद् विवेचन है। इसमें राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की आलोचना के साथ भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम का इतिहास निहित है। तृतीय अध्याय में प्राचीन वाङ्मय, संस्कृत काव्य, हिन्दी के प्राचीन और अर्वाचीन काव्यसाहित्य में प्रवहमान राष्ट्रीय चेतना का वृहत्तर रूप प्रस्तुत किया गया है। अधुनातन स्थितियों को भी ओझल नहीं होने दिया गया है।

द्वितीय खण्ड में दो अध्याय हैं। चतुर्थ अध्याय में 'प्रभा' के प्रकाशन तथा पत्रकारिता का समूचा इतिहास है। खण्डवा एवं कानपुर की 'प्रभा' के जन्म, नीति, लक्ष्य, सामग्री, साहित्यिक सेवा आदि की विवेचना है। पंचम अध्याय में 'प्रभा' के कवि और काव्य-धारा का विधिवत् अध्ययन है। द्विवेदी युगीन, छायावादी एवं राष्ट्रीय काव्य-प्रवृत्तियों को उद्घाटित किया गया है। शिल्प-पक्ष की समीक्षा है।

तृतीय खण्ड में दो अध्याय हैं। षष्ठ अध्याय में 'प्रताप' के प्रकाशन-पत्रकारिता का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। 'प्रताप' के उद्भव, विकास, राजनीति, व्यथा-कथा, साहित्यिक महिमा आदि को विश्लेषित किया गया है। सप्तम अध्याय के अन्तर्गत 'प्रताप' की काव्य-धारा की समीक्षा आती है। उसकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा, कला-पक्ष आदि का मूल्यांकन किया गया है।

परिशिष्टों की सूचनात्मक उपादेयता है। प्रथम परिशिष्ट में 'प्रभा' और 'प्रताप' के लगभग पाँच सौ कवियों की विस्तृत सूची दी गयी है। द्वितीय परिशिष्ट में सन्दर्भ-ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएँ हैं।

निष्कर्ष :

हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा के मूल उद्गमों का अनावरण करने की दिशा में यह मेरा विनीत प्रयत्न है। इसमें प्रधान और सामान्य, सभी कवियों का यत्र-तत्र उपयोग किया गया है। 'प्रभा' और 'प्रताप' ने इस दिशा में एक 'स्कूल' या 'निकाय' का कार्य किया है, जिसे हम 'गणेश शंकर विद्यार्थी स्कूल' के नाम से अभिहित कर सकते हैं। गणेशशंकर विद्यार्थी और उनके मित्र तथा शिष्य-परम्परा के छोटे-बड़े कवियों एवं पत्रकारों को इस कृत्ति में प्रमुख वाणी मिली है। आज के मूर्धन्य हिन्दी पत्रकार और लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों का उषः काल इन्हीं पत्रिकाओं में सिमटा है जिस पर अब समय ने कुहरा फैला दिया है। हिन्दी-संसार के समक्ष, इसी सर्वथा नूतन सामग्री को सादर प्रस्तुत किया जा रहा है। समय रहते यदि इसका आकलन एवं मूल्यांकन न किया जाता तो यह निधि सदा के लिये विस्मृति तथा विनाश के गर्त्त

में समा गयी होती।

प्रस्तुत शोध-कृति के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की धमनियों में संचारित रक्त को अपने समाजोपयोगी रूप में दिग्दर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। सम्बन्धित राष्ट्रीय काव्य का एक-एक कवि अब हिन्दी के साहित्यिकों और अनुसंधायकों से यह आशा-अपेक्षा करता है कि उन पर, व्यक्तिगत स्तर पर, शोध-कार्य करके, बूंद-बूंद से सागर का निर्माण किया जाए। शोध की अनेक दिशाएँ और दृष्टियाँ अब अंकुरित तथा पल्लवित होने को उत्सुक हैं। इस दिशा में हमें ठोस पग उठाने होंगे।

इस ग्रन्थ में प्रायः समग्र उपलब्ध सामग्री का सदुपयोग कर, सभी प्रकार की कार्य-प्रणालियों अर्थात् 'टेबिल वर्क' और 'फील्ड वर्क' के द्वारा, शोध-तत्त्व को प्रदीप्त करने की विनम्र चेष्टा की गयी है।

द्वितीय अध्याय

राष्ट्रीयता की पूर्व-पीठिका

राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता

डॉ० सुधीन्द्र ने लिखा है कि भूमि, भूमिवासी जन और जन-संस्कृति का समुच्चय 'राष्ट्र' है और 'राष्ट्र' के उत्थान और प्रगति के संयोजक तत्वों का समीकरण राष्ट्र-धर्म है। व्यक्ति के भाव, विचार और क्रिया-व्यापार द्वारा राष्ट्र के हित, कल्याण और मंगल की भावना और चेतना 'राष्ट्रवाद' है।[१] राष्ट्रवाद के निम्नलिखित पाँच तत्त्व राष्ट्रीय एकता के लिए अनिवार्य गुण माने गये हैं:—भौगोलिक एकता, भाषा संबंधी एकता, सांस्कृतिक एकता और धार्मिक एकता।[२] श्री ई० एच० कार ने राजनीतिक एकता को व्यतीत अथवा वर्तमान स्थिति या भविष्य की कल्पना के लिए राष्ट्रवाद की प्रथम आवश्यकता अनुभव की है।[३]

राष्ट्र की विधिवत् व्याख्या प्रस्तुत करना दुष्कर कार्य है। आंग्ल भाषा के 'आक्सफोर्ड शब्द कोश' में लिखा है कि एक पूर्वज की सन्तान जिसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा एक हो, जो एक विशिष्ट भूखण्ड में निवास करती हो एवं जो सुशासन की कायल हो, राष्ट्र के अन्तर्गत आती है।[४] 'विश्व कोश' में भी लिखा है कि वह लोक समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो, राष्ट्र की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है।[५] डॉ० राधाकृष्णन् ने एक बार अपने दीक्षान्त भाषण में कहा था कि प्लेटो के मतानुसार नागरिक का ही वृहद् रूप राष्ट्र है। यदि हम अनुत्तरदायी शासन में रहते हैं तो यह हमारा दुर्भाग्य नहीं, दोष है। गम्भीर विवेचन से पता चलता है कि हमारी शासन-व्यवस्था हमारी ही प्रतिकृति है। एक ग्रीक वक्ता का कथन है—'नगर दीवारों से नहीं, आदमियों से बनता है।' राष्ट्र संज्ञा का कारण भौगोलिक स्थिति नहीं, विचारों की

१—डॉ० सुधीन्द्र—'हिन्दी कविता में युगान्तर', जीवन की पृष्ठभूमि, पृष्ठ ३७।

२—Shri Balraj Madhok—A Study in Indian Nationalism, p. 9.

३—E. H. Carr—Nationalism, P. 7.

४—Oxford English Dictionary.

५—World Dictionary.

एकता है। यदि राष्ट्र-भावना को हम बढ़ाना चाहते हैं तो हमें समान विचार एवं समान रुचि उपजानी होगी।[१]

'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार, राष्ट्रीयता समभावना और संगठित स्वत्व पर ही आधारित है। उसके किसी अन्य विशेष लक्षणों के आधार पर उसकी परिभाषा सम्भव नहीं।[२] प्रो० मेडगल के मतानुसार, राष्ट्रीयता एक भावनाजन्य मनोवैज्ञानिक स्वरूप है।[३] आचार्य ललिताप्रसाद सुकुलने लिखा है कि राष्ट्र-चेतना का आधार शासन तन्त्र या भूखण्ड विशेष का आश्रयी नहीं। वास्तव में राष्ट्रीय भावना का केन्द्र हुआ करता है—उन्नत मानव का सहज स्वीकृत वह जीवन-दर्शन जो सांस्कृतिक ऐक्य, आचार ऐक्य तथा लौकिक और पारलौकिक ऐक्य की आधार-शिला पर स्थित रहता है।[३] श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'प्रभा' की एक सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था कि राष्ट्रीयता तो एक भावना मात्र पर अवलम्बित है। यह कहना कि इस भावना का उदय आर्थिक, ऐतिहासिक, भाषा विषयक, भौगोलिक एवं सभ्यता विषयक एकता से होता है, ठीक नहीं। जिस प्रकार मानव-हृदयों में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोभाव विकसित और उन्नत होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय भावना भी मानवों के हृदय में विकसित, आलोड़ित और उन्नत होती है। बाह्य परिस्थितियों का

१—डा० रामलाल सिंह—द्वारा सम्पादित 'आधुनिक निबन्ध',
डा० राधाकृष्णन् का लेख 'नेतृत्व की शिक्षा', पृष्ठ १५४ से उद्धृत।

२— **Nationality**—A some what vague term, used strictly in International Law for the status of membership in a nation or state and in a more extended sense in political discussion to denote an aggregation of persons claiming to represent a racial, territorial or some other bond of unity, though not necessary, recognised as an independent political entity. In this latter sense, the word has often been applied to such people as the Irish, the Americans and the Czechs. A 'Nationality' in this connetion represents a common feeling and an organised claim rather than distinct attributes which can be comprised in a strict definition."

—Encyclopaedia Britannica.

३—'नवीन' दर्शन, पृष्ठ १८ से उद्धृत।

४—'नवीन' दर्शन, पृष्ठ १८ से उद्धृत।

आघात-प्रतिघात उन पर अवश्य होता है, पर सर्वांश में इन बाह्य परिस्थितियों को राष्ट्रीयता की जननी मान लेना अस्वाभाविक और अवास्तविक है।[१]

अखिल भारतीय कांग्रेस के गया-अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में देशबन्धु चित्तरंजन दास ने कहा था : 'राष्ट्रीयता वह क्रिया है जिसके द्वारा एक राष्ट्र अपने को व्यक्त करता है तथा अपने को खोज लेता है। राष्ट्रीयता का यथार्थ सार यही है कि प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपना विकास करना, अपने को व्यक्त करना और आत्मानुभव करना आवश्यक है कि जिससे मनुष्यता स्वयं अपना विकास कर सके, अपने को व्यक्त कर सके और आत्मानुभव कर सके।'[२] श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है कि जीवन में राष्ट्रीयता के तीन स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं : (१) घटनाओं में व्यक्त होने वाली वह तेजस्विता जो राष्ट्र को बल पहुँचाती है; (२) घटनाओं की परवाह न कर व्यक्त की जाने वाली तेजस्विता जो राष्ट्र की धमनियों में बल पहुँचाती है; (३) वह मस्ती व प्रखरता जबकि समस्त विश्व की सूझें एकत्र की जायं तो भारतीय सूझें (या किसी भी राष्ट्र की सूझें) अपना विशेष स्थान प्राप्त कर सकें और अपना व्यक्तित्व अंकित कर सकें।[३]

राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप एवं विकास की दिशाओं का विश्लेषण करते हुए, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि अक्सर राजनीति में राष्ट्रीय चेतना का अर्थ देश की बहिर्मुखी उन्नति के लिए प्रयत्नशील होना माना जाता है। राजनीतिक दलों के लोग इसी को लक्ष्य बनाकर काम करते आए हैं पर यह राष्ट्रीय चेतना का एक आंशिक स्वरूप है। इसके अतिरिक्त उसके अन्य अनेक स्वरूप हैं। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करना यदि राजनीति का लक्ष्य था, तो सामयिक जीवन में, वैयक्तिक जीवन में, न्याय और स्वतन्त्रता की माँग करना, कलाकारों और साहित्यिकों की विशेषता रही है। प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को खोल कर नए जन-समाज के सामने रख देना, उसके उज्ज्वल आदर्शों की ओर सबका ध्यान आकृष्ट करना, साहित्यिकों का कार्य रहा है, और उन्होंने इस कार्य को बड़े मनोयोग के साथ सम्पन्न किया है।[४] डॉ० नगेन्द्र ने देश-भक्ति के पल्लवों को प्रस्फुटित करते हुए लिखा है कि जब मनुष्य के राग-वृत्त का

१—'प्रभा', मार्च, १९२५, पृष्ठ २३९।

२—'प्रभा', फरवरी, १९२३, पृष्ठ १५७।

३—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', क्या राष्ट्रीय कविता का युग समाप्त हो चुका है ?, १३ अगस्त, १९६१, पृष्ठ ११।

४—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', स्वाधीन भारत में साहित्यकार का दायित्त्व, १३ अगस्त, १९६१, पृष्ठ ५।

विस्तार होता है, तो वह अपने व्यक्तित्व से परिवार, परिवार से ग्राम-नगर फिर प्रदेश-देश और इसके आगे विश्व तक व्यापक हो जाता है। यह वास्तव में स्व का विस्तार ही है, उसका निषेध नहीं है : देश भक्ति में स्व का वृत्त समग्र देश और उसके निवासियों तक विस्तृत हो जाता है। इस विस्तार-प्रक्रिया में राग के उत्साह का मिश्रण भी हो जाता है क्योंकि देशवासियों के प्रति राग का अभिप्राय है : उनके कष्टों का निवारण, उनकी सेवा-सहायता, उनके विकास का प्रयत्न; और ये सभी उत्साह-मूलक क्रियाएँ हैं। इस प्रकार देश भक्ति में राग उत्साह के साथ मिलकर उदात्त रूप धारण कर लेता है।[१] डा० राधाकृष्णन् के मतानुसार, राष्ट्रीयता का अर्थ तो यह है कि हम अपनी आत्मा की, सम्मान तथा ईमानदारी की, यथाशक्ति रक्षा करें और समस्याओं के सुलझाने के अपने व्यक्तिगत ढंग को बनाये रखें।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के व्यापक क्षेत्र में विभिन्न तत्त्व आते हैं जो कि राष्ट्रीय कविता के विषय-वस्तु बन जाते हैं। डॉ० सुधीन्द्र ने लिखा है कि जिस कविता में समग्र 'राष्ट्र' की चेतना प्रस्फुट हो, वह राष्ट्रीय कविता है—इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र के रूप ही पर राष्ट्रीय कविता का स्वरूप अवलम्बित है।[३] राष्ट्रीय कवि 'एक भारतीय आत्मा' के मतानुसार, कविता, राष्ट्रीय कविता, केवल वह नहीं है जिसमें खून, फाँसी, कारागार और कालेपानी का वर्णन हो, किन्तु वह भी है जो विभिन्न राष्ट्रों की भाषा-बहनों से ऊँचा उठकर बोल सके।[४] कविता में राष्ट्र की आत्मा ऊर्ध्वमुखी होती है। वस्तुतः साहित्य का तो यह नैसर्गिक धर्म है। श्रीभट्ट ने लिखा है कि साहित्य जातीय जीवन के उत्थान और पतन की प्रतिच्छाया है।[५]

राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि

प्राचीन काल से ही भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्राप्त होती है। इस प्रवृत्ति को, युगानुकूल रूप में, दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) पुरातन काल;

(ख) आधुनिक काल।

१—डॉ० नगेन्द्र—'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, पृष्ठ १९।

२—'आधुनिक निबन्ध', पृष्ठ १५० से उद्धृत।

३—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृष्ठ १६७।

४—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १३ अगस्त, १९६१, पृष्ठ ११।

५—श्री उदयशंकर भट्ट द्वारा संपादित 'भक्ति पंच रत्न', पृष्ठ ९।

पुरातन काल :

पुरातन काल की सीमाओं में, हम अपनी सुविधा के अनुसार प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत अथवा हिन्दू-युग एवं मुस्लिम-युग को ले सकते हैं।

प्राचीन भारत में, देश-प्रेम एवं मातृ-भक्ति की भावनाएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी।[१] ऋग्वेद में राष्ट्रीय महाशक्ति के विषय में यह उल्लेख आया है :—

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवाः व्यदधुः पुरुत्रा, भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥
मया अन्नमत्ति यो विपश्यति, यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मामुतक्षियन्ति, श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं तेवदामि॥"[२]

अथर्ववेद में राष्ट्र के स्वरूप के सम्बन्ध में यह मंत्र मिलता है :—

"भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विद स्तपो दीक्षा मुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु॥"[३]

अथर्ववेद में ही भारत की माता के रूप में अतीव व्यापक एवं सरल कल्पना की गयी है हमारे ऋषियों ने कहा था कि धरती माता मुझ पुत्र पर अपनी दुग्ध की धार उड़ेले:—

'सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।'[४]

पृथ्वी को माता मानते हुए, ऋषियों ने अपने को उसका पुत्र कहा है :—

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'[५]

इसी प्रकार के, अन्य प्राणमय एवं उल्लसित छन्दों में, ऋषियों ने अपनी मातृ-भक्ति प्रकट की है; यथा :—

(क) "तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।"[७]

(ख) "यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्चकृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।"[८]

१–Dr.R.B.Pandey–'Banaras Hindu University Journal', Atharvadic conception of the Motherland, Silver Jublee, November, 1962.

२–'ऋग्वेद', १०। १२५। ३८४।

३–'अथर्ववेद', १६। ५। १।

४–वही, १२। १। १०।

५–वही, १२। १। १२।

७–'अथर्ववेद', १२। १। २६।

८–वही, १२। १। ४२।

(ग) "ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम्। ये
संग्रामा समितयस्तेषु चारु वदेम ते।"[१]

भौगोलिक एकता की हमारी कल्पना अति पुरातन है, जम्बू द्वीप के भरत खण्ड के रूप में हम देश को देखते आये हैं :—

"गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।"[२]

हमारे यहाँ कन्याकुमारी अन्तरीप से लेकर हिमालय तक राष्ट्रीयता का शंख-नाद होता था। समन्वय तथा ऐक्य के सूत्रों ने ही अपना पुनीत वितान ताना था :

"कलिगांग, वंगान्ध्र, क्द्राविडादीनुपाधीन्
विहायैक्य आलम्बभूयः।
अये भारतीयाः मतानां विभेदै अलम् दे
भेदेन बैरेठा चालम्॥"[३]

विष्णु पुराण में भी कहा गया है :—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे,
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात्।"[४]

भारत की एकता तथा विशालता का गुणगान आदि कवि वाल्मीकि ने भी किया है। इस सम्बन्ध में, 'नवीन' जी ने लिखा है कि सन् १९३९ के अगस्त मास की प्रथम तिथि को विनोबा, लोकमान्य तिलक को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भारत की एकता का प्रसंग छेड़ बैठे। कहने लगे—वाल्मोकि ने अपनी रामायण के प्रारंभिक श्लोकों में राम के गुणों का वर्णन किया है। राम का गुणगान करते हुए, राम कैसे थे, इसका वे यों ही वर्णन करते हैं कि समुद्र इव गाम्भीर्य्ये, स्थैर्य्य च हिमवानिव।' स्थिरता ऊपरवाले हिमालय जैसी और गाम्भीर्य पैरों के निकट वाले समुद्र जैसा। देखिए, कैसी विशाल उपमा है। एक साँस में (आदि कवि ने) हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के दर्शन कराए। पाँच मील ऊँचा पर्वत और पाँच मील गहरा सागर (दोनों) एकदम दिखाए। श्लोक के एक ही चरण में उत्तरभारत और दक्षिण का समावेश कर दिया। विशाल और भव्य उपमा है।[५]

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर छत्रपति शिवाजी महाराज तक, हमारे देश में

१—'अथर्ववेद', १२।१।५६।
२—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृष्ठ १६५ से उद्धृत।
३—'नवीन' दर्शन, पृष्ठ १८ से उद्धृत।
४—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृष्ठ १६९ से उद्धृत।
५—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'विनोबा स्तवन', पृष्ठ ३।

भौगोलिक ऐक्य की कल्पना चली आ रही है। पूर्व मध्यकालीन भारत में 'राष्ट्र' राज्य में संकीर्ण हो गया था। महाराणा प्रताप तथा शिवाजी ने मेवाड़ तथा महाराष्ट्र को ही देश के रूप में ग्रहण किया। सर यदुनाथ सरकार ने शिवाजी के विषय में लिखा है कि अपने उदाहरण से उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू जाति एक राष्ट्र का निर्माण कर सकती है, एक राज्य की नींव डाल सकती है।[१] विशद् राष्ट्र-प्रेम का उज्ज्वल रूप महाकवि कालिदास की कृतियों (यथा 'रघुवंश' में) और जगद्गुरू शंकराचार्य के देश की सांस्कृतिक सूत्र बद्धता के प्रयासों में प्राप्त होता है। तुलसीदास में राष्ट्रीयता की सामान्य भावना प्राप्त होती है[२]। डॉ० सुधीन्द्र ने लिखा है कि वाल्मीकि की रामायण राष्ट्रीय काव्य है और वेदव्यास का महाभारत भी और इसीलिए वे हमारे महाकाव्य (Epic) हैं। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' सांस्कृतिक राष्ट्रीय काव्य था, 'पृथ्वीराज रासो' आदि वीर गाथा-काव्य अंशतः ही राष्ट्रीय काव्य हैं क्योंकि उनका जीवन गृहयुद्ध (Civil war) का शौर्य था। इसीलिए चन्द बरदाई की जो कविता उस समय राष्ट्रीय थी, वह आज 'जातीय' रह गयी। हिन्दु-मुसलिम राष्ट्रीयताओं के युग में 'भूषण' की कविता भी पूर्ण राष्ट्रीय कैसे कही जाय? केवल हिन्दू या मुसलिम धर्म की सांस्कृतिक चेतना 'आज की' राष्ट्रीय चेतना मे संकुचित रह गयी है। वह अपने समय की राष्ट्रीयता तो अवश्य है।[३] उस युग में राष्ट्रीयता की भावना हिन्दुत्व से आगे नहीं बढ़ सकी थी और उसका यह रूप शताब्दियों तक ऐसा ही बना रहा।[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र-चेतना ने हमारे पुरातन भारत को अभि-भूति कर रखा था और हम अपने देश के प्रति सामान्यतया आस्थावान थे।

आधुनिक काल :

हमारी राष्ट्रीयता की भावना उत्तरोत्तर विकसित होता गयी और आधुनिक काल में उसका प्रखर तथा भास्वर रूप दृष्टिगोचर हुआ। अंग्रेजों के आगमन तथा हमारी पराधीनता के कारण, राष्ट्र-प्रीति की प्रवृत्ति अपने उज्ज्वलतम रूप में, हमारे समक्ष आयी। अंग्रेज लोग यान्त्रिक-औद्योगिक सभ्यता के अग्रदूत तथा नवीन ऐतिहासिक शक्ति के प्रतिनिधि होने के कारण प्रभावपूर्ण बन गए।[५]

१—'Short History of Aurangazeb,' Page 230.

२—भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो
लहि के............' कवितावली।

३—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृष्ठ १६७-१६८।

४—डॉ० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ २०।

५—"The British became dominant in India and the

आंग्ल प्रभुत्व काल—

अंग्रेजों के प्रभुत्व काल को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) उदय (सन् १८१८ से १८५७ ई०) ;

(ख) उत्कर्ष (सन् १८५८ से १९१९ ई०) ;

(ग) अस्त (सन् १९२० से १९४७ ई० तक)।[1]

इन अवस्थाओं का संक्षिप्त विश्लेषण निम्न लिखित रूप में है :—

उदय :

योरोपीय सभ्यता के सम्पर्क से चाहे जो कुछ दुष्परिणाम हुए ; परन्तु उससे बौद्धिक एवं आलोचक की तीक्ष्ण दृष्टि, हमारी नव-निर्माण की शक्ति में आवेग तथा भारतीय संस्कृति की आत्मा का पुनर्स्थापन कर, उसे नूतन परिस्थितियों के समझने, अपनाने और अन्त में उन पर विजय पाने के अवसर प्राप्त हुए।[2]

ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही, भारत में आंग्ल-सत्ता एवं सभ्यता का श्रीगणेश होता है। अंग्रेजों के विरुद्ध एकत्र विष का प्रथम विस्फोट सन् १८५७ की महान् क्रान्ति के द्वारा हुआ। इसे यद्यपि विदेशी लेखकों एवं उनके सम्प्रदायानुयायियों ने 'गदर' या 'विप्लव' की संज्ञा दी ; परन्तु इसकी व्यापकता तथा

---

foremost power in world, because they were the heralds of the new big machine industrial civilisation. They represented a new historic force which was going to change the world and were thus, unknown to themeselves, the fore-runners and representatives of change and revolution"—Shri Jawahar Lal Nehru, 'Discovery of India', page 268-269.

१—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृष्ठ ११।

2—'For whatever temporary rotting and destruction this crude inpact of European life and culture has caused, it gave three needed impulses; it rehabiliated life and awakened the desire of new creation; it put the reviving Indian spirit face to face with novel conditions and urgent necessity of understanding, assimilating and confering them'—'The Renaissance in India,' page 29.

विशद् प्रभाव[१] को देखते हुए, यह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का श्रीगणेश था। सन् १८५८ में महारानी विक्टोरिया की राजकीय घोषणा के साथ ही, ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारत का शासन-सूत्र सीधे इंग्लैंड की संसद् के हाथ में आ गया।

राजनैतिक जन-जागृति के साथ ही साथ, सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी नव-चेतना दृष्टिगोचर हुई। हमारे प्राचीन सांस्कृतिक वैभव की ओर हमारा ध्यान गया। सन् १७८४ में, प्राचीन भारत के साहित्यिक वैभव एवं सांस्कृतिक सम्पत्ति के अन्वेषणार्थ, बंगाल की एशियाटिक सोसायटी का जन्म इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण घटना है।[२] सांस्कृतिक आन्दोलन के अन्तर्गत ब्राह्म समाज, आर्य समाज, थियोसफी तथा रामकृष्ण मिशन आदि ने हमारे कवियों को विशेषतया प्रभावित किया। ब्राह्म समाज के प्रवर्तक राजाराममोहनराय (सन् १७७४-१८३३ ई०) द्वारा स्थापित 'ब्राह्म समाज' (सन् १८२८) को नवोत्थान का प्रतीक माना जा सकता है। वे नयी स्फूर्ति के, उस अन्वेषण की लालसा के, उसकी ज्ञान-विज्ञान की पिपासा के, उसकी विशाल मानव-सहानुभूति के, उसके शुद्ध और परिष्कृत नीतिशास्त्र के और अतीत के प्रति श्रद्धापूर्ण किन्तु समालोचनात्मक आदर भाव के मूर्त रूप थे।[३] श्री अरविन्द घोष के मतानुसार, 'ब्राह्म समाज' के अन्तराल में विशाल विश्व-बन्धुत्व की भावना निहित थी। इस समन्वयवादी संस्था में, वेदांत तथा आँग्ल-उपादेयतावादी दर्शन का, स्वर्णिम

1—Indian Mutiny, Part II, p. 195.

2—'Thus there has been an almost general awakening of the Indian mind leading in most cases to a revival and adoptation of the past literary tradition of India, which have been and are being harmonised with all the West and the wide world has brought and is still bringing to the doors of India. x x x This cultural renaissance has also necessarily created in modern India a spirit of enquiry into the past history and antiquities of the country. The foundation of the Asiatic Society of Bengal in 1784 was a landmark in the history of India from this standpoint'—Shri Dutta and Sarkar, 'Textbook of Modern Hisrory,' Part II, p. 233.

3—Shri N. C. Ganguly—'Raja Ram Mohan Roy'.

सामंजस्य था।[१] महान् सामाजिक एवं दार्शनिक, धार्मिक सुधारक महर्षि दयानंद सरस्वती (सन् १८२४-१८८३ ई०) द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' (सन् १८७५ ई०) ने राष्ट्र में व्यापक धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना लाने में अधिक कार्य किया। महर्षि दयानंद ने कहा था कि कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अपनी प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।[२] थियोसोफी ने सहिष्णुता तथा सर्वधर्मसमन्वय का कार्य सम्पन्न किया। इस आन्दोलन की प्रवर्तिका श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने हिन्दुओं के मध्यम वर्ग में राष्ट्रीय तथा धार्मिक चेतना लाने में महत्त्वपूर्ण योग-दान दिया।[३] श्री रामकृष्ण परमहंस (सन् १८३४-१८८६) तथा स्वामी विवेकानन्द (सन् १८६३-१९०२) ने धर्म की संकीर्णता[४] का विरोध किया औरसमन्वय वाद का ज्वलन्त दृष्टान्त प्रस्तुत किया।[५] सनातन हिन्दू धर्म के आधार पर व्यापक विश्व-धर्म का संदेश संसार को देना, लोगों को यह विश्वास करा देना कि अद्वैत वेदान्त

१--The Brahmo Samaj had in its inception a large cosmopolitan idea, it was ever almost eclectic in the choice of the materials for the synthesis it attempted; it combined a Vedantic first inspiration, outward forms akin to those of English Utilitarianism and something of its temper, a medium of Christin influence, a strong dose of religious rationalism and intellectualism.—'The Renaissance in India', p. 47.

२—महर्षि दयानन्द सरस्वती—'सत्यार्थ प्रकाश।'

३--'She was a powerful influence in adding to the confidence of the Hindu middle classes in their spiritual and national heritage'.—Shri Jawaharlal Nehru, 'The Discovery of India', p. 295.

४—'As you rest firmly on your own faith and opinion so allow others also liberty to stand by theirs.'

—The Teachings of Shri Ramakrishna; No. 564.

५—'The movement associated with the great names of Ramakrishna and Vivekanand has been a wide synthesis of past religious motives and spiritual experience topped by a

भौतिक शास्त्र की प्रगति के कारण मिथ्या नहीं ठहर सकता, भौतिक प्रगति को और प्रवृत्ति-परता को प्रधानता देकर वेदान्त को कर्म-प्रवण बनाना, पादरियों की भाँति धर्माचरण में लोक सेवा को प्रधानता देना और धर्म के आधार पर राष्ट्र भक्ति और स्वाभिमान की ज्योति जगाकर जनता में परतन्त्रता के विरुद्ध भक्ति-भाव फैलाना आदि बहुविध कार्य 'रामकृष्ण मिशन' ने किया है।[1]

कहना नहीं होगा कि हमारे राष्ट्रीयता वाद के चिरन्तन एवं सांस्कृतिक पार्श्व को, उदय एवं उत्कर्ष-काल को उपर्युक्त संस्थाओं एवं आन्दोलनों ने विस्तृत रूप से प्रभावित किया है। हमारे राष्ट्रीय कवियों द्वारा अतीत के गौरव गायन के पृष्ठ में, भारत के सांस्कृतिक आन्दोलनों के गहन तथा मर्मी सूत्र विद्यमान हैं।

उत्कर्ष :

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रथमाहुति के पश्चात्, सन् १८६१, १८६६, १८६८-६९, १८७३-७४ तथा सन् १८७६-७८ में भयंकर दुर्भिक्ष पड़े और महामारी, बेकारी, कर आदि ने विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। अंग्रेजों के प्रति विरोध एवं आक्रोश के भाव उद्दीप्त होने लगे। बंगाल के 'तिलक' श्री सखाराम गणेश देउस्कर ने 'देशे कथार' (श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर द्वारा अनूदित 'देश की कथा') शीर्षक अपनी बंग रचना मे अंग्रेजों के आर्थिक शोषण का भंडाफोड़ किया।[2]

भारत की राजनैतिक परिस्थितियों एवं प्रश्नों के आधार पर सन् १८७६ में 'इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना हुई। सन् १८८५ मे 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की, श्री ह्यूम ने, स्थापना की जिसकी प्रथम बैठक बम्बई में हुई। आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है कि जिस समय कांग्रेस का जन्म हुआ, उस सयय हमारा देश गुलामी की सबसे दर्दनाक हालत में था।

---

reaffiramation of the old asceticism and monasticism, but with new living strands in it and comdined with a strong humanitarianism and zeal of missionary expansion.'—'The Renaissance in India', page 48.

१—आचार्य जावड़ेकर—'आधुनिक भारत'।

२—भारत में अँग्रेज आर्थिक शोषण कर मोटे हो रहे हैं और भारतीय निर्धनता से दीन-हीन! मध्यवर्गीय अँग्रेजों की ईर्ष्या और भूखे स्काट लोगों को अपनी लम्बी तनख्वाहों की चिन्ता ने भारत के निवासियों की उन्नति के सभी मार्ग बन्द कर दिए हैं। हमारा ख्याल है कि भारत के अंतर्देशीय व्यापार में एकत्र विशाल धन राशि अंग्रेजों ने ऐसे निर्मम और बर्बर

उस समय स्पष्ट तौर पर आजादी की बात सोचना, उसका सपना देखना भी हमारे लिए आसान नहीं था।[१] कांग्रेस की स्थापना, हमारे युग की सबसे प्रभावपूर्ण एवं महत्वशील घटना है जिसके गर्भ से आन्दोलन के प्रखर रूप ने जन्म लिया।

अपने प्रारम्भिक युग में, कांग्रेस ने राजभक्ति एवं शिथिलता का वरण किया था। सन् १९०० में लार्ड कर्जन ने भारत सचिव को अपने एक पत्र में लिखा था : "कांग्रेस अपनी मृत्यु को प्राप्त हो रही है और मेरी यह सबसे बड़ी इच्छा है कि मैं उसकी शांतिपूर्ण मृत्यु में सहायक हो सकूं।[२] सन् १९१० में, जार्ज पंचम के सिंहासनारूढ़ होने पर, प्रयाग-कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके, राजभक्ति की अभिव्यक्ति की।[३] कांग्रेस में नरम दलीय नेताओं का प्रभाव था। वह निष्प्राण हो रही

अत्याचारियों से एकत्र की, जो किसी भी देश में या किसी भी युग में किसी के द्वारा किसी के विरुद्ध अब तक प्रयुक्त नहीं हुई थी। सर विलियम डिग्बी ने भारत की निर्धनता का तथा भीषण आर्थिक शोषण का कारण यह बताया—भारत की दरिद्रता के कारणों में दो सर्व-प्रमुख कारण हैं—(१) हमने भारत के उद्योग-धन्धों को नष्ट किया तथा (२) भारत की सम्पत्ति का ह्रास किया। हमने न केवल भारतीय उद्योग-धन्धों को विनष्ट किया अपितु सन् १८३४-३५ से सन् १८९८ तक ('इकानामिस्ट' पत्र के अनुसार) भारत से दस अरब रुपयों को हरण किया है। यह धनराशि भारत में होती और पाँच रुपये सैकड़े ब्याज पर किसानों को कर्ज दिये गए होते तो आज तक इनकी संख्या कम से काम पचास अरब हुई होती।"

—'पराड़कर जी और पत्रकारिता', साहित्य खण्ड, पृष्ठ २४४-२४५।

१—आचार्य नरेन्द्रदेव—'राष्ट्रीयता और समाजवाद', पृष्ठ १३५।

२—R. Palme Dutt—'India Today', p. 301-302.

३—"यह कांग्रेस, महाराज पाँचवें जार्ज के सिंहासनारूढ़ होने पर, नम्रतापूर्वक उनकी आधीनता स्वीकार करती है और उनके प्रति अपनी उत्कृष्ट राजभक्ति प्रकट करती है। यह कांग्रेस इस घोषणा पर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करती है कि महाराज जार्ज और महारानी मेरी सन् १९११ में भारतवर्ष में आने वाले हैं।" 'कांग्रेस के प्रस्ताव', सम्पादक श्री कन्हैयालाल, पृष्ठ २४७।

थी।[१] **भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय काव्य में**, इस रूप के दर्शन किये जा सकते हैं। राजभक्ति, प्रशस्ति, सामान्य देशभक्ति आदि के भाव, द्विवेदी-युग के उषः काल तक विद्यमान रहे। भारतेन्दु युगीन कवि श्री 'प्रेमघन' महारानी विक्टोरिया के भारत-आगमन पर, अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन करते हैं :—

"संकित सत्रु उलूक लुके लखि ज़ासु प्रताप दिनेसहि जानि।
फूलि रहै प्रजा कंज सुखी सर देश में न्याय के नीर अधानी॥
कीरति, वय, परिवार और राज दराज में है धन प्रेम को सानी।
देख्यौ निहारि विचारि मलै जगतौ सम जाइ तुही महारानी॥"[२]

फिर भी देशभक्ति का प्रवाह गतिशील था और भारतेन्दु ने अपनी व्यथा को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया :—

"अँग्रेज राज सुख साज सबै अति भारी।
पै धन विदेश चलि जाति यहै अति ख्वारी॥[३]"

सन् १९०३ में लार्ड कर्जन ने दिल्ली दरबार कराया और सन् १९०५ में बंग-भंग हुआ। बंग-भंग के अन्यायपूर्ण आघात से ही, देश की राष्ट्रीयता में भयंकर प्रखरता आ गयी। सम्पूर्ण भारत ने बंगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओं को और जोड़ कर आन्दोलन को गहरा रंग दे दिया।[४] इन्हीं दिनों बंकिम बाबू के 'आनन्द मठ' के 'वन्दे मातरम्' गीत ने जन-जन के मन-मन को आन्दोलित कर दिया। कण्ठ-कण्ठ में यह गीत परिव्याप्त हो गया। राष्ट्रीय क्रान्तिकारी महर्षि अरविन्द ने भी, इसी आन्दोलन से सक्रिय प्रेरणा तथा प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर, 'वन्दे मातरम्' नामक पत्र का सम्पादन शुरू किया।[५] सचेष्ट एवं तेजस्वी राष्ट्रीयता का सूत्रपात बंग-भंग आन्दोलन से हुआ।

१—"इसके बाद सन् १९१६ तक कांग्रेस के जो अधिवेशन हुए, उनमें कुछ नरम नेताओं और उनके चन्द अनुयायियों के सिवाय कोई नहीं जाता था। वह नाम मात्र की कांग्रेस रह गयी थी। उसमें जीवन नहीं था। वह मृतप्रायः थी।"—श्री सुख सम्पत्तिराय भण्डारी, 'भारतवर्ष और उसका स्वातन्त्र्य-संग्राम', पृष्ठ ३६२।

२—'प्रेमघन' सर्वस्व, हार्दिक हर्षादर्श, भाग १, पृष्ठ २६५।

३—'भारतेन्दु ग्रन्थावली', भाग १, पृष्ठ ४७०।

४—डॉ० पट्टाभि सीतारमैया-'कांग्रेस का इतिहास', खण्ड १, पृष्ठ ६५।

५—'प्राच्य भारती', श्री अरविन्द विशेषांक, जुलाई-अगस्त, १९६२, पृष्ठ १३।

सन् १९०५-१९०९ के मध्यवर्ती काल में जो नूतन एवं प्रभविष्णु चेतना उत्पन्न हुई ; उसने राष्ट्रीयता के दो नवीन दलों को जन्म दिया।[१] सन् १९०६ की कलकत्ता-कांग्रेस में मतभेद हो गया और १९०७ ई० में सूरत कांग्रेस में, संस्था का विभाजन गरम दल तथा नरम दल में हो गया। इन दोनों वर्गों की प्रतियोगिता लम्बे समय तक चलती रही और सन् १९१६ में पुनः एकीकरण हुआ। नरम दल में सुरेन्द्रनाथ, फीरोजशाह तथा गोखले आदि थे और गरम दल में लाजपतराय, तिलक और विपिन चन्द्र पाल थे। क्रान्तिकारियों का दल भी हिंसक कार्यवाहियों को लेकर सक्रिय हो गया।

लार्ड कर्जन कुख्यात होकर वापस लौटा। लार्ड मिण्टो (सन् १९०५-१०) की कालावधि में विद्रोहाग्नि प्रज्वलित रही। बाल-लाल तथा पाल के नेतृत्व में स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जो सन् १९०९ तक काफी सक्रिय बना रहा। नौकरशाही ने आतंक, दमन तथा अत्याचारों का आश्रय ग्रहण किया। ९ मई, सन् १९०७ को सरदार अजितसिंह और लाला लाजपतराय को निर्वासित किया गया। 'सेडीशन्स मीटिंग्स ऐक्ट' (१ नवम्बर, १९०७ ई०), एक्स्प्लोसिव सब्सटेंसेज एक्ट' तथा 'न्यूजपेपर एक्ट' (८ जून, १९०८ ई०) तथा 'क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ड एक्ट' (११ दिसम्बर, १९०८) पारित करके, निर्ममता तथा नृशंसता की सृष्टि की गयी। ९ जून, १९०८ को लोकमान्य तिलक को छः वर्ष के कारागृह-वास के हेतु, ब्रह्मदेश भेज दिया गया। अन्य नेताओं को भी बन्दी अथवा निर्वासित कर दिया गया।

सन् १९०६ में, बंग-भंग के फल-स्वरूप, 'मुस्लिम-लीग' की स्थापना हुई। सन् १९०९ में ब्रिटिश सरकार ने 'मिण्टो-मार्ले सुधार' की योजना प्रस्तुत की जिससे असन्तोष बढ़ा। गान्धी जी के दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह ने भी भारतीय जनता की सहानुभूति प्राप्त की। लार्ड हार्डिंज (सन् १९१०-१९१६) के समय, बंगाल को फिर से एक स्वतंत्र प्रदेश बना दिया गया और तद्विषयक आन्दोलन समाप्त हुआ। सन् १९१२ में दिल्ली में लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका गया। सन् १९१६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सन् १९१४ में तिलक कारागृह से मुक्त हो कर आ गए थे। सन् १९१६ में उन्होंने तथा श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने 'होम रूल' आन्दोलन चलाया। १९ वीं शताब्दी की 'आराम कुर्सी वाली राजनीति' को छोड़कर, अब कांग्रेस पूर्ण सक्रिय संस्था बन गयी। सन् १९१६ में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन हुआ जिसमें कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का सम्मिलित रूप दृष्टिगोचर हुआ। लखनऊ-कांग्रेस में,

---

१—Gurumukh Niha Singh—'Land Marks in Indian Constitutional and National Develpment', Chapter 15, page 259.

अपने विद्यार्थी काल में, 'नवीन' जी भी सम्मिलित हुए थे। इसका उन पर युगान्तर-कारी प्रभाव पड़ा और फिर आजीवन कांग्रेस के साथ उनका गठ-बन्धन हो गया। अधिकांश कांग्रेस अधिवेशनों में वे सम्मिलित हुए। शनैः शनैः कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के योद्धा के रूप में, उनका व्यक्तित्व विकसित होने लगा।

सन् १९१४-१८ ई० में यूरोप में प्रथम विश्व-युद्ध चलता रहा। भारत ने सरकार की सर्वतोमुखी सहायता की। गांधी जी की भी अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति रही। लार्ड चेम्सफोर्ड (सन् १९१६-२१) भारत के नये वायसराय नियुक्त हुए। युद्ध की अनुकूल समाप्ति पर, भारत को कुछ भी उपलब्धि नहीं हुई और उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। इसी समय देशी राजाओं का 'नरेन्द्र मण्डल' बनाया गया; जिससे अनेक राजा असन्तुष्ट हो गए। सरकार की ओर से 'माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' प्रस्तुत किया गया; परन्तु असन्तोष अधिकाधिक बढ़ता गया। रूसी क्रान्ति (सन् १९१९) की सफलता ने भी, पराधीन भारतीयों को आन्दोलित कर दिया। सरकार ने 'रौलेट ऐक्ट' का निर्माण किया जिसमें अपराधी, राजद्रोहियों एवं क्रान्तिकारियों के दमन करने के व्यापक अधिकार अन्तर्हित थे। महात्मा गाँधी ने इसका डटकर विरोध किया। ३० मार्च, १९१९ को दिल्ली में तथा ६ अप्रैल, १९१९ को समग्र राष्ट्र में हड़ताल रही। मुसलमानों ने अंग्रेजों के विरुद्ध 'खिलाफ़त आन्दोलन' चलाया। कांग्रेस में नयी तथा प्रगतिशील जनवादी विचार-धारा को अपनाने में, अपनी असमर्थता के कारण, मोहम्मद अली जिन्ना आदि ने अपने को कांग्रेस से पृथक् कर लिया।[१]

१३ अप्रैल, सन् १९१९ को पंजाब के जलियाँ वाला बाग में जनरल डायर ने एक शांतिपूर्ण विशाल सभा पर गोली की वर्षा कर दी। इस पर समग्र भारत के अंग-प्रत्यंग से शोले फूट पड़े। राष्ट्रीयता अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच गयी। दमन तथा शोषण का चक्र चल पड़ा। परन्तु नृशंस से नृशंस दमन भी किसी राष्ट्र की उभरती हुई स्वातन्त्र्य भावना को पूर्णतः पदाहत नहीं कर सकता; चाहे कुछ समय के लिए दबा भले ही ले।[२] विद्रोहाग्नि दबाने पर और भड़कने लगी।

१—'The Discovery of India', Page 431.

२—"......., rifles and machine guns will not destroy a man's soul, nor a nation's. A nation may be crushed and enslaved but the jack-boots of Might cannot stamp out the living spirit of freedom, they may succeed in driving it outright, under ground, for a period, but in darkness and in secret it grows to power again, and the day comes when

द्विवेदी-युग के काव्य में, उपर्युक्त राष्ट्रीय परिस्थितियाँ प्रतिफलित हुईं। हमारा राष्ट्रीय काव्य उत्तरोत्तर व्यापक तथा गहन होने लगा।

अस्त :

१ अगस्त, १९२० को, 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' के मन्त्र-स्रष्टा लोकमान्य तिलक के देहावसान के पश्चात्, राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक युग की परिसमाप्ति हुई और दूसरे युग—'गान्धी-युग'—की अवतारणा हुई।

गान्धी जी के राजनीति-प्रवेश में भावी इतिहास की घटनाएँ गर्भित हैं। वे दक्षिण आफ्रिका में अपने सत्याग्रह की सात्त्विक दुन्दुभि बजाकर, विपुल यश प्राप्त कर चुके थे। सन् १९१५ में वे भारत वापस आए। अपने राजनैतिक गुरु गोखले के आदेशानुसार, वे राजनीति से, प्रारम्भ में, निस्पृह ही बने रहे। अपने युग के श्री गणेश के पूर्व, उन्होंने अपने सत्याग्रह द्वारा दो बार विजय प्राप्त की। सन् १९१६ में फिजी की गिरमिट प्रथा को बंद करने के लिए वे सक्रिय हुए। सन् १९१७ में, चम्पारन में, उन्होंने दूसरी बार सत्याग्रह के शस्त्र का सफल प्रयोग किया।[१] सन् १९१८ के गुजरात के खेड़ा तथा अहमदाबाद के सत्याग्रह ने तो गाँधीजी को आस्था का जीवन्त पुंज बना दिया। भारतीयों को आत्मिक बल तथा आध्यात्मिक मूल्य प्रदान कर, गान्धीजी ने नूतन युग की अवतारणा की। उनका कांग्रेस पर अमिट प्रभाव आच्छादित हो गया। गाँधी युग के स्वर्णिम वितान ने, स्वाधीनता की उषा के कपोलों पर अन्ततोगत्वा गुलाल मल कर ही माना।

धार्मिक आन्दोलनों ने नव-जागृति तथा उदारता का वातावरण तैयार कर दिया था।[२] गाँधीजी भी मूलतः धर्म प्राण तथा हिन्दू ही थे।[३] इस प्रकार कई घटकों

---

once more it blazes forth, a light to lead mankind.' (Miss Ethel Mannin).

—Dr. Radhakrishnan, 'Mahatma Gandhi', Page, 183.

१—'Social Back ground of Indian Nationalism,' Page 165.

२—"Some of these religeous movements aimed at raising the traditional religion in the spirit of the principles of liberalism."—Dr. A. K. Desai, 'Social Back Ground of Indian Nationalism', page 252.

३—"Gandhi was essentially a man of religion, a Hindu to the innermost depths of his being and yet his conception of religion has nothing to do with any dogma or custom or

तथा मान्यताओं ने इस आन्दोलन के स्वरूप-निर्माण में अपना हाथ बटाया। सितम्बर, १९२० में गाँधी जी की सहायता से कलकत्ता-कांग्रेस में असहयोग आन्दोलन की योजना बनी। दिसम्बर, सन् १९२० में, नागपुर अधिवेशन में शान्तिपूर्ण एवं अहिंसात्मक उपायों के द्वारा, स्वाधीनता प्राप्ति के उद्देश्य के हेतु, आन्दोलन के कार्यक्रम की निश्चित रूपरेखाओं में रंग भरा गया। हिन्दू-मुस्लिम संगठन, चर्खे का प्रचार, खादी का उपयोग, शाला बहिष्कार, पद तथा उपाधि आदि का त्याग, इस आन्दोलन के प्रमुख सूत्र थे।

प्रथम विश्व-युद्ध की निष्फल प्रतीक्षा तथा अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचारों के परिणाम-स्वरूप, स्वतन्त्रता के लिए दृढ़तापूर्वक युद्ध का श्री गणेश हुआ। समग्र भारत में महात्मा गाँधी का दृढ़ स्वर[1] गूंज उठा और सितम्बर, १९२० से वृहत् आन्दोलन ने अपने द्रुत डग भरने शुरू कर दिए। निर्बल क्रोध और आग्रह पूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान जिम्मेदारी का एक नया भाव और स्वावलम्बन की स्पिरिट ले रहे थे।[2] सन् १९२१

religion. It was basically concerned with his firm belief in the moral law, which we call the law of truth or love. Truth or non-violence appear to him to be the same thing or different aspects of one and the same thing and he uses these words almost inter-changeably."—Shri Jawaharlal Nehru, 'The Discovery of India', page 340.

१—"युद्धान्त में शासकों द्वारा दी गयी शर्तें पूरी नहीं की गयी, गाँधी पुनः मैदान में आए और उन्होंने १० मार्च को असहयोग योजना प्रथम बार प्रकट करते हुए घोषणा की; 'यदि हमारी माँगें पूरी स्वीकार न हुईं तो हमें क्या करना चाहिए, इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लमखुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िए क्योंकि यह अव्यवहार्य है। आज तो मैं हिंसा के विरुद्ध तर्क पेश कर रहा हूँ सो इस कारण कि परिस्थिति ही ऐसी है और ऐसी अवस्था में हिंसा बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध होगी। अतएव, हमारे लिए असहयोग ही एक मात्र औषधि है। यदि यह सब प्रकार की हिंसा से मुक्त रखी जाए तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि असहयोग के द्वारा हमारा पतन और तेजी नाश होती है और हमारे धार्मिक भावों को आघात पहुँचता है, तो असहयोग हमारे लिए कर्त्तव्य हो जाता है—'श्री पट्टाभि सीतारमैया, 'कांग्रेस का इतिहास,' भाग ३, अध्याय १, पृष्ठ १९४-१९५।

२—'कांग्रेस का इतिहास', भाग ३, अध्याय २, पृष्ठ १८६।

में असहयोग-आन्दोलन उफन रहा था। आन्दोलन सन् १९२४ तक चलता रहा। गाँधी जी, नेहरू जी आदि बड़े-बड़े नेता कारागृहों में ठूस दिए गए। दमन-चक्र ने भयावह रूप ग्रहण कर लिया। इस बीच, फरवरी, १९२२ ई० को, चौरी-चौरा (गोरखपुर) में एक लोमहर्षक अमानुषिक हत्याकाण्ड हो गया। पुलिस के दुर्व्यवहार से उत्तेजित होकर लोगों ने थाने को जला डाला, सब इन्सपेक्टर और उस समय थाने पर उपस्थित कांस्टेबिलों को मार डाला और उनकी लाशें आग में डाल दी।[1] जब राष्ट्र ने प्रत्येक दशा में अहिंसात्मक रहने की प्रतिज्ञा कर ली हो तब राष्ट्रीय आन्दोलन का काम करते हुए ऐसे काण्ड कर डालना न केवल नैतिक दृष्टि से निन्दनीय और घृणित तथा कानूनी दृष्टि से दण्डनीय है; बल्कि देश के साथ विश्वासघात और उसके सर्वोत्तम हितों पर कुठाराघात भी है।[2] परिणाम-स्वरूप गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। बारडोली में ता० ११ व १२ मार्च, १९२२ को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक में, महात्मा गाँधी के सत्याग्रह-स्थगन सम्बन्धी प्रस्ताव को पारित किया गया। चौरी-चौरा की दुर्घटना सत्याग्रह आरम्भ के विरुद्ध प्रकृति की चेतावनी है इसलिए सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाए और समस्त शक्तियाँ देश को सत्याग्रह के योग्य बनाने में, सत्याग्रह के अनुकूल पर्याप्त प्रशान्त वायु मण्डल बनाने में, लगा दी जाएँ।[3] सन् १९२४ के बेलगाँव-कांग्रेस में गाँधी जी ने सत्याग्रह के कार्यक्रम को वापस ले लिया। 'नवीन' जी ने लिखा था कि सन् १९१७ ई० से हम कांग्रेसों में आते-जाते रहे हैं। हमने कांग्रेस-इतिहास का भी थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि महात्मा जी ने ३९वीं कांग्रेस के सभापति के आसन से जिस कार्य कुशलता का परिचय दिया है; वह अभूतपूर्व-अदृष्टपूर्व है।[4] कांग्रेस रचनात्मक कार्यों-में प्रवृत्त हो गयी। सर्वत्र निराशा का अन्धकार विस्तीर्ण हो गया। 'नवीन' जी ने लिखा था कि कलकत्ते में जिस असहयोग का जन्म हुआ; नागपुर में उसका अन्नप्राशन-संस्कार हुआ और अहमदाबाद में जिसका उपनयन संस्कार हुआ; वही असहयोग आन्दोलन आज भारतीयों के दिल में छिपकर आँख-मिचौनी खेल रहा है।[5]

१—'प्रभा', मार्च, १९२२, पृष्ठ २३६।

२—'प्रभा', सम्पादकीय-टिप्पणियाँ, चौरी-चौरा हत्याकाण्ड, मार्च, १९२२; पृष्ठ २३६-२३७।

३—वही, पृष्ठ २३७।

४—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, बेलगाँव-कांग्रेस, फरवरी, १९२५; पृष्ठ १५७।

५—वही, पृष्ठ १५७।

सन् १९२८ के 'साइमन कमीशन' से संग्राम फिर करवट बदलने लगा। 'बारडोली सत्याग्रह' ने भी चेतना की वृद्धि की। कलकत्ता कांग्रेस ने ब्रिटिश सत्ता को अंतिम चेतावनी देते हुए यह प्रस्ताव पारित किया : 'अगर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट इस विधान ('नेहरू कमेटी' के अभिलेख द्वारा प्रस्तुत शासन-विधान की योजना) को ज्यों का त्यों ३१ दिसम्बर, १९२९ तक या उसके पहिले स्वीकार कर ले, तो यह कांग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लियामेण्ट उसे मंजूर न करे, इसके पहिले ही नामंजूर कर दे, तो कांग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करों का देना बन्द कर दे और अन्य तरीकों से, जो पीछे निश्चित हों, अहिंसात्मक असहयोग का आंदोलन संगठित करेगी।'[१] सन् १९३० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने अपने द्वितीय तथा परिपक्व चरण रखे। २६ जनवरी, १९३० को राष्ट्र के गृह तथा प्रत्येक वीथिका में स्वाधीनता का घोषणा-पत्र गुंजायमान हो उठा : 'हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी जानते हैं कि यदि कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार के बदल लेने या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतंत्रता का ही अपहरण नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्त-शोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।'[२]

ऊपर ऊपर दीखने वाली शिथिलता और निराशा की तह में कितनी असीम भावना, उत्साह और स्वार्थत्याग की तैयारी दबी पड़ी थी। स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अंगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की गुलामी राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एवं उत्साह के लाल अंगारों पर जमी हुई राख को फूंक मारकर हटा दिया जाय।[३] सन् १९३० में नमक-कानून तोड़ने के लिए गाँधी जी ने डाँडी यात्रा की। सन् १९३१ में राजगुरु, सुखदेव तथा सरदार भगतसिंह को प्राण-दण्ड की सजा घोषित की गयी। इसी वर्ष गणेशशंकर

१—'कांग्रेस का इतिहास', भाग ३, अध्याय ९, पृष्ठ २८७।
२—'कांग्रेस का इतिहास', भाग २, अध्याय २, पृष्ठ ३१४-३१५।
३—'कांग्रेस का इतिहास', भाग ४, अध्याय २, पृष्ठ ३१५।

विद्यार्थी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के हेतु, अपनी बलि चढ़ा दी। मार्च, १६३१ में कराची-अधिवेशन हुआ। कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि वह ऐसा कोई शासन-विधान स्वीकार न करेगी; जिसमें मताधिकार के सम्बन्ध में स्त्रियों और पुरुषों में भेद किया गया हो।[१]

५ मार्च, १६३१ को गाँधी इरविन समझौता सम्पन्न हुआ और शासन द्वारा दमनात्मक प्रतिबन्धों के वापस लेने पर, कांग्रेस ने अपना आन्दोलन समाप्त कर दिया। उसी दिन राष्ट्रपिता ने अपने ऐतिहासिक वक्तव्य में, भारतवासियों को सतर्क करते हुए, कहा था: "बात यह है कि काँग्रेस को एक निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना है और उस उद्देश्य तक पहुँचे बिना विजय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मैं अपने सब देशवासियों से और अपनी बहनों से आग्रह करूँगा कि वे फूलकर कुप्पा होने के बजाय—यदि समझौते में फूलकर कुप्पा हो जाने की कोई ऐसी बात है—परमात्मा के आगे सिर झुकावें और उससे प्रार्थना करें कि उन्हें वह इस समय उनका ध्येय, इनसे जिस मार्ग दूर चलने का तकाजा करता है, उस पर चलने की शक्ति व बुद्धि प्रदान करे, चाहे वह मार्ग कष्ट सहन का हो और चाहे वह धैर्य-पूर्वक संधि-वार्त्ता या विचार-विनिमय करने का हो।"[२]

सन् १६३१ के अंतिम दिनों में गाँधी जी गोलमेज सभा में सम्मिलित हुए पर इसका कोई परिणाम नहीं निकला। गाँधी जी ने आन्दोलन को पुनर्जीवित कर दिया और वह सन् १६३४ तक चला। १६३३ में कलकत्ता अधिवेशन में सत्याग्रह एवं श्वेत-पत्र सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए।[३] सत्याग्रह के इस तृतीय उत्थान के सम्बन्ध में, सीतारमैया ने लिखा है कि गाँधी जी ने जो मार्ग दिखाया था, उस पर १६३३ के अगस्त से १६३४ के मार्च तक देश भर में कांग्रेस कार्यकर्त्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट ताँते ने युद्ध को जारी रक्खा। आंदोलन के अंतिम युद्ध में हरेक प्रान्त ने कितने सत्याग्रही दिए; इसका पूरा ब्यौरा मौजूद नहीं है। केवल इतना ही कहना काफी है कि हजारों ने आह्वान का उत्तर दिया और, जैसी परिस्थिति थी, उसको देखते हुए, हर एक प्रान्त ने स्वतंत्रता के युद्ध के लिए जितना कुछ वह कर सकता था, किया।[४] सन् १६३२ में कांग्रेस को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। आन्दोलन के स्थापित करने तथा पुनर्जीवित करने पर, नाना प्रकार की प्रतिक्रियाएँ

१—वही, भाग ५, अध्याय १, पृष्ठ ३६६।
२—वही, भाग ५, अध्याय १, पृष्ट ३८५।
३—'कांग्रेस का इतिहास', भाग ६, अध्याय २, पृष्ठ ४८२।
४—वही, पृष्ठ ४८८।

हुई ।[१]

सन् १९३६ में ब्रिटिश सत्ता ने कांग्रेस के ऊपर से प्रतिबन्ध हटा लिया । इसी वर्ष, सन् १९३५ के विधान के आधार पर, लड़े गए चुनाव में कांग्रेस की वन्दनीय विजय हुई । सन् १९३७ से १९४७ ई० के दस वर्ष गाँधीवादी भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अन्तिम चरण के वर्ष हैं । सन् १९३३ तथा १९३९ में गाँधी जी ने आमरण अनशन किए । सन् १९३९ से द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रारम्भ हुआ । नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना की । सन् १९४२ की अन्तिम क्रान्ति में 'करो या मरो' का, गाँधीजी का उद्घोष, दिशा-दिशान्तर में निनादित हो गया ।

सन् १९४२ ई० की क्रांति का सूत्रपात बम्बई से हुआ । दिनांक ७ व ८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की एक सभा हुई जिसका इतिहास मे अनुपम महत्त्व है । इस समय उसके सदस्यों तथा जनता में बड़ी उत्तेजना आयी । सभा मण्डप कमेटी की बैठक की बजाय कांग्रेस का एक छोटा-सा अधिवेशन प्रतीत हो रहा था जिसमें करीब-करीब बीस हजार आदमी सम्मिलित हुए ।[२] इसी बम्बई अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि इस अंतिम चरण में विश्व-स्वातन्त्र्य का ध्यान रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी फिर ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रों से अपील करना चाहती है । परन्तु वह यह भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्र को, एक ऐसी साम्राज्यवादी और शासन-प्रिय सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रदर्शित करने से रोकने का कोई अधिकार नहीं है जो उस पर आधिपत्य जमाती है और जो उसे अपने तथा मानव-समाज के हित का ध्यान रखते हुए काम करने से रोकती है । इसलिए कमेटी भारत के स्वतंत्रता और स्वाधीनता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक-से-अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है,

---

१—वियना से प्रकाशित एक वक्तव्य में विट्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस ने घोषणा की कि 'सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन को स्थगित किये जाने की श्री गाँधी की ताजा कार्यवाही असफलता की स्वीकारोक्ति है । हमारा यह स्पष्ट मत है कि राजनीतिक नेता के रूप में गाँधी जी असफल हो चुके हैं । (अतः) समय आ गया है कि कांग्रेस का नवीन सिद्धांत के आधार पर नए तरीकों से पुनर्गठन किया जाए; जिसके लिए नया नेतृत्व आवश्यक है ।' 'India Today'. Footnote, Page 353.

२—'कांग्रेस का इतिहास', खण्ड २, अध्याय १४, बम्बई प्रस्ताव—पृष्ठभूमि और परिणाम, पृष्ठ ४०३ ।

जिससे देशगत २२ वर्षों के शांतिपूर्ण संग्राम में संचित की गयी समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके। यह संग्राम निश्चय ही गाँधीजी के नेतृत्व में होगा और कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्यवाहियों में राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन करने का निवेदन करती है।[1]

इस महान् क्रांति का गौरांग प्रभुओं ने निर्ममता पूर्वक दमन किया। सभी कर्णधारों को कारागृहों में भेज दिया गया। सन् १९४५ में वातावरण शांत हुआ। हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। भारत का विभाजन हुआ। १५ अगस्त, सन् १९४७ को भारतीय स्वतंत्रता का अरुणोदय हुआ। अन्ततोगत्वा बापू ने अपनी 'लकुटिया' स्वाधीन भारत में ही टेकी।

स्वाधीन भारत में, हमारा राष्ट्रीयतावाद विश्व-मानवतावाद की ओर उन्मुख हो गया। मानव तथा मानवतावादी प्रवृत्तियों ने अपने पंख खोल दिए। मानववाद की यह मूलभूत मान्यता है कि सत्य और स्वत्त्व मानव के लिए हैं; मानव द्वारा प्राप्त हैं और मानव विकास के पर्याप्त साधन हैं।[2] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के मतानुसार, मानवतावादी लेखक अधिक भावुक और आदर्श-प्रेमी होते हैं।[3] अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, लोकतन्त्र, भारत की प्रगति, निरस्त्रीकरण, अंतरिक्ष-अभियान आदि उपादानों ने भी हमारे कवियों को प्रभावित किया। गाँधी जी की हत्या ने हमारे कवियों को झकझोर दिया। उनकी मृत्यु पर अनेक कविताएँ लिखी गयी। नेहरू जी तथा उनके पंचशील, विनोबा तथा भूमिदान यज्ञ आदि ने कवियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। अणु-विज्ञान की ओर भी हमारा घ्यान गया। हमारी सीमाओं पर चल रहे वात्याचक्रों ने भी हमारी राष्ट्रीयता को उद्दीप्त किया है।

वर्तमान में, गाँधी, रवीन्द्र तथा अरविन्द के दर्शन से हमारा राष्ट्रीयतावाद प्रभावित रहा। गाँधी जी ने राजनीति में धर्म का समन्वय किया। यदि तिलक कुछ काल के लिए और जीवित रहते तो सम्भव है भारत के इतिहास में महात्मा गाँधी का नाम एक धार्मिक महापुरुष के रूप में आता, राजनीतिक नेता के रूप में नहीं।[4] कवीन्द्र रवीन्द्र ने विश्वदर्शन को महत्ता प्रदान की। महर्षि अरविन्द ने उच्च तथा सघनतम-

---

१—'कांग्रेस का इतिहास', खंड २, अध्याय १४, बम्बई प्रस्ताव—पृष्टभूमि और परिणाम, पृष्ठ २००।

2—'Encyclopaedia of Religion and Ethics, Humanism, Volume 6, page 830.

३—'आलोचना', सम्पादकीय, २० अक्तूबर, १९५६, पृष्ठ ५।

४—श्री रोमां रोला—'महात्मा गांधी', पृष्ठ १९-२०।

मानववाद की प्राण-प्रतिष्ठा की।[१] इस युग के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों ने राष्ट्रीय काव्य के शाश्वत अंगों को मांसल बनाया है।

१—"It is interesting to watch how during the entire period of some thirty years, it is in the service of life, man, personality xxx that his intelligence and intuition have been functioning. Aurobindo's humanism superb and of the jntensest type, and his spirituality is encyclopaedic as life itself."—Shri Vinay Kumar Sarkar, 'Creative India', Page 607.

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा

प्राचीन वाङ्मय में राष्ट्रीयता :

पुरातन काल से ही हमारा भारतवर्ष राष्ट्रीय चेतना से परिप्लावित था। हमारे वेद-साहित्य में 'पृथ्वी सूक्त' मिलते हैं जिनमें मातृभूमि की वन्दना की गयी है :—

"उपस्थास्ते अनमीया अमदमा अस्मभ्यंसन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घन आयुः प्रतिबध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम[१] ।!"

'अथर्ववेद' का ऋषि कहता है कि मैं अपनी मातृभूमि के लिए उसका दुःख दूर करने के लिए हर तरह की कठिनाइयाँ सहने के लिए तैयार हूँ। वे कठिनाइयाँ चाहे जिस ओर से आवें और चाहे जब आवें—मुझे इसकी चिन्ता नहीं :—

'अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाऽस्मि विश्ववाषाऽशामाशां विसासहि :[२] ।।"

शौर्य और प्रतिशोध की वृत्ति का स्फुरण इन पंक्तियों में हुआ है :—

'यो अस्मभ्यमरातीयाद् यश्च नौ द्वेषते जनः ।
निन्दान् यो अस्मान् धिप्सोच्च सवं तं भस्मसाकुरू ।।'[३]

विष्णुपुराणकार का कथन है कि देवता भी भारत भूमि का यह कह कर स्तवन किया करते हैं कि जिन व्यक्तियों ने स्वर्ग व मोक्ष की मार्गभूत भारत भूमि में जन्म लिया है, वे हम देवताओं की तुलना में कहीं अधिक सौभाग्यशाली हैं :—

'गायांति देवाः किल गीतकानि धन्याः स्तुते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गस्विद मार्गभूते भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरस्वात् ।।'[४]

हमारे ऋषियों ने ही नहीं अपितु विदेशी पर्यटकों ने भी भारत-भूमि की मुक्त-कण्ठ से सराहना की है। प्राचीन भारत के प्रख्यात यात्री ह्यूनसांग ने लिखा था कि धन्य है वह भारत-भूमि जहाँ न्यायालय तो हैं किन्तु कोई अपराधी नहीं, कारावास

---

१. अथर्ववेद ।
२. वही ।
३. शुक्ल यजुर्वेद ।
४. विष्णु पुराण ।

हैं कोई बन्दी नहीं, घर हर तरह की श्री-सम्पदा से सम्पन्न और समृद्ध हैं, पर ताले नहीं।

संस्कृत काव्य में राष्ट्रीयता :

संस्कृत साहित्य राष्ट्रोपासना से ओत-प्रोत है। आदि कवि वाल्मीकि ने ही यह सूत्र प्रदान किया जो कि सर्वाधिक लोक प्रिय हुआ—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी[1]।'

अर्थात् जननी और जन्मभूमि ये दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। विश्वासघाती चीनी आक्रमण के संदर्भ में महर्षि वाल्मीकि की निम्न पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण बन गयी जिनमें आत्मरक्षा की बात कही गई है :

'योहि शत्रुमवज्ञाय आत्मानं नाभिरक्षति
अवाप्नोतिहि सोऽ नर्यान् स्थानाच्च व्यवरोप्यते[2]॥'

'महाभारत' क्षत्रिय धर्म का गुण-गान करता है :—

'जातोऽसि भारते वंशे सर्व पार्थिवपूजिते।
गच्छ युद्धस्व धर्मेणक्षात्रेण पुरुषर्षभ॥
यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य—
स्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारी मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेय :॥'

महाकवि कालिदास का काव्य प्रत्येक दृष्टि से मार्मिक है। उनका हिमगिरि-वर्णन राष्ट्रीय चेतना को स्वर देता है। उसे वे पृथ्वी को तौलने का तराजू मानते हैं—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधि-वगाह्यस्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहर्धरित्रीम्॥
अनन्तरत्नप्रभवस्ययस्यहिमं नसौभाग्यविलोपिजातम्।
एकोहि दोषो गुणसन्निपातेनिमज्जतीन्दोःकिरणेष्विवांकः॥
यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानामसंपादीयित्रीशिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदयिभक्तरागामकालसंध्यामिवधातुमत्ताम्॥

---

१. वाल्मीकि रामायण।
२. वही।

आमेखलंसंचरतांघनानां छायामधःसानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते श्रृंगाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥'

महाकवि माघ ने पर्वतों के राजा हिमालय का विस्मय-विमुग्ध वर्णन किया है—

'आच्छादितायितदिगम्बरमुच्चकैर्गा—
मक्रिम्यसंस्थितमुदग्रविशालश्रृंगम् ।
मूर्ध्निस्खलत्तुहिन दीधिति कोटिमेन—
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम् ॥'

माघ लिखते हैं कि एक ओर गिरिराज की पूर्व दिशा में अपनी किरणों को उछालते हुए सूर्य उदित हो रहा है और दूसरी ओर पश्चिम दिशा में चन्द्रमा अपनी किरण फैलाते हुए अस्त हो रहा है। इस प्रकार किरण रूपी डोरियों में हिमालय के दोनों ओर लटके हुये सूर्य और चन्द्रमा ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो कोई मस्त हाथी अपनी मादकता में भरा दोनों ओर घंटे लटकाए झूम रहा है—

'उदयति विततोर्ध्व रवि रमज्जा—
वहिमरुचौहिमधाम्निचास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बिघंटाद्वय—
परिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥' ४/२०

महाकवि भारवि भी देवतात्मा हिमालय के उपासक हैं। उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसी प्रकार हिमालय में आते ही जन्म-जरा-रहित ब्रह्म-पद प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों की बुद्धि सांसारिक आकर्षणों से मुक्त हो जाती है—

'अविरतोज्झितवारिविपांडुभिः ।
विरहितैरचिरद्युतितेजसा ।
उदतिपत्चमिवारतनिःस्वनैः
पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदैः ॥'

शत्रु का समूल नाश ही महाकवि माघ की नीति की भित्ति है। यही प्रतिष्ठा-प्राप्ति का मूलमंत्र है—

'विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलुदुर्लभा ।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकंनावतिष्ठते ॥'

चीन के विश्वासघात ने भारत को जगाया। दुष्ट स्वभाव के लोग वीर-पुरुषों को विश्वासघात से उत्तेजित करते हैं। वन में गहन-निद्रामग्न सिंह को वृक्ष तोड़ने की ध्वनि से गजराज जगाता है और वनराज उसे मार डालता है। बाणभट्ट का यही निष्कर्ष है—

'विस्रब्धघातदोषःस्ववधाय खलस्यवीरकोपकरः ।
नवतरुभंगध्वनिरिवहरिनिद्रातस्करःकरिणः ।।'

महाकवि कल्हण साहस तथा संघर्ष की बात करते हैं और आशा तथा उत्साह की वृद्धि करते हैं—

'क्लैंव्यकृद्भयमापाते मध्यपाते न तादृशम् ।
करक्षिप्तं यथा शीतेमज्जनै न तया पयः ।।'

नीति शरीर की क्षणभंगुरता एवं कीर्त्ति के शाश्वतत्व पर बल देती है। मरण का सहर्ष वरण करना चाहिए—

'जये च लभते लक्ष्मी मृते चापि सुरांगनाम् ।
क्षणविध्वंसिनः काय का चिन्ता मरणे रणे ।।'

हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता :—

सामान्यतया राष्ट्रीय काव्य का तात्पर्य देशोपासना से परिपूर्ण कृति से लिया जाता है। इनमें ओज पूर्ण कविताएँ और युद्ध गीत आते हैं। साथ ही अतीत का सिंहावलोकन और वर्तमान की दुर्दशा के भी चित्र रहते हैं।

हिन्दी में राष्ट्रीय चेतना का इतिहास अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध है। हिन्दी ने अपनी समसामयिक चेतना एवं युगीन परिस्थितियों के प्रति अपने आपको सदा-सर्वदा सचेत एवं सतर्क रखा है।

हिन्दी साहित्य के क्रमागत युगों को पार करता हुई हमारी काव्य-गंगा सदैव राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिवेश से संयुक्त रही है।

वीरगाथा काल :

हिन्दी काव्य के राष्ट्रीय स्फुरण का प्रारम्भिक स्वरूप 'वीरगाथाकाल' में स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है। भारत में इस्लाम का प्रवेश हो चुका था। यवन शासक शनैः शनैः अपने पैर सुदृढ़ कर रहे थे। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में बड़ी उथल-पुथल मची थी। भारतीय नरेश अपने राज्य या रियासत को ही सर्वस्व समझ बैठे थे। फूट और सौन्दर्य के कारण घर में ही तलवारें चल रही थीं। म्यान सूनी थी। नुपूर ध्वनि युक्त थे। घर फूंका जा रहा था। बाह्य आक्रमणों के प्रति सुनियोजित प्रतिकार की वृत्ति का अभाव था।

दरबारी कवियों ने 'रासो' काव्य और वीर-काव्य का निर्माण किया जो कि वस्तुतः चारण-काव्य थे।

'विजयपाल रासो', 'हमीर रासो', 'कीर्तिलता', 'खुमान-रासो', 'बीसलदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो', 'परमालरासो' आदि में व्यक्ति-पूजा ही दिखायी पड़ती है। इतिहास को भी सर्वसम्मत रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। यद्यपि युद्धों का सजीव

वर्णन मिलता है और वीर रस का परिपाक दिखायी पड़ता है परन्तु इन रचनाओं में संकुचित राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। युद्ध का उत्साह इन पंक्तियों में स्पष्ट है :—

'बारह बरस लै कूकर जिये, और तेरह लै जिये सियार।
बरस अठारह छत्री जिये, आगे जीवन को धिक्कार।।'

युद्ध की भाषा डिंगल ने अपने जौहर दिखाए। डिंगल भी पीछे नहीं रही। चन्द बरदाई ने पृथ्वीराज के युद्ध कौशल को इसी में ही चित्रित किया है :—

'भरनि भीर खलमलत रेन चलमलति पवन करि।
लोथ लोय पर परित अर्क नहि सकत गवन करि।
श्रौंन छिछ ऊच्छरत सुभट सुम्मति जनु किंसुक,
गजन ढाल कंढुरित भार संघर लक मधभुव।'

वास्तव में 'वीरगाथा काल' की रचनाएँ वीर-काव्य से अभिहित की जा सकती हैं न कि राष्ट्रीय काव्य से। वीर-काव्य का प्रवाह संस्कृत साहित्य से प्रारम्भ होता है और वह पाली, सिद्ध-परम्परा, अपभ्रंश एवं नाथ-साहित्य में अपने क्रमिक सोपान पार करता है। डॉ० टीकम सिंह तोमर के मतानुसार, 'वीर' शब्द मूलतः शूर अथवा योद्धा के लिए प्रयुक्त होता है। अतः वीरकाव्य के अन्तर्गत उन समस्त काव्यों को सम्मिलित किया जाता है, जिसका आधार ऐतिहासिक घटनाएँ हैं या जिनमें आश्रयदाताओं की कीर्त्ति, युद्ध-सज्जा, गर्वोक्तियाँ, युद्ध एवं वीरतापूर्ण कार्य-कलाप का चित्रण किया गया हो।[१]

चारणों के आश्रयदाताओं की स्तुतियों को राष्ट्रीय काव्य नहीं कहा जा सकता। राष्ट्र द्रोही जयचन्द के भी प्रशंसक कवि उस युग में जीवित थे और इस परम्परा में भट्ट केदार ने 'जयचन्द प्रकाश' एवं मधुकर ने 'जयमयंक जस चन्द्रिका' नामक कृतियाँ लिखीं। राजा की रियासत ही कूपमण्डूकता के कारण राष्ट्र बन बैठी थी। सामन्तों की प्रशंसा होती थी। कवियों ने अपनी इस प्रतिभा का उपयोग जीविकोपार्जन के लिए किया। यह विकृत तथा पथ भ्रष्ट राष्ट्रीयता का निदर्शन है।

भक्ति काल :—

हिन्दी साहित्य के भक्ति-युग में यवन शासकों ने स्थैर्य और स्थायित्व प्राप्त कर लिया था। भारत के अधिकांश भागों पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो रहा था। भक्ति आन्दोलन ने समूचे राष्ट्र को एकसूत्रता में आबद्ध किया। सन्त, भक्त और ज्ञानी कवियों ने भारत के वातावरण को शान्त तथा निरापद बनाने में विशेष योग-दान दिया। गुरुनानक, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि ने जन-जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया। कबीर और तुलसी ने समन्वय स्थापित कर राष्ट्रीय ऐक्य को सुदृढ़

१, 'हिन्दी साहित्य'—द्वितीय खण्ड, वीर काव्य, पृ० १३८।

किया। अष्टछाप के मधुर कवियों ने सरसता तथा उल्लास की सुर-सरिता प्रवाहित की। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कवियों ने साहित्य की श्री-वृद्धि की। सांस्कृतिक एकता के सूत्र परस्पर में जुड़ गए। सुन्दर की झांकी दिखायी गयी तो शील और भक्ति का भी आदर्श चरितार्थ हुआ। इन सब घटकों ने राष्ट्रीयता के सम्वर्द्धन में योग दान तो दिया परन्तु इसका भी व्यापक एवं उदार-स्वरूप नहीं था। भक्ति के आवरण को प्राधान्य मिला। सुधारवाद, मर्यादावाद एवं आदर्शवाद के त्रिसूत्र ही सर्व प्रमुख बने। जो बात 'गीता' में कही गयी कि—

'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे[1]॥

वही गोस्वामी तुलसीदास भी कहते हैं:—

'जब जब होइ धरम कै हानि,
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
सींदहि बिप्र धेनु सुरधरनी,
करहिं अनीति जाइ नहीं बरनी।
तब तब धरि हरि विविध सरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा[2]।'

'भक्ति-युग' हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' होते हुए भी, राष्ट्रीयता का स्वर्ण-युग नहीं कहला सका। देश भक्ति से ओत-प्रोत कविताओं का अभाव रहा और समूचा राष्ट्र काव्य के माध्यम से प्रतिनिधित्व नहीं हो सका। फिर भी इस युग में नरहरि महापात्र और तानसेन ने वीर-काव्य की सृष्टि की। नरहरि के काव्य में सम्राट् अकबर, जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति आदि का वृत्तान्त है। तानसेन ने भी अकबर, रीवा-नरेश रामचन्द्र, राजा मानसिंह, राजा प्रासकरण आदि के वर्णन किए हैं।

रीति काल :—

रीति-युग में रीति बद्ध, रीति सिद्ध, रीतिमुक्त आदि काव्य को प्रश्रय मिला। विलासिता तथा शृंगारिकता को मुगलशासन ने अपने रक्त में प्रवेश दे दिया था। दरबारी कवि भी अपने महाप्रभुओं के अनुकूल काव्य-सर्जना करने लगे। रीति-काल की काव्य-धारा में

---

१. 'श्रीमद्भागवद्गीता'—४,७-८।
२. 'रामचरित मानस'।

वीर-काव्य की सरिता भी सम्मिलित होती है जिसका सम्बन्ध राष्ट्रीय काव्य-धारा से है।

रीति-काल का वीरकाव्य प्रशस्तिकाव्य था। यह वीर-काव्य का द्वितीय उत्थान था। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस उत्थान में पाँच प्रकार की पद्धतियाँ गिनायी है :—

१. शुद्ध वीर काव्य।
२. रासो पद्धति का शृंगार मिश्रित वीर काव्य।
३. वीर-देव-काव्य या भक्तिभावित वीर काव्य।
४. अनूदित वीरकाव्य (महाभारत ऐसे वीरकाव्यों के अनुवाद)।
५. दरबारी कवियों का प्रकीर्ण वीर काव्य[१]।

भूषण, श्रीधर, लाल, सूदन और पद्माकर ने वीर काव्य का निर्माण किया परन्तु सर्वाधिक प्रसिद्धि भूषण एवं लाल को मिली। भूषण ने महाराज शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला को प्रशस्तियाँ अर्पित कीं। 'शिवराज भूषण,' 'शिवा बावनी', 'छत्रसाल दशक' इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा और औरंगजेब की निन्दा की है। उन्हें जातीय कवि कहा गया है और राष्ट्रीय कवि के पद से वंचित किया गया है परन्तु वे मुसलमान धर्म के विरुद्ध नहीं थे और न उन्होंने कहीं औरंगजेब के पूर्वजों की भर्त्सना की है यथा—

"बब्बर अकब्बर हिमायूं हद्द बाँधि गए
हिंद औ तुरुक की कुरान-बेद ढब की।"

श्रीधर के 'जंगनामा' में फर्रूखसियर और जहाँदारशाह के युद्ध-कौशल की अभिव्यक्ति है। लाल कवि ने 'छत्रप्रकाश' में महाराज छत्रसाल को अपना नायक बनाया। लाल कवि ने दस ग्रन्थों की और रचना की है। सूदन ने 'सुजान चरित्र' में सूरजमल के युद्धों का वर्णन किया है। पद्माकर की 'हिम्मत विरुदावली' में हिम्मत बहादुर के तीन युद्धों का वर्णन है।

जोधराज ने 'हम्मीर रासो', चन्द्रशेखर वाजपेयी ने 'हम्मीर हठ' और सूर्य मल्ल ने 'वंशभास्कर' लिखा है।

भगवंतराय खीची, मनियारसिंह, मून बहादुरसिंह, खुमान 'मान' आदि ने हनुमान एवं अन्य देवी-देवताओं पर काव्य लिखे।

सबलसिंह चौहान, कुलपति, छत्रसिंह कायस्थ, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव आदि ने महाभारत के अनुवाद किए।

---

१. 'हिन्दी साहित्य का अतीत', भाग २, शृंगारकाल—पृ० ७००।

घनश्याम शुक्ल, मोहनलाल भट्ट, हरिकेस आदि ने अपने दरबारी आश्रयदाताओं की वीरता का वर्णन किया।

आचार्य केशवदास की 'रतनबावनी,' 'वीरसिंह-देव-चरित,' 'जहाँगीर-जस चन्द्रिका' आदि में वीरत्व का प्राचुर्य है। गंगकवि ने भी कतिपय वीरत्वपूर्ण वर्णन किए हैं। मतिराम ने भी इस दिशा में सक्रियता प्रदर्शित की है। इन कवियों के अतिरिक्त अनेक गौण कवि हुए हैं जिन्होंने भारत के विगत गौरव और शौर्य की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीति-काल के कवियों में राष्ट्रीयता के अभाव को स्वीकार नहीं करते हैं।

इस युग के कवियों की भाषा युद्ध—वर्णन तथा शौर्य—प्रदर्शन के अनुकूल है। श्रीधर का दृष्टान्त पर्याप्त है—

'फौजनि की घटा की घमण्ड घोर घेरु करि,
मौजदीन मघवा के मन में उछाह भो।
तोप गरजत तरवारि बीजु तरजत,
बरषत बानन अचल चारयो राह भो।
तब गिरिवर कर धरि गिरिवरधर,
श्रीधर भनत ब्रजमण्डल की छाँह भो।
अब गिरधरलाल बहादुर वीर,
समसेर गहि कर पातसाही को पनाह भो॥'

इस युग के लोक-नायकों ने हमारे कवियों को अक्षय प्रेरणाएँ दीं। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा ही इनका एक मात्र लक्ष्य था। भले ही इस युग के कवियों के उद्‌गारों में हिन्दुत्व का ज्वार हो परन्तु उनकी राष्ट्रीयता विगत युग से विकसित ही प्रतीत होती है।

आधुनिक काल :—

हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीय चेतना ने आधुनिक काल में अपना स्पष्ट और भास्वर रूप प्रकट किया। सन् १८५७ की जन क्रांति, राष्ट्रीय-आन्दोलन आदि ने हमारी कविता की गति शीलता में तीव्रता उत्पन्न की।

(क) भारतेन्दु युग :—

भारतेन्दु-युग में राष्ट्रीयता का उद्‌भव युगीन परिस्थितियों से हुआ। अंग्रेजों का भारत आगमन, शिक्षा-प्रसार, वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धि, मुद्रणादि ने समूचे देश को प्रभावित किया। आधुनिक काल में राष्ट्रीयता का यह प्रथम उत्थान था। प्राचीन और नवीन का गठबंधन दिखायी पड़ता है।

इस युग के काव्य में राजभक्ति और देशभक्ति का सम्मिलित रूप दृष्टिगोचर

होता है। सामाजिक कुरीतियों एवं स्थितियों पर भारतेन्दु युगीन कवियों का विशेष ध्यान गया।

देशभक्ति, जन-जीवन का चित्रण, सामाजिक दायित्व आदि को लेकर भारतेन्दु युग चलता है।

सन् सत्तावन की क्रांति से हिन्दी प्रदेश का समीपी संबंध है परन्तु भारतेन्दु युग के कवि इस दिशा में मुखर नहीं हुए हैं। भारतेन्दु ने मौन धारण किया। प्रताप नारायण मिश्र कुछ स्पष्ट भाव अपनाते हैं—

"सन सत्तावन माहिं जबहिं कछु सेना बिगरी।
तब राजा दिशि ही रही सुदृढ़ ह्वै परजासिगरी॥
दुष्ट समुझि अपने भाइन कहँ साथ न दीन्हो।
भोजन बिन विद्रोहिन कर दल निरबल कीन्हो[1]॥"

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि हिन्दी के इतिहास प्रसिद्ध कवि और लेखक खुशामदी नहीं थे। उन्होंने अंग्रेजी राज्य की अनेक अनीतिपूर्ण बातों प्रधानतः आर्थिक शोषण का विरोध किया और प्राचीन भारतीय गौरव का गान गाकर स्वतंत्रता की आवाज बुलन्द की; यद्यपि उनका विरोध 'His Majesty's Opposition' वाला विरोध था और स्वतंत्रता से उनका तात्पर्य ग्रेट ब्रिटेन के साथ राजनीतिक संबंध-विच्छेद से नहीं था। वे चाहते थे कि भारत का अंग्रेज सम्राट् उन्हें उसी दृष्टि से देखे, उसी प्रकार भारतीय प्रजा के साथ व्यवहार करे, जिस प्रकार भारतीय सम्राट् किया करते थे अथवा जैसा व्यवहार वह स्वयं ब्रिटेन-निवासियों के साथ करता था। इसी में उनकी स्वतंत्रता की भावना निहित थी। सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना उनका मुख्य ध्येय था। भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीधर पाठक आदि ऐसे प्रमुख कवि और लेखक थे जो भारत की राजनीतिक घटनाओं और प्रगति को बड़ी उत्कण्ठा के साथ देखा और परखा करते थे।[2]

राजभक्ति की रचनाएँ भी प्राप्य हैं। भारतेन्दु आंग्ल-शासन की सराहना करते हैं—'बृटिश सुशासित भूमि में आनंद उमगे जात'[3] बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी स्तुति करते हैं—

'धन्य तिहारो राज, अरी मेरी महरानी।

१—'ब्रैडला स्वागत' (सन् १८८९), पृ० १०।
२—'आधुनिक हिन्दी साहित्य,'—पृ० २५५-२५६।
३—'भारत भिक्षा' (सन् १८७५), 'भारतेन्दु ग्रन्थावली'—पृ० ७०१।

सिंह, अजा संग पिवत जहाँ एकहिथल पानी[१] ।।'

राजभक्ति के साथ ही वे विरोध भी करते हैं। शोषण पर वे दुःखी हैं। भारतेन्दु कहते हैं—

'भीतर भीतर सब रस चूसै। हँसि-हँसि कै तन मन धन मूसै ।।
जाहिर बातन में अति तेज। क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज[२] ।।

भारतेन्दु ने अपनी राष्ट्रीय मांगों और रचनाओं को स्पष्टता तथा निर्भीकता पूर्वक प्रस्तुत किया है। बालमुकुन्द गुप्त और प्रतापनारायण मिश्र में रोष दिखायी पड़ता है। 'प्रेमघन' में नम्रता तथा उदारता मिलती है। ठाकुर जगमोहन सिंह, श्रीधर पाठक आदि ने भी प्राचीन भारत की महत्ता तथा वन्दना-गीतों से काव्य को अलंकृत किया।

इस युग के कवियों ने राजनैतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों पर व्यापक टीका-टिप्पणियाँ की हैं। सामयिकता का आग्रह अधिक दिखायी पड़ता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस नवीन युग के गुरु, प्रवर्त्तक एवं केन्द्र बिंदु थे। उनके मित्रों तथा सहयोगियों ने उनकी विचार धारा तथा मूलमंत्र को, चरितार्थ करने में पूर्ण योगदान दिया।

प्रस्तुत युग में राष्ट्रीयता का प्रचुर विकास और सम्वर्द्धन हुआ। संक्रान्ति-काल होने के कारण उसमें दोनों ही स्थितियों का समावेश दिखायी पड़ता है। कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीय भावना काफी आगे बढ़ी दिखायी पड़ती है परन्तु कतिपय स्थलों पर वह दबी और पिछड़ी है। इसे युग का ही प्रभाव माना जाएगा।

भारतेन्दु युग के सूत्रधार हरिश्चन्द्र ने अनेक प्रकार से भारत माता की दुर्दशा के चित्र खींचे। कवि का विषाद-युक्त मन इन पंक्तियों में उड़ल आया है—

'लखौं किन भारतवासिन की गति।
मदिरामत्त भएसे सोअत ह्वै अचेत तजि सब मति ।।
घन गरजै जल बरसै इन पर बिपति परै किन आई।
ये बजमारे तनिक न चौंकत ऐसी जड़ता छाई ।।
भयो घोर अंधियार चहूँदिसिता महँ बदन छिपाए।
निरलज परे खोइ आपुनपौ जागतहू न जगाए ।।
कहा करैं इत रहि के अब जिय लासों यहै विचारा।
छोड़ि मूढ़ इन कहँ अचेत हम जात जलधि के पारा[३] ।।'

१—'हार्दिक हर्षादर्श' (सन् १८६७), द्वितीय खण्ड—पृ० १२।
२—'भारतेन्दु ग्रन्थावली', द्वितीय खण्ड—पृ० ८११।
३—'भारत जननी' नाटक।

भारतेन्दु ने कई उद्बोधन गीत लिखे। उन्होंने हमें हिलाया और जगाया—

'भारत के भुजबलजग रच्छित। भारत विद्यालहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत बिस्तारा। भारत भयकंयत संसारा ॥
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए। थर-थर कंपत नृप डर पाए।
जाके जय की उज्जल गाथा। गावत सब महिमंगल माथा[१] ॥'

भारतेन्दु ने भाषा को सांस्कृतिक चेतना का आधार माना—

'लखहु एक कैसे सबै मुसलमान क्रिस्तान।
हाय फूट इक हमहिं में कारन परत न जान।
तासो सबहीं भाँति है इनकी उन्नति आज।
एकहि भाषा मंह अहै जिनकी सकल समाज।'

आर्थिक एवं बौद्धिक दासत्व के प्रति उनका क्षोभ भी मननीय है—

'परदेसी की बुद्धि पर वस्तुन की करि आस।
पर-बस व्है कब लौं कहो रहिहौ तुम व्है दास ॥'

प्रताप नारायण मिश्र की चुटीली उक्तियों के पात्र अंग्रेज थे—

'सर्बसु लिए जात अंग्रेज,
हम केवल लेक्चर के तेज[२]।

राधाचरण गोस्वामी को देशोन्नति, नेशनल कांग्रेस, समाज संशोधन और स्त्री-स्वातंत्र्य प्राण-प्रिय वस्तुएँ थीं[३]। भारतेन्दु मुसलमानी राज्य को हैजे का रोग मानते थे और अंग्रेजी को क्षयी का[४]।

(ख) द्विवेदी युग :—

द्विवेदी युग ने राष्ट्रीय चेतना के पाट को अधिकाधिक चौड़ा किया। माधव शुक्ल ने 'जागृत भारत' तथा 'भारत-गीतांजलि' नामक काव्य-पुस्तिकाएँ लिखीं। आत्माहुति की भावना सर्वत्र विराजमान थी—

'जेल की धूल उड़ाय चुके अब गोली सो खेलेंगे होरी ॥
हे स्वराज्य मद-मस्त खेलाड़ी लै दल निकस परोरी।
काहूँ विधि सो जान न पावै हिय बिच धाय गहोरी।

१—'भारत दुर्दशा'।
२—लोकोक्ति शतक।
३—'भारतेन्दु मुकुर'—पृ० ३४।
४—'जनभारती', भाग ३, भारतेन्दु विशेषांक, सन् १९५०—पृ० १९।

गाल बिच लाल मलोरी गोली सों[१] ।'

श्रीधर पाठक ने हिन्द-वंदना की। वे राष्ट्रीय काव्य के अग्रदूत थे। उन्होंने पूर्ण निष्ठा के साथ गाया—

'जय देश हिन्द, देवेश हिन्द,
जय सुखसा-सुख-निःशेष हिन्द
जय धन-वैभव-गुण-खान हिन्द,
विद्या-बल-बुद्धि-निधान हिन्द
जय चन्द्र-चन्द्रिका-विमल हिन्द
जय विश्व-वाटिका-कमल हिन्द[२] ।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी मातृभूमि की वन्दना में अपनी काव्य-प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट उपयोग किया—

'क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि तू, करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि, सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है[३] ।'

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने स्वतंत्रता की वाणी का महत्त्व निरूपित किया—

'है जन्म भूमि जननी समान
स्वतंत्रता है प्रिय जिन्हें शुभ स्वर्ग से भी,
अन्याय की जकड़ती कटु बेड़ियों को
विद्वान वे कब समीप निवास देंगे ?[४]

चम्पालाल जौहरी 'सुधाकर' ने अपने देशवासियों को उद्बोधन दिया—

'समय यह भारतवासी जन, तन, मन, धन, से हो अनुरक्त।
करो कला कौशल की उन्नति, चमकाओ भारत को भक्त॥
कांग्रेस में यत्नवान हो, करो स्वदेशी वस्तु प्रचार।

१—'जागृत भारत'—पृ० ७६।
२—'भारत गीत'—पृ० १।
३—वही—पृ० ३।
४—'वैश्योपकारक', झुकी कमान।

शिल्पालय, कालेज खोलकर, देशीशिल्प का करो सुधार[१] ॥'

'एक राष्ट्रीय आत्मा' ने अपने राष्ट्रीय गीत में भारत माता का स्तवन किया—

'माता सी प्रिय भारत माता !
तुल सकता इसकी तुलना में,
कैसे और किसी का नाता ?
जन्म दिया निज तनु-तत्त्वों से,
पालन किया सकल सत्त्वों से,
लिया हमें आजन्म अंक में,
विशद् वेद-वाणी की दाता[२] ।'

लोचनप्रसाद पाण्डेय ने मातृ-वंदना को ही अपना सही धर्म स्वीकार किया—

'है अनंत प्रणाम मेरा, उसके चरणों में सदा ।
जन्म दे जिसने बढ़ाया मुझे सहकर आपदा ॥
सावधानी मेरे हित जिसने, अहा की सर्वदा ।
व्याधि और असंख्य रोगों से बचा करके सदा[३] ।'

माधवराव सप्रे वर्तमान हीनता का चित्रण कर, प्रतिज्ञा करने को प्रेरित करते हैं—

'सुई, घड़ी तक, निकृष्ट दियासलाई,
लेता सदैव सुख से फिरता पराई ।
निर्लज्ज ! सोच मन में कर क्या रहा है ?
क्यों व्यर्थ ही धन अपार लुटा रहा है[४] ?'

हमारा दृष्टिकोण व्यापक था। हमने देश ही नहीं प्रत्युत् विदेश की ओर भी अपनी सारग्राही दृष्टि डाली। अन्य देशों से भी प्रेरणाएँ ली गयी। जापान ने जो उन्नति की; वह सर्वविदित है। राधाकृष्ण मिश्र ने जापान का गुण-गान करते हुए, अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया—

'हे धर्मपुत्र ! सुखकारक सुप्रजा के !
आनन्द वर्जन ! वृहद्बल एशिया के !
प्रख्यात-रूस-बल-दर्प-विनाशकारी !

१—राष्ट्रीय कविताएँ—पृ० ३२। २—राष्ट्रीय कविताएँ—पृ० ५४।
३—'स्वदेश बांधव'—अप्रैल १९०६।
४—'आनन्द कादम्बिनी'।

जापान ! हो जय सदा रण में तुम्हारो[१] ।।''

'शान्त' जी ने अपनी अभिलाषा प्रकट की कि हमें मातृभूमि के लिए बलिमार्ग अपनाना चाहिए—

'नहीं चाहता सुखद राज्यपद, नहीं विश्व वैभव-भण्डार।
नहीं गगन का चन्द्र सूर्य बन, भोगूं स्वर्गिक—सुख-शृङ्गार।
नहीं दिव्य मणिमाला भूषित, कण्ठ बनाऊँगा अपना।
नहीं स्वार्थ का यत्किंचित भी, देख सकूंगा मैं सपना।
नहीं देख बाधा-विपदाएं, हृदय जरा भी तुम कंपना।
नहीं कर्म करने में प्यारे, नयन बंधुओं ! तुम झपना।

बान यही हो जन्म-जन्म ही,
रखें देश माता का मान।
काम पड़े जब, बलिवेदी पर,
हँसते-हँसते हो बलिदान[२]।

पुरुषोत्तमदास टण्डन ने स्वतंत्रता के पपीहा की भाँति टेर की—

'हे स्वतंत्रता प्यारी तू क्यों हमको इतना बिसर गई।
भारत छोड़ किधर को भागी हमको इकला छोड़ गई।।
ईश्वर पुत्री जग की प्यारी गुण की आगर कहाँ गई।
हाय हाय कह रोवै भारत वासी तेरा नाम लई[३]।।

द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता से 'प्रभा' और 'प्रताप' के कवियों का सर्वाधिक सम्बन्ध है। द्विवेदी युग मूलतः आदर्शवाद, इतिवृत्तात्मकता, स्थूलता, नैतिक मूल्य, परिष्कार, सुधारवादी प्रवृत्तियाँ आदि को लेकर चलता है। द्विवेदी युग की मूल प्रेरणा राष्ट्रीय है; अतएव, इस युग में राष्ट्रीय-वृत्ति को उत्कर्ष मिला। हिन्दी में राष्ट्रीय कविता को जन्म दिया-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने। उसका पोषण एवं सम्वर्द्धन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया।

द्विवेदी युग में राष्ट्रवंदना, अतीत का गरिमा गान, वर्तमान की अवनति, मातृभूमि के प्रति प्रेम और वीर-पूजा से सम्बन्धित सहस्त्राधिक-कविताएँ लिखी गयी। 'भारत भारती' में इस युग की राष्ट्रोपासना का साकार रूप निहित है। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने राम और कृष्ण के मानवीय तथा जन-प्रिय रूपों को उपस्थित किया।

१—'राष्ट्रीय कविताएँ'—पृ० १०४।
२—'महारथी'—फरवरी, १९२८।
३—'हिन्दी प्रदीप'।

जहाँ 'भारतेन्दु युग' को राष्ट्रीय चेतना का युग कहा गया है वहाँ 'द्विवेदी युग' को आन्दोलन युग माना गया है[१]। इस युग के अन्य-कवियों में बालमुकुन्द गुप्त, रामचरित उपाध्याय, सैयद अमीर अली 'मीर', कामताप्रसाद गुरु, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', रामदास गौड़, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी', लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने राष्ट्रीय काव्य के विकास में अविस्मरणीय योगदान दिया है।

कवियों ने प्रबंध काव्य एवं स्फुट कविताओं के माध्यम से समग्र राष्ट्रीयता को मूर्तिमंत करने का प्रयास किया है। 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'चिन्तामणि', 'भ्रमरगीत' आदि में देशभक्ति और अतीत की विभूतियाँ--प्रोज्जवल हैं। राष्ट्रीयता में द्वेष, संकीर्णता अथवा साम्प्रदायिकता के दर्शन नहीं होते हैं। राष्ट्रीय संघर्ष के प्रति हमारा कवि सचेत रहता है। राजभक्ति को अब प्रश्रय नहीं मिलता है। विरोध में तीव्रता पनपती है। उपदेश के स्थान पर मानवतावाद विराजमान होता है। कविता जनता के निकट पहुँचती है। सामाजिक क्षेत्रों और कार्य-कलापों की वाणी प्रमुखता प्राप्त करती है। विचारों में उदारता तथा व्यापकता आ जाती है। शृंगार रस को एक प्रकार से देश निकाला दिया गया। कालानुसरण, बौद्धिकता तथा गौरव-प्रणय के तत्त्व उभर पड़ते हैं। गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' की एक कविता से इस युग की राष्ट्रीयता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

'मेरा देश देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान,
मेरा सम्मान मेरे देश की बड़ाई में।
जिऊंगा स्वदेश हित, मरूँगा स्वदेश काज,
देश के लिए न कभी करूँगा बुराई मैं।'

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा, नियमन तथा पथ-निर्देश में इस युग ने राष्ट्रीयता की विशिष्ट उपलब्धि की। इस युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता का सर्वोच्च तथा विस्तृत पाट प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता द्विवेदी युग में आकर प्रखर, विस्तीर्ण और स्पष्ट हो जाती है।

(स) छायावाद युग :—

छायावाद युग में राष्ट्रीय आन्दोलन पर गाँधीवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा। आध्यात्मिकता तथा स्वावलम्बन ने अपने कपाट खोले। जीवन के मूल्य बदले। काव्य

१—श्रीरामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र—'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० १९२।

में भी स्थायी रचनाओं का प्राचुर्य हुआ। राजनीतिक चेतना के स्थान पर सांस्कृतिक पार्श्वों को अधिक उभार मिला। नवीन प्रयोगों को स्थान मिला। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों और विद्रोह के स्वर ने तूल पकड़ा। विशेषण और सूक्ष्म चित्रणों को मांसलता मिली।

माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी आदि में छायावाद के राष्ट्रीय पक्ष या क्रान्ति को स्थान मिला। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी, मुकुटधर पांडे, रामकुमार वर्मा आदि ने राष्ट्रीयता को अन्य माध्यमों से ग्रहण एवं प्रस्तुत किया। जहाँ प्रथम वर्ग के कवि राष्ट्रीयता को प्रत्यक्ष ग्रहण करते हैं वहाँ द्वितीय वर्ग के कवि परोक्ष रूप से।

'एक भारतीय आत्मा', सुभद्राकुमारी चौहान, 'दिनकर' आदि ने राष्ट्रीय तथा सामाजिक आन्दोलनों में प्रत्यक्ष भाग लेकर व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर काव्य का निर्माण किया। प्रसाद, निराला और पंत ने राष्ट्रीय काव्य को स्थायी और स्तरीय देन दी है। चाहे वह 'कामायनी' हो या 'ऊर्म्मिला' अथवा 'तुलसीदास'—सभी युगीन चेतना एवं देशभक्ति को प्रकारान्तर से ग्रहण करते हैं।

इस युग में 'एक भारतीय आत्मा' की 'एक फूल की चाह', 'नवीन' का 'विप्लव गायन' और सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की। इसी प्रकार 'प्रसाद' ने 'बढ़े चलो बढ़े चलो', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', व 'हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार'—नामक गीतों के द्वारा साहित्यिक ख्याति अर्जित की। 'निराला' के 'भारती जय विजय करे', 'जागो फिर एक बार'; 'पंत' की 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' की कई रचनाओं और महादेवी की 'जाग तुझको दूर जाना' आदि रचनाओं में आवेश के स्थान पर स्थायी ताप और कलात्मक प्रौढ़ता के दर्शन मिलते हैं।

अहिंसा, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सात्त्विकता आदि ने इस युग को विशेष प्रभावित किया। कहीं काव्य पर तिलक का प्रभाव दिखायी पड़ता है और कहीं महात्मा गाँधी का। गाँधी जी के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूपों को भी अपनाया गया। भगवानदास अरझरिया 'बालेन्दु' ने महात्मागाँधी पर सूत्र-वाक्य लिखे—

'ईश्वर है पर्याय सत्य का, यह गांधी जीवन दर्शन,
करो सत्य के शुभाचरण से मानवता का पुण्य सृजन[1]।'

'एक भारतीय आत्मा' की 'पुष्प की अभिलाषा' इस युग की गीता है—

१—'श्रद्धा के फूल'—पृ० ३०।

'चाह नहीं, मैं सुर बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,—
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध, प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पर जावें वीर अनेक[१]।'

'प्रसाद' ने श्रेष्ठ गीतों की रचना की। उनकी प्रेरणा तथा उत्साह द्रष्टव्य है—

'वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान,
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य संतान,
जियें तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे, यह हर्ष,
निछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष[२]।'

संप्रयाण-संगीत यहाँ झंकृत हो उठा है—

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो, बढ़े चलो॥
असंख्य कीर्ति रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी;
रुकों न मातृभूमि के सपूत शूर साहसी।
अराति-सैन्य-सिन्धु में सुवाडवाग्नि से जलो
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।'

'निराला' की राष्ट्रीयता में प्रखरता है। उनकी सिंहवाणी चहुँ ओर गुंजायमान है। निराला जगाते हैं :—

'जागो फिर एक बार।
सिंही की गोद से
छीनंता रे शिशु कौन ? मौन भी क्या रहती वह

१—भारत गीत—पृ० ३-४।
२. 'स्कन्दगुप्त' नाटक।
३. 'चन्द्रगुप्त' नाटक।

रहते प्राण ? रे अजान ।'

उनका भारती का जय जयकार अनूठा है—

'भारति, जय, विजय करे,
कनक शस्य - कमलधरे,
लंका पदतल - शतदल
गर्जितोर्मि सागर - जल
धोता शुचि चरण - युगल
स्तवकर बहु अर्थ - भरे।'

सुमित्रानंदन पंत ने भारत गीत गाकर अपनी प्रमुख सांस्कृतिक चेतना को ऊर्जस्वित किया—

'जय जन भारत, जन-मन अभिमत,
जन गण तंत्र विधाता,
गौरव भाल हिमाचल उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल,
कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता।'

महादेवी वर्मा की राष्ट्रीयता भी यत्र-तत्र झांक उठी है—

'गूंज उठे यह चतुः पार्श्व में, गर्वीला मन-निर्भयनाद।
'बलि हो जाऊँगो' माँ-हित, माँ ऐसा दे तू आशीर्वाद[१]।'

हरिकृष्ण 'प्रेमी' भी अत्याचारी को चेतावनी देते हैं—

'जिस पर आँखें गड़ा रखीं, हम लिये हथेली पर आते।
धन, वैभव, स्वातंत्र्य, छिने अब सिर छिनवाने को लाते ।।
एक नहीं बहुतेरे हैं हम माँ के मस्ताने, प्यारे।
शीश काटते थक जावेंगे, री देवेंगे हत्यारे[२] ।।

वियोगी हरि ने कड़खा सुनाया।

'अरे तू कैसो सिंह कुमार ?
केहरि-कुल में जन्म पाय शठ, भयो सिंह ते स्यार।
तजि दुर्गम गिरि गुहा मूढ़। कत सेवत मंजुल कुंज।

१. 'महारथी', रणविदा, दिसम्वर, १६२७
२. 'महारथी,' अत्याचारी से, अक्टूबर १६२७ ई०।

डरत न तोहि क्लीव गिनि नेकहु क्रीड़त कुंजर-पुंज[१] ॥'

रामनरेश त्रिपाठी ने संसार का सर्वश्रेष्ठ देश भारत माना है और उसका आधार भी सुस्पष्ट किया है—

'पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया—
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन-सा है ?'[२]

सोहनलाल द्विवेदी न केवल वन्दना के स्वरों में अपना स्वर मिलाते हैं अपितु मस्तक-दान के लिए भी तत्पर हैं—

'हो जहाँ बलि शीश अगणित,
एक सिर मेरा मिला लो।
वंदना के इन स्वरों में,
एक स्वर मेरा मिला लो[३] ॥'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'विप्लव गायन' के द्वारा कवि-कर्म को क्रांति की ओर उन्मुख किया—

'कवि ! कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिसमें उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का, धुआंधार जग में छा जाये[४] ॥'

गोपाल सिंह 'नेपाली' भी क्रांति का आह्वान करते हैं :—

'तरुण क्रांति मन मन मचलेगी,
नगर - नगर, वन-वन उछलेगी,
प्रांत-प्रांत, पुर - पुर बिछलेगी,
दुनिया की लपटों में लिपटा,
हा-हा करती हुई मचलेगी[५] ।'

सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी ओजस्वी रचना से सबको प्रकम्पित कर दिया—

'सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,

---

१. वही, दिसम्बर, १६२७।
२. 'राष्ट्रीय कविताएं'—पृ० ५५।
३. 'राष्ट्रीय कविताएं'—पृ० ५५।
४. 'कुंकुम'—पृ० ६, १०।
५. 'संगीत सौरभ'—नया संसार।

बूढ़े भारत में फिर से आयी नयी जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।'

उस युग का संदेश तथा मर्म-वाणी ही यही थी—

'पर्वत से संघर्ष मचाके, पार न जाये पानी क्या ?
यदि तूफानी जोर नहीं, तो उठती हुई जवानी क्या ?
वह जवान भी क्या जिसमें उठते सागर के ज्वार नहीं,
अंगारों पर जो चलने को रहता है तैयार नहीं।
वही धीर है मर मिटने में पहला नाम लिखा दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो [१]।'

सियाराम शरण गुप्त ने हिन्द की स्तुति की और अहिंसा का आसव पिया—

'तेरे स्त्रोतों में अक्षय जल, खेतों में है अक्षय धान,
तन से, मन से, श्रम-विक्रम से, है समर्थ तेरी संतान।
सबके लिए अभय है जग में, जन-मन में तेरा उत्थान,
बैर किसी के लिए नहीं है, प्रीति सभी के लिए समान।
गंगा-यमुना के प्रवाह हे, अमल अनिंध्य, हमारे हिन्द,
जय जय भारतवर्ष हमारे, जय जय हिन्द, हमारे हिन्द[२]।'

गांधीवाद को सच्ची वाणी सियारामशरण गुप्त ने दी।

छायावाद युग में राष्ट्रीय चेतना को स्थायित्व, परिपक्वता, कलात्मकता तथा अतीत के ठोस आधार मिले।

(घ) उत्तर छायावाद युग :—

उत्तर छायावाद युग में राष्ट्रीयता के साथ प्रगतिवाद, साम्यवाद, कान्तिदर्शिता आदि के बीजों का सम्मिलन हो जाता है। 'बच्चन', भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा, 'अंचल', 'नेपाली', 'सुमन', गुरुभक्तसिंह 'भक्त', 'कंटक' आदि ने राष्ट्रीयता की दिशाओं को विस्तृत किया। श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दी घाटी', 'बच्चन' की 'सूत की माला', सुमित्रानंदन पंत का 'मुक्ति यज्ञ' आदि ने

---

१. 'संगीत सौरभ', हरिनंदन मिश्र।
२. 'भारतगीत'—पृ० ५-६।

विशेष ध्यान आकृष्ट किया। शहीदों, क्रांतिकारियों, युगपुरुषों और विचारकों पर प्रबंध काव्य लिखे गए। बापू पर सर्वाधिक रचनाएँ लिखी गयी। मार्क्स, अरविन्द, विनोबा आदि ने हमारे कवियों को प्रभावित किया।

इस युग में सामाजिक वैषम्य के प्रति सर्वाधिक विक्षोभ दिखायी पड़ा। आर्थिक और सामाजिक समानता को ही स्वाधीनता की मूल भित्ति माना गया। 'अंचल', 'सुमन', नागार्जुन में इन वृत्तियों का प्राचुर्य है। रुढ़ियों का विरोध किया गया। उपेक्षित तथा पददलित व्यक्तियों को स्नेह दिया गया। भौतिक वस्तुओं की ओर कवियों ने अपनी लेखनी गतिशील की। भवानी प्रसाद तिवारी ने लिखा—

'मनुज खड़े हैं मरे-मरे,
वसुधा माता के अंचल पर कृमि कीटो से हैं बिखरे,
किसने देखा, किसने लेखा,
इनके कपड़े कहाँ गये ?
क्यों न गये नंगे भिखभंगे
इनके कपड़े जहाँ गये।
इन मनुजों में आग लगा दो अपनी लाजों आप मरे।
वसुधा माता के अंचल पर कृमि कीटों से हैं बिखरे।'

इस युग में राष्ट्रीय काव्य ने सामाजिकता, शोषण, विचारधाराओं, भौतिकता आदि से अपने को परिपूर्ण पाया। देशभक्ति का अर्थ यह लगाया गया कि मनुष्य समाज की स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया जाय और देश में नूतन चेतना, विचार दर्शन तथा विप्लव की शंखध्वनि की जाय।

नवीन युग :—

नवीन युग प्रयोगवाद एवं नयी कविता को लेकर अग्रसर हुआ। 'तार सप्तक' के कवियों ने घोषणा की कि वे राही नहीं,-राहों के अन्वेषी हैं। 'अज्ञेय', 'मुक्तिबोध', नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुरसिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय धर्मवीर भारती आदि ने व्यक्तिवाद को प्रश्रय दिया। जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, राजेन्द्र यादव, केदारनाथसिंह, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, बालकृष्ण राव, विजयदेवनारायण साही, कुँवरनारायण, दुष्यन्त कुमार, ओमप्रभाकर आदि नयी कविता के पक्षधर हैं। 'नीरज', वीरेन्द्र मिश्र आदि अपने प्रगीतों में राष्ट्रीयता को स्थान दे रहे हैं।

नवयुग में राष्ट्रीयता की प्रत्यक्ष या भौतिक अभिव्यक्ति जैसी कोई वस्तु नहीं है। उपरिलिखित कवि प्रासंगिक तथा सूक्ष्म विवेचना के हामीं हैं। अब राष्ट्रीयता को

६

अधिकाधिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप प्राप्त होने लगा है।

चीनी आक्रमण :—

राष्ट्रीय कविता-धारा का महत्त्वपूर्ण उत्थान उस दिन आया जबकि शान्तिप्रिय भारत पर चीन ने आक्रमण किया। समूचे देश में राष्ट्रोपासना तथा वीर गीतियों का वातावरण बन गया। प्रायः सभी नए और पुराने कवियों ने चीन को चुनौती दी और समूची मातृभूमि को सावधान किया। ऐसी राष्ट्रीय एकता तथा बलि-भावना बहुत कम अवसरों पर देखने को मिली। समस्त राजनैतिक दल, वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय, श्रेणी मिल-जुलकर एक हो गए। इस अवसर पर विपुल काव्य की सृष्टि हुई। अनेक काव्य-संग्रह तथा संकलन प्रकाशित हुए। अभूतपूर्व उद्दीप्त तथा संवेदनशील परिवेश का निर्माण हो गया। राष्ट्र-सुरक्षा तथा बलिदान की पुनीत लहरें विलोड़ित होने लगी। चीन का आक्रमण भारत के लिए वरदान सिद्ध हुआ। समूचा राष्ट्र जाग्रत तथा प्रबुद्ध हो गया। हिन्दी के कवियों ने न केवल जनता के साहस, शौर्य तथा उत्साह को द्विगुणित किया अपितु मोर्चे पर जाकर हमारे रण-बांकुरों तथा जवानों का उत्साह-वर्द्धन किया।

इस युग में जनता ने अंगड़ाई ली। शताब्दियां बाद राष्ट्र पर संकट के बादल छाए। चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाइ ने भारतीय सीमा के लगभग ५० हजार वर्गमील इलाके पर दावा किया। सन् १९६२ में चीन ने नेफा और लद्दाख में बड़े पैमाने पर हमला किया। राष्ट्र में जागृति की लहर उठ आयी। तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में जब भारत-जैसा राष्ट्र अपनी आजादी और अखण्डता के लिये लड़ रहा हो, उसका और कोई नतीजा निकल ही नहीं सकता।[१]

इस अवसर पर समूचे भारतीय साहित्य में भूचाल आया। हिन्दी साहित्य में तीन रूपों में काव्य आया :

१. कवियों ने अपनी राष्ट्रीय काव्य कृतियों को प्रकाशित किया। कुछ प्रबंध-काव्य थे और कतिपय स्फुट या मुक्तक काव्य। श्री जगमोहन अवस्थी ने 'सीमा संग्राम' नामक महाकाव्य में सम्पूर्ण स्थिति, अवसर एवं पात्रों का सुन्दर विवेचन किया। उन्होंने जय जयकार किया :

"स्वर्ण दान या रक्त-दान,
देने वालों की जय है।
राष्ट्र-एकता और तिरंगे,
की इतिहासिक जय है॥

---

१. 'भारत की आजादी के लिये खतरा'—पृ० १२।

ललनाओं की, कन्याओं की,
नवयुवकों की जय है।
क्रीट मुकुट की, अडिग हिमालय,
की यह पावन जय है[१]।"

चीन से हमारा स्थायी युद्ध हुआ। चीन की लड़ाई अभी तक बंद नहीं हुई है। वह किसी न किसी रूप में आज भी चल रही है। शत्रुता मरणकाल तक होती है :

"बैर विधिर्वधाधि:[२]।"

महाकवि माघ ने ठीक ही कहा है कि प्रकाश और अंधकार एक स्थान में नहीं रह सकते—

"समानाधिकरण्यं तेजस्तेमिरयोः कुत[३]॥"

२. अनेक राष्ट्रीय काव्य संग्रह प्रकाश में आये : यथा 'चीन को चुनौती' (सम्पादक : श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'), 'चीन को चेतावनी' (सम्पादक : श्रीरुद्रकाशिकेय), 'चेतना के स्वर' (सम्पादक : आचार्य प्रभुशंकर शुक्ल और लालजीराम मालवीय) आदि। इन संग्रहों में मैथिलीशरण गुप्त से लेकर आनन्द मिश्र तक की कविताओं का संकलन है।

३. शासकीय स्तर पर भी अनेक काव्य संकलन प्रकाशित हुए जिनमें ओज तथा हुंकृति को स्थान मिला। भारत सरकार ने चीनी आक्रमण सम्बन्धी भारतीय कविताओं का संग्रह 'गूँजे जय जयकार' (सम्पादक : मन्मथनाथ गुप्त) प्रकाशित किया। पंजाब सरकार ने मित्रघाती चीन की चुनौती का मुँह-तोड़ उत्तर देने वाली ओजस्वी कविताओं के संग्रह 'रणभेरी' का हिन्दी में प्रकाशन किया। इसके सम्पादक श्री मदनमोहन गोस्वामी हैं। इस प्रकार के कई संग्रह केन्द्रीय और प्रादेशिक स्तर पर प्रकाशित हुए।

'दुर्गासप्तशती' का मत है—

'देव्यायया तदमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेष देवगणशक्ति समूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेव महर्षिपूज्यां
भत्या नताःस्म विदधातुशुभानि सानः[४]।'

---

१. 'सीमा संग्राम'—पृष्ठ १६६।
२. महाकवि हर्ष—'नैषधीय चरित', पृ० ६३।
३. 'शिशुपाल वध', ६२।
४. 'दुर्गासप्तशती', चतुर्थ अध्याय, श्लोक ३।

'अंचल' ने 'सेना के जवानों से' अपनी शक्ति-वाणी कही—

'एक बार फिर अन्यायी पर तुमने भुजा उठाई है,
सीमाओं पर घिरे शत्रु को फिर तुमने ललकारा है,
आज तुम्हारे कण्ठ-कण्ठ में बलिदानों का नारा है।
ऐसा है इतिहास हमारा, ऐसा देश हमारा है,
यहाँ न जीता पापी अब तक, धर्मी कभी न हारा है।
फिर दुनिया को यही दिखा देने की बारी आई है।'[१]

महाकवि माघ ने कहा है कि जब तक धरती पर एक भी शत्रु जीवित रहता है, तब तक सुख कहाँ?—

ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम् ॥[२]

माघ अपनी उन्नति और शत्रु की क्षति को ही राजनीति मानते हैं—

'आत्मोदयं परज्यानि द्वयं नीति रितीयती।
तदूरीकृत्य कृति भि वार्चस्पयं प्रतीयते ॥'[३]

योगवासिष्ठ किसी भी प्रकार की स्थिति में न घबड़ाने का परामर्श देता है—

'सुखं वा यदि वा दुखं प्रियं वा यदिवाऽप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदये नापराजितः ॥'[४]

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी 'मस्त' ने प्राचीन परम्परा को उतारते हुए घोषणा की—

'बढ़ रहा है देश अपना, दिन रहे या रात काली।
शत्रु को हम नष्ट करके, देश को विकसित करेंगे।
चल रहीं जो योजनाएँ, हम उन्हें दीपित रखेंगे।'[५]

महाकवि भारवि ने कहा है कि विजय सदा-सर्वदा बलवान की होती है—

'प्रकर्षतंत्राहि रणे जय-श्री : ॥

नेहरू जी ने भी कहा था कि अंतिम विजय हमारी होगी। परमानंद श्रीवास्तव की आशामयी कविता भी कहती है—

---

१. 'चीन को चुनौती'—पृ० १९।
२. 'शिशुपाल वध'—३५।४।
३. वही—३०।
४. 'योगवासिष्ठ'।
५. 'रणभेरी'—पृ० २५४।

"सच्ची मनुष्यता, सच्ची प्रगति और सच्ची शांति के लिए
जीने वाले
चवालीस करोड़ सिर—
शत्रु से लड़कर ले लेंगे
अपनी एक-एक इंच भूमि—
अपने घर—
चैन लेंगे फिर।"[१]

जब तक सिंह सोया है तभी तक हाथी की खैर है। पंडितराज जगन्नाथ मदांध हाथी को भाग जाने की सलाह देते हैं—

"स्थिति नो रे दध्याः क्षणमपि मदान्धेन तु सखे,
गजश्रेणीनाथ त्वमहि जटिलायां बनभुवि।
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खरनश्वर बिद्रावित महा-
गुरुग्राव ग्रामः, स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः।"

शमशेरबहादुरसिंह ने चुनौती को स्पष्ट किया :—

'शत्रु सीमा पर
अशोक चक्र के चारों शेर
हंस रहे हैं
दिशाएँ
सम्यक् धर्म की हमारी
प्रतिध्वनित हैं—चुनौती है—
आएँ, आएं तो जरा, हवाएँ उत्तर की
कि पच्छिम की
हमारी नीवों को हिलाएँ तो जरा।"[२]

उद्बोधन गीतों की सृष्टि की गयी। दुष्ट चीन के हमले ने, महाराज मनु की दुष्टों की परिभाषा की पूर्त्ति की—

'अग्निधे गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धना पहः
क्षेत्र दारहरश्चैववषडेते ह्यात-तामिनः॥'

रामकुमार चतुर्वेदी ने भारत के सुषुप्त अभिमान को जगाया—

---

१. 'गूँजे जयजयकार'—पृ० ५६।
२. वही— पृ० ८८।

"हो रहा है शक्ति-मद में शत्रु रक्त-पिपासु
कौन है, केशव यहाँ पर न्याय का जिज्ञासु ?
हिंस्र पशुओं के नयन हर ओर आज सतृष्ण !
संधि की बातें न छेड़ो, ओ कलाधर कृष्ण !
गोपियों का दल नहीं, यह कौरवों का झुण्ड !
बांसुरी फेंको, उठाओ पांचजन्य महान् !
जाग, भारतवर्ष के सोए हुए अभिमान !"[१]

जागरण-गीतों की बाढ़ आ गयी थी। शत्रु के विनाश का आदेश ऋग्वेद देता है—

"उलकयातुं शुशुलूकयातुँ जहि श्वयातं
उत कोकयातं सुपर्णयातं उतगृध्रयातं
दृशदेव प्रमण रक्ष इन्द्र ॥"[२]

कान्तानाथ पाण्डेय 'राजहंस' ने चीनियों को ललकारते हुए कहा—

'सावधान ! गिरपति की गर्दन देखें कौन झुका सकता है ?
वसुन्धरा का रत्नमुकुट यह देखें कौन चुरा सकता है ?
चूर-चूर होंगे, ओ उद्धत ! इस गौरव गिरि से टकराकर !
छू न सकोगे रत्न मुकुट यह, बौनो ! अपने हाथ उठाकर।[३]

कविता में हुँकार का जोश आया। अपनी रक्षा के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं। महाकवि कालिदास कहते हैं—

'स्व वीर्य गुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥'[४]

रामानन्द 'दोषी' की हुँकृति सर्वत्र गुंजायमान है—

'आँधियों ने गोद में हमको खिलाया है, न भूलो
कंटकों ने सिर हमें सादर झुकाया है, न भूलो
सिंधु का मथकर कलेजा हम सुधा भी शोध लाये,
औ' हमारे तेज से सूरज लजाया है, न भूलो।'[५]

महाकवि भवभूति ने लिखा है कि यदि तुम युद्ध चाहते हो तो उठो—

---

१. 'चीन को चेतावनी'—पृ० ४५।
२. 'ऋग्वेद'—७।१०७।२२।
३. 'चीन को चेतावनी'—पृ० ५५।
४. 'रघुवंश'—४।
५. 'चीन को चेतावनी'—पृ० ५६।

"उत्तिष्ठोत्तिष्ठ यावद्विशलितयक्ततक्लोमवृक्कारस्त्रगात्रः
स्नायुग्रन्थ्यस्थिशल्क व्यतिकरितजरत्कंधरादत्तखण्डः ।
मूर्धच्छादादुदंचलधमनिशिरासक्तडिंडीरपिंड—
प्रायासृग्भारघोरं पशुमिव परशुः पर्वशस्त्वां शृणालु ।"

बालस्वरूप 'राही' ने ललकार भरे स्वर में कहा—

"माथों की भेंट चढ़ाएँगे,
फिर माँ ने हमें पुकारा है,
'आजाद रहो या मर जाओ,'
अब यही हमारा नारा है ।
बच्चा-बच्चा जाएगा भर, देंगे न मगर धरती कण भर,
आखिरी हमारी ही होगी, यदि पहली जीत तुम्हारी है ।"[१]

शकुन्तला सिरौठिया ने भी लिखा—

'आस्तीन का सांप, आज
फन उठा रहा है !
जिसे दूध देकर पाला था
जिसे राह से उठा लिया था,
गर्मी देकर जिसको हमने
घोर कष्ट से बचा लिया था,
आज वही चैतन्य हुआ तब
दाँत विषैले दिखा रहा है !'[२]

कालिदास ने कहा है कि तेजस्वी पुरुष उत्तेजना देने से ही अपने पराक्रम को प्राप्त करते हैं—

'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्नि विप्रकृतः पन्नग फणां कुरुते ।
तेजन्वी संक्षोभात प्रायः प्रतिपद्यते तेजः ॥'[३]

राजनारायण बिसारिया के शब्दों में तेजस्वी भारत की प्रतिज्ञा खौल उठी है—

'हम हैं जलते अंगारों-से,
तेज कृपाणों की धारों-से,

---

१. वही —पृ० ६६ ।
२. ,, —पृ० ७६ ।
३. 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'—३६ ।४

मॉं का दूध पिया है हमने,
खेले हैं हम तलवारों से।
माँ का दूध चुकाने वाले
वीरों की अब बारी है।"[१]

इस युग में अनेक पत्र लिखे गए—कहीं जवानों को, कहीं देशवासियों को। श्री रूप नारायण त्रिपाठी की एक पत्रात्मक कविता में युगीन भावना तथा देशभक्ति का ज्वार दर्शनीय है—

"और सागर सा गहन गंभीर
बूढ़ा बाप कहता है गरजकर
जूझता है दुश्मनों से लाल मेरा
गर्व का इससे बड़ा मेरे लिए
अब कौन-सा आधार होगा
और जिस दिन युद्ध में वह प्राण कर देगा निछावर
वह दिवस मेरे लिये
सबसे बड़ा त्योहार होगा।"[२]

उपर्युक्त कविता में प्राचीन परिपाटी को नव-स्वर मिला है—

"यदि समरमपास्य, नास्तिक मृत्यो :
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तो :
किमिति मुधा मलिनंयशः कुरुध्वे।"[३]

अनेक संप्रयाणगीत लिखे गए। 'नीरज' ने गाया—

'जय हो हिन्दुस्तान की
जय हर वीर जवान की!'[४]

रामस्वरूप 'सिन्दूर' ने प्रयाण-गीत लिखा—

'संकट आया देश पर,
धार करो आवेश पर,

---

१. 'चीन को चेतावनी'—पृ० ८४।
२. वही —पृ० ६८।
३. 'वेणी संहार'।
४. 'चीन को चेतावनी'—पृ० ११३

हमको भाई-भाई कहकर, छुरा पीठ में मारा है।
चीन देश हत्यारा है[1]।'

कविता में ज्वाला भभक उठी। झलकनलाल वर्मा 'छैल' के शब्दों में—

'कर माता का दूध सार्थक, पौरुष का कौशल दिखला रे!
ऐसे कठिन समय में साथो! दीप नहीं, ज्वाला सुलगा रे![2]'

हिमालय ने पुकारा :—

चीनी आक्रमण के समय हिमालय को केन्द्रित कर सहस्त्राधिक कविताएँ लिखी गयी। हिमालय और गंगा का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति से है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—

"हे हिमाद्रि, देवतात्मा, शैले-शैले आजिओ तोमार
अभेदांग हरगौरी आपनारे येन बारम्बार
श्रृंगे श्रृंगे विस्तारिया धरिछेन विचित्र मूरति
ओइ हेरि ध्यानासने नित्यकाल स्तब्ध पशुपति।"

निकोलस शेरिख ने हिमालय को सम्बोधित करते हुए लिखा था :

"हे हिमगिरि, हे भारत के भूषण,
हे ऋषियों की पावन तपोभूमि,
हे वसुधा के यशोस्नात सौन्दर्य,
हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार है।

तुम्हारा यह अनन्त वैभव, तुम्हारा यह दिव्यलोक युग-युग से आकर्षण का केन्द्र रहा है। तुम्हारे दर्शन-मात्र से चित्त उत्फुल्ल और भव्य भावनाओं से परिपूर्ण हो जाता है। तुम धन्य हो, तुम अनन्य हो।"

गोपालसिंह 'नेपाली' ने अपने एक काव्य-संग्रह का नाम ही 'हिमालय ने पुकारा' रक्खा। सन् १९५९ में उन्होंने 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा' नामक कविता लिखी थी जिसमें आह्वान किया था—

"आज़ाद रहा देश तो फिर उम्र बड़ी है
मंदिर भी है गिरजा भी है मस्जिद भी खड़ी है
संग्राम बिना ज़िन्दगी आँसू की लड़ी है

---

१. वही —पृ० ११६।
२. 'चेतना के स्वर' —पृ० ८१।

तलवार उठा लो तो बदल जाय नज़ारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा।''[१]

इस दिशा में पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' की 'हिमालय के सपूतों,' रामकुमार चतुर्वेदी की 'हिमालय की पुकार,' राममनोहर त्रिपाठी की 'झुकना नहीं हिमालय,' रामविलास शर्मा को 'हिमालय का ग्राह्वान,' वीरेन्द्र मिश्र की 'हिमालय छीन ले,' ग्रानंद नारायण शर्मा की 'नगपति तुम्हें पुकार रहा है,' 'जागो भारत की तरुणाई,' 'ग्रान हिमालय की है तुमको, शपथ तुम्हें गंगा की (कमलाकर)', 'त्रिलोकीनाथ 'रंजन' की 'चलो जवानों! हिमगिरि के शिखरों ने तुम्हें पुकारा है,' नरेन्द्र शर्मा की 'हर व्यक्ति हिमालय बन जाए,' पुरुषोत्तम कुमार निभावन की 'जितना रक्त हिमालय मांगे उसको देंगे,' ब्रजेन्द्र ग्रवस्थी की 'हिमगिरि के कण-कण बदल रहे ग्रंगारों में,' रमेशचन्द्र शाह की 'हिमालय के प्रति,' विमलचन्द्र 'विमलेश' की 'हटो चीनियों दूर, हिमालय तुमको खा जाएगा,' डॉ० शम्भुनाथ सिंह की 'बादलों के पार से हिम पर्वतों ने फिर पुकारा,' सोहनलाल द्विवेदी की 'हिमालय से ग्रा रही पुकार, रहो तैयार, रहो तैयार,' 'धवल हिमालय स्नान कर रहा तप्त रक्त की धारों से' (हरिकृष्ण 'प्रेमी') ग्रादि ने विशेष ख्याति पायी।

बालकृष्णराव ने 'ग्राज पहली बार' नामक कविता में नूतन दृष्टि का प्रकाश डाला—

''ग्राज पहली बार जग ने
नमित शिर देखा
नगाधिप को!
विपर्यय!—ग्राज जग ने
ग्रजरता की झुर्रियाँ देखीं!
व्यतिक्रम!—ग्राज पहली बार देखा
शिशिर में यह द्रवण
हिम के हृदय का!''[२]

हिमालय पर्वतराज है। वह संसार का सर्वाधिक ऊँचा पर्वत है। इसकी सबसे ऊंची चोटी 'एवरेस्ट' है जिसकी ऊँचाई २९००२ फुट है।[३] रामधारीसिंह 'दिनकर'

१. 'हिमालय ने पुकारा'—पृ०२२
२. 'गूंजे जयजयकार'—पृ० ६६।
३. श्रीमुकुन्दीलाल श्रीवास्तव—'वृहद् हिन्दी कोश', पृ० १३१०।

की इस कविता ने अपने प्रारम्भिक दिनों में पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी—

"मेरे नगपति, मेरे विशाल !
साकार, दिव्य गौरव विराट।
पौरुष के पुँजीभूतज्वाल।
मेरी जननी के हिम किरीट।
मेरे भारत के दिव्य प्राण।
मेरे नगपति, मेरे विशाल।
युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान्,
निस्सीम व्योम में तान रहे,
युग से किस महिमा का वितान ॥"[1]

हिमालय हमारे आदर्शों, सिद्धांतों, विकास व धरोहर का मूर्तिमान स्वरूप है। हमारे कवियों ने उसके विविधमुखी चित्र लेकर अपने काव्य को पावन बनाया है। हिमालय का प्रत्यक्ष दर्शन ही मन को आह्लादित करने वाला और आत्मा को अनिर्वचनीय आनंद प्रदान करने वाला है। त्याग तथा बलिदान, शौर्य व साहस, अध्यवसाय व साधना, भोग व ऐश्वर्य, सम्पदा और समृद्धि का हमारा भव्य भारत देश, हिमालय के कारण ही सर्व अभिनंदनीय और सम्मानित है। हिमालय की स्निग्धता, शीतलता व सौम्यता ही आज की संकुल व प्रवंचनामयी दुनिया को सरस सौजन्य मयी आदर्शोन्मुख बना सकती है। हिमालय आत्म शिक्षा व आदर्श का आलय है जिसकी सुहावनी लय से मानव-जाति वशीभूत है।[2] देश के प्रहरी को मेघराज 'मुकुल' की आश्वस्त वाणी आलिंगन में लेती है—

"सिपाहीखड़ा वह अडिग हिमशिखर पर,
उसे आज आशिष भरी भावना दो।
नदी से छलकती हंसी उसको भेजो,
लहरती फसल को उसे अर्चना दो।"[3]

हिमालय हमारा है। वह भारत की आत्मा है। वह हमारा दुलारा है। नलिन ने उसे 'मेरा हिमालय' कहा है—

---

१. 'हिमालय के प्रति'।
२. डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे—काव्यालिंगन में हिमालय, 'राष्ट्रवाणी', अक्टूबर, १९६२।
३. 'गूंजे जयजयकार'—पृ० ७५ !

"हिमालय है भारत की रीढ़,
हमारा हृदय-राष्ट्र के प्राणों का भी प्राण।
शिलाओं में अंकित भारत का दिव्य अतीत,
विमल पुरखों का शांति-निवास,
गुफाओं में गुंजित ऋक्-सामवेद के गीत।
हमें इसके कण-कण से प्यार,
हमारे सजल घनों का लोक-जीवनाधार।
लोरियों से पुलकित हिण्डोल,
यहीं शैशव-सपनों का दुर्गम कोट।
राष्ट्र-वैभव, गरिमा के अक्षय कोशि विशाल,
पनपते-पलते इसकी ओट।
हमारे रोम-रोम में गूंज रहे इसकी ममता के गान।"[1]

सात्त्विकता का केन्द्र हिमालय अब तामसिक वृत्तियों का अड्डा बन गया हैं। विनाशक और संहारक अस्त्र उसमें अपनी क्रीड़ा कर रहे हैं। डॉ० शम्भुनाथ सिह के शब्दों में—

"बादलों के पार से हिम - पर्वतों ने फिर पुकारा।
मौन नीली घाटियाँ उत्तरदिशा की हो गई हैं,
घाटियों की तान अंधी दस्तकों में खो गई हैं,
चीरती हिम-सागरों, आकाश की गहराइयों को,
आ रही है दूर से आवाज कोई बेसहारा!"[2]

चीनी आक्रमण ने दोनों ही प्रकार के साहित्य का सृजन किया—शाश्वत तथा प्रचारवादी। युद्ध साहित्य प्रायः प्रचारवाद का सहारा ले लिया करता है।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की निष्क्रियता तथा प्रमाद को झकझोरने वाले चीन के हमले से प्रेरणा ग्रहणकर द्वारका प्रसाद माहेश्वरी ने 'सत्य की जीत' नामक खण्ड काव्य का निर्माण किया। इसमें समसामयिक सन्दर्भ मिलता है। द्रौपदी चीर-हरण की पौराणिक कथा को इसमें आश्रय के रूप में ग्रहण किया गया है।

प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण कृति में दुःशासन को माओ के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। द्रौपदी भारत माता है। सत्यव्रत युधिष्ठिर को यदि जवाहरलाल नेहरू माना

१. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'—१० मार्च, १९६३, पृ० १४।
२. वही।

जा सकता है तो धृतराष्ट्र को ख़ुश्चेव के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।[१]

देवप्रताप नागर भी 'जवानी देश की' शीर्षक वीर काव्य-संग्रह में राष्ट्र के नवयुवकों को उद्‌बुद्ध करते हैं। देश के संगठन पर उनका विशेष बल है। वे राष्ट्रीय कविता लिखने की प्रेरणा देते हैं। उनका सुझाव है कि--

'घुस-पैठ बन्द अब करो कला की सीमा में
कुछ लिखना है यदि आज देश के लिये लिखो,
भूषण की तो यहाँ रही परिपाटी है !'[२]

पाकिस्तानी आक्रमण :—

जहाँ चीन ने हमें झकझोरा और बैठाया, वहाँ पाकिस्तानी आक्रमण ने हमें खड़ा कर दिया। चीनी आक्रमण हमारे स्वतंत्र भारत का प्रथम युद्ध था। पाकिस्तानी आक्रमण ने विजय-पर्व के तारे छिटकाए। पाकिस्तानी आक्रमण का मूल कारण काश्मीर-समस्या रही है। काश्मीर राजनैतिक, सांस्कृतिक, कानूनी और संवैधानिक रूप से भारत का अविभाज्य एवं अभिन्न अंग रहा है। वह हमारा है और सदा हमारा रहेगा। पाकिस्तानी आक्रमण की लम्बी पृष्ठभूमि है जिससे परिचय पाये बिना स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकती।

भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात, १५ अक्टूबर, १९४७ को पांच सहस्त्र पाकिस्तानी हमलावरों द्वारा काश्मीर पर आक्रमण किया गया। २४ अक्टूबर को शेख अब्दुल्ला तथा राज्य की जनता के समर्थन सहित काश्मीर के महाराजा ने भारत में सम्मिलित होने का अपना निर्णय भारत सरकार के पास प्रेषित किया और सहायता का निवेदन किया। २६ अक्टूबर को भारत द्वारा काश्मीर के पूर्ण विलय की घोषणा की गयी। श्रीनगर रक्षा के लिये भारतीय सेना वहाँ गयी।

१ जनवरी, १९४८ को भारत ने काश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण को भारत पर आक्रमण मानते हुए इस समस्या को सुरक्षा परिषद् में भेजा। ९ अगस्त, १९५३ को शेख अब्दुल्ला को भारत विरोधी गतिविधियों के कारण जन सुरक्षा कानून के अन्तर्गत जम्मू-काश्मीर के प्रधान मंत्री पद से बरखास्त किया गया। सन् १९६२ में पाकिस्तान ने चीन के साथ सांठ-गांठ की। अवैधानिक रूप से भारतीय भूमि को चीन के हवाले कर दिया। सन् १९६५ में पाकिस्तानी फौज़ों ने कंजरकोट, सरदार पोस्ट और

---

१. 'सत्य की जीत'—खण्ड काव्य।
२. 'जवानी देश की'।

बियारबेट पर हमला किया। ३० जून, १९६५ को कच्छ का समझौता हुआ।

५ अगस्त, १९६५ को विशाल रूप में पाँच सहस्त्र घुसपैठिये भेजकर पाकिस्तान ने जम्मू-काश्मीर में तोड़-फोड़ और लूट-मार की। भारतीय सुरक्षा पुलिस और जम्मू-काश्मीर की जनता द्वारा डटकर स्थिति का सामना किया गया। १ सितम्बर को युद्ध विराम समझौता और अन्तर्राष्ट्रीय कानून को स्पष्टतया भंग करके, अन्तर्राष्ट्रीय सीमा को पार करके भारत पर खुल्लमखुल्ला हमला पाकिस्तान ने अमेरिका के ७० पैटन टैंकों सहित सेना द्वारा किया गया।

पाकिस्तान के आक्रमण ने समूचे राष्ट्र को एकता तथा स्नेह के डोर में बाँध दिया। सब मतभेद भूलकर भारत के सभी धर्म, वर्ग, दल, जात-पाँत और सम्प्रदाय के लोग संगठित हो गए। ऐसे अवसर पर लेखनी भी तलवार हो गयो। विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी' के 'जय काश्मीर' नामक काव्य ने विशेष ख्याति पायी।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने दहाड़ा—

"हथियारों नहीं मर्दों के गीत गाओ,
अरे गाओ, अगर स्वर-समर्थ है।
क्योंकि मर्द नहीं तो हथियार लूले हैं,
मर्दानगी नहीं तो लोहा व्यर्थ है।"

डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी शौर्य ध्वनि निस्रत की—

"जय ! जय ! जवान तुम बढ़े शत्रु के शिविरों को क्षण में उखाड़,
छाती दुश्मन की दहल उठी, जब सुनी तुम्हारी यह दहाड़,
उसकी सेना की पंक्ति-पंक्ति तुमने क्षण भर में ही उजाड़,
मर गए शत्रु पर शत्रु, दिया उनका भाग्य-चक्र ही बिगाड़।"

पाकिस्तान ने भारत की अखण्डता को चुनौती दी थी। उसने हमारी प्रभु-सत्ता को ललकारा था। दो विभिन्न विचारधाराओं में संघर्ष था। लोकतंत्र और अधिनायकवाद का द्वन्द्व था। धर्म निरपेक्ष और धर्म सापेक्ष देश की लड़ाई थी। हमारे राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा कि हम सिद्धांतों के लिए लड़ रहे हैं, भूमि के लिए नहीं। हम एक सैनिक तानाशाही का मुकाबला कर रहे हैं। प्रजातंत्र के हित की दृष्टि से हमारी विजय आवश्यक है अन्यथा एशिया में स्वतंत्रता और लोकतंत्र का दीपक बुझ जावेगा।

युद्ध सिर्फ मोर्चे पर ही नहीं लड़ा जाता प्रत्युत् वह खेत-खलिहानों और कल-कारखानों में भी लड़ा जाता है। उसकी कई क्रमिक कतारें होती हैं। शत्रु को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की बात माननी चाहिए—

"ओ क्षण भर पहले व्यस्त नागरिकों,
पुनः व्यस्त हो जाओ।
खेतों, खलिहानों, गलियों-बाजारों,
दुकानों और फैक्ट्रियों, सड़कों और अस्पतालों में,
अपने प्रयासों को और मजबूत बनाओ,
ऐसा न हो इस अशान्त शान्ति के भुलावे में
तुम खो जाओ
दिशाओं का शोर चाहे थम गया है
तूफान चाहे वहीं का वहीं जम गया है।
लेकिन वह पीछे हट गया है, पूरी तरह
कुचला नहीं गया,
केवल सहम गया है।"

पाकिस्तानी आक्रमण के समय किसी भी प्रकार का दंगा नहीं हुआ और न साम्प्रदायिक मतभेद उभरे। संसार इस वृत्ति को देखकर स्तंभित रह गया। इस राष्ट्रीय आपत्काल में प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री का व्यक्तित्व बहुत उभरा। उनका नेतृत्व सर्वत्र सराहा गया। स्थल सेनाध्यक्ष चौधरी जी ने भी अपने रण-कौशल का सफल प्रदर्शन किया।

काश्मीर की रक्षा के लिए काश्मीरी कवियों ने भी संकल्प किया। युग कवि नादिम की इन पंक्तियों में जन-मानस की हिलोरें आ समायी हैं—

'जो हथियाने की कोशिश करेगा इस मधु-भू को।
जो आगे आयेगा, छेड़ेगा इस वीर प्रसू को॥
समझो, दिल उलटे आये हैं, उस पापी दुश्मन के॥'[1]

सरहदों पर जंगबाजों के पुकारने पर, मुहम्मद अमीन की कविता भड़क उठती है—

'अमन पसन्द सॉन्य लुख
दपान रोजिहे न जंग
मगर यि कथ ति मा जख
बे शोर काँह ति हावि हेंग

---

१. 'धर्मयुग', २५ नवम्बर, १९६५।

शिशुर तिमन ति छा व्यचान
बहार ह्यय यिहिन्द्य हलम ।"[१]

पाकिस्तान के नापाक आक्रमण पर हिन्दी के ही नहीं अपितु उर्दू के कवियों की भी प्रखर वाणी सुनने को मिली। साहिर लुधियावनी का तेजस्वी स्वर सुनने योग्य है—

"नापाक इरादों ने बढ़कर, जिस देश की धरती घेरी है,
उस देश की धरती पर हमने नेहरू की राख बिखेरी है,
इस राख की इज्जत रखने को हो जायेंगे सब कुरबान,
यह जान ले पाकिस्तान।
ताज और अजन्ता के वारिस इतिहास बनाने निकले हैं,
काशी, अजमेर, अमृतसर के संगम को बचाने निकले हैं,
इस राह में जो भी खून बहे तेहजीब पै है एहसान,
यह जान ले पाकिस्तान।"[२]

जाँनिसार अख्तर ने भी दुश्मन से घृणा करने और उसका सामना करने का संदेश दिया है—

'माँगना आज हमको फैसला शमशीर से
दूर रहना है भड़कती आग को काश्मीर से
इस जमीं के हर गुले तर की हिफाज़त फर्ज है
ये हमारा घर है इस घर को हिफाज़त फर्ज है।'[३]

हिन्दी में पाकिस्तानी आक्रमण को लेकर अनेक ग्रन्थ, काव्य-संग्रह एवं कविताओं को जन्म दिया गया। बलदेव प्रसाद गुप्ता 'कौशिक' ने 'शंख-नाद' शीर्षक वीर रस प्रधान कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया जिसमें बुन्देल खण्ड के ३८ कवियों की रचनाएँ हैं। कैलाश वाजपेयी ने पाकिस्तान पर सुन्दरतम व्यंग्य लिखा है—

'लोग सोते रहे—मुर्गा पलता रहा।
लेकिन जब पैगम्बर बहुत सख्त
सरदर्द बन गया

---

१. 'धर्मयुग'—२ नवम्बर, १९६५।
२. " ९ जनवरी, १९६६, पृ० १७।
३. वही।

झल्लाकर मैं घूरे तक गया
पंजों और पंखों पर लगी
बीट झाड़कर
ले आया मुर्गे की दुम उखाड़कर !
उस दिन के बाद से
लोग रात भर चैन के साथ सोते हैं
और उस कूड़े के ढेर पर
सुनता हूँ कुत्ते रोते हैं ।'[1]

चीन और पाकिस्तान की विचित्र मैत्री पर अमृता प्रीतम की 'शतरंज' नामक कविता प्रकाशित हुई—

'तेरे पास नफरत की सिगरट
मेरे पास सिगरट का लाइटर
आओ तुम्हारी सिगरट जला दूँ
एक बहुत गहरा सांस लेना
और इसका खुमार देखना
रूह लरज जायगी
पैर झूम उठेगा
और सारी दुनिया
नाचीज नजर आयेगी ।'[2]

राजकमल चौधरी सूरज की किरण की रक्षा करने और राष्ट्र को आश्वस्त करने के लिए कृत-संकल्प हैं—

'हम अपने अन्दर चुपचाप खड़े
इस आदमी से
वादा करते हैं, कि इस रोशनी, और
इस मुस्कराहट की
हम रक्षा करेंगे—
हर जगह,
अपने घरों के दरवाजों पर

---

१. 'धर्मयुग'—३१ अक्टूबर, १९६५ ।
२. 'धर्मयुग'—२८ नवम्बर, १९६५, पृ० २३ ।

और लड़ाई के मोर्चों पर,
हम प्रस्तुत हैं।"[१]

जहाँ चीनी आक्रमण में के० पी० कडेथ, अश्विनी कुमार दीवान, वी० के० ए० राज, नरेन्द्र कुमार, शैतान सिंह, कल्याण सिंह, आर० एस० ग्रेवाल, श्यामदेव गोस्वामी आदि ने नाम कमाया वहाँ पाकिस्तानी आक्रमण में कीलर बन्धु, सतीशचन्द्र मालवीय, हमीद, सलीम कालिब, मोहम्मद अलीरजा शेख, भूपेन्द्र सिंह, देवेन्द्र प्रसाद शर्मा, कुलदीप सिंह, प्रेमराम चन्दानी आदि सैनिकों ने अपने साहस तथा वीरत्व का प्रदर्शन कर काव्य को नवीन सामग्री दीं। भारतीय शस्त्रों ने विदेशी शस्त्रों को मात दे दी। हाजीपीर का दर्रा राष्ट्रीय तीर्थ बन गया। चीनी आक्रमण के समय की निष्क्रियता को हमने पाकिस्तानी आक्रमण के समय धो डाला। समूचे राष्ट्र में शासकीय तथा सार्वजनिक स्तर पर हमारे जवानों, शहीदों और उनके परिवारों का अभिनन्दन किया गया। सारा देश जवानों के साथ हो गया। कवियों ने भी मोर्चे पर जाकर, जवानों का उत्साह-वर्द्धन किया।

युद्ध-काव्य :

राष्ट्रीय काव्य के साथ युद्ध काव्य का समीपी सम्बन्ध है। दोनों ही सामाजिक कर्त्तव्य को परिपूर्ण करते हैं।

पुरातन काल से ही युद्ध मानव का हमराही बन गया है। इस अभिशाप से उसे कभी मुक्ति नहीं मिली। सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने लिखा कि युद्ध बुरी चीज है। किसी भी काल में बुरी थी। आधुनिक युग में और भी बुरी है क्योंकि आधुनिक युद्ध में यह जानना और भी कठिन हो जाता है कि युद्ध कौन से मूल्यों की रक्षा के लिए किया जा रहा है। मध्यकाल तक मूल्य स्पष्ट होते थे और उस समय तक की शौर्य-परम्परा युद्ध की परम्परा उतनी नहीं जितनी मूल्य-रक्षा की परम्परा थी, मर्यादा थी। आज तरह-तरह के यन्त्रों के साथ लड़ने वाला व्यक्ति एक उपकरण मात्र बन जाता है।[२]

इतिहास युद्धों से भरे पड़े हैं। युद्ध और शांति इतिहास के दो चरण हैं। महाकाव्य भी युद्धों का आधार लेकर चलते हैं।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने युद्ध-काव्य लिखने के लिए 'असभ्यता सीखिये'

---

१. 'धर्मयुग'—२८ नवम्बर, १९६५, पृ० २३।

२. 'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन मासिक विवरणिका'—युद्ध और प्रेरणा, दिसम्बर १९६५, पृ० १।

का मंत्र दिया : 'युद्ध बर्बर कर्त्तव्य है और कविता सभ्यता की वाणी है, इस आधार पर कविता को युद्ध से अलग नहीं रखा जा सकता। युद्ध वह जन्तु है जो अपनी सेवा सभ्यता के अग्रणी लोगों से करवाता है और कविता को भी असभ्यता से परहेज नहीं है। वह अनाचार, दुराचार, कदाचार—यहाँ तक कि व्यभिचार में भी रस लेती है और अब वह यह कार्य मनुष्य के सुधार के लिए नहीं करती, बल्कि, केवल यह जानने को कि अनाचार कैसा होता है, दुराचार का स्वरूप क्या है और व्यभिचार की प्रेरणा कहाँ से आती है?"[१]

'दिनकर' का मत है कि युद्ध की कविता केवल युद्ध के ही समय नहीं लिखी जाती है। वह तब भी लिखी जाती है और लिखी जानी चाहिये जब युद्ध शुरू नहीं होते हैं और उस समय भी जब युद्ध खत्म हो जाते हैं। मानवता को ऊँचा उठाने वाली प्रत्येक कविता युद्ध की ही कविता है। संसार अभी भी उन कविताओं के पूरे प्रभाव में है जिन्हें हम युद्ध-काव्य कह सकते हैं। युद्ध काव्य की श्रेष्ठता उसकी शैली में परखी जाती है। वास्तविक युद्ध-काव्य (कोरे प्रचार काव्य से भिन्न) वह है जो भाव और शैली, दोनों से लोगों के बीच असंतोष पैदा करता है, उनके भीतर अन्याय के विरोध की भावना जगाता है और उन्हें विपत्तियाँ झेलने को तैयार करता है। ऐसी श्रेष्ठ कविताएँ युद्ध का अतिक्रमण करती हैं, अनेक देशों का स्पर्श करती हैं और अनेक शताब्दियों की यात्रा करती हैं। देश भक्ति अथवा विचारधारा के लिए शहीदों की वेदना व शान्ति की शिक्षा पर व्यंग युद्ध काव्य की रीढ़ है।[२]

सुमित्रानन्दन पंत ने कहा है कि कभी-कभी राष्ट्र को लौह-सदृश बनाने और विकसित करने में युद्ध का बड़ा योगदान होता है। बहुत से राष्ट्रों की नींद खुल जाती है।[३]

युद्ध के प्रसंग में, 'दिनकर' ने पुरानी कविता और नवीन काव्य में अन्तर देखा है।

प्राचीन काव्य	नवीन काव्य
१. युद्ध के लिये उत्साहप्रद।	युद्ध के लिये व्यथा और विषाद, द्विधा और द्वन्द्व, विरक्ति और विलापपूरित।

१. 'हिन्दी प्रकाशक'—नवम्बर-दिसम्बर, १९६५, पृ० २।
२. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'—२४-१०-१९६५।
३. 'धर्मयुग'—३१ अक्टूबर, १९६५, पृ० ९।

२. युद्ध की अच्छी कविता युद्ध का समर्थन करने वाली होती है।	युद्धों का विरोध व उनके प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने वाली होती है।
३. आवेग प्रधान।	चिन्तन प्रधान। नये कवि करुणा व संवेदना के कवि हैं। भावुकता के आवेश में युद्ध को दर्पपूर्ण भाव के रूप में ग्रहण करने को तैयार नहीं।
४. चिन्तन कम और कार्य अधिक करने वाले अडिग मनुष्य की कविता है।	ज्ञानाधिक्य से पीड़ित होने के कारण कर्म के विषय में शंकाग्रस्त मनुष्य की कविता है।
५. नायक श्रीराम व श्रीकृष्ण हैं।	—नायक हेमलेट है।
६. स्वरः वीर गति मिलने पर स्वर्ग की प्राप्ति और विजयी होने पर वसुन्धरा का भोग।	आशा करने से बाज आओ क्योंकि आशा गलत चीज की आशा होगी।[१]

'दिनकर' का कथन है कि युद्ध-काल में कवि की यह स्थिति होती है कि—

१. युद्ध का समर्थन करे, या

२. युद्ध का विरोध करे, या

३. तटस्थ हो जाये।[२] युद्ध के संदर्भ में साहित्यकार की पाँच प्रकार की मनोभूमिकाएँ दिखाई पड़ती हैं—

१. तटस्थ भंगिमा।

२. उपदेष्टा भंगिमा।

३. भोक्ता भंगिमा।

४. भर्त्ता भंगिमा और।

५. आत्मस्थ भंगिमा।[३]

प्रत्येक साहित्य में युद्ध का आकलन किया गया है। अंग्रेजी साहित्य में युद्ध का पर्याप्त विवेचन है। साहित्यकार मनुष्यता का उपासक होता है। उसने युद्ध को सर्वाधिक महत्त्व नहीं दिया। पाश्चात्य कवि 'विलफ्रेड आवेन' कहता है—

"My subj ect is War and the Pity of War."

---

१. 'जनयुग'—३-१०-१९६५।

२. डॉ० गोपीवल्लभ नेमा–'मन्तव्य', युद्ध के संदर्भ में साहित्यकार की मनो-भूमिकाएँ, अंक २, पृ० ९।

मिल्टन, शेक्सपियर, शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ आदि कवियों के समय में युद्ध हुए थे परन्तु उन्होंने युद्ध को अपने साहित्य का मूलाधार नहीं बनाया।

अंग्रेजी काव्य में युद्ध को दो रूपों में ग्रहण किया गया है—

१. युद्ध की भीषणता, मानवीय पशुता का नग्न प्रदर्शन और नर संहार के कारण मन में करुणा एवं ममता का उद्रेक।

२. स्वदेश प्रेम, राष्ट्रोपासना और विजय का उल्लास।

प्रथम विश्वयुद्ध (सन् १९१४-१९१८ ई०) में इंग्लैंड में अंग्रेजी कवियों यथा रूपर्ट ब्रूक, विलफ्रेड ओयेन, आइजक रोजनवर्ग, सिगफ्रिड सैसून आदि ने दोनों प्रकार की कविताएं लिखीं। किपलिंग की कविताओं ने साम्राज्यवाद का समर्थन किया है।

ओयेन की प्रसिद्ध कविता 'Strange meeting' में एक मृत सैनिक की शत्रु-सैनिक के साथ उसकी मृत्यु के पश्चात् भेंट का प्रकाशन है। मृत सैनिक कहता है—

"I am the enemy you killed my friend
I knew you in this dark;
for so you frowned
Yesterday through me as you
Jabbed and killed.
I parried; but my hands were
loath and cold.
Let us sleep now xxxx."

रोजेनवर्ग युद्ध की व्यर्थता तथा तज्जन्य कारुणिकता पर प्रकाश डालते हैं। उनका व्यंग्य है—

"What passing-bells for those who die as cattle?
Only the monstrous anger of the guns
Only the stuttering rifle's rapid rattle
Can patter out their hasty orisons,
No mockeries for them from prayers or bells,
Nor any voice of mourning from the choirs,
The shrill, demented choirs of wailing shells."

युद्ध-काल में मनुष्य का जीवन चूहे का जीवन बन जाता है—

"On life, life, let me breathe,—A dug-out rat,
Not worse than ours the existence rats bad.

Nosing along at night down some safe vat,
They find a shell-proof home before they rot."

हमारे देश ने अनेक बार युद्ध की विभीषिका देखी है। वैदिक ऋचाओं, रामायण और महाभारत में इसके विशद् वर्णन हैं। महाभारत का कवि कहता है—

'राष्ट्रं सुरक्षितं तातः, शत्रुमिनं विलुप्यते।'[१]

हिन्दी के प्राचीन कवियों ने भी युद्ध के वर्णन प्रस्तुत किए हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय महायुद्ध का परोक्ष प्रभाव हमारी आधुनिक हिन्दी कविता पर पड़ा। 'साकेत', 'कामायनी', 'कृष्णायन', 'ऊर्म्मिला', 'कुरुक्षेत्र' आदि पर युद्ध का अप्रत्यक्ष प्रभावांकन किया जा सकता है। द्वारकाप्रसाद मिश्र ने युद्ध को घोर अधर्म माना है—

"केवल बल श्वपद व्यवहारा बुद्धि युक्ति
मानव आचारा।
बुद्धि साध्य जब लगिनृप कर्म गहन युद्ध
पथ घोर अधर्मा।"

युद्ध की स्थिति में देश का कारुणिक चित्र, 'नीरज' उपस्थित करते हैं और घोषणा करते हैं कि अब युद्ध नहीं होगा :

"क्या इन सब पर खामोशी मौत बिछा देगी?
क्या धुंध-धुंआ बनकर सब जग रह जायेगा?
क्या कूकेगी कोयलिया कभी न बगिया में,
क्या पपीहा फिर न पिया को पास बुलायेगा?
मैं सोच रहा हूँ युग जो इतिहास लिख रहा है
क्या रक्त घुलेगा उसकी सारी स्याही में?
क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उतरेगा,
क्या चाँद सिसकियाँ लेगा ध्वंस तबाही में?"

'दिनकर' जी हिन्दी के पहले कवि हैं जिन्होंने 'युद्ध' को अपनी कविता का

१. 'महाभारत'—सभा पर्व, पंचम अध्याय।

प्रतिपाद्य बनाया, उसके मूल कारणों तथा पक्ष-विपक्ष का विश्लेषण करके उससे उत्पन्न समस्याओं के समाधानों की ओर इंगित किया। 'रेणुका,' 'हुँकार' और 'सामधेनी' में जहाँ उनके हृदय के अंगार समय के झोकों से प्रज्वलित होकर भयानक लपटों के रूप में व्यक्त हुए, 'कलिंग विजय' और 'कुरुक्षेत्र' में उनका मस्तिष्क मानव-जीवन के युग-युग से चले आते हुए उस अभिशाप के शमन का मार्ग खोजने को अग्रसर हुआ, जिससे छुटकारा प्राप्त करने का आकांक्षी होते हुए भी, मनुष्य उसी में भुनकर रह जाता है। युद्ध मानव-सभ्यता का एक अभिन्न अंग बन गया है।'[१] 'दिनकर' का मत है—

> "युद्ध में जीत कभी भी उसे नहीं मिलती है,
> प्रज्ञा जिसकी विकल, द्विधा-कुंठित कृपाण की धार है!
> विजयकेतु गाड़ते वीर जिस गगन-जयी चोटी पर,
> पहले वह मन की उमंग के बीच गढ़ी जाती है।
> विद्युत बन छूटती समर में जो कृपाण लोहे की;
> भट्टी में पीछे, विचार में प्रथम गढ़ी जाती है।"

चीनी आक्रमण के पश्चात् हमारे देश ने युद्ध को वास्तविकता की गंध पायी। हमारे कवि-गण इस दिशा की ओर प्रवृत तथा उन्मुख हुए।'दिनकर' की 'परशुराम की प्रतीक्षा' इस काल का श्रेष्ठ काव्य है। इस काव्य का सम्बन्ध नेहरू जी की रीति-नीति से भी है। दिनकर ने लिखा है: चीनी आक्रमण के बाद देश में जो हिंसात्मक नारे लगाए जाने लगे, उनसे पंडित जी अत्यंत दु:खी हो गये थे। अपना दर्द उन्होंने कई रूपों में बयान किया था जिनमें से एक रूप यह था कि अभी मैं अपने देश के पाशवीकरण को पसंद नहीं कर सकता। जब उन्होंने संसद् में इस आशय की घोषणा की, मैंने उसके जवाब में एक कविता लिखी थी, जो 'परशुराम की प्रतीक्षा' में संकलित है। पंडित जी जिस ऊँचाई से अपनी वेदना का बखान कर रहे थे, उस ऊँचाई की मैंने दाद दी है, मगर, निष्कर्ष मेरा यह था कि पशुओं को उत्तर पशुबल से ही दिया जा सकता है। मैं जिस धर्म का प्रतिपादन कर रहा था, वह आपद्धर्म था। पंडितजी घोर संकट में भी परम धर्म पर आसीन थे। पंडितजी उस हारी हुई ज्योति के प्रतीक थे, जो पराजित होकर भी अंधकार को ललकार रही थी।'[२] परशुराम की

१. डॉ० सावित्री सिन्हा—कवि 'दिनकर' का युद्ध-दर्शन, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान,' २८ अप्रैल, १९६६, पृ० ६।

२. 'धर्मयुग'—२० सितम्बर, १९६४, पृ० १०।

प्रतीक्षा' में दिनकर कहते हैं—

'अंधकार को दबी रौशनी की धीमी ललकार,
कठिन घड़ी में भी भारत के मन की धीर पुकार।
सुनती हो नागिनी? समझती हो इस स्वर को?
देखा है क्या कहीं और भू पर उस नर को—
जिसे न चढ़ता जहर,
न तो उन्माद कभी आता है,
समर-भूमि में भी जो
पशु होने से घबराता है?''

इस युग में युद्ध-काव्य पत्र-पत्रिकाओं में विशेष रूप से प्रकाशित हुआ। विशेषांक भी प्रकाशित हुए। 'ज्ञानोदय' का युद्ध विशेषांक, 'सूत्रकार' का 'युद्ध विशेषांक,' 'श्रीकृष्ण संदेश' का 'समर-अंक,' 'नया जीवन' का 'राष्ट्रचेतना अंक,' 'लहर' का 'युद्ध विशेषांक', 'ज्योति' का 'जागरण अंक,' 'देश और समाज' का 'युद्ध-गीत विशेषांक,' 'किशोर' का 'हिमालय अंक', 'जनभारती' का 'हिमालय विशेषांक' आदि में तद्विषयक प्रचुर साहित्य बिखरा पड़ा है। युद्ध के बाद की शरद-सुषमा का चित्रण जुगमंदिर तायल करते हैं—

'नीले आकाश में चीलें
बहुत-बहुत ऊपर उड़ती हैं
मैं हवाई हमले के सायरन की
प्रतीक्षा करने लगता हूँ।
धूप में घूमने को इन दिनों
बहुत मन होता है,
मुझे दूब भरे मैदानों की जगह,
खाइयाँ याद आती हैं
वर्षा-धुली काली शिलाएँ धूप में चमकती हैं
मुझे भीम-टैंको का भ्रम होने लगता है।'

राजेन्द्र 'अनुरागी' की ये पंक्तियाँ सर्वत्र गूँज गयी—

'आज अपना देश पूरा लाम पर है,

जो जहाँ भी है, वतन के काम पर है।'[१]

मानवता की कामना तो अंग्रेजी की इस कविता में निहित है—

"War in men's eyes shall be
A monster of inequity
In the good time coming
Nations shall not quarrel then,
To prove which is the stronger,
Nor slaughter men for glory's sake
Wait a little longer."

—C. Mackay, "The good time coming."

राष्ट्रीय काव्य-धारा में कवयित्रियों का योगदान :—

द्विवेदी-युग में श्रीमती कमलाकुमारी, श्रीमती इन्दुबाला, श्रीमती प्रि० म० देवी 'भारती,' श्रीमती कुन्दन देवी, श्रीमती सुन्दरदेवी, श्रीमती रा० र० कक्कड़ और विद्यावती ने राष्ट्रीय काव्य की अविस्मरणीय सेवा की है परन्तु हिन्दी-संसार अब इन कवयित्रियों को विस्मरण कर चुका है।

राष्ट्रीय कवयित्रियों में सर्वाधिक ख्याति सुभद्राकुमारी चौहान को मिली। सुभद्राजी ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था और वे राजनैतिक कार्यकर्त्री थी। सुभद्राजी की तो यह आन थी—

'असहयोग पर मिट मिटना,
यह जीवन तेरा होगा।
हम होंगे स्वाधीन, विश्व का
वैभव, धन तेरा होगा।'

श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली' का साहित्य राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। पराधीन भारत की विजयादशमी में वे भगवान राम से पुकार करती हैं—

'मेरी विजयादशमी आज।
पराधीन है देश हमारा, निर्बल हीन समाज,
'लली' न जाने कहाँ छिपी है देश-धर्म की लाज।'

श्रीमती रामेश्वरी देवी 'चकोरी' का काव्य राष्ट्रीय चेतना एवं करुण वेदना से परिपूर्ण हैं। वे भारतीय तरुणों को स्वाधीनता के लिए उत्प्रेरित करती हैं—

---

१. 'देश और समाज'—युद्ध गीत विशेषांक, जनवरी–फरवरी, १९६६, पृ० २५।

'नवयुवक मिश्र टर्की के तो आदर्श तुम्हारे कल के हैं,
कटिबद्ध समर में डट जाओ, लख बाधाओं को नहीं टलो।
चरखा चलवा दो घर-घर में अब मैंचेस्टर से काम न लो,
खद्दर से ढक दो भारत को साटन मखमल का नाम न लो।'

श्रीमती पुरुषार्थवती की असामयिक मृत्यु हो गयी। उन्होंने भारतीय ललनाओं को संदेश दिया--

'हे ललनाओं भारत की,
पुण्य प्रेम की जागृत-प्रतिमा,
धर्म, जाति की गौरव गरिमा,
तुमसे बढ़े देश की महिमा,
भाग्य-विधात्री भारत की,
सौख्य-प्रदात्री भारत की।'

श्रीमती बुन्देल बाला, महारानी कीर्तिकुमारी, महारानी सुदर्शन कुमारी, श्रीमती चन्द्रावतीदेवी, सुश्री चन्द्रवती 'प्रभा', शकुन्तला सक्सेना, राजसोंधी आदि ने भी समाज और देश की विविध स्थितियों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। श्रीमती रत्नकुमारी देवी के कविता संग्रह 'अंकुर' में राष्ट्रीय हुँकार की उपलब्धि है। आपकी सर्व प्रथम कविता 'मातृ-प्रेम' के नाम से प्रकाशित हुई थी। हीरादेवी चतुर्वेदी के 'मंजरी,' 'नीलम,' एवं 'मधुवन' में प्रकृति प्रेम, मानवता, करुणा, नारी-भावना और देश-प्रेम का संदेश है। रूप कुमारी वाजपेयी ने श्रेष्ठ गीतों की सृष्टि की है। ओजस्विता भी मिलती है—

'अयि जननी अबला मत बन री!
अन्यायों की इस विभावरी,
मंत्र जगा दे नूतन बल के
हाहाकार जला सोती मानवता के दृग खोलो!'[१]

विद्या भार्गव के स्वर में करुणाई है। उनमें कोमलता तथा मार्मिकता है। वे देश की समसामयिक चेतना से प्रभावित हुई।

अनेक कवयित्रियाँ राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा के वर्ग में नहीं आती हैं परन्तु उन्होंने समय-समय पर राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति अपने काव्य में की है।

---

१. 'नक्षत्र'—पृ० २६०।

महादेवी वर्मा ने नवयुवकों को संदेश दिया है कि 'जाग तुझको दूर जाना।' उन्होंने चीनी आक्रमण के समय वर्तमान युद्ध-संकट में साहित्यकारों के उत्तरदायित्व पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था : हम जानते हैं कि भारत कभी भी आक्रामक देश नहीं रहा है। हमारी परम्परा अधिकार-लिप्सा और धन-लिप्सा की परम्परा नहीं रही है। यह सच है कि इस समय हमारे मूल्यों पर संकट खड़ा हो गया है। देखने में हम सब एक ही आकाश के नीचे खड़े हैं किन्तु एक तानाशाह के रूप में जेहाद बोल रहा है और कोई अपने मूल्यों की रक्षा के लिए सन्नद्ध है। असल में हमें अपने मूल्यों के प्रति आस्था होनी चाहिए। हिटलर के पास कंपा देने वाली शक्ति थी, किन्तु रूस के पास जीवन के मूल्य अधिक गम्भीर थे। इसी लिए हिटलर की सेनाएँ रूसी मनोबल से टकराकर लौट गयी।[1]

नये युग की कवयित्रियों ने विज्जका, गौरी आदि संस्कृत की कवयित्रियों की परिपाटी का पालन किया है। सोलहवीं शताब्दी की संस्कृत कवयित्री गौरी ने बन्दूक लिए वीर का चित्रण किया है—

'महा-चण्डीव संभाति भुशंडी भवतः करे
प्रताप-ज्वर-संभ्राज-गोलिका जीव-हारिणी ॥
वह्नि-चूर्ण-परिपूर्ण-निजान्त—
गोलिका गरल-वक्त्र -विकाशा ।
बाहु-भीषण-भुजंग-भृतेयं
भाति दुष्ट-भुजगीव भुशंडी ॥'

प्रतिमा पटेल, हेमज्योतला मिश्र, रेणुकासिंह, सुमित्रा जायसवाल, शकुन्तला सिरोठिया, सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, विमला श्रीवास्तव आदि ने अपनी रचनाओं से मोर्चा बनाया है। कमला चौधरी, चन्द्रकांता, विद्यावती मिश्र, रमासिंह, स्नेहमयी चौधरी, सुमित्राकुमारी सिन्हा, ज्ञानवती सक्सेना, विद्यावती कोकिल, विमला शर्मा आदि ने राष्ट्रीय गीतों की रचना की।

लोक गीतों में राष्ट्रीयता :—

लोक गीत जनता की आत्मा है। जन मानस की धड़कन है। वह हमारे ग्रामीण समाज की गीता है। हिन्दी की विभिन्न जनपदीय बोलियों में लोक-साहित्य की रचना हुई है। इनमें राष्ट्रीयासना के विविध रंग देखने को मिलते हैं। एक मगही लोक गीत में भारत माता की मनोहर मूर्त्ति का निर्माण हुआ है :

---

१. 'धर्मयुग'—३१ अक्टूबर, १९६५, पृ० ९।

'भारत माता हे, सोनवें पूजब तोहर पाँव।
टीका झुमका फूल बनाएब, नथिया अच्छत बनाएब।
हँसुली सिकरी आसन, बजुआ सिंघासन बइठाएब।
कंगना पहुँची अरधा-चंदन, मुंदरी हार बनाइब।
तोहर देल सोना-अभरनवा, तोहरे देब चढ़ाएब।'

चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया भी दर्शनीय है—

'जाग भइआ, घर में घुसल दुसमनवाँ,
हिन्दी चीनी भाई कहके देलक छुरी चलाई,
भारतमाता के सपूत अब ले ले देश बचाई,
धोखा चोरी से चढ़ आएल हमरो सिमनवाँ,
तानशाही बेइमनवाँ ॥ जाग०'

स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय जागरण से हमारे लोक गीत अछूते नहीं हैं। ब्रजप्रदेश का चित्रण इस ब्रज के लोकगीत में हुआ है—

'बिरजमण्डल देश दिखा दे रसिया
तेरे रे बिरज में कन्हा गऊ रे बहुत है,
पी-पी-दूध भई पठिया।
तेरे रे बिरज में कान्हा गऊ रे बहुत है,
कोहकत मार फटे छतिया।'

राजस्थानी युवती को अपना देश अत्यन्त प्रिय है—

'बालो लागे छै म्हारो देसड़ो ए लो,
कम कर जानूँ पर देस वाला जो।
ऊँचा-ऊँचा राणो जो रा गोंखड़ा ए लो,
नीचे म्हारे पीछोले रो पाल वाला जो।
बादल छाया देस में हे लोय,
नदियाँ नीर हिलोहिल रे।
वादल चमकै बीजली,
चमक-चमक झड़ लाय।
सरवर पाणीड़े ने मैं गई ए लो,
भीजै म्हारी सालूड़े री कोर वाला जो।
बालो लागै छै म्हारो देसड़ो ए लो,
कम कर जादूँ परदेस वाला जो।'

चीनी आक्रमण का प्रभाव लोक-गीतों में प्रविष्ट हो गया है। फागों में भी उसे स्थान मिल चुका है। लोक गायकों ने भी अपनी हुँकार को प्रसार दिया है। देखिए—

'चढ़ अइलै चीनी नेफा माँ
गुर्राइ रेडियो बोल उठल
दिल्ली के शासन तख्ते से
नेहरू कइ न्योता डोला उठल ॥
वा आजु भवानी क न्यौता।
काली महारानी क न्योता।
नेवता बा शंकर बाबा क। नेवता बा काशी काबा क ॥
घर घर इन कइ डुग्गी बाजल !'

एक बुन्देलखण्डी गीत में वीरत्व की भावना का प्रदर्शन हुआ है—

'माहुलिया तोरे देश लीलबो चाहत चाऊ-माऊ।
हमलावर बन के जो दोऊ हो गये केतु-राहु।
जो पंचशील को दिया बुझा चाहत अंधियारों माहुलिया
अँधियारे में बन के जुनैया छुटक चलो मोरी माहुलिया।
माहुलिया तोरे आ गये लिबौआ, ढड़क चलो मोरी माहुलिया।'[1]

राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गीत :—

राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय झण्डा और राष्ट्रभाषा प्रत्येक स्वतंत्र एवं समृद्ध देश की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। हमारे वर्तमान राष्ट्रीय ध्वज ने अनेक ऐतिहासिक सोपानों को क्रमिक रूप से पारकर आज का रूप प्राप्त किया है। इसकी भी रोचक और मन-मोहक कहानी है जो राष्ट्रीयता तथा तेजस्विता की वाणी में मुखर है।[2]

राष्ट्रीय झण्डे का विचार सर्वप्रथम विदेश में कतिपय क्रांतिकारी नवयुवकों के हृदय में १९०५-६ में उत्पन्न हुआ।

राष्ट्रीय ध्वज की जन्मदाता एवं प्रथम कल्पना करने वाली श्रीमती भिखाई जी कामा मानी गयी हैं। जिन परिस्थितियों में उन्होंने इसकी कल्पना की, वे भी अभूतपूर्व हैं। 'स्टट गार्ट' जर्मनी में एक सोशलिस्ट कान्फ्रेंस हो रही थी। श्रीमती कामा भी

---

१. 'मनोज'—'पंचायती राज के गीत', पृ० २८।
२. डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे—'भारत का झण्डा फहरे', 'योजना,' गणतन्त्र विशेषांक, २६-१-१९६५, पृ० ६०।

वहाँ निमंत्रित थीं। कान्फ्रेंस में श्रीमती कामा ने एक हृदयद्रावक भाषण दिया, तालियों की गड़गड़ाहट से उनके भाषण का स्वागत किया गया और उस तुमुल करतल ध्वनि के बीच ही उन्होंने पहली बार भारत का राष्ट्रीय ध्वज वहाँ फहराया। यह एक अप्रत्याशित घटना थी और लोगों ने हर्ष-ध्वनि से समस्त वातावरण गुँजित कर दिया। श्रीमती कामा ने केसरिया रंग की पृष्ठभूमि में आठ तारों के साथ झण्डे की कल्पना की।[१]

दूसरा प्रयास श्रीमती एनीबेसेंट द्वारा सन् १९१६ में 'होम रूल आन्दोलन' के समय किया गया। नव-निर्मित राष्ट्रीय ध्वज में हरे रंग की पाँच और लाल रंग की चार पट्टिकाएँ थी। पंच पट्टिकाओं पर सप्तर्षि अंकित थे। शीर्षस्थ पट्टिका के बाएं ओर 'यूनियन जैक' और दाहिनी ओर कलानिधि विराजमान थे। नौ पट्टिकाएँ भारत के नौ प्रदेशों और हरी एवं लाल पट्टिकाएँ हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की प्रतीक थीं।

सन् १९२१ में राष्ट्रीय झण्डे के वास्तविक प्रवर्त्तक पंजाब के लाला हंसराज ने ध्वज में चरखे को समाहित करने का विचार दिया। लालाजी के झण्डे में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक के रूप में लाल रंग एवं हरे रङ्ग थे। फिर महात्मा गाँधी ने अन्य धर्मों के परिचायक के रूप में उसमें श्वेत रंग भी समाहित किया। हाथ के काते हुए खद्दर के बने इस झण्डे में शीर्षस्थ श्वेत, मध्यस्थ हरी और नीचे लाल पट्टिका थी। प्रथम बार यह सर्वस्वीकृत ध्वज सन् १९२१ को अहमदाबाद कांग्रेस के पण्डाल पर फहराया गया।

सन् १९२३ में नागपुर में प्रख्यात झण्डा सत्याग्रह हुआ। श्री हरदेवनारायण सिंह ने राष्ट्रीय झण्डे पर ३ अगस्त, १९२३ को अपनी बलि चढ़ा दी। 'नवीन' जी के सम्पादन में अक्टूबर १९२३ ई० में कानपुर की मासिकी 'प्रभा' का 'झण्डा विशेषांक' प्रकाशित हुआ—जिसकी सर्वत्र सराहना की गयी। कोको नाडा कांग्रेस में इस झण्डे को प्रथम बार राष्ट्रपति ने विधिवत् रूप से फहराया।

सन् १९२४ में हिन्दुस्तानी सेवा दल ने 'वंदन विधि' की संहिता तैयार की। गणेशशंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से मार्च, सन् १९२४ में श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' शीर्षक लोकप्रिय गीत लिखा। प्रथम बार इसकी पांच सहस्त्र प्रतियाँ खन्ना प्रेस से मुद्रित होकर वितरित की गयी। इसके पश्चात् यह गीत कानपुर की मासिक पत्रिका 'वैश्य' में मई, १९२४ में छपा और तद्नंतर 'प्रताप' में फरवरी १९२५ में प्रकाशित हुआ। गणेश जी ने १९२४ में होली के अवसर पर कानपुर में

---

१. 'धर्मयुग'—१५ अगस्त, १९६५, पृ० ४४।

जुलूस निकाला था जिसमें कवि ने स्वयं प्रथम बार इस गीत को गाया था। इस गीत के मूल में २४ पंक्तियाँ थीं परन्तु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने इसमें से नौ पंक्तियाँ निकाल दीं तो पन्द्रह पंक्तियाँ ही रह गयी। यह गीत प्रथम बार सन् १९२४ की कानपुर कांग्रेस में समवेत रूप में गाया गया। बम्बई की झण्डा गीत प्रतियोगिता में इसे प्रथम पुरस्कार मिला और इसे राष्ट्र-गीत घोषित किया गया।

उपर्युक्त झण्डा गीत प्रायः गायन के हेतु लिखा गया था। संध्या गायन के लिए भी पार्षद जी ने यह झण्डा गीत लिखा था—

'राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति
राष्ट्रीय पताका नमो नमो ।।'

सन् १९२८ में 'सेवादल' ने अपने अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया कि प्रत्येक महीने के अंतिम रविवार को सुबह के समय झण्डा वंदन किया जाय। सन् १९३१ को कांग्रेस कार्य-समिति ने सर्व मान्य राष्ट्रीय ध्वज निर्माण के लिए एक उप-समिति नियुक्त की। उसके अनुसार ध्वज में क्रमशः ऊपर से नीचे को ओर केसरी, श्वेत तथा हरे रंग थे। मध्य की धवल पट्टिका पर चरखा अंकित था। झण्डे की लम्बाई-चौड़ाई में ३ और २ का अनुपात रक्खा गया।

बम्बई की १९३१ की कांग्रेस ने इस झण्डे को स्वीकृत किया। यही वर्तमान तिरंगा झण्डा है। अब केसरी रंग धृति एवं त्याग, श्वेत सत्य तथा शांति और हरा विश्वास तथा प्रताप का परिचायक माना गया।

स्वाधीन भारत में उपरिलिखित झण्डा कांग्रेस दल का ध्वज बन गया और उसमें स्वल्प परिवर्त्तन कर उसे 'राष्ट्रीय ध्वज' घोषित किया गया। चरखे का स्थान अशोक चक्र ने ग्रहण कर लिया जो शांति, अहिंसा एवं मानव-प्रेम का प्रदर्शक है। आजकल राष्ट्रीय झण्डे की विधिवत् संहिता है। त्रि-सिंह-मूर्त्ति, राष्ट्रीय मुहर या चिह्न है।

हिन्दी में झण्डे पर शताधिक गीतों की रचना हुई है। समूचा राष्ट्रीय काव्य इनसे भरा पड़ा है!

राष्ट्रीय गीतों की भी प्रथुल संख्या में सृष्टि हुई। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वंदे मातरम्' को सर्वाधिक सम्मान एवं यश मिला। वास्तव में यही पराधीन भारत का एकमेव राष्ट्र गीत था। इसे राष्ट्रीय समारोहों में सहर्ष गाया जाता था—

'वंदे मातरम्, वंदे मातरम् ।।
सुजलाम् सुफलाम्मलयज-शीतलाम् ।
शस्य-श्यामलाम् मातरम् ।'

इसका पद्यात्मक छायानुवाद इस प्रकार किया गया था--

'बन्दों मात तुम्हैं
स्वच्छ मधुरजल भरे जलाशय, हरियाली लहलहात ।
चाँद उजास छिटिक चहुँओरा, कुसुमित कानन अधिक सोहात ।

स्वतंत्र भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र के इस गीत को 'राष्ट्र गीत' के रूप में घोषित किया गया—

'जन गण-मन-अधिनायक जय हे !
भारत भाग्य-विधाता ।
पंजाब-सिंधु-गुजरात-मराठा—
द्राविड़-उत्कल बंग,
विंध्य-हिमाचल-यमुना-गंगा—
उच्छल जलधि तरंग ।
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मांगे ।
गाहे तव जय-गाथा ।।'

क्रांतिकारी और शहीद

भारतीय स्वाधीनता के मूल प्रवाह में क्रान्तिकारियों का मूल्यवान अवदान है। भारत के प्रथम कांतिकारी मंगलपांडे थे जिन्होंने सन् १८५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपनी आहुति चढ़ाई। क्रांतिकारियों में वीर सावरकर, लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक, सरदार भगतसिंह, सुभाषचन्द्र बोस, गणेशशंकर विद्यार्थी, मन्मथनाथ गुप्त, यशपाल, बटुकेश्वरदत्त और चन्द्रशेखर आजाद को सर्वाधिक ख्याति मिली। क्रांतिकारियों एवं शहीदों पर अनेक प्रकार के काव्य लिखे गए। इन्होंने हमेशा 'गीता' से प्रेरणा ली। दामोदर चाफेकर इस श्लोक को कहते हुए फांसी पर चढ़ गए थे—

'देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धरिस्तत्र न मुह्यति ।।'

क्रांतिकारी आन्दोलन का क्रियात्मक श्रीगणेश महाराष्ट्र में हुआ और उसके

---

१. 'हिन्दी प्रदीप,' जनवरी, १९०६ ।

सर्वमान्य नेता तिलक एवं सावरकर बंधु थे।

बाद में उसका बंगाल केन्द्र हुआ जहाँ अरविन्द घोष और वारीन्द्र घोष नेता हुए। 'अभिनव भारत,' 'गदर पार्टी,' 'मातृवेदी,' 'हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोशियन,' 'हिन्दुस्तान सोसलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन,' 'हिन्दुस्तान लाल सेना,' 'आजाद हिन्द फौज', 'आजाद हिन्द सरकार'—आदि सभा-संस्थाओं ने भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति में ऐतिहासिक योग-दान दिया है। कई क्रांतिकारी कवि थे और कुछ ने अपनी आत्मकथा भी लिखी। रामप्रसाद 'बिस्मिल' के उद्‌गार थे—

'यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी।
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी॥
हे ईश, भारतवर्ष में शतबार मेरा जन्म हो।
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो॥
मरते 'बिस्मिल' रोशन, लहरी, अशफाक अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों उनके रुधिर की धार से॥'[१]

गणेशशंकर विद्यार्थी और सरदार भगतसिंह पर श्रेष्ठ रचनाएँ आयीं। 'नवीन' का 'प्राणार्पण,' सियारामशरण गुप्त का 'आत्मोत्सर्ग' और डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' की 'गणेश गीतांजलि' स्तरीय रचनाएँ हैं। श्रीकृष्ण 'सरल' ने 'सरदार भगतसिंह' नामक महाकाव्य की सृष्टि की जिसमें सशस्त्र क्रांति के इतिहास की पीठिका में भगत सिंह और उनके सहकर्मियों के पौरुष तथा यौवन, निर्भीकता तथा बलिदान की गाथा निहित है। कवि ने काव्य-तर्पण किया—

'क्रान्ति-गगन के धूमकेतु! आ आग उगलने वाले!
प्राणों की जलती मशाल खुद लेकर चलने वाले!
मेरु-दण्डविप्लव मंथन के, अरि को घूंट गरल के।
शंखनाद विद्रोही स्वर के, शिखर संगठन बल के!'[२]

स्वतंत्र भारत की तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ :—

वर्तमान काल में भारतीय इतिहास में, तीन प्रमुख घटनाएं हुई—

१. भारत की स्वाधीनता तथा गणतंत्र की स्थापना।

२. बापू का बलिदान!

३. नेहरू जी एवं शास्त्री जी का निधन।

---

१. श्री मन्मथनाथ गुप्त—'भारत के क्रान्तिकारी,' पृ० १४१।

२. 'सरदार भगतसिंह'—पृ० ५९६।

१. भारत की स्वाधीनता तथा गणतंत्र की स्थापना :—

१५ अगस्त, सन् १९४७ को हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हुआ। शताब्दियों के पश्चात् हमारा देश मुक्त हुआ। गौरांग महाप्रभुओं ने देश से विदा ली। स्वतंत्रता का जय-जयकार किया गया—

'जय ! त्रिलोक की मुक्तिकारिणी विघ्न-अमंगल दर दे !
जय ! स्वतंत्रते ! भुवन-मोहनी, जयति विजय दे ! वर दे ![1]

२६ जनवरी हमारा, राष्ट्रीय पर्व है। गणतंत्र की पुनीत घोषणा का वाहक दिवस है। डा० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न' ने स्वागत करते हुए लिखा—

'सम्राटों की सत्ता कांपी, भूपों के सिंहासन डोले।
गणतंत्र तुम्हारे आते ही, जन-जन जागे, कण-कण बोले।
गणतंत्र तुम्हारे स्वागत में, प्राणों के पुष्प बिछाये हैं।
आज़ादी के परवानों ने, हँस-हँस कर शीश चढ़ाये हैं।'[2]

गणतंत्र दिवस पर हिंदी कवि-सम्मेलन और सर्व भाषा कवि-सभा में प्रति वर्ष उत्कृष्ट कोटि की राष्ट्रीय कविताओं का पाठ किया जाता है। इनके विविध एवं वार्षिक संकलन राष्ट्रीय काव्यधारा की धरोहर हैं। गणतंत्र भारत में 'नवीन' ने यह उद्घोषणा की थी—

'है आसन्न-भूत अति उज्ज्वल, है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विजय हमारी विहँस रही है मतवाली,
हम मानव को मुक्त करेंगे यही विधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है यह हिन्दुस्थान हमारा है।'

२. बापू का बलिदान :

महात्मा गाँधी ने हिन्दी काव्य को सर्वाधिक प्रभावित किया। उन पर सबसे अधिक साहित्य लिखा गया। उनके जीवन-काल में और मरणोपरान्त अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। वे प्रबंध काव्य और मुक्तक के केन्द्र बने। सन् १९२१ से गांधी-युग का श्रीगणेश होता है। ३० जनवरी सन् १९४८ को बापू ने आत्माहुति दी। मार्क्स, गांधी और फ्रायड आधुनिक युग के महान् ऋषि थे। जब गांधीजी दक्षिण आफ्रिका में ही थे तब से ही 'कर्मवीर गांधी' और 'मिस्टर गांधी' के नाम से कविताएँ प्रकाशित होने लगीं।

---

१. जगमोहननाथ अवस्थी—'जय स्वतंत्रते,' पृ० २।
२. 'राष्ट्रीय कविताएँ', पृ० ११३।

तिलक और गांधी की विचारधारा को लेकर आधुनिक हिन्दी राष्ट्रीय काव्य-धारा सम्पोषित हुई है। गांधी का दूरगामी एवं गहरा प्रभाव रहा।

श्री सोहनलाल द्विवेदी ने गांधी जी के जीवन-काल में उन पर लिखित श्रेष्ठ कविताओं का संकलनकर, उनसे आशीर्वाद लिये थे। मार्क्स तथा गांधी का अन्तर डॉ० माचवे ने प्रस्तुत किया है—

'एक जगज्जेता तो दूजा आत्मजयी, दोनों ही द्रष्टा !
एक तड़ित्तर्जन, वर्षा वह एक प्रलय है, दूजा सृष्टा।'[१]

बापू एवं गुरुदेव रवीन्द्र का तुलनात्मक अध्ययन भी देखिए—

'एक सत्य को खोज रहा है, अशिवभस्म तनरमा, शिवम् में
और दूसरा सत्यम् और सुन्दरम्, एक मानता हममें।' [२]

मानव के सत्पक्ष की साहित्य में प्रतिस्थापना का सम्पूर्ण श्रेय गांधीजी को है। उन्होंने काव्य को नयी दिशा और नूतन मार्ग दिए। अनेक विषय एवं सामग्री सामने आ गयी। भारत को स्वाधीन किया। जन-मन में शाश्वत स्थान प्राप्त किया। उनका बलिदान मानवता की अक्षय सम्पदा है। विपिन जोशी का कवि-हृदय उफन पड़ता है—

'जागृति के गायक को हमने
जग कर धरती पर सुला दिया;
अमृत पी, अमृत दाता से
विष नीलकण्ठ को पिला दिया !
घर के दीपक को बुझा, स्वयं—
हमने ही न्यौता अंधकार !
साकार हो गया निराकार !'[३]

भारतभूमि के भाग्य-विधाता और राष्ट्रोत्थान के परम पिता को तीन गोलियाँ खा गयी। रामअधारसिंह ने बापू के महा-प्रयाण पर करुण क्रन्दन किया—

''अमर शांति के ईश —अवतार उज्ज्वल
मरे तुम नहीं, मेदिनी मर गयी है

---

१. 'अनुक्षण,' मार्क्स और गांधी।
२. 'अनुक्षण', गांधी और रवीन्द्रनाथ।
३. 'साधना के स्वर' —बापू के प्रति, पृ० ५७।

तुम्हारे लिये शांति चर्चित चिरन्तन,
चिरन्तन यहाँ क्रांति घर कर गयी है।'[१]

बापू राष्ट्र के लिए जीवित रहे और राष्ट्र के लिए ही उन्होंने मरण का वरण किया।

३. नेहरूजी एवं शास्त्रीजी का निधन :—

महात्मा गाँधी के पश्चात् भारत का निर्माण उनके उत्तराधिकारी जवाहरलाल नेहरू ने किया। नेहरू साम्प्रदायिक सद्भाव, आधुनिकता, वैज्ञानिक उपलब्धि एवं समृद्धि के अग्रदूत थे। उन्होंने अपने परिपक्व युग का निर्माण किया। नेहरू जी ने हिन्दी काव्य को श्रेष्ठ नायक प्रदान किया। उन पर 'मानवेन्द्र' नामक महाकाव्य लिखा गया। अनेक कृतियों को वे आधार दे गए। श्री सुधाकर पाण्डेय ने नेहरू जी पर लिखित विविध भावमयी कविताओं का संकलन 'जय जवाहर' के नाम से किया।

२७ मई, सन् १९६४ को इस महाप्राण ने अपने नश्वर देह को त्यागकर इतिहास में अमर स्थान प्राप्त किया। केदारनाथ लाभ ने लिखा है—

'तुम वह दर्पण थे, जिसमें भारत प्रतिबिम्बित,
वह महाकाव्य थे, जिसमें अंकित था स्वदेश,
तुम थे भारत, भारत तुममें साकार मुखर
तुम राष्ट्र-भाल के इन्दु-तिलक, गौरव नगेश!'[२]

श्री लालबहादुर शास्त्री का १८ मास का शासन-काल भारतीय इतिहास में स्वर्ण। क्षरों से अंकित होगा। उन्होंने विजय-पर्व का सौभाग्य भारत को दिया। वे भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनका 'जय जवान जय किसान' का नारा भारत की गीता बन गया। भारत भूषण अग्रवाल ने उनके संकल्प का विश्लेषण किया है—

"मुट्ठियाँ,
जिनमें तुमने अठारह महीने पहले
बांधा था
बेचैन जन का एक संकल्प—
जब पहाड़ टूटा था,
जब जमीन कापी थी,
जब समुद्र उफना था।"[३]

१, 'महात्मा महाप्रयाण'—पृ० ६
२. 'जय जवाहर'—पृ० ६२
३, 'धर्मयुग,' ३० जनवरी, १९६६।

शास्त्रीजी ने शहीद की परिभाषा ही बदल दी। वे शांति के शहीद थे। नेहरू जी के वसीयतनामे और शास्त्रीजी की ताशकंद घोषणा से कवियों ने स्थायी प्रेरणाएँ ग्रहण कीं।

स्तवन-काव्य और शोक गीत :—

हमारी राष्ट्रीय काव्य-धारा में महापुरुषों, कर्णधारों, राष्ट्र नायकों, क्रांतिकारियों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर स्तवन की समृद्ध परम्परा रही है। समाज सुधारकों और मार्ग दर्शकों के प्रति हमारे कवियो ने कृतज्ञता अर्पित की है।

महात्मा तिलक पर अनेक कविताएं लिखी गयीं। राष्ट्रपुरुषों को सादर श्रद्धा अर्पित की गयीं। आचार्य विनोबा भावे और उनके भूमिदान यज्ञ को हमारे कवियों ने विशेष अभिव्यक्ति दी। 'नवीन' का 'विनोबा स्तवन' और मैथिलीशरण गुप्त का 'भूमि भाग' इस दिशा में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। कलियुग के 'वामन' विनोबा उदारता, आत्म निष्ठता तथा सत्याग्रह की चेतन प्रतिमा हैं। गुप्तजी ने उनको 'नर के नारायण' कहा। डॉ० सुधीन्द्र ने उनके संदेश को इन शब्दों में पिरोया है—

सुजला सुफला शस्य श्यामला।
धरती हो जीवन की आशा,
भूमि अन्न दायिनी भूख से
छाई फिर क्यों मृत्यु निराशा ?
धरती सकल राष्ट्र का धन हो,
व्यक्ति नहीं कोई निर्धन हो,
जन-युग में जन-जन की धरती,
बने यही धन की परिभाषा।
क्रांति करो नूतन विधान की,
इस जग को नूतन विहान दो,
भूमि-दान दो ! भूमि-दान दो !!

भारत के भरत और अजातशत्रु राजेन्द्र बाबू भी काव्य के शाश्वत शृंगार हैं। वे विनम्रता, सात्त्विकता तथा निष्ठा के ज्योतिपुंज थे। डॉ० राजेश्वर गुरु ने उनका स्मरण इन शब्दों में किया है—

'हे युग के सिद्धार्थ, बुद्ध के चिर अनुरत अनुगामी !
हे साधक निष्काम ! अयाचित परम सिद्धि के स्वामी !
हे विनीत, हे हिमगिरि-गौरव से, उत्तुंग उदार !
हे शिशु निश्छल हृदय, सिंधु से हे गंभीर अपार !'

भारतभूमि में अनेक प्रकार के स्मारक बने हैं परंतु वीरों के स्मारक सदा प्रेरणादायी होते हैं। नर्मदाप्रसाद खरे इनका स्तवन करते लिखते हैं—

'तुझ पर है यह क्या लाल-लाल ?
रण-वीरों की कुम कुम-गुलाल
हैं वीर-भेंट के कुसुम लाल
जग तुझे चढ़ा होता निहाल,
गा-गा वीरों के कीर्ति-गान।
तेरे चरणों पर चढ़े प्राण।'[१]

महात्माओं और साहित्यिकों के प्रति भी हमारे कलाकारों ने अपने श्रद्धा-कमण्डलु का जल चढ़ाया है। राजनेताओं और जन सेवकों को विस्मरण नहीं किया गया है। उन्नाव के राष्ट्रसेवी श्री विश्वम्भरदयालु त्रिपाठी को 'बराती' की नमनांजलि है—

'तुम हौ विश्म्भर दयालु औरु ऊपर ते,
जानि तहूँ यहिते का लाभु ना उठाइबे !
तुमहीं ढ़केलिकै बढैहौ आगे हमका तौ,
माटी कै खेलौना ऐस आगे वाढ़ि जाइबे।'[२]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के निधन को भवानीप्रसाद मिश्र ने कविता की मृत्यु माना—

'वैसे तो जीवन में भी—
यश, मान, कीर्त्ति, लक्ष्मी और इनके विलोम !
तुमने समान भाव से
गरल और सोम को पिया था
तुमने धरती का यह जीवन
लगभग गीतों के ढंग से जिया था !'

राष्ट्रीय आन्दोलन के अपराजेय सेनानी और हिन्दी के शीर्षस्थ राष्ट्रीय कवि स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' कहते हैं—

'गाए थे विप्लव-गान कभी, युवकों में फूंके अनल-प्राण।
स्वाधीन मातृभू हो अपनी शोषक पोषक से मिले त्राण।

---

१. 'ज्योति गंगा' —पृ० ७१।
२. 'संतरण'—पृ० ६५।

हे देश-प्रेम-प्रतिमा महान् ! हे राष्ट्र-चेतना-कवि प्रबुद्ध !
तुमने विपच्चियों को रोका हिन्दी का पथ कर अनवरुद्ध ।'[१]

हिन्दी में शोक-गीतियों की लम्बी और अबाधित पारिपाटी रही है। समूचा राष्ट्रीय काव्य शोकाश्रुओं और गीतों से आप्लावित है। हिन्दी में प्रथम बार इनका संकलन श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव ने 'प्रतिनिधि शोक गीत' नाम से किया। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू-फारसी की शोक गीतियों को स्थान दिया गया है। अंग्रेजी में इसे 'एलेजी' कहते हैं। अंग्रेजी-काव्य में श्रेष्ठ गीतों का सृजन हुआ। श्रीवास्तवजी लिखते हैं कि शोक गीत यद्यपि प्रशस्ति गीत के समान विधिवत् नहीं लिखे गए तथा साधारण-असाधारण कवि ठेठ मृत्यु पर विवश होकर, अपने करुण भाव व्यक्त करते ही रहे। बीरबल की मृत्यु पर अकबर बादशाह का सोरठा मशहूर है—

'दीन जानि सब दीन्ह, एक न दीन्हयो दुसह दुख।
सो अब हम कहं दीन्ह, कछु नहिं रख्यौ बीरबर॥'[२]

'निराला' के महाप्रयाण पर हिन्दी कविगण व्यथित और विह्वल हो गए थे। इसकी व्यंजना नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी के शब्दों में दर्शनीय है—

'वह—
जिसने 'हम जैसे हैं, वैसे ही दिखें' की
घोषणाएँ कर दी थीं,
असंख्य-असंख्य विरोधों को ठुकराता
हुँकारता हुआ चला गया !
वह—
जिसने परम्पराओं को तोड़
नई राहें निर्मित की थीं।[३]

'विराज' ने स्वातंत्र्य-वीर विनायक दामोदर सावरकर के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया है—

'तुम सेवा के व्रती नहीं थे, तुम वह राज शत्रु दीवाने,
जिसकी सदा खोज में फिरती सेनाएँ संगीनें तानें,

---

१. 'सोमसुधा'—पृ० १०२।
२. 'प्रतिनिधि शोक गीत'—पृ० ४।
३. 'चांदनी का जहर'—वह चला गया, पृ० ४७।

जिसके सिर पर राजमुकुट औ, बधिक-खड्ग दोनों मंडराते,
जिसके चरणों में झुक जाता श्रद्धा से मस्तक अनजाने ।'[१]

राष्ट्रीय निर्माण और विकास-योजनाएँ :—

दिवंगत प्रधान मंत्री नेहरू जी से लेकर उनकी आत्मजा प्रियदर्शिनी इंदिरा गांधी के प्रधान-मंत्रित्व के अधनातुन काल तक, हमारे देश में निर्माण, समृद्धि, आर्थिक विकास और नवीन तीर्थों का अभ्युदय हुआ है। भाखड़ानंगल, भिलाई आदि हमारे राष्ट्रीय तीर्थ हैं जहाँ नए भारत को ढाला जा रहा है। महेन्द्र भटनागर ने 'नया भारत' का मान चित्र उपस्थित किया है—

'संघर्षों की ज्वाला में
हँस-हँस,
नव-निर्माणों के गीत
उमंगों के तारों पर
जन-जन गाता है,
भारत अपने सपनों को
सत्य बनाता है !'[२]

आधुनिक मानव की शक्ति और उसकी गरिमा का परिचय डॉ० नगेन्द्र देते हैं—

'ओ पुरुष के गर्व !
तूने नाप डाला दो पगों से रे,
गगन निस्सीम का विस्तार !
तूने चीर डाला नोक से नख की
जलधि का गर्भ गहन अपार !'[३]

श्रीकृष्ण 'सरल' के 'राष्ट्रभारती' नामक विशाल काव्य-ग्रन्थ में नूतन भारत की धमनियाँ गतिशील हैं। व्यक्ति, समाज और देश का नव-निर्माण कठोर श्रम और सतत साधना से होता है। 'सरल' इसी श्रम पर बलिहारी हैं—

---

१. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'—'ओ तेजस्वी अग्निपुंज', १९ जून, १९६६, पृ० १४।
२. 'संतरण'–पृ० ९९।
३. 'राजधानी के कवि'—पृ० १७।

'श्रम मानवता का स्वरूप है
जीवन की परिभाषा है
श्रम की सतत साधना जग की
सबसे उज्ज्वल आशा है,
श्रम का सूरज का देख भागता, अकर्मण्यता का तम है।
श्रम की पूजा करो आज युग-देव बना पावन श्रम है।'[1]

अभी भारत का समाज प्रगतिशील है। हम अनवरत तपस्या-रत हैं। अभी लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ है। हरनारायण मिश्र कहते हैं—

'बहेंगी दूध की नदियाँ, लहर गंगा में आयेगी,
जगत् की हर मुसीबत पर, घटा सावन की छायेगी,
मन अपने आप कह देगा, उजेला हो गया भाई,
बढ़े जा नौजवां आगे, लो अपनी बात बन आई।
बढ़े जा नौजवां आगे, अभी मंजिल नहीं आई।।'[2]

निष्कर्ष :

आदि कवि वाल्मीकि से लेकर नई कविता-अकविता के रचनाकारों तक हमारे साहित्यिक, राष्ट्रीय ऐक्य और संगठन के उपासक रहे हैं। उन्होंने सदा-सर्वदा समूचे भारत अर्थात् आसेतु हिमांचल की कल्पना में ही अपने राष्ट्र का आकलन किया है। वाल्मीकि ने अपने 'रामायण' के प्रारम्भिक श्लोकों में राम के गुणों का वर्णन करते हुए, उनको जो उपमा दी है-वह न केवल विशाल एवं प्रशस्त उपमा है अपितु उन्होंने एक ही स्वर में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के दर्शन कराए। पाँच मील ऊँचा पर्वत और पाँच मील गहरा सागर, दोनों, एकदम दिखाए और श्लोक के एक ही चरण में उत्तर भारत एवं दक्षिण का समावेश कर दिया—

'समुद्र इव गाम्भीर्य, स्थैर्य च हिमवानिव।'

आदि कवि की भव्यता तथा विराटत्व को हमारी हिन्दी की नव्यतम शैली-अकविता—का कवि व्यापक आयाम एवं नयी जमीन दे रहा है। रघुवीर सहाय ने कवि संसार की घोषणा की है—

---

१. 'राष्ट्रभारती' : मुझको यह धरती प्यारी है, श्रम की पूजा करो, पृ० १९२।

२. 'अन्तर की धाराएँ—पृ० २६।

'सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन
मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे-दो-चार को छोड़-कभी,
न-भी प्यार ।'[१]

भारतीय राष्ट्रीयता तथा पाश्चात्य अथवा यूरोपीय राष्ट्रीयता में पर्याप्त अंतर है। हमारे यहाँ 'राष्ट्रीयता' ने अपने तपोवन बनाए जबकि वे 'राष्ट्रवाद' की वाटिकाओं में विचरण करते हैं। हमारे कवियों ने सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का रूप ग्रहण किया जब कि यूरोप में सामन्तवादी राष्ट्रवाद को प्रश्रय मिला। भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना में समूची प्रकृति, भारत माता, ग्रन्थ, राष्ट्र पुरुष, सद्भावनाएँ और उपलब्धियों को स्थान मिला है।

भारत में राष्ट्रीयता का स्वरूप युगानुकूल रहा। माप-दण्ड भी बदलते रहे। हिन्दी-काव्य के इतिहास में इसका स्वरूप भली-भाँति देखा और परखा जा सकता है। जब हम आज की युगीन परिस्थितियों, नूतन दृष्टि, मान्यताओं और राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में 'वीर गाथाकाल' अथवा 'रीतिकाल' की राष्ट्रीयता का मूल्यांकन करते हैं तो हमें उसमें यथार्थ तत्त्वों का बाहुल्य दिखायी नहीं पड़ता। इसके लिए अत्यावश्यक है कि सम्बन्धित् युग का अध्ययन एवं आकलन युगीन मानदण्डों से ही किया जाना चाहिए। चन्द बरदाई, जगनिक, भूषण और लाल की राष्ट्रीयता, 'एक भारतीय आत्मा', 'नवीन' या 'दिनकर' की राष्ट्रीयता से भिन्न है परन्तु विकास की शृंखलाओं तथा पूर्व उद्गमों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। चन्द बरदाई अपने युग का राष्ट्र-कवि है तो मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक युग के। संकीर्णता एवं व्यापकत्व तो काल-चेतना का अनुगामी है। जहाँ चन्द बरदाई या भूषण अपने प्रिय आराध्यदेव और राज्य की राष्ट्रीय वंदना करते हैं वहाँ आज का हमारा कवि समूचे देश और राष्ट्रीय वीरों की अभ्यर्थना करता है। हमारी राष्ट्रीय चेतना की धधकती ज्वाला को डॉ० भगीरथ मिश्र की यह वाणी मिली हैं—

'धधकी है उज्वालामुखी भारती जागे हैं,
हिमगिरि उगलेगा अब विध्वंसक ज्वालाएँ।
कैलाश अपावन करने कदम बढ़ाए जो,

---

१. 'धर्मयुग'—२४ अप्रैल, १९६६, पृष्ठ १७।

शंकर उन मुण्डों की पहनेंगे मालाएँ।
कैलाश उठाने की धुन किसे समाई है ?'[१]

हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा की भागीरथी चिरन्तन रूप से प्रवाहमय है। उसमें अनेक सरिताओं का जल मिला है और उसने अनेक सोपानों को पार किया है। उसका रूप और प्रभाव विराट् एवं दिव्य होता चला जा रहा है।

———

१. 'ज्योति'—जागरण विशेषांक, सन् १९६३, पृ० १६।



द्वितीय खण्ड

चतुर्थ अध्याय

'प्रभा' का प्रकाशन-इतिहास

खण्डवा की 'प्रभा'

अपने युग की श्रेष्ठ मासिक पत्रिका 'प्रभा' का हिन्दी-साहित्य तथा पत्रकारिता के विकास में जो महत्त्वपूर्ण योग-दान रहा है; वह ऐतिहासिक गरिमा की वस्तु है। 'प्रभा' का प्रकाशन खण्डवा तथा कानपुर से हुआ और इसके पृष्ठ में पत्रकारिता के आदर्श की पुनीत और समृद्ध परम्परा रही। सर्व प्रथम खण्डवा से यह पत्रिका दो वर्षों तक प्रकाशित होती रही।

प्रेरणा-स्रोत तथा लक्ष्य :

'प्रभा' की प्रथम किरण खण्डवा (मध्यप्रदेश) से फूटी और श्री कालूराम गंगराड़े और श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' के सम्पादन एवं सतत् अध्यवसाय से इसका आलोक चहुँ ओर परिव्याप्त हुआ। इंग्लैंड के ख्यातनामा पत्रकार महात्मा स्टेड की आदर्श पत्रकारिता से, इसे प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ। उस युग की अत्यन्त प्रभावशाली तथा आन्दोलनकारी घटना दिनांक १० अप्रैल, १९१२ ई० को घटी कि जिस दिन अपने समय के विशालतम जलयान 'टाइटनिक' ने जल-समाधि ग्रहण करके, विश्व में हलचल मचा दी। जलपोत के यात्रियों ने बालकों तथा महिलाओं को प्राण रक्षक नौकाओं में उतारकर, स्वयं वीरतापूर्वक डूबते हुए जहाज के साथ, अपने को अनन्त सागर का ग्रास बना लिया। इसी हृदय-विदारक घटना के एक पात्र के रूप में, पत्रकार-प्रवर श्री डब्ल्यू० टी० स्टेड ने अपनी सहर्ष बलि चढ़ा दी।[१] ऐसे बलिदानी तथा महान् पत्रकार की भावना को 'प्रभा' ने प्रश्रय प्रदान किया। महात्मा स्टेड ने किसी भी क्षण पत्रकारिता के ध्वज को संकुचित मनोवृत्ति या सीमित स्वार्थों अथवा निजी दम की भावना से कलंकित नहीं होने दिया।[२] अपने इष्टदेव के समान ही, 'प्रभा' के संस्थापक एवं उन्नायक 'एक भारतीय आत्मा', श्री गणेश

१—श्री ऋषि जैमिनी कोशिक 'बरुआ'—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी' पृष्ठ २७३-७४।

२—श्री ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'; पृष्ठ २७३-७४।

शंकर विद्यार्थी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि को अपने विचारों के कारण, अनेक बार कारागृह की यात्राएँ करनी पड़ी।

महात्मा स्टेड की दृढ़ता, सत्यप्रियता, आन्दोलन-वृत्ति और स्पष्टवादिता[१] के अंश 'प्रभा' की आभा में समाहित हो गए थे। अमेरिका के प्रजासत्तात्मक राज्य के प्रेसिडेण्ड मि० टेफ्ट ने कहा था कि 'यदि कोई इतिहास लेखक वर्तमान काल का इतिहास लिखने बैठेगा तो वह प्रयत्नपूर्वक अपने अनेक गुणों का आतुरता से प्रयोग करने पर भी, बार-बार मि० स्टेड का गुण गाये बिना, लिखने में समर्थ न हो सकेगा।'[२] 'प्रभा' के प्रथम अंक में सम्पादकीय का अभाव था; परन्तु उसके प्रकाशन के उद्देश्य पर 'प्रभा का प्रादुर्भाद' शीर्षक से लिखित कतिपय पंक्तियों में, स्वर्गीय स्टेड के प्रेरणा-सूत्र का प्रतिपादन हमें अवश्य ही प्राप्त होता है :

'अनेक विचारों का सामना कर आज 'प्रभा' का प्रथम अंक पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है। इससे यह अनुमान हो सकेगा कि 'प्रभा' किस रीति से सेवा किया चाहती है। स्वर्गवासी महात्मा स्टेड ने विलायत को आगे रखकर जो कुछ किया है; 'प्रभा' भी भारत को आगे रखकर उक्त महात्मा की अनुकूल कार्य-प्रणाली का महदादर्श मानचित्र अपने सामने लटकाकर कार्य किया चाहती है। वह महात्मा अविश्वासपूर्ण, स्वार्थ सम्पन्न पश्चिम के होश ठिकाने कर, उसे विश्वासी न्यासी भेदभाव रहित तथा परमार्थी होने की शिक्षा दे गया है। आशा है, हम अपने भारतीय बन्धुओं की इसी प्रकार सेवा करने की कामना को, भारतीय बन्धुओं से स्नेह भरी सहानुभूति पाकर पूर्ण कर सकेंगे।'[३]

महात्मा स्टेड पर 'प्रभा' में, उसके सम्पादक द्वारा लिखित लेख-माला के अन्तर्गत, चार निबन्ध[४] प्रकाशित हुए। इन लेखों को श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा।[५] स्वर्गीय स्टेड के द्वारा सम्पादित इंग्लैंड का प्रसिद्ध पत्र 'रिव्यू आफ रिव्यूज'

१—'प्रभा'—समाज-समीक्षा; भाग १, संख्या ३।

२—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'प्रभा', महात्मा स्टेड, ७ अप्रैल, १९१३; पृष्ठ २९।

३—'प्रभा'—प्रभा का प्रादुर्भाव; स्फुट प्रसंग, ७ अप्रैल, १९१३ ई०; पृष्ठ ५७।

४. (क) अप्रैल, १९१३—पृष्ठ २८-३१; (ख) मई, १९१३—पृष्ठ १०९—१९१३; (ग) जून, १९१३—पृष्ठ १६५-१६९; (घ) जुलाई, १९१३—पृष्ठ २१६-२१९।

५. श्री ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'; पृष्ठ २७६।

(Review of Reviews) को पत्रिका का मूलादर्श माना गया।[१] 'प्रभा' का लक्ष्य राष्ट्रभारती हिन्दी की सेवा और उसके वाङ्मय की श्रीवृद्धि रहा। उसके प्रथम अंक की एक विज्ञप्ति में इस विचार का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है :—

'जो भाषा राष्ट्रभाषा कही जाने वाली हो, उसका साहित्य कितना उच्च तथा आदर्श होना चाहिये ; इस बात का विचार हमारे हिन्दी भाषा-भाषी देश-बन्धुओं को करना चाहिये। पश्चिमीय देशों में नीति, धर्म, आत्मविद्या, विज्ञान, सुधार, चित्र विद्या, राजनीति, आदि सहस्त्रों विषयों के अलग-अलग पत्र निकलकर साहित्य के सब अंगों की पुष्टि की अनुकरणीय ही नहीं, अभिनन्दनीय चेष्टा कर रहे हैं। क्या हम भी अपनी भाषा के हेतु, प्यारी मातृभाषा के हेतु, जिसका हम जननी जन्म भूमि प्रचार किया चाहते हैं; कुछ कर रहे हैं ? नहीं, कुछ नहीं। हम स्वार्थ के सामने मातृभाषा का कुछ भी ध्यान नहीं रखते।—यदि अपने समाज की रक्षा का हमें कुछ भी ध्यान है तो हमारा काम है कि अब हम, मातृभाषा के अंगों की पुष्टि के लिये आत्म समर्पण कर दें।' 'प्रभा' इन्हीं विचारों की तथा इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति का एक साधन है।[२]

जन्म एवं प्रारम्भिक स्थिति :

सामयिक समाचार-पत्रों और भारत की वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन एवं निरीक्षण करके, स्टेड महाशय के आदर्श की परिकल्पना को हृदयंगम कर, श्री कालूराम गंगराड़े और श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने ७ अप्रैल, सन् १९१३ को 'प्रभा' का प्रथम अंक प्रकाशित किया। सम्पादक के नाम के आगे श्री कालूराम गंगराड़े का नाम प्रकाशित होता रहा। उन्हीं के ही नाम से 'डिक्लेरेशन' भी दिया गया।[३] कालूराम जी गंगराड़े विश्वासों से थियोसोफिस्ट थे और श्रीमती ऐनी बेसण्ट उन्हें बहुत मानती थी। वे साधु-चरित्र व्यक्ति थे। रात भर टाट-पट्टी पर पड़े रहकर जिस तरह वे कानून की कितावों का अध्ययन करते, उसी तरह उपनिषद् आदि ग्रन्थों का भी अध्ययन किया करते। वे जाग्रत मस्तिष्क तथा दबंग वृत्ति के व्यक्ति थे। वे हिन्दी भाषा की अत्यधिक उन्नति चाहते थे। उस समय वे 'जाति सुधार' नाम का एक पत्र भी निकाल रहे थे।[४] उस समय मासिकों की बिक्री हिन्दी क्षेत्र में नगण्य थी। मध्यप्रदेश में जो हिन्दी

---

१. 'प्रभा'—७ अप्रैल, १९१३ ; पृष्ठ ६०।

२. 'प्रभा'—भाग १, संख्या १।

३—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी', पृष्ठ २७६।

४—वही, पृष्ठ २७२-२७३।

के नाम लेवा थे; वे गरीब निर्धन, अध्यापक थे। विज्ञापनों के बटोरने में जो कष्ट होता था; वह भुक्त भोगी ही जान पाता था। चिन्तनीय स्थिति एक यह भी थी कि खण्डवा मुख्य नगरों से दूर, एक कोने में था। फिर भी गंगराड़े जी ने इस पत्रिका में अपनी निजी लागत झोंकने का दृढ़ निश्चय कर लिया।[१]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी को तीस रुपये मासिक वेतन पर सहायक-सम्पादक रूप में कार्यरत किया गया।[२] २६ सितम्बर, १९१३ ई० को चतुर्वेदी जी ने अपनी प्राथमिक शाला की अध्यापकीय वृत्ति से त्याग-पत्र देकर, अपने आपको, पूर्ण रूप से, इसी कृत्य में संलग्न कर दिया।[३] उन दिनों खोज-तलाशी होती थी कि 'प्रभा' का सच्चा सम्पादक कौन है? 'प्रभा' का सम्पादन करते हुए ही चतुर्वेदी जी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री कृष्णकांत मालवीय आदि के आकर्षण के केन्द्र-बिन्दु बने।[४] 'प्रभा' में यद्यपि नाम तो गंगराड़े जी का छपता था; परन्तु समस्त कार्य माखनलाल जी को करना पड़ता था। इस पत्रिका की मूलात्मा 'एक भारतीय आत्मा' ही थे। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने भी लिखा है कि मुझे मालूम हो चुका था कि 'प्रभा' पर नाम तो छपता है श्री कालूराम गंगराड़े का, पर असली सम्पादक हैं कोई माखनलाल चतुर्वेदी महाशय जो इतने झेंपू तबियत के वाके हुए हैं कि 'प्रभा' पर अपना नाम न छपवाकर दूसरे का छपवाते हैं।[५] कानपुर से 'प्रभा' के पुर्नप्रकाशन के समय, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने लिखा था कि 'हम अनुभव करते हैं कि जो स्वच्छ और पवित्र परिस्थिति 'प्रभा' के तत्कालीन प्रधान संचालक श्रीयुत माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी मनस्विता और उच्चाशयता से निर्माण की थी, 'प्रभा' को उस कोटि में स्थिर रखना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है।[६] चतुर्वेदी जी के परिश्रम के कारण प्रथम वर्ष से ही 'प्रभा' को उच्च कोटि के लेखकों का सहयोग प्राप्त होने लगा; परन्तु समूचे वर्ष किसी भी रचना के साथ उनका नाम कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वे तो श्री गोपाल, भारत संतान, कुछ नहीं, भारतीय, सुधार प्रिय, पशुपति, नीति प्रेमी, एक विद्यार्थी, एक निर्धन विद्यार्थी, एक भारतीय प्रजा, एक

१—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी', पृष्ठ २७५-२७६।

२—वही, पृष्ठ २७५।

३—वही, पृष्ठ २७६।

४—श्री मोहनलाल भट्ट—'राष्ट्र भारती', अप्रैल, १९६१; पृष्ठ १८४।

५—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'चिन्तन', मेरी अपनी बात, 'नवीन' स्मृति अंक, पृष्ठ १०७।

६ 'प्रभा' कार्य क्षेत्र में पदार्पण, जनवरी, १९२०; पृष्ठ ५४।

नवयुवक, तरुण भारत, प्रांतीय वाणी, एक उच्च शिक्षित, एक भारतवासी, श्रीयुत् नवनीत, श्री विश्व व्याप्त, श्री चंचरीक, श्री शंकर और 'एक भारतीय आत्मा' जैसे चित्र-विचित्र नामों से ही लिखते रहे। श्री बरुआ ने लिखा है कि पुलिस का हौल इस मध्य-प्रदेश के लोगों पर कम नहीं था। सरकार ने पत्र निकालने की सरल सुविधाएँ अवश्य दे रखी थीं; पर लेखक को स्वतंत्र-चेता लेखक बनने की सुविधाओं पर उसका शिकंजा कस रखा था।[१] श्री गणेशशंकर विद्यार्थी और श्री माधवराव सप्रे ने भी 'श्रीयुत सत्येन्द्र', 'श्री आदित्य', 'त्रिमूर्त्ति' और 'माधवदास रामदासी' के छद्म एवं कृत्रिम नामों से, 'प्रभा' में लिखा था।[२] 'प्रभा' के सम्पादकीय[३] श्री माखनलाल जी ने लिखे।[४] 'प्रभा' के छः अंक निकल जाने के पश्चात् जहाँ चतुर्वेदीजी को पूर्ण वृत्ति प्राप्त हुई; वहाँ सोलह अंकों के प्रकाशन के तद्नन्तर, 'प्रभा' के प्रकाशन के 'द्वितीय वर्ष' में, उसके श्रावण-भाद्र पद, सं० १९७२ के अंक से सम्पादक के नाम के आगे श्री कालूराम गंगराड़े, बी० ए०, एल्० एल्० बी० के साथ श्री माखनलाल चतुर्वेदी के नाम का प्रकाशनारम्भ हुआ।[५] 'एक भारतीय आत्मा' को अपनी पत्नी श्रीमती ग्यारसी बाई की आहुति भी 'प्रभा' की पत्रकारिता के यज्ञ में चढ़ानी पड़ी।[६] श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने लिखा है कि 'राजनीति के क्षेत्र में इन्होंने हिस्सा लिया, न केवल 'प्रभा' और 'कर्मवीर' का संचालन और संपादन करके, न केवल देश की जवानी को विद्रोह और बलिदान के पथ पर अग्रसर करने वाली रचनाएँ लिखकर बल्कि पहले हिंसावादी क्रांतिकारी दल के नियमित रूप से दीक्षित सदस्य के रूप में तथा बाद में गांधी जी के अनुयायी सत्याग्रही बनकर।'[७]

अन्य सज्जनों में श्री माणिकचन्द्र जैन, श्री माधवराव सप्रे, महात्मा मुंशीराम और रायबहादुर पं० विष्णुदत्त शुक्ल आदि उस युग के ख्याति-लब्ध लोक-नायकों

१—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'-पृष्ठ २७७-२७८।
२—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'—पृष्ठ २७७-२७८।
३—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'अमीर इरादे : गरीब इरादे'; (क) कहन : १९१३ में, पृष्ठ ११०-११२; (ख) 'प्रभा' में प्रकाशित : १९१५, पृष्ठ ११३-११६।
४—वही, पृष्ठ २७८।
५—'प्रभा'—श्रावण-भाद्र-पद, सं० १९७२; भाग २, संख्या ५-६; मुख पृष्ठ।
६—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी',—पृष्ठ २९३।
७—श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'—'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : माखनलाल चतुर्वेदी;' परिचय, पृष्ठ १७।

ने 'प्रभा' को अतिशय सहयोग प्रदान किया। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने सप्रेजी के विषय में कहा है कि वे हिन्दी भाषियों को बलवान बनाने के सबसे बलवान वृत्ति-साधक थे। सोते जागते वे हिन्दी भाषा और हिन्दी भाषी को देश में महान् बनाना चाहते थे।[१]

साहित्यिक सेवा :

'प्रभा' के आवरण-पृष्ठ पर, वन्य-भूमि में नीचे उतरते हुए, अपने रथ में विराजमान वीणा पाणि का रंगीन चित्र था और उसमें एक व्यक्ति अपनी पर्ण कुटीर से बाहर निकलकर, सादर स्वागत एवं अभिवादन करता हुआ दृष्टिगोचर होता था।[२] यह चित्ताकर्षक मुख-चित्र 'प्रभा' के अनेक अंकों में छपता रहा और कार्तिक सं० १९७२ के अक से परिवर्तित हुआ। नूतन मुख-चित्र में, भारत के मान-चित्र में संभय स्थित गरिमामयी भारत-माता के प्रति बालक-गण उन्मुख होते दृष्टिगत होते और देवता-गण पुष्प वृष्टि कर रहे थे।[३] 'प्रभा' के मुख-चित्र पर लिखा रहता था :—

'उठो भाइयों ! नींद को छोड़ दो।
जगो, जाल आलस्य का तोड़ दो।
मिटे सर्वदा को अविद्या-निशा ।
प्रभा पूर्ण हो जाय प्राची-दिशा।'[४]

उपरिलिखित पंक्तियाँ श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'सुप्रभात' की थीं।[५] चित्र के निम्न भाग में संस्कृत में श्रीमद्भगवतगीता की अधोलिखितपंक्ति थी :—

'या विद्या सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।'[६]

साथ ही गुप्तजी की ये पंक्तियाँ भी थीं :—

'देखो, अनन्त पट में यह चित्र आओ,
उद्ग्रीव होकर पुनः सिर को झुकाओ ।
पुण्य प्रभा हृदय में यह खींच लाओ,
है मार्ग दर्शक, इसे मत भूल जाओ।'[७]

१—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'—पृष्ठ २८३।

२—'प्रभा'—७ अप्रैल, १९१३, प्रथम भाग, संख्या १, मुख पृष्ठ।

३—'प्रभा'—कार्तिक, सं० १९७२, द्वितीय भाग, संख्या ८, मुख-पृष्ठ।

४—'प्रभा'—७ अप्रैल, १९१३; मुख-पृष्ठ।

५—'प्रभा'—७ अप्रैल, १९१३, 'सुप्रभात', पृष्ठ १।

६—वही, मुख-चित्र ।

७—'प्रभा'—७ अप्रैल, १९१३।

'प्रभा' के मुख्य चित्रकार श्री गणेशराम मिश्र थे। उसके चित्र कलकत्ता, पूना अथवा बम्बई में छपते थे। 'प्रभा' के प्रथम वर्ष में जहाँ ३६ चित्र प्रकाशित हुए; वहाँ द्वितीय वर्ष में ३४ छाया-चित्र छपे। पत्रिका को श्री शंकर नरहरि जोशी, चित्र-शाला स्टीम प्रेस, पूना से मुद्रित करते थे और श्री कालूराम गंगराड़े, वकील, 'प्रभा' कार्यालय, खण्डवा से प्रकाशित करते थे। द्वितीय वर्ष से, 'प्रभा' को श्री गणेशशंकर विद्यार्थी अपने प्रताप प्रेस, कानपुर से छापने लगे। 'प्रभा' का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था और एक प्रति की कीमत पाँच आने निर्धारित थी। इस समय इसका आकार १०×६½ था।[१] 'प्रभा' के प्रथम वर्ष में ५२ कविताएँ प्रकाशित हुईं और ८२ अन्य रचनाएँ छपीं। कविताओं में तेरह सचित्र थीं। द्वितीय वर्ष में ४३ कविताएँ और ६३ लेख प्रकाशित हुए। विविध विचार, धर्म-तत्व, नीति-तत्त्व, समाज-समीक्षा, सुधार-विचार, विश्व की गति, समालोचना, स्फुट प्रसंग, पुस्तक-परिचय आदि इसके विविध स्तम्भ थे। पत्रिका में लेख, कहानी, कविता, चित्रादि सभी प्रकाशित होते थे। 'प्रभा' के प्रधान कवियों में श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, भीकाजी बिल्लोरे, सैयद अमीर अली 'मीर', श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र, गिरिधर शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', कामताप्रसाद गुरु, रूपनारायण पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त, रामदहिन मिश्र; हेमचन्द्र जोशी, मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट, गोकुलचन्द्र शर्मा, भगवान्नारायण भार्गव, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' आदि के नामों की गणना की जा सकती है। 'प्रभा' के ये ही लेखक आगे जाकर हिन्दी भाषा व साहित्य की श्रीवृद्धि के समर्थ उन्नायक हुए। इनमें से बहुत से ऐसे भी हैं जिनकी प्रथम रचनाएँ 'प्रभा' में ही प्रकाशित हुई।[२]

मध्यप्रदेश की 'सरस्वती':

डॉ० उदयभानुसिंह ने 'प्रभा' पर 'सरस्वती' का गहन प्रभाव निरूपित किया है। उनके मतानुसार, उस युग की प्रधान पत्रिकाओं 'भारतेन्दु', 'छत्तीसगढ़ मित्र', 'इन्दु', 'समालोचक', 'रसिक रहस्य', 'रसिक वाटिका', 'लक्ष्मी' आदि के विविध आकारों के रहते

१—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी-'समाचार पत्रों का इतिहास', पृष्ठ २७४।
२—'राष्ट्र भारती'—'प्रभा': एक भूतपूर्व मासिक; अप्रैल, १९६१; पृष्ठ १८६।

हुए भी 'मर्यादा', 'प्रभा', 'चाँद', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं ने 'सरस्वती' के ही आकार को अपनाया। 'प्रभा' को सम्पादकीय टिप्पणियाँ, 'संसार प्रगति' और 'विचार प्रवाह' 'सरस्वती' के 'विविध विषय' के ही विविध रूप हैं। उसका 'सामयिक साहित्यावलोकन' 'सरस्वती' का 'पुस्तक परिचय' ही है। उसके अधिकांश लेखक भी 'सरस्वती' के ही शिष्य हैं।[१]

सामान्यत: 'प्रभा' को मध्यप्रदेश की 'सरस्वती' कहा जाने लगा था; परन्तु दोनों की रीति-नीति आदि में प्रभूत अंतर भी था। 'प्रभा' में स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति को भी, कानपुर प्रकाशन की कालावधि में, स्थान प्राप्त होने लगा था जिसका 'सरस्वती' में अभाव रहा। देश-भक्ति और राष्ट्रीयता को जितना महत्त्वपूर्ण तथा गौरवपूर्ण स्थान 'प्रभा' में प्राप्त हुआ; वह 'सरस्वती' के लिए दुर्लभ वस्तु थी। 'सरस्वती' ने अपनी सामयिक शासन-भक्ति के प्रदर्शनार्थ सन् १९११ के राज-दरबार के अवसर पर, एक विशेषांक प्रकाशित किया था। सन् १९२० में आचार्य द्विवेदीजी श्री मैथिलीशरण गुप्त की दक्षिण आफ्रिका विषयक कविता 'सरस्वती' में इसीलिए ही प्रकाशित नहीं कर पाये थे; जिसे बाद में गणेश जी ने प्रकाशित की।[२] 'सरस्वती' मूलत: साहित्यिक पत्रिका थी। 'प्रभा' को हम राष्ट्रीय सांस्कृतिक पत्रिका कह सकते हैं। उसे राजनैतिक पत्रिका भी माना गया है।[३] 'प्रभा' में अपने युग के राष्ट्रीय जीवन का तीव्र स्पन्दन प्राप्त होता है और उसमें जीवन व जागरण की गगनभेदी दुन्दुभि बजती थी। सामयिक जीवन तथा साहित्यिक ही नहीं; अपितु सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक शक्तियों के संवर्द्धन तथा विकास में भी वह उतनी ही दृढ़ता से सचेष्ट व सक्रिय थी। श्री बरुआ ने लिखा है कि 'सरस्वती' तथा 'प्रभा' ये दोनों हिन्दी मासिक ('मर्यादा' और 'लक्ष्मी' आदि हिन्दी मासिकों की बात यहाँ रहने दें) अपने युग के दो पूरक दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'सरस्वती' के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी विशुद्ध साहित्यिक व शिक्षा धारित, जन हिताय संस्कृति पर लगे अंकुशों से पाट मार्ग को प्रशस्त करने में लगे थे। 'प्रभा' के माध्यम से माखनलाल जी इस राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना की घायल सांसों का पोषण करने में लगे थे; जो मरण-विनाश से घिरी अबोली और बावरी सी बनी हुई थी।

१—डॉ० उदयभानुसिंह—'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग;' सरस्वती, सम्पादन, सातवाँ अध्याय, पृष्ठ १८५।

२—श्री मैथिलीशरण गुप्त—'सुधा', गणेशजी, नवम्बर, १९३१; पृष्ठ ४४७।

३—डॉ० रामरतन भटनागर—'The Rise and Growth of Hindi Journalism,' page 374

'सरस्वती' अध्ययनशील साहित्य की प्रेरक थी, 'प्रभा' राजनीतिक आन्दोलन के क्षणों से प्रेरक वाणी का शंख बजाने में विश्वास करती थी।[१]

'सरस्वती' के दधीचि और अपने युगीन साहित्य के वशिष्ठ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी सद्भावना 'प्रभा' के पक्ष में अभिव्यक्त की। 'प्रभा' के प्रारम्भिक चार अंकों के प्रकाशनोपरांत, सन् १९१३ में 'सरस्वती' में 'प्रभा' की समालोचना करते हुए, द्विवेदी जी ने लिखा था कि "खुशी की बात है कि हिन्दी में एक और सचित्र मासिक पत्रिका का प्रादुर्भाव हुआ है। लेख सभी उत्तम हैं। पत्रिका के रूप रंग और लेखावली को सुन्दर और उपयोगी बनाने में इसके संचालकों ने यथा-शक्ति कोई बात उठा नहीं रखी। इसे हिन्दी प्रेमियों को अवश्य आश्रय देना चाहिए। महात्मा स्टेड के आदर्श को लेकर इसके सम्पादक ने जो उद्देश्य सामने रखा है, उसे देखते हुए यह 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' है। परमेश्वर गंगराड़े महाशय को इस आदर्श को कार्य में परिणत कर दिखाने की शक्ति दें।"[२] युग-पुरुष की इस प्रशंसा के सन्दर्भ में, मध्यप्रदेश की शासकीय नीति की रिपोर्ट में सरकार ने भी अपने प्रान्त के पत्रों पर एक सरसरी दृष्टि डालते हुए, प्रधान पत्रों में 'प्रभा' का उल्लेख करते हुए लिखा कि इसी वर्ष एक अन्य समाचार पत्र 'प्रभा' नाम से शुरू हुआ है, जो खण्डवा से हिन्दी में सचित्र मैगजीन के रूप में निकलता है। यह एक उच्च स्तरीय पत्रिका है और मुद्रण तथा अन्य व्यवस्थाओं की दृष्टि से यह प्रयास स्तुत्य है।[३]

पाठ्य-सामग्री :

'प्रभा' के प्रत्येक अंक में साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त, अर्थशास्त्र, राजनीति और आध्यात्मिक विषयों पर कुछ न कुछ सामग्री अवश्य ही प्रकाशित होती थी। आज भी उस युग की मनीषा और रसोद्दीप्ति का सहज बोध 'प्रभा' की संचिकाओं से किया जा सकता है। रचनात्मक साहित्य का प्रकाशन, अन्तर्प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का अनूदित प्रकाशन, साहित्यिक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन, अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय साहित्यिक विभूतियों का परिचय-ज्ञापन तथा पुस्तक-समीक्षा आदि के द्वारा जहाँ 'प्रभा' मौलिक साहित्य-चेतना का सम्वर्धन करती रही; वहाँ समयानुसार उपयोगी सम्पादकीय टिप्पणियों के द्वारा साहित्यिक गतिविधियों का नियमन भी करती रही। 'प्रभा' के सम्पादकीय में मध्यप्रदेशीय राष्ट्रभाषा के क्षितिज के दर्शन हमें मिलते हैं; जो कि प्रथम बार राष्ट्रीय स्तर पर सर्व दृष्टिगत हुआ। इन सम्पादकीय टिप्पणियों

१—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'—पृष्ठ ३१०।
२—'सरस्वती', जुलाई, १९१३ ई०।
३—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी'—पृष्ठ २७९।

से तत्कालीन सामाजिक और साहित्यिक मान्यताओं पर जितना अधिक प्रकाश पड़ता है; उतनी मात्रा में राजनैतिक मान्यताओं पर नहीं। बालविवाह, बेमेलविवाह, दहेज-प्रथा, ब्रह्मचर्य, स्त्री-शिक्षा, सामान्य शिक्षा, धर्म-पाखण्ड, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि विषयों की चर्चा सम्पादकीय लेखों में मिलती है। इन समस्त तथ्यों के आधार पर, अपने युग की आदर्शवादी, मर्यादावादी और साहित्यिक प्रवृत्तियों का सम्यक् प्रतिनिधित्व, 'प्रभा' ने सही अर्थों में किया। 'प्रभा' पत्रिका के प्रति, खण्डवा की 'प्रभा' के प्रमुख कवि श्री 'मीर' ने अपनी शुभ कामनाएँ प्रगट की :—

'कुछ न होता विश्व में तुझ बिन प्रभा !
तम यहाँ रहता सघन निशि दिन प्रभा !
'मीर' विनयी, कर दया सतम प्रभा !
शिशु 'प्रभा' की हो सुखद-उत्तम प्रभा !'[१]

आपत्ति तथा समाप्ति :

हिन्दी का मासिक पत्र भी 'छुई-मुई' का पौधा होता है। उसे तो सर-आँखों पर लेने की आवश्यकता प्रतीत होती है। 'प्रभा' के प्रकाशन के लिए अनवरत अध्यवसाय तथा साधना की गयी। 'प्रभा' यों कहने के लिए तो समूचे राष्ट्र के हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए प्रकाशित हुई थी; परन्तु उसमें अकेले मध्य प्रदेश के हिन्दी भाषियों में बैठकर दीर्घ जीवन की फल-प्राप्ति की सम्भावना एक और कारण से संभव नहीं हो पा रही थी। कोई भी सशक्त हिन्दी मुद्रणालय आस-पास ऐसा नहीं था, जो अपना सर्वाधिक सहयोग इस पत्रिका को अर्पित कर देता। पूना सदृश्य दूरस्थ नगर से मुद्रित होकर आने के कारण, प्रति मास प्रकाशन में कुछ न कुछ विलम्ब हो ही जाया करता था। पत्रिका के संस्थापक निजी प्रेस के लिए चिन्तित तथा व्याकुल रहने लगे। द्रव्याभाव भी होने लगा। प्रथम वर्ष के अंतिम अंक में यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया गया कि 'प्रभा' अब आगामी वर्ष पुरस्कार द्वारा लेखकों की सेवा करने में बिल्कुल असमर्थ है। वह दरिद्रा है।[२] परिणामस्वरूप प्रथम वर्ष (अप्रैल, १९१३ ई० से लेकर फरवरी, सन् १९१४ तक) के बारह अंकों को प्रकाशित कर, कुछ समय के लिए, 'प्रभा' के यान में गतिरोध आ गया। प्रथम भाग के अंतिम अंक में सूचित किया गया कि 'प्रभा' के मैनेजर ने हमें एक सूचना दी है; जिसमें उन्होंने चार-पाँच मास का अवकाश, 'प्रभा' के स्थायी प्रबन्ध के लिए, चाहा है। इसी समय में वे प्रभा को बिल्कुल

१—'प्रभा'–विजय-कामना, छंद ५, मार्च, १९१५ ई०, भाग २, संख्या १, पृष्ठ ९।

२—'प्रभा'—स्फुट प्रसंग, फरवरी, १९१४; पृष्ठ ६९०।

नियमित और सुन्दर बनाने की चेष्टा करेंगे और प्रेस का भी प्रबन्ध करेंगे।[१]

गंगराड़े जी ने अपनी आय के एक बड़े अंश को, इस मासिक में खपा दिया था; परन्तु, फिर भी वे इसे जीवित रखना चाहते थे। अन्ततोगत्वा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सहयोग और पूर्ण प्रयास के फलस्वरूप, हिन्दी की तरुणाई की ज्योति 'प्रभा' पुनः प्रकाशित होने लगी। 'प्रभा' के द्वितीय वर्ष का प्रथम अंक मार्च, १९१५ में प्रकाशित हुआ। द्वितीय भाग के प्रथम अंक की सम्पादकीय 'कर्मपथ में पदारोपण' में 'श्री गोपाल' के उप-नाम से श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने, इस सशक्त वक्तव्य में, रेवा की सहस्त्र-धारा के वेग को मानो उड़ेल दिया :—

'निश्चित प्रणाली के अनुसार 'प्रभा' जिस तराजू पर श्रद्धा से पवित्र वस्तु को तौलेगी; ठीक उसी तरह तराजू पर, उसी श्रद्धा से 'महा अपवित्र वस्तु' को भी तौलना वह अपना धर्म समझेगी। × × × धर्म हमारे पथ की पूज्य और पवित्र वस्तु होंगी, परन्तु, इस मार्ग में हम किसी के माने नियमों के गुलाम न होंगे।'[२] इसी टिप्पणी में आगे कहा गया कि 'हम कमजोरियों के शत्रु होंगे पर कमजोर हमारे होंगे और हम उनके। × × × हमारी बहिनों और माताओं पर होने वाले अत्याचारों पर हमारा लक्ष्य होगा, पर साथ ही हम अनेक भाषा, भाव, वेश, भोजन, शिक्षा और दीक्षा में भारतीयता की रक्षा करने वाली देवियों के रूप के उपासक होंगे। हमें उनकी पवित्रता की रक्षा का उतना ही स्मरण रहेगा, जितना अपने कर्त्तव्य की रक्षा का। शिक्षा में हमारे विचार जातीय होंगे और उन पर आन्दोलन करना पवित्र कर्त्तव्य का एक अंश होगा। हम जागृति चाहते हैं। इसी के लिए, हम समाज के अंगों में उथल-पुथल मचावेंगे। परन्तु जीती-जागती जागृति के साथ ही, पवित्र शांति के हम प्रचारक होंगे।'[३]

सम्पादन-अनुभव, परिचय-क्षेत्र के विस्तार व परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण, 'प्रभा' के प्रथम वर्ष और द्वितीय वर्ष के अंकों में यथेष्ट अन्तर आ गया। सम्पादन कार्य प्रौढ़ता प्राप्त कर गया। लेखों की भाषा-शैली व्याकरण सम्मत, परिमार्जित तथा उद्गारानुरूप हो गयी। साज-सज्जा तथा बाह्य कलेवर में भी परिवर्तन, भली भाँति, दृष्टिगत होने लगा। श्री माखनलाल चतुर्वेदी को ही अंक भरने का सतत श्रम करना पड़ा। द्वितीय वर्ष में हिन्दी के आन्दोलन को अग्रसर करने, तरुणाई में नूतन आशा-विश्वास फूंकने और विदेशों के सन्तों की जन हिताय जीवनी का आदर्श

१—'प्रभा'—स्फुट प्रसंग, पृष्ठ ६८९।

२— 'प्रभा'—कर्मपथ में पदारोपण, मार्च, १९१५, द्वितीय भाग, संख्या १, पृष्ठ २।

३—वही, पृष्ठ ३।

प्रस्तुत करने के लिए विशेष प्रयत्न किया गया।

'प्रभा' के द्वितीय वर्ष (चैत्र सं० १९७२ विक्रमीय से फाल्गुन, १९७२ विक्रमीय तक) के बारह अंक निकलने के पश्चात्, 'प्रभा' का रथ पुनः दीर्घावधि के लिए निष्क्रिय पड़ा रह गया। उन दिनों मासिक पत्रों की बिक्री नगण्य थी; एतदर्थ, दो वर्षों का घाटा असह्य हो उठा। पूर्व रूप में ही, द्वितीय वर्ष के संयुक्तांक से इसके लक्षण प्रकट होने लगे थे। हिन्दी मासिक जब लड़खड़ाने लगता है; तो अंक रूपी डग भी अस्थिर हो जाते हैं; और संयुक्तांक का रूप ग्रहण कर लेते हैं। संख्या ५-६ (श्रावण-भाद्र पद, सं० १९७२) और ९-१० (अगहन-पौष सं० १९७२) संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुए। 'प्रभा' के द्वितीय वर्ष के अन्तिम अंक में यह विज्ञप्ति 'प्रभा' संचालक की ओर से प्रकाशित हुई :—

'प्रथम वर्ष जिस प्रकार कार्य हुआ था—यद्यपि उससे 'प्रभा' को गहरी हानि के बीच दब जाना पड़ा और अभी तक उस हानि का बोझ दुखदायक हो रहा है। × × परन्तु, तो भी कार्य कुछ ठीक-ठीक होता रहता, यदि योरप का महायुद्ध अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके छपाई के काम को अधिक महंगा न बना देता। युद्ध के कारण हमारे दबे हुए हाथ और भी दब गए और हमारे मार्ग में कुछ नयी कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं।[1] 'प्रभा' संचालक की ओर से इस 'विज्ञप्ति' में यह आश्वासन दिया गया कि 'प्रभा' के तीसरे वर्ष का पहिला अंक विजय-दशमी सं० १९७३ पर निकल सकेगा। हमें आशा है कि पाठक हमारे इस तीन मास के अवकाश से अप्रसन्न न होंगे।[2] परन्तु, 'प्रभा' की विजय-दशमी तीन मास तो क्या तीन वर्ष तक भी नहीं आयी। 'प्रभा' के प्रकाशन की परम्परा में नूतन अध्याय और आधार उस समय जुड़ा, जब उसको गणेश जी ने अपने सम्पादकत्व में, प्रताप प्रेस, कानपुर से सन् १९२० में पुनः आरम्भ किया। खण्डवा के दो वर्ष (अप्रैल, १९१३ से फरवरी, १९१४ ई० और मार्च, १९१५ से फरवरी, १९१६ ई०) के प्रकाशन-काल में इसकी मूल भित्ति का निर्माण हुआ और जीवन के विविध पक्षों की रेखाएँ उभर कर आयी। मध्य-प्रदेश का मानस इस पत्रिका का मानसरोवर बन गया। श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि पत्रिका के कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी थे। पत्रिका बहुत सज-धज से निकलती थी।

१—'प्रभा'—पाठकों से निवेदन, पृष्ठ ६३६; फाल्गुन, १९७२, वर्ष २, संख्या १२; पृष्ठ ६३६।

२—वही, पृष्ठ ६३७।

लेखक हिन्दी के गण्यमान लेखकों की श्रेणी के ही होते थे।[१] 'प्रभा' का सन् १९१७ तक जारी रहना और कानपुर से उसके सन् १९१९ में पुनर्प्रकाशन की बात, सम्पादकाचार्य श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने लिखी है;[२] सो उचित नहीं है।

लगभग चार वर्ष की निष्क्रियता के आलस्य आवरण के पश्चात् 'प्रभा' के नूतन जन्म लेने पर, हिन्दी साहित्य को नवीन धारा प्राप्त हुई।

कानपुर की 'प्रभा'

जन्म तथा नीति :

कानपुर की 'प्रभा' का प्रथम अंक १ जनवरी, १९२० ई० को प्रकाशित हुआ; न कि सन् १९१७ से, जैसा कि श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी[३] ने लिखा है। प्रथम वर्ष के प्रथम अंक में, 'कार्य क्षेत्र में पदार्पण' शीर्षक से जो सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई; उसमें पत्रिका के लक्ष्य तथा कृत्यों पर गम्भीरता पूर्वक प्रकाश डाला गया :—

'गहरे विश्राम के पश्चात्, 'प्रभा' आज फिर कार्य क्षेत्र में पदार्पण करती है। उसका पहला वातावरण अत्यन्त उच्च और सात्त्विक था। × × इस देश को ज्ञान की ऐसी ज्योति-शिखा की परम आवश्यकता है जो नाविक को घटनाओं की घटाओं से आच्छादित मार्गों के ढूंढ़ने में सहारा दे, उसे उसकी दिशाओं की सूचना दे, आसपास के कगारों की ऊंचाई, निचाई, भयंकरता और सोमता का पता दे, आस-पास वालों की घातों और प्रतिघातों का ज्ञान दे और अंत में, दे उसे पार करने के लिए, प्रौढ़ मत, शुद्ध संकल्प और अदम्य साहस। 'प्रभा' इस क्षेत्र में कुछ कार्य करेगी। उसका प्रयत्न होगा कि वह पाठकों को घर और बाहर के अनुकूल और प्रतिकूल सामयिक संघर्षणों का परिचय दे; उन्हें अपना मत स्थिर करने में सहायता दे और इस प्रकार उन्हें देश के कल्याण के लिए अग्रसर होने का निमन्त्रण दे।[४]

कानपुर की 'प्रभा' के मूलाधार तथा प्रेरणा स्रोत गणेशशंकर विद्यार्थी ही रहे। इसलिए हम देखते हैं कि पत्रिका में राजनीतिक तत्त्व और देश-भक्ति का प्राधान्य होने लगा। अत्याचारों का डटकर विरोध किया गया। न्याय व राष्ट्रीय तत्वों को पूर्ण

१—श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव—'शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ', हिन्दी मासिक पत्र-पत्रिकाएँ, पृष्ठ ११५।

२—श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी—'समाचार पत्रों का इतिहास,' पृष्ठ २७४।

३—श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृष्ठ १९५।

४—'प्रभा' सम्पादकीय टिप्पणियाँ, कर्म क्षेत्र में पदार्पण, जनवरी, १९२०,। प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, संख्या १, पृष्ठ ५५,

प्रश्रय प्रदान किया गया। श्री देवदत्त ने लिखा था कि 'प्रताप' और 'प्रभा' की नीति सर्वथा एक ही है।[१] देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों में काफी अन्तर आ गया था। जनता-जनार्दन में नव ज्वार व स्फूर्ति की भावना परिव्याप्त हो गयी थी। स्वाधीनता की माँग निखरती-उभरती आ रही थी! काव्य में भी स्वच्छन्दतावादी भावनाएँ अपने मुक्त नीड़-निर्माण में रत थीं। इन सब स्थितियों तथा वातायन का प्रभाव 'प्रभा' पर पड़ा। गणेश जी जैसे महान् राष्ट्र भक्त और सेवाव्रती व्यक्ति के कर-कमलों में पहुँच कर 'प्रभा' द्विगुणित आभामय हो गयी। गणेश जी के व्यक्तित्व को कवियों की वाणी भी विश्रुत बना गयी है। श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने उनका अभिनंदन इन पंक्तियों के द्वारा किया था :—

'कानपुर के हरि दिवाकर कीर्त्तिकमल के,
प्रमुख प्रकाशक प्रिय प्रताप पावन परिमल के,
नवयुवकों के प्राण, त्राण त्रय आत्मिक बल के,
पोषक परम प्रवीण सुखद श्रमजीवी दल के
मित्र महादुखियान के, राष्ट्रीय रथ के रथी,
मार्ग प्रदर्शक देश के, जय जय श्री विद्यार्थी।।'[२]

सम्पादन तथा प्रकाशन :

गणेशजी के अतिरिक्त, पं० शिवनारायण मिश्र, पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि महानुभाव 'प्रभा' के प्रमुख उन्नायक रहे। 'नवीन' जी को 'प्रभा के सहारे' माना गया था।[३] माखनलाल जी[४] की स्मृति को बनाये रखने के

१—'प्रभा'—सम्पादकीय टिप्पणियाँ, सितम्बर, १९२०, पृष्ठ १९०।

२—लक्ष्मी नारायण दुबे— 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा: झंडा ऊँचा रहे हमारा' के अमर सृष्टा श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद', २४ सितम्बर, १९६१; पृष्ठ २७।

३—'प्रभा'—सम्पादकीय टिप्पणियाँ, जनवरी १९२२; पृष्ठ ७८।

४—'पहले खण्डवा से 'प्रभा' को प्रकाशित करके वे अनुभव कर चुके थे कि वे कुछ कर सकते हैं और उन्हें बेचैनी थी कि मेरे सोये हुए प्रदेश को जगाने के लिए मैं कुछ अवश्य करूँ।'—ठाकुर लक्ष्मण सिंह, भारतीय आत्मा पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी, 'श्री शारदा', २ अक्तूबर, १९२१, वर्ष २, खण्ड २, संख्या १, पूर्ण संख्या १९; पृष्ठ ४२।

है;[१] और पालीवाल जी को कार्य-निरत रखने के लिए[२] ही गणेश जी ने 'प्रभा' का पुनर्प्रकाशन किया था।

श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री देवदत्त (या देवव्रत) शर्मा बी० ए० ने 'प्रभा' का सम्पादन जनवरी, १९२० से जून १९२१ तक किया। श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है कि 'जब मैं मुस्लिम कालेज अलीगढ़ में एम० ए०, एल० एल० बी० पढ़ने गया; तभी गणेश जी ने मुझे 'प्रताप' में जोतने के लिये 'प्रभा' का प्रकाशन शुरू कर दिया जिसे मैं देवदूत बी० ए० के नाम से सम्पादन करता रहा।'[३] इस प्रकार पालीवाल जी सहायक सम्पादक के रूप में 'प्रभा' में प्रारम्भ से कार्य करने लगे थे[४] और जुलाई, १९२१ ई० से वे सम्पादक बन गए। जून, १९२३ ई० तक श्री श्रीकृष्ण-दत्त पालीवाल एम० ए० का नाम सम्पादक के रूप में प्रकाशित होता रहा। इस कालावधि में गणेश जी, 'नवीन' जी और 'एक भारतीय आत्मा' माँ के उद्धार के लिए

१—(क) 'सन् १९१७ में प्रसिद्ध राजनीतिक नेता, कानपुर के सुप्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' के यशस्वी और तेजस्वी सम्पादक श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी इन्हें 'प्रताप' के सम्पादन के लिए कानपुर ले गए। कुछ समय पश्चात् ये ऐसे बीमार हुए कि इनकी जान खतरे में पड़ गयी। तब इन्दौर के डॉ० सरयूप्रसाद इन्हें इन्दौर ले आए। "श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने यह आशका करके कि कहीं सचमुच यह सदा के लिए आँखें न मूंद ले, इनकी स्मृति को जीवित रखने के लिए दो काम किए—एक तो इनके 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक का प्रकाशन और दूसरा 'प्रभा' पत्रिका का फिर से प्रकाशन।'—
श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : माखनलाल चतुर्वेदी', परिचय, पृष्ठ १२।
(ख) 'इस बीच मेरे बीमारी से उठते, 'प्रभा' का प्रथम अंक भी कान-पुर से नए सिरे से प्रकाशित होकर भी मुझे मिल गया।'—'माखन लाल चतुर्वेदी : जीवनी' पृष्ठ ३४७।

२—'मेरे लिये ही 'प्रभा' प्रकाशित की गयी।'—श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, पालीवाल जी का दिनांक १९-१०-१९६१ का मुझे लिखित पत्र।

३—श्री कृष्णदत्त पालीवाल—'आजकल', गणेश जी की याद में, मार्च, १९५५; पृष्ठ २०।

४—'प्रभा' का सम्पादन मैंने पहले ही अंक से 'देवदत्त शर्मा, बी० ए० के नाम से किया था।'—श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, पालीवाल जी का मुझे लिखित १९-१०-१९६१ का पत्र।

'तपोभूमि' में तपस्या कर रहे थे।[१] जुलाई, सन् १९२३ से 'प्रभा' के सम्पादक श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हुए। अक्टूबर, १९२३ से 'नवीन' जी ही 'प्रभा' के सम्पादक रहे और अन्त तक बने रहे।[२] 'नवीन' जी के सम्पादन काल में चित्रों के आधार पर लिखित कविताओं का क्रम क्षीण हो गया और पत्रिका में व्यंग्य चित्रों के प्रकाशन की संख्या बढ़ गयी।

'प्रभा' का मुद्रण–प्रकाशन प्रताप प्रेस, कानपुर से होता था और पं० शिवनारायण मिश्र वैद्य, जनवरी, १९२० से मई, १९२१ ई० तक इसके प्रकाशक रहे। जून, १९२१ ई० से श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम० ए० द्वारा प्रकाशित होने लगी। श्री शिवनारायण मिश्र व्यवस्थापक बने रहे। अक्टूबर, १९२३ ई० से श्री सुरेन्द्र शर्मा द्वारा पत्रिका का मुद्रण व प्रकाशनारम्भ हुआ। सितम्बर, १९२४ ई० से 'प्रभा' कामर्शियल प्रेस, कानपुर से मुद्रित होने लगी और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' उसके प्रकाशक हुए। मार्च १९२५ के अंक से श्री सुरेन्द्र शर्मा द्वारा पुनः प्रताप प्रेस, कानपुर से मुद्रित व प्रकाशित होने लगी। यह क्रम अनवरत रहा।

प्रारम्भ में 'प्रभा' का वार्षिक मूल्य ४॥) था और एक प्रति का आठ आना। जुलाई, १९२० से यद्यपि प्रति का मूल्य वही रहा; परन्तु वार्षिक मूल्य पांच रुपये हो गया। इसी प्रकार शुरू में पत्रिका का आकर १० × १७½ रहा।[३] 'प्रभा' के प्रारम्भिक अंकों की पृष्ठ संख्या ६४ थी और सन् १९२२ से पृष्ठ संख्या अस्सी हो गयी। विशेषांकों की पृष्ठ संख्या १०८ तक पहुँच जाती थी और आकार २० × ३० अठपेजी हो जाता था।[४]

'प्रभा' के प्रथम वर्ष के प्रथम अंक का आवरण-चित्र पुराना ही रहा। खण्डवा की 'प्रभा' के मुख-चित्र पर लिखित हिन्दी कविता तथा संस्कृत की पंक्तियाँ ही निकाल दी गयी थीं। प्रथम पृष्ठ के लघु चित्र में कर में तलवार व गीता लिए भारत-माता का चित्र था। चित्र में पृथ्वी का गोला, चक्र, शस्त्रादि, बैल, सिंह इत्यादि को भी दर्शाया गया था। प्रथम पृष्ठ पर विविध विषय सम्पन्न सचित्र राजनैतिक मासिक पत्रिका[५], लिखा रहता था। जनवरी, १९२१ ई० के अंक से आवरण-चित्र में परिवर्तन आ गया। चित्र में भारत-माता का भव्य स्वरूप, एक हाथ में गीता तथा दूसरे में दीपक

१—'प्रभा'—सम्पादकीय टिप्पणियाँ, जनवरी, १९२२ ई०; पृष्ठ ७८।
२—श्रीकृष्णदत्त पालीवाल का दिनांक १९-१०-१९६१ का पत्र।
३—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—'समाचार पत्रों का इतिहास'; पृ० २७४।
४—'माधुरी'—पुस्तक परिचय, १५ नवम्बर, १९२३ ई०; पृष्ठ ५०७।
५—'प्रभा'—जुलाई, १९२०; वर्ष १, खण्ड २, संख्या १, पृष्ठ १।

लिए, दर्शाया गया था। साथ ही रथ व पृथ्वी का गोला भी चित्र में अपना स्थान रखता है। प्रथम वर्ष के प्रथम खण्ड (जनवरी-जून, १९२० ई०) में जहाँ ७८ चित्र प्रकाशित हुए; वहाँ द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १९२० ई०) में ५१ छाया-चित्रों से पत्रिका की सज्जा बढ़ी। इस प्रकार प्रथम वर्ष (जनवरी-दिसम्बर, १९२० ई०) में ग्यारह रंगीन चित्र और १२९ सादे चित्र प्रकाशित हुए थे। सन् १९२१ में प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम' के आधार पर बहुरंगी और नयनाभिराम बारह चित्र प्रकाशित किए गए थे। द्वितीय वर्ष के द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १९२१ ई०) में ६७ चित्र मुद्रित हुए थे। इसी प्रकार तृतीय वर्ष के प्रथम खण्ड (जनवरी-जून, १९२२ ई०) में १०० चित्र, द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १९२२ ई०) में १०४ चित्र, चतुर्थ वर्ष के प्रथम खण्ड (जनवरी-जून, १९२३ ई०) में ११५ चित्र, द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १९२३ ई०) में १६६ चित्र और पंचम वर्ष के प्रथम खण्ड (जनवरी-जून, १९२४ ई०) में २२८ चित्र प्रकाशित हुए। इसी प्रकार, चित्रों के प्रकाशन का यह क्रम आगे भी चलता रहा। 'प्रभा' में राष्ट्र नायकों यथा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी आदि के छाया-चित्र भी प्रकाशित हुए। जहाँ 'प्रभा' में धारावाहिक रूप से उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद प्रकाशित हुआ; वहाँ उनके साथ इससे संबंधित कई रंगीन व सुन्दर चित्र भी, कई अंकों में, प्रकाशित हुए। हिन्दी संसार के लिए यह प्रयत्न नूतन व अनुपमेय माना गया था।[१] 'प्रभा' के चित्रों की दूसरी विशेषता उनका राष्ट्रीयता पोषक होना है। समाज व राष्ट्र पर होने वाले अनाचारों की कलई भी चित्रों के माध्यम से खोली गयी। जलि-

---

१—"प्रायः १½ वर्ष से उमरखय्याम की रुबाइयों (चतुष्पदी) पर 'प्रभा' में चित्र निकल रहे हैं। हिन्दी संसार के लिए इस प्रकार का प्रयत्न नया, उपयोगी और महत्त्व पूर्ण है। जहाँ तक मुझे मालूम है, इस प्रकार की काव्याश्रित चित्रकला के प्रचार और पुस्तकाकार प्रकाशन का सबसे पहला यत्न बम्बई के किसी प्रकाशक ने 'चित्र रामायण' नाम की बहुमूल्य पुस्तक प्रकाशित करके किया था। उसके बाद से आज तक इस प्रकार के स्तुत्य उद्योग के केवल तीन उदाहरण मिलते हैं। उमर की चित्रमाला से 'प्रभा' प्रेमी परिचित ही हैं। शेष दो का श्रेय इंडियन प्रेस, प्रयाग के स्वामी को है। मेरा मतलब 'सरस्वती' में निकले हुए बिहारी और पद्माकर की रचनाओं के आधार पर निर्मित चित्रों से है।"—'प्रभा', 'उमर खय्याम' लेख से उद्धृत, नवम्बर, १९२४ ई०; पृष्ठ ३५८।

यान वाले बाग के विभिन्न स्थलों और घायलों के चित्र प्रदर्शित किए गए थे।[१] जनवरी, १९२१ ई० में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में किसानों पर भीषण गोली-काण्ड हुआ था। कहा जाता है कि किसानों ने उपद्रव मचाने की चेष्टा की थी और इसलिए गोलियाँ चलायी गयी। इस गोली काण्ड में अनेक कृषक प्राण से मारे गए और शतशः घायल हुए। गणेश जी ने कृषकों का पक्षपात लेते हुए गोली काण्ड की भीषणता और उसके प्रवर्त्तकों के पाशविक अत्याचारों का डटकर भण्डाफोड़ किया।[२] इस आधार पर 'प्रभा' में रायबरेली हत्याकाण्ड से सम्बन्धित अनेक चित्र प्रकाशित हुए।[३] उस समय देशी राज्यों में होने वाले अन्याय, अत्याचारों व बेगार आदि से सम्बन्धित चित्र भी प्रकाशित किये गये।[४] अत्याचारों के लिए प्रसिद्ध बिजोलिया ठिकाना (उदयपुर राज्य) के भूती गाँव के हीरालाल गूजर नामक किसान पर होने वाले रोमांचकारी अत्याचार के दृश्यों को चित्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया।[५] बेगार करने से अस्वीकृति की स्थिति में जो दशा होती थी; उसे भी चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया।[६] 'प्रभा'

१—'प्रभा'—फरवरी, १९२०।

२—श्री देवव्रत शास्त्री 'गणेशशंकर विद्यार्थी', प्रतापी 'प्रताप', पृष्ठ १५६।

३—'प्रभा'—सितम्बर, १९२१ ई०।

४—'देशी राज्य अपने अन्याय और अत्याचारों के लिए इस समय प्रसिद्ध हैं। बिजोलिया के अधिकारी, किसान हीरालाल गूजर पर किसी कारण से रुष्ट हो गये और आज्ञा दे दी कि एक बड़ा सा पत्थर इसके पेट में बाँध दिया जाय और दो पत्थर उसके दोनों हाथों पर रखे जाय। हुक्म की तामील तुरन्त हुई। हरलाल पत्थरों को कन्धे की सीध में अधिक देर तक न रख सका, हुक्म हुआ कि हाथ की कुहनियों पर डण्डे लगाएजायँ। वह भी हुआ, कुहनियाँ फूट गयीं, खून जम गया। शाम को हरलाल के साथियों ने इस बात की आज्ञा चाही कि इसके 'कुलड़े लगा दें ताकि इसे दर्द से अधिक कष्ट न हो, उत्तर मिला : 'नहीं इससे दाग पड़ जायेंगे और ठिकाने की बदनामी होगी !' हरलाल के साथियों ने रात-भर उसकी देह ईंटें गरम करके सेंकी तो भी उसे नींद न आयी। इसी से उसका छुटकारा न हुआ। प्रातःकाल हरलाल को पहले दिन की सजा न देकर उसके पैर काठ में दिए गए।—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, देशी राज्यों में अन्याय, अक्टूबर, १९२० ई०; पृष्ठ २५५।

५—'प्रभा'—१ अक्टूबर, १९२० ई०, चित्र संख्या २।

६—'प्रभा'—१ नवम्बर, १९२० ई०, चतुर्थ चित्र।

की भण्डाफोड़ प्रवृत्ति, निर्भीकता तथा दबंगता के कारण रियासतों में उसका प्रवेश निषिद्ध हो गया।[१]

वीर बालाओं के चित्र भी 'प्रभा' में छपे यथा रतनदेवी,[२] श्रीमती सरला देवी चौधरी[३] आदि। भारत-माता, हिन्दू मुस्लिम एकता, वर्तमान भारत की आर्थिक अवस्था,[४] चरखा, हल्दी घाटी आदि मातृ-वन्दना व सम-सामयिक स्थिति के चित्र भी छपते रहे। 'प्रभा' में जहाँ आयर्लैंण्ड के ज्वलन्त देशभक्त मेक्स्विस्वनी लार्ड मेयर ऑफ कार्क का चित्र प्रेरणास्पद् रूप में प्रकाशित हुआ; वहाँ भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड चैम्स-फोर्ड के जाने और उनकी नृशंसता के फलस्वरूप[५] उनका भी चित्र छपा। 'प्रभा' में जो व्यंग्य चित्र छपे; उनकी संख्या, भावोद्दीपन तथा तीव्रता का रूप उस युग की पत्रिकाओं में दुर्लभ है। 'प्रभा' में एक अन्य कोटि के चित्र भी प्राप्त होते हैं जिन्हें हम भावात्मक तथा सौन्दर्य-व्यंजक चित्र कह सकते हैं यथा विष्णु और वसन्त, मानलीला,

---

१—'जयपुर राज्य ने अपने यहाँ 'प्रभा' का आना बन्द कर दिया है। यदि जयपुर राज्य के अधिकारियों की समझ में 'प्रभा' के रोकने से वहाँ प्रलय होते-होते रुकता है तो हमें 'प्रभा' की रोक पर कुछ आपत्ति या शिकायत नहीं।'—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, सितम्बर, १९२१ ई०; पृष्ठ २०३।

२—'प्रभा'—१ दिसम्बर, १९२०; चतुर्थ चित्र।

३—'प्रभा'—१ दिसम्बर, १९२०; द्वितीय चित्र।

४—'आयर्लैंण्ड के कार्क नगर के प्रधान (लार्ड मेयर) त्याग-वीर मेक्स्विनी ने अपने विश्वासों की वेदी पर अपने प्राणों की बलि देकर आत्म-त्याग का एक ऐसा उदाहरण उपस्थित कर दिया जो किसी के मिटाए नहीं मिट सकता और जो सदैव आगामी संतति को स्वदेश की वेदी पर बलि होने के लिए प्रेरित करता रहेगा—'प्रभा', संपादकीय टिप्पणियाँ; मेक्स्विनी का प्राण त्याग, १ दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३८२।

५—'तुमको करना था क्या और क्या कर चले ?
निर्दयीपन सभी को दिखाकर चले ॥
पाप पूरी तरह से कमाकर चले।
दीन दुखियों जनों को सताकर चले ॥
है गनीमत कि अब भी हयाकर चले।
आज दुनिया पै मानो दया कर चले।'—'त्रिशूल'; 'प्रभा', १ अप्रैल, १९२१; चित्र पर लिखित कविता, पृष्ठ २३७ व २३८ के मध्य।

वीणा वादिनी, शिशिर-समीर, अनोखा अनुराग, कालिन्दी तट, प्रणय-संसार[१] आदि। खण्डवा की 'प्रभा' में इस कोटि के चित्रों का प्राचुर्य था। श्री हरदेव नारायण सिंह के चित्र में वीरत्व तथा करुणा का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।[२]

भावात्मक चित्रों के आधार पर कविताओं का सृजन किया गया और कविताओं के भावों को चित्र की रेखाओं में बाँधा गया। 'प्रभा' के 'चित्र-परिचय' स्तम्भ के अंतर्गत, चित्रों पर लिखित कविताओं को स्थान मिलता था। एक चित्र पर अनेक कवि अपनी रचनाएं, विभिन्न दृष्टिकोण तथा शीर्षक से, लिखते थे; यथा वीणावादिनी चित्र पर लिखित श्री जगमोहन 'विकसित'[३] और 'हरिऔध' जी की कविताएँ; शिशिर-समीर चित्र पर रचित 'विकसित' और 'रसिकेन्द्र' की कविताएँ; कालिन्दी-तट चित्र पर लिखित राजाराम शुक्ल और 'हरिऔध'[४] की कविताएँ आदि। यह जातीय तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थानवाद का संवेदनशील युग था; अतएव, इसका प्रभाव उस युग की चित्र-कला पर भी पड़ा। 'सरस्वती' के रवि वर्मा के चित्र भी इसी पृष्ठ-भूमि से उभर कर, हमारे समक्ष आए थे।[५] इस प्रकार 'प्रभा' के चित्रों में उस युग का प्रतिबिम्ब, भाव-धारा और अतीत के शौर्य के सहज ही दर्शन प्राप्त होते हैं।

पाठ्य-सामग्री :

कानपुर की 'प्रभा' कविता, कहानी, लेख, गद्य-काव्य आदि विभिन्न साहित्यिक सामग्री प्रकाशित होती थी। निबन्ध अनेक विषयों पर लिखे जाते थे। सन् १९२२ में श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'संसार की स्त्रियाँ' सचित्र लेख माला प्रकाशित हुई। वीर श्रेष्ठ श्री रासबिहारी बोस की 'आत्म-कथा' 'विप्लव के अग्नि कुण्ड की चिनगारियाँ' के शीर्षक के रूप में 'प्रभा' के सन् १९२४-२५ के कतिपय अंकों में प्रकाशित हुई। इसी प्रकार श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य द्वारा लिखित 'भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन' शीर्षक लेख भी दिसम्बर, १९२४ (पृष्ठ ४३१-४८१) के अंक में प्रकाशित हुआ। 'प्रभा' में संसार प्रगति, विचार-प्रवाह, सामयिक साहित्यावलोकन, सम्पादकीय

१—'प्रभा'—१ मार्च, १९२३।

२—'प्रभा'—१ अक्टूबर, १९२३ ई०।

३—'प्रभा'—'वीणा वादिनी', छंद ४, फरवरी, १९२२ ; पृष्ठ १९०।

४—'प्रभा'—'कमल लीला', छंद १०, १ जनवरी, १९२३; पृष्ठ ६३-६४।

५—"Ravi Varma's popularity proves that he had hit the national Hindu taste. xxx He now went on painting character-studies, Portraits and mythological subjects." Yusuf Ali, 'Cultural History of India,' p. 258.

टिप्पणियाँ, विज्ञान-संसार, चित्र-परिचय आदि स्तम्भ स्थायी रूप में रहते थे। 'विज्ञान-संसार' के लेखक सामान्यतया बाबू रामदास गौड़, एम० ए० थे। कई लेखक-गण अपने प्रकृत नाम से न लिखकर, छद्म या उप-नाम से ही लिखा करते थे। पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी, राजनैतिक गद्य लेख और कविताएँ 'चक्र सुदर्शन' के नाम से लिखते थे।[१] इसी छद्म नाम से इन्होंने 'प्रभा' में 'लोकमान्य की विदाई' शीर्षक कविता लिखी थी[२]। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'विचित्र संग्राम'[३] शीर्षक कविता 'भारतीय'[४] के कृत्रिम नाम से लिखी थी।

समय-समय पर 'प्रभा' ने उत्कृष्ट कोटि के 'विशेषांक' निकाले जिन्होंने हिन्दी-संसार में धूम मचा दी। भारतीय स्वतंत्रता के जनक लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर 'तिलकांक'[५] प्रकाशित हुआ जिसमें तिलक जी विषयक सुन्दर, राष्ट्रीय तथा वेदनापरक गीत व कविताएँ समाहित थीं। गया-कांग्रेस के अवसर पर 'गया कांग्रेस अंक' निकला। उसी वर्ष 'झंडा विशेषांक'[६] प्रकाशित हुआ जिसका सम्पादन 'नवीन' जी ने किया था। इस विशेषांक की सर्वत्र प्रशंसा हुई[७] और उस युग के पत्रों ने इसका बड़ा अभिनन्दन किया।[८] इसमें झण्डा सत्याग्रहियों के परिचय, बलिदान की कथा और ध्वज-विषयक कविताओं का समावेश था। इसके १०८ पृष्ठों के विशाल कलेवर में, विपुल सामग्री भरी पड़ी है। सन् १९२४-२५ में कांग्रेस का अधिवेशन बेलगाँव में हुआ था ; उसी अवसर पर 'प्रभा' का चतुर्थ विशेषांक 'बेलगाँव कांग्रेस अंक' के रूप में प्रकाशित हुआ। इस अंक और अप्रैल, १९२५ के अंक में कोई कविता प्रकाशित नहीं हुई। काव्य-प्रकाशन की दिशा में ये दोनों अंक अपवाद-

---

१—'प्रभा'—सम्पादकीय टिप्पणियाँ, पं० मन्नन जी द्विवेदी की परलोक यात्रा; दिसम्बर, १९२१ ; पृष्ठ ३९०।

२—'प्रभा'—सितम्बर, १९२० ; पृष्ठ १३९-१४०।

३—श्री मैथिलीशरण गुप्त—'स्वदेश संगीत', पृष्ठ १३८-१३९।

४—'प्रभा'—१ फरवरी, १९२२, पृष्ठ १००-१०१।

५—'प्रभा'—अगस्त, १९२१ ; श्रावण सं० १९७८, वर्ष २, खण्ड २, संख्या २।

६—'प्रभा'—१ अक्टूबर, १९२३ ई०, आश्विन सं० १९८० वि०, वर्ष ४, खण्ड २, संख्या ४।

७—श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', 'प्रभा', पृ० १९८।

८—'माधुरी'—१५ नवम्बर, १९२३; पुस्तक परिचय, पृष्ठ ५०७।

स्वरूप हैं।

विद्यार्थी जी तथा 'नवीन' जी की पत्रकारिता :

कानपुर की 'प्रभा' को उस युग की संवेदनशील नब्ज कहा जा सकता है। राजनैतिक और सामाजिक घटनाओं पर निष्पक्षता पूर्वक विचार किया जाता था। ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मुक्त और निरंकुश रूप में लिखा गया। आततायियों की जड़ें उखाड़ी गयीं। खण्डवा की 'प्रभा' में तो कहीं-कहीं, यदा-कदा ब्रिटिश भक्ति के छींटे कविताओं में आ गए हैं;[1] परन्तु उनका भी कानपुर की 'प्रभा' की तप्त किरणों ने वाष्पीकरण कर दिया। 'प्रभा' ने उग्र राजनीतिक विचार धारा को आश्रय दिया क्योंकि उसके तीन प्रधान कर्णधार गणेशजी, 'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' जी क्रांतिकारी और उग्र विचार धारा के व्यक्ति थे। इसमें जो अग्र लेख और टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं; उनके शीर्षक ही विलक्षण और स्फुल्लिगमय होते थे। 'नवीन'

---

१. (क) 'प्रजा-महा-मानस में रिझावे,
श्री जार्ज-मेरी युत हंस-जोड़ी।'
—भीकाजी बिल्लोरे,'नूतन संवत्सर का स्वागत', ७ अप्रैल, १९१३; छंद २३, पृष्ठ २३।

(ख) 'हे हरे! जैसे मिटे हैं ग्रीक मिसरानी वहाँ!
कीजिए रक्षा, न हो वैसी दशा स्वामी! यहाँ॥
शीघ्र ही देव! भारत-सौख्य-पंकज फिर खिले॥
देश के 'सौभाग्य' का यश जार्ज नृपवर को मिले॥'
—सैयद अमीर अली 'मीर', 'उत्साह', छंद १३, मई ७, १९१३ ई०,पृ० ७६।

(ग) 'झुके शीश श्री ईश की शांति से,
'प्रभो! आइया पूर्व की भाँति से—
'महायुद्ध' योरोप में हो रहा,
उसे शांत कीजे न जाता सहा!
जयी जार्ज हो, प्रार्थनायें करे।
उठो भाइयों! ध्यान दें, ध्यान दें॥'
—द्वारकाप्रसाद गुप्त, 'उठो भाइयों! ध्यान दें, ध्यान दें'; छंद ११, आश्विन सं० १९७२ वि०, पृष्ठ ३९३।

जी के 'प्रभा' के सम्पादकीय टिप्पणियाँ के कतिपय शीर्षक दृष्टव्य हैं यथा 'कानपुर काटन मिल में नर-हत्या,' 'बोलेशेविक षड्यंत्र का कानपुर का मुकदमा', 'शंख-ध्वनि', मध्य एशिया पर यूराप की आँखें, भारत क्या करे ?, पशुता का प्रस्फोट, अन्यायी कानून की आँत, पाखण्ड का पाप, टुकड़ों के लिए आदि। 'प्रभा' को हमारी स्वाधीनता के गाँधी युग के पूर्वार्द्ध का निर्मल मुकुर माना जा सकता है। राष्ट्रीयता की धड़कनें और स्पन्दन इसके अंकों में सुरक्षित हैं। राष्ट्रीय संग्राम की लघु-वृहद् घटनाओं को इसमें सूत्र रूप में पाया जा सकता है। इस पक्ष के अन्तर्गत, 'प्रभा' में ३८वीं कांग्रेस, सरोजिनी देवी, कारागार से मुक्त स्वामी शंकराचार्य, सत्याग्रही बोरसद की विजय, कारागार से मुक्त गणेशजी, मुक्त सावरकर जी, गाँधी जी की रिहाई, जैतो का हत्याकाण्ड, महात्मा जी और मजदूर सरकार, मौलाना मोहम्मद अली, डाक्टर बिसेंट और कांग्रेस, बेलगाँव कांग्रेस, असहयोग की आग, क्रांति के बीज,[१] तपस्वी लाला हरदयाल के विचार, स्वराज्य दल दल-दल में और हिन्दू महासभा के प्रस्ताव आदि विषयों पर गम्भीरता पूर्वक विचार-विमर्श किया गया है। समाज-साहित्य और धर्म की दिशा में 'प्रभा' में हिन्दी की जय जयकार, नोबल पुरस्कार विजेता विलियम बटलर ईट्स, दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स्वर्गीय प्रताप नारायण वाजपेयी, ग्रीस की मूर्ति-कला का नमूना, स्त्रियों को मताधिकार, 'निराला' बनाम 'रवीन्द्र', अनातोले फ्रांस, गौड़ जी की पोथियाँ, नाथूराम शंकर शर्मा को पुत्र शोक, यू० पी० की सामाजिक कान्फ्रेंस आदि विषयों पर टिप्पणियाँ लिखी गयीं। राष्ट्रीय जोश में 'प्रभा' के सम्पादकों की दृष्टि सीमित नहीं थी; अपितु उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का भी सुस्पष्ट विश्लेषण किया। विश्व की गतिविधियों में 'प्रभा' में अपने युग में लेनिन की मृत्यु, केनिया में सत्याग्रह का आरम्भ, साउथ आफ्रिका, इम्पीरियल कांफ्रेंस, मेन्डेट, मित्र-राष्ट्र और जर्मनी, लेनिन के बाद, जर्मनी में युद्ध की तैयारियाँ, रूस और ग्रेट ब्रिटेन, तिब्बत और ग्रेट ब्रिटेन, मध्य यूरोप की परिस्थिति,[२] मोसिये ट्राटस्की, मोरोक्को और यूरोप, रूस जापान संधि, जर्मनी में राष्ट्रपति का चुनाव, फ़्रांस की आर्थिक व्यवस्था, टर्की और खुर्दिस्तान, यहूदी प्रेमी लार्ड बालफोर, रूस जापान सन्धि, अफगनिस्तान, स्वर्गीय डा० सनयात सेन आदि व्यक्ति-घटनाओं पर भी दृष्टिपात किया गया। उपरिलिखित घटनाओं का महत्त्व यूरोप व एशिया के इतिहास में असंदिग्ध है। इन स्थितियों पर विचार करके 'प्रभा' ने अपनी प्रगति-शीलता तथा युगानुकूल रूप का परिचय हमें प्रदान किया। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के मूल्यांकन में भी

१—'प्रभा'—मई, १९२४।
२—'प्रभा', सितम्बर, १९२४।

'प्रभा' ने अपनी निर्द्वन्द और उदार दृष्टि का ही व्यवहार किया। 'नवीन' जी के 'प्रभा' सम्पादन-काल में उपर्युक्त समस्त टिप्पणियाँ और विचार-बिन्दुओं को साकारता प्राप्त हुई। गणेश जी के सम्पादन-काल की एक सम्पादकीय टिप्पणी को यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक प्रतीत नहीं होता जो कि 'प्रभा' के जुलाई, १९२० के अंक में प्रकाशित हुई थी। इससे 'प्रभा' के उग्र और तेजस्वी रूप की सहज ही कल्पना की जा सकती है :—"हण्टर कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी है, रिपोर्ट क्या प्रकाशित हो गयी है व्यथित भारत के घायल हृदय पर नमक छिड़का गया है। रिपोर्ट में अधिकारियों की कलंक-कालिमा पर सफेदी करने का भरसक प्रयत्न किया गया है। × × × विगत नरम कान्फ्रेंस की स्वागतकारिणी समिति में सर बी० सी० मित्र और डॉ० सप्रू लार्ड हण्टर की न्यायप्रियता की दुहाई देते थे। तथापि हमें लार्ड हण्टर की कमेटी से न्याय की कोई आशा न थी। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि उपद्रवों का निकट-स्थ मुख्य कारण डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल का निर्वास तथा महात्मा गांधी की गिरफ्तारी है। अतः इसका सारा दोष नौकरशाही के ऊपर है। डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल क्यों निर्वासित किए गए ? उनका क्या दोष था ?

हण्टर कमेटी का निर्णय एक तरफा है। उसमें जातिजनों और अधिकारी वर्ग का पक्षपात कूट-कूट कर भरा है। उन्होंने राजनैतिक उद्देश्यों की वेदी पर न्याय और सत्य की बलि दी है। भारत वासी इस निर्णय को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

मिस्टर माण्टेगू यह भली-भाँति स्मरण रखें कि भारत वासी बहकाए नहीं जा सकते। हम उनके इस निर्णय से कदापि संतुष्ट नहीं हो सकते। यह सोचना कि डायर को भारतीय नौकरी से पृथक कर देने से जबकि वह अन्यत्र इससे भी अच्छी नौकरी पा सकता है और कुछ अधिकारियों को फटकार देने से न्याय हो गया, न्याय की हँसी उड़ाना है—भारतीयों के भावों को आघात पहुँचाना है और अधिकारियों की क्रूरता और मूर्खता को प्रोत्साहित करना है। हम इस निर्णय पर चुप नहीं हो सकते।"

इस प्रकार 'प्रभा' की टिप्पणियाँ तथा अग्रलेखों ने राष्ट्रीय यज्ञ की लपटों में घृत डालने का सुकृत्य सम्पन्न किया ; विश्व की ओर हमारी आँखें खोली; समाज की कुरीतियों व दरिद्रावस्था का नग्न चित्र चित्रित किया और राष्ट्र भाषा हिन्दी व उसके साहित्य के प्रति आस्थावान् प्रवृत्तियों व भावनाओं का उन्नयन किया। राष्ट्र की रागिनी काव्य के कण्ठ स्वर में गुँजायमान हो पड़ी।

कानपुर की 'प्रभा' के छः वर्ष (१९२०-१९२६ ई०) के जीवन-काल में अत्यन्त समृद्ध सामग्री प्रकाशित हुई है। अपने इस जीवन-काल के प्रथम वर्ष के प्रथम खण्ड (जनवरी-जून, १९२०) में जहाँ १०२ रचनाएँ प्रकाशित हुईं, वहाँ द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १९२० ई०) में ९० रचनाओं को स्थान प्राप्त हुआ। इस प्रकार विगत

द्वादश मासों में ७७७ पाठ्य विषयों के पृष्ठ पाठकों को प्रदान किए गए। द्वितीय वर्ष के द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १६२१) में ७३ रचनाएँ छपी। इसी प्रकार के तृतीय वर्ष के प्रथम खण्ड (जनवरी-जून, १६२२) में ७७ रचनाएँ; द्वितीय खण्ड (जुलाई-दिसम्बर, १६२२) में ८२ रचनाएँ; चतुर्थ वर्ष के प्रथम चरण (जनवरी-जून, १६२३) में १०६ रचनाएँ; द्वितीय चरण में १०७ रचनाएँ; और पंचम वर्ष के प्रथम खंड (जनवरी-जून, १६२४) में १०० रचनाएं प्रकाशित हुई। सामग्री के इसी विपुल रूप का क्रम सामान्यतया आगे भी बना रहा। 'प्रभा' में साहित्य की सम्यक् परख भी होती थी। पुस्तकों की समालोचना निष्पक्ष और गुणानुसार की जाती थी। इस क्षेत्र का एक रूप, 'नवीन' जी द्वारा की गयी श्री 'हरिऔध' की 'चोखे चौपदे' व 'चुभते चौपदे,' कृतियों की समीक्षा में आंका जा सकता है :—'हमें अंग्रेजी साहित्य का भी थोड़ा बहुत ज्ञान है। ×× इस प्रकार का शब्द संकलन 'स्वान्तः सुखाय' ही यदि कोई करे तो सुखेन करे, परन्तु यह आशा करना कि इस प्रकार की पुस्तकें साहित्य में बहुत काल तक जीवित रहेंगी, अथवा वे भविष्य के लिए संदेशवाहक होंगी, बिल्कुल दुराशामात्र है, काव्य साहित्य में तो इन पुस्तकों का कोई स्थान नहीं है हाँ कोश-साहित्य (Lesciocography) में इनका आदरणीय स्थान जरूर रहेगा। ×× बार बार हम यह अनुभव करते हैं कि 'प्रिय प्रवास' के करुणा विगलित गायक ने इन पुस्तिकाओं को लिखकर अपना समय नष्ट किया है।'[१]

'प्रभा' के टिप्पणी-लेखन में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता था; उसमें हिन्दी तथा उर्दू का मिश्रण था। उसे संस्कृतनिष्ठ भाषा नहीं कहा जा सकता। भाषा को भावों के वहन करने में समर्थ और सर्व गम्य होने के रूप में ग्रहण किया जाता था। गणेश जी क्लिष्ट भाषा के विरोधी थे।[२] 'नवीन' जी भी प्रारम्भ में सामान्य भाषा का प्रयोग करते थे जिसमें उर्दू के शब्दों का भी यथेष्ट मात्रा में उपयोग होता था।[३] 'एक भारतीय आत्मा' की 'प्रभा' की सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी सहजगम्य हैं। यद्यपि अपने युग की 'बयार' के अनुकूल 'प्रभा' में चित्रों पर कविता प्रकाशित होती थीं; परन्तु वहाँ समस्या पूर्ति को कोईस्थान नहीं दिया गया। स्वयं 'नवीन' जी इसके पक्ष में नहीं थे[४]। 'प्रभा' में रचनाओं के चयन अथवा प्रकाशन के विषय में कोई भेद-भाव नहीं बरता

१—'प्रभा—सामयिक साहित्यावलोकन, जुलाई, १६२४; पृष्ठ ७३।

२—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पत्रकार विद्यार्थी जी, पृष्ठ ५२।

३—देखिए 'कुंकुम' की भूमिका की भाषा।

४—डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', वह एक योद्धा थे, ३ जुलाई, १६६०; पृष्ठ ३४।

जाता। सबके साथ समान व्यवहार किया जाता था। रचना की गुणात्मक स्थिति ही सर्वोपरि और सर्वमान्य थी। अस्वीकृत रचनाएँ लेखक के पास, उचित निर्देश तथा प्रोत्साहन सहित, सधन्यवाद वापस भेज दी जाती थी।[1] श्री रामनाथ लाल 'सुमन' के इस कथन में 'प्रभा' की सम्पादकीय नीति, साहित्यिक स्तर और 'नवीन' जी की पत्र-कारिता के आदर्श का सार-तत्त्व निहित है :—

'मुश्किल से दो-एक ऐसे मिलेंगे, जो 'चीज' देखते हैं, समझते हैं कि कविता क्या चीज है और महत्त्वपूर्ण रचनाएँ किसे कहते हैं ? जिन सम्पादकों से अभी तक मुझे काम पड़ा है, उनमें 'प्रभा'-सम्पादक और नवीन-स्कूल के सहृदय कवि पं० बाल-कृष्ण शर्मा 'नवीन' मुझे इस विषय में बहुत अच्छे लगे। तुकबन्दी होने पर वे बड़े-बड़े कवियों की कविताएँ, लौटा देते थे। मित्रता भी उन्हें लुभा न सकती थी——यों तो दोष सबमें होते हैं, उनमें भी थे। उन्होंने कितनी ही बार मेरी तुक बंदियों, मेरे लेख लौटा दिये हैं। उनका यह व्यवहार समालोचकोचित न्याय पर आश्रित था, इसलिए कभी मेरे मन में कुभाव न आया, वरन् स्नेह और श्रद्धा बढ़ती गयी। 'प्रभा' ने अपने जीवन में, औसतन, सब हिन्दी-पत्रिकाओं से अच्छी कविताएँ और गम्भीर लेख निकाले। अन्त-र्राष्ट्रीय परिस्थिति सम्बन्धी वे विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ और सम्पादकीय गद्य-काव्य आज भी याद आते हैं।[2]

साहित्यिक सेवा एवं महत्वांकन :

कानपुर की 'प्रभा' के प्रमुख कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामनरेश त्रिपाठी, द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, सूर्यकान्त

१—'श्री 'नवीन' जी जिस समय 'प्रभा' का सम्पादन करते थे, उस समय मैंने एक कविता 'प्रभा' में प्रकाशनार्थ उनकी सेवा में भेजी थी, ठीक आठवें दिन लौटायी हुई रचना और आपका पत्र मिला : 'रमा' जी, नमस्ते। रचना मिली, अभी आप लिखते जाइये। प्रकाशन का लोभ संवरण कीजिए और साहित्य-सेवा में संलग्न रहिए—भवदीय, 'नवीन'। यह शायद सन् २० या २१ का उनका पत्र था जो लौटायी हुई रचना के साथ, एक चिट पर लिखा था; ऐसा मुझे स्मरण है। उस समय मुझे लिखते हुए आठ-नौ वर्ष हो चुके थे।' श्रीलक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा', हटा (म० प्र०) का मुझे लिखित दिनांक ७-९-१९६१ के पत्र, से उद्धृत।

२—श्री रामनाथ लाल 'सुमन'——'विशाल भारत', हिन्दी साहित्य जगत और मेरे अनुभव; श्रावण सं० १९८५, जुलाई, १९२८; पृष्ठ २८।

त्रिपाठी 'निराला', रामनाथ 'सुमन', मोहनलाल महतो 'वियोगी', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा', गोकुलचन्द्र शर्मा, 'एक राष्ट्रीय हृदय', मदन मोहन मिहिर, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', उदयशंकर भट्ट, श्यामलाल पाठक, ठाकुर प्रसाद शर्मा, श्रीरत्न शुक्ल आदि की गणना की जाती है। लेखकों में प्रसादीलाल झा, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', बाबू रामदास गौड़, हरनारायण बाघम, जयचन्द्र विद्यालंकार, गोपाल दामोदर तामस्कर, प्राणनाथ विद्यालंकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'प्रभा' की विविध मुखी कविताओं के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए यथा 'तिलक-वियोग में शोकाश्रु'[१] 'राष्ट्रीय रत्न पंचक'[२] आदि।

प्रारम्भ से ही 'प्रभा की पुरोगति और सारगर्भित सामग्री ने सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रखा था। 'सरस्वती'-सम्पादक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने लिखा था कि सन्तोष की बात है कि हिन्दी के सामयिक पत्र अच्छी उन्नत्ति कर रहे हैं। कानपुर की 'प्रभा' ने अब हिन्दी साहित्य में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।[३]

१—'तिलक वियोग में शोकाश्रु'—संग्रहकर्त्ता दौलत राम गुप्त, प्रकाशक काशीदत्त शर्मा, देहली। पृष्ठ ८२, मूल्य ।) इस पुस्तक में श्रद्धा, प्रताप, विजय, कर्मवीर, सद्धर्म प्रचारक, आर्य मित्र, अभ्युदय, पाटलि-पुत्र, उत्साह, हिन्दी केसरी, हिन्दी समाचार, शिक्षा प्रभाकर, प्रभा, हिन्दी मनोरंजन, श्रीशारदा में प्रकाशित लोकमान्य की मृत्यु की शोक विषयक कविताओं को संग्रहीत किया गया है।—'प्रभा', जनवरी १९२१; पृष्ठ ५२।)

२—'राष्ट्रीय रत्न पंचक'—राष्ट्रीय शिक्षा ग्रन्थ माला, आरा; पृष्ठ संख्या १९१; मूल्य १); इस पचक में पाँच राष्ट्रीय कविताएँ, पाँच राष्ट्रीय प्रबंधों, पाँच राष्ट्रीय जीवन चरित्रों, पाँच राष्ट्रीय कथाओं और पाँच राष्ट्रीय सूक्ति-समूहों को संग्रहीत किया गया है। सरस्वती, प्रभा, संसार, कर्म-योगी, कर्मवीर, भविष्य, तिलक दर्शन से सामग्री संकलित है। —'प्रभा', नवम्बर, १९२१ : पृष्ठ ३२३।

३—'सरस्वती'—पुस्तक-परिचय, हिन्दी के सामयिक पत्र और पत्रिकायें—मई, १९२२; पृष्ठ ३६०।

'प्रभा' के कवियों ने प्रभा के आगमन को मंगल प्रद माना[१] और प्रभा-दान की प्रार्थना की।[२] 'प्रभा' जब प्रगति के सोपानों को पार करती हुई अपने जीवन के पंचम वर्ष में प्रविष्ट हुई; तब 'प्रभा' के एक अज्ञात कवि ने उसके लक्ष्य पूर्त्ति तथा जिजीविषा के लिए प्रार्थना की :—

'इसकी बाल्यावस्था की निर्दोषता बनी रहे,
इसकी ज्ञान पिपासा और मुमुक्षु-बुद्धि जागृति हो,
सोने की कण्ठी पर यह न ललच उठे,
अपनी निस्पृहता पर इसे गर्व न हो,
संसार के पतितों को यह राखी बाँधे,
माँ की सात्त्विक पूजा इससे बन पड़े,
तेरे आदेश का पालन होता रहे,
यही प्रार्थना है, साईं ![३]

'प्रभा' का इतिहास तथा कृतित्व इस बात का ज्वलन्त साक्षी है कि वह सोने की कण्ठी पर कभी भी नहीं ललची; परन्तु आर्थिक दुरावस्था से शनैः-शनैः ग्रस्त होने लगी। उस युग में (और आज भी) हिन्दी की कई पत्र-पत्रिकाएँ द्रव्याभाव, हमारी खरीदकर न पढ़ने की शाश्वत आदत और महँगेपन के कारण काल-कवलित हो जाती

१—'प्रभे ! तब आगम मंगल-कर हो,
वसुधा को आभा का वर दो ।।
अंचल अपना इधर बढ़ाओ,
तमोराशि को दूर भगाओ।
उदयाचल पर हंसने आओ,
पट खोलो, भगवान प्रभाकर का दर्शन सत्वर हो ।।"
—'कुसुम', 'प्रभा', छंद १, १ मार्च, १६२०; पृष्ठ ४२।

२—'भटक रही नैराश्य-निशा में प्रेम मार्ग बतला दीजै।
प्रभा-दान देकर दुनिया को प्रिय से भेंट करा दीजे ।।'
—दुर्गादत्त त्रिपाठी 'प्रभा', १ अक्टूबर, १६२१; पृष्ठ २११।

३—'प्रभा'—१ जनवरी, १६२४, मुख पृष्ठ, पृष्ठ १।

हैं।[१] 'प्रभा' की नौका भी, सन् १९२५ के मार्च से ही डगमगाने लगी थी। उसी समय श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' ने लिखा था :—

'प्रभा' मन्द पड़ गई प्रभा की, ग्राहक नहिं पतियाते हैं,
संचालक उपहार बांटकर, उसे चलाते जाते हैं।" [२]

अन्ततोगत्वा आर्थिक कठिनाइयों के कारण, अपने युग की श्रेष्ठ पत्रिका, सन् १९२६ में लखनऊ वाले सांप्रदायिक दंगे के साथ[३] बन्द हो गयी। श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने इसका बन्द होना सन् १९२३ ई० में लिखा है,[४] जो कि उचित नहीं। 'प्रभा' की प्रखर ज्योति के बुझ जाने पर श्री 'रमा' ने पुनः लिखा था :—

'बिना 'प्रभा' के अंधकार है, कैसे पंथ सुझावेगा।
राजनीति के मग में आगे, कोई नहीं बढ़ पावेगा।।'[५]

१—'हिन्दी जगत् में कार्य करने वालों का टोटा है। यही कारण है कि आज हम कई काम करने वाले पत्रों के बन्द होने का दुःखमय सम्वाद सुनाते हैं। 'सद्धर्म प्रचारक' बन्द हो गया, 'प्रभात' बन्द हो गया, 'उषा' बन्द हो गयी, दैनिक 'अभ्युदय' बन्द हो गया (और भी कितने ही पत्र बन्द हो गये) और इन सबकी हत्या का पाप उस हिन्दी संसार की गोदी की शोभा बढ़ा रहा है, जिसकी संख्या, भारत की पूरी संख्या का तीसरा भाग है। जिसकी भाषा भारत की राष्ट्र-भाषा है। जिसकी गोद सूर, तुलसी और हरिश्चन्द्र से सुशोभित हो चुकी है। पर इस दोष के दोषी वे लोग ही नहीं हैं जो पत्र खरीदकर नहीं पढ़ते, अधिक अंशों में वे लोग भी हैं जो पत्र सम्पादित करते हैं और प्रकाशित करते हैं।**** साहित्य का महँगापन, हमारे साहित्य का पहला दोष है—'प्रभा', विश्व की गति, यह क्या कर रहे हो ? भाग २, संख्या ४, आषाढ़ सं० १९७२ ; श्री माखनलाल चतुर्वेदी।

२—श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा'—अर्द्ध साप्ताहिक पत्र 'प्रणवीर', नागपुर; 'साहित्य संसार की होली', दिनांक ९-३-१९२५।

३—आचार्य शिवपूजन सहाय का मुझे लिखित दिनांक १०-१०-१९६१ का पत्र।

४—श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', 'प्रभा', पृष्ठ १९८।

५—'हिन्दी मनोरंजन'—'साहित्य संसार की होली', मार्च-अप्रैल, १९२७ ई०।

'प्रभा' का प्रकाशनावरोध तथा अभाव समस्त हिन्दी संसार को बुरी तरह खटका। हिन्दी पत्र कारिता की एक प्रभावोत्पादक ज्योति, चिरकाल के लिए विलीन हो गयी। उस युग की एक अन्य उत्कृष्ट पत्रिका 'इन्दु' ने लिखा था कि गत दस वर्षों में अनेक अच्छी पत्र-पत्रिकाओं के दर्शन हुए हैं। इनमें प्रभा, मर्यादा, माधुरी, साहित्य, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ललिता, मनोरमा, चाँद और साहित्य समालोचना मुख्य हैं। प्रभा और ललिता दो पत्रिकाओं की अपनी खास विशेषतताएँ थी। इन दोनों ने और विशेषतः पहली ने साहित्य का दायरा बढ़ाने में बड़ा काम किया, पर भूमि उपजाऊ न होने के कारण वे पनप न सकी और असमय ही सूख गईं।[१] 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवि श्री गणेश दत्त-शर्मा 'इन्द्र' ने लिखा है कि 'प्रभा' उन दिनों प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में विशिष्ट स्थान रखती थी। उन दिनों क्या, आज के युग में भी इतनी अच्छी सुसम्पादित पत्रिका दिखायी नहीं पड़ती। 'प्रभा' में साहित्य और राजनीति की जन्हुजा और रवि तनया की विमल धारा की भाँति महानदी प्रवाहित रहती है।[२] इन्हीं कारणों से 'प्रभा' के प्रति राष्ट्रीय कवियों का विशेष अनुराग तथा आकर्षण रहता था।[३]

इस प्रकार 'प्रभा' ने अपने कानपुर के छः वर्ष के लघु-जीवन में हिन्दी मासिक-पत्रकारिता को राजनैतिक दिशा प्रदान की और काव्य को राष्ट्रीय तथा गीतात्मकता के विह्वल स्वर।

———

१—'इन्दु'—आत्म निवेदन, सम्पादकीय, जनवरी, १९२७ ई०।

२—'वीणा', 'नवीन' स्मृति अंक, पृष्ठ ५४०।

३—'मेरी' कविता में दूसरे विद्रोह का सूत्रपात हुआ और अपनी पिछली अंगीकृत काव्यधारा में मुझे कुछ कमियाँ नजर आने लगी। मुझे 'सरस्वती' से 'प्रताप', 'प्रभा' आदि जैसे पत्र अधिक पसन्द आने लगे।'
—'अवन्तिका', श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', कवि-जीवन का आत्म संस्मरण, सितम्बर-अक्तूबर, १९५६, पृष्ठ ३२७।



पंचम अध्याय

पंचम अध्याय
'प्रभा' के कवि और उनका काव्य

विषय-प्रवेश:

'प्रभा' का जीवन-काल द्विवेदी-युग के अपराह्न से छायावाद-युग के उषः काल की समयावधि में परिव्याप्त है। एतदर्थ, 'प्रभा' के काव्य में द्विवेदी युगीन तथा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्राप्त होना, स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त, हमें यह भी भली-भाँति विदित है कि इस पत्रिका का मूलाधार राष्ट्रीय था; इसलिए 'प्रभा' के काव्य की मूल धारा राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता-धारा है। इसी धारा के एक विशिष्ट और प्रधान अंग के प्रतिनिधि के रूप में 'प्रभा' हमारे समक्ष आती है और इसकी ख्याति का प्रमुख कारण भी यही है।

सामान्यतया द्विवेदी-युग का आरम्भ सन् १६०० ई० से माना जाता है और हमारी पत्रिका के प्रकाशन का एक अध्याय, इसी युग के साथ संलग्न है। द्विवेदी-युग के प्रधान कवियों तथा लेखकों ने अपनी रचनाओं से खण्डवा की 'प्रभा' को सजाया था। इस युग की समाप्ति पर, सन् १६२० ई० में छायावाद युग ने अपनी आँखें खोली और कविताधारा ने नया मोड़ लिया। स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म को महत्त्व दिया गया और उपदेशात्मकता व प्रकथनात्मक विधि का स्थान भावनामयता एवं प्रगीतात्मक पद्धति ने ग्रहण किया। इसी युग के आरम्भ में, कानपुर की 'प्रभा' ने अपना कृतित्व प्रस्तुत किया और साहित्य की प्रगतिशील काव्यधारा में अपना योग-दान दिया। अपने युग का स्थूल व प्रत्यक्ष प्रभाव भी 'प्रभा' में विस्तार के साथ आ विराजा है। सामयिक व स्थायी देशभक्ति पूर्ण रचनाओं की संख्या भी इस पत्रिका में वृहत् राशि प्रस्तुत करती है। इन्हीं मूल व प्रधान रेखाओं के मध्यस्थ हमारा काव्य-विवेचन समाविष्ट है।

द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

द्विवेदी-युग के जिन कवियों ने इस काल-खण्ड की कविता-धारा का निर्माण किया; उन्हें ही सरलता के साथ 'प्रभा' का कवि माना जा सकता है। इस श्रेणी में श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, गिरिधर शर्मा, लक्ष्मीधर वाजपेयी, रामदहिन मिश्र, भीकाजी बिल्लोरे, हरिभाऊ उपाध्याय, बदरीनाथ भट्ट, सैयद अमीर अली 'मीर', लोचन प्रसाद पाण्डेय,

शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय 'मयंक', अनूप शर्मा, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी', कामताप्रसाद गुरु, 'परन्तप', द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', कृष्ण बिहारी मिश्र, शिवदास गुप्त 'कुसुम', जगदीश झा 'विमल', जगमोहन 'विकसित', भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि आते हैं। इस धारा के गौण कवियों में लक्ष्मी नारायण मिश्र 'श्याम', रूपनारायण पाण्डेय, 'नयन', मुंशीराम शर्मा 'सोम', दीनानाथ 'अशंक', चतुरसेन शास्त्री, हेमचन्द्र जोशी, सम्पूर्णानन्द, भगवन्त गणपति गोइलीय, जगन्नाथ शर्मा 'रसिकेश', पदुमलाल बक्षी, देवीदत्त मिश्र, भवानीशंकर याज्ञिक, मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, महेश्वर प्रसाद मिश्र, हरिपालसिंह 'क्षत्रिय', भगवान्नारायण भार्गव, कन्हैयालाल जैन, अचलेश्वर नाथ व्यास, रघुवंश लाल गुप्त, गुलाब रत्न वाजपेयी, श्रीरत्न शुक्ल, दिवाकर प्रसाद वर्मा, कृष्ण चैतन्य गोस्वामी, श्यामलाल पाठक, मौलाना फजलुल हसन हसरत, मोहानी, गुरु प्रसाद टण्डन, दराब खाँ 'अभिलाषी', ठाकुर प्रसाद शर्मा, इकबाल 'सेहर', दुर्गादत्त त्रिपाठी आदि की गणना की जा सकती है। 'प्रभा' के सर्व प्रधान कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त,[1] पं० माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के नाम आते हैं। गुप्त जी की कविताएँ सर्वाधिक संख्या में प्रकाशित हुई। इसके तदनन्तर 'एक भारतीय आत्मा' का क्रमांक आता है। चतुर्वेदी जी ने अपनी कविता 'पुष्पांजलि,[2] में गुप्त जी का अभिवादन किया है।[3] डॉ० गुप्त का मत है कि चतुर्वेदी जी ने इस कविता में कविवर मैथिलीशरण गुप्त की काव्य प्रवृत्तियों का स्वागत करते

१—'कितने प्रतिभाशाली लेखक या कवि हमारे साहित्य के मुख को उज्ज्वल कर रहे हैं। अन्य लेखकों के प्रति हमारा निरादर का भाव नहीं है, किंतु हमारी सम्मति में वर्तमान हिन्दी कवियों में प्रतिभाशाली पं० मैथिली शरण गुप्त और लेखकों में प्रतिभाशाली ठाकुर गदाधरसिंह हैं।'—'प्रभा', विविध विचार, ७ अप्रैल, १९१३; भाग १, संख्या १, पृष्ठ ५६।

२—'प्रभा'—'पुष्पांजलि', छंद ५, २५ फरवरी, १९१४; फाल्गुन शुक्ल १, सं० १९७०; पृष्ठ ६५७-६५८।

३—'वागीश्वरी सुत जानकर वात्सल्य युक्त रहती जहाँ;
है भव्य भारत-भारती भागीरथी बहती जहाँ;
अभिराम शोभा धाम श्रीवर राम के जो भक्त हैं,
श्री मैथिली पद शरण में भी गुप्त ही अनुरक्त हैं;
उन पर, सदन, तन, मन तथा जीवन, सभी कुछ दान हैं,
उस सरलता की मूर्त्ति को अगणित अशेष प्रणाम हैं!'
—'एक भारतीय आत्मा', 'प्रभा', छंद ५, २५ फरवरी, १९१४; पृ० ६५८।

हुए अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रतिपादित किया है कि काव्य में स्थूल मनोरंजन पर आधृत शृङ्गार रस की अपेक्षा मानव-हृदय का संस्कार करने वाले भावों का समावेश होना चाहिए।[1]

आख्यानक-निराख्यानक काव्य :

'प्रभा' में आख्यानक तथा निराख्यानक—दोनों प्रकार की कविताओं का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। द्विवेदी युग की कविता की प्रमुख विशेषता इतिवृत्तात्मकता मानी गयी है। इस आधार पर कवियों ने अनेक प्रकार के आख्यानों का चयन किया जिनसे वीरत्व, प्रेम, भक्ति, बलिदान आदि की पवित्र भावनाएँ सहज ही व्यक्त की जा सकती थीं। कथानकों में भी वीरतापूर्ण आख्यानों को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। इसके मूल में युग का प्रभाव भी आँका जा सकता है। 'प्रभा' के जीवन-काल में भारत की स्वतन्त्रता का प्रश्न द्रुत गति से अग्रसर हो रहा था। वातावरण में भी विक्षुब्धता थी। इस नाते, हमारे कवियों ने उपयुक्त और युगानुकूल कथानकों का अन्वेषण कर, उन पर ओजपूर्ण लम्बी कविताओं का निर्माण किया। इनमें आदर्श चरित्रों की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी और उनके कार्यों से, हमें प्रेरणा प्राप्त करने की शिक्षा भी दी गयी। इस प्रकार आख्यानक कविताओं में उपदेशात्मकता के अंश भी मिल जाते हैं जो कि इस युग की अन्य प्रमुख विशेषता थी। आदर्श पुरुष के चरित्र-गायन की ओर आचार्य द्विवेदी जी[2] ने भी संकेत किया था।

आख्यानक कविताओं में देश-विदेश की कथाओं को समाहित किया गया। मैथिलीशरण गुप्त के खण्ड काव्य 'वक संहार' का कुछ अंश 'प्रभा'[3] में प्रकाशित हुआ था। महाभारत के इस कथानक को लेकर गुप्तजी ने अपनी मान्यताओं के अनुकूल कुछ परिवर्तन भी किया है। महाभारत की ब्राह्मणी स्वयं मरने का प्रस्ताव करती हुई कहती है।

१—डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त—'आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त'।

२—'रसकुसुमाकर' और 'जसवन्त जसोभूषण' के समान ग्रन्थों की इस समय आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि आदर्श पुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी साहित्य को अलभ्य लाभ होता। —'रसज्ञ रंजन'; कवि कर्त्तव्य, पृष्ठ ५।

३—'प्रभा'—(क) १ मार्च, १९२०; छंद १८; पृष्ठ ६-८। (ख) १ अप्रैल, १९२०; छंद १९-३४; पृष्ठ २२-२४; (ग) १ मई, १९२०; छंद ३५-५४; पृष्ठ १०-११। श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'वक संहार' पुस्तक में ये अंश इन पृष्ठों में आये हैं: (क) पृष्ठ ५-११ (ख) पृष्ठ ११-१६; (ग) पृष्ठ १७-२३।

'उत्सृज्यापि हि मामार्य प्राप्स्यस्यन्यामपि स्त्रियम् ततः
प्रतिष्ठितो धर्मो भविष्यति पुनस्तव ।।
न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकृतां नृणाम् ।'[१]

परन्तु 'वक संहार' की ब्राह्मण-पत्नी की घोषणा में निश्चिन्त भाव हैं:—

'मैं एक तुम में रत यथा, तुम एक पत्नीव्रत तथा ।
मैं जानती हूँ, तुम कहो न कहो इसे ।'[२]

इस कथानक में कुन्ती के चरित्र और मानवीय उत्सर्ग भावना को व्यंजित किया है। इसी प्रकार छत्रपति शिवाजी,[३] श्री समर्थ रामदास स्वामी और छत्रपति शिवाजी,[४] स्वामी भक्त मंत्री,[५] वीर चण्ड का आत्म-त्याग,[६] वेन-विनाश,[७] श्री छत्र सालाष्टक,[८] स्वामिभक्ति और पितृ भक्ति, हिरण्य व प्रह्लाद की गाथा,[१०] हल्दीघाटी का ऐतिहासिक युद्ध[११] आदि कथांशों को कविता-बद्ध किया गया। विदेशी कथाओं में उत्तरी आफ्रिका के विशाल नगर कारथेज और उसके वीर सेनापति के बल का गुणगान

१—'महाभारत', आदि पर्व, अध्याय १५७, श्लोक ३५-३६ ।

२—'प्रभा'—१ अप्रैल, १९२० ; पृष्ठ २३ ।

३—छत्रपति शिवाजी का मनोमहत्त्व ; लोचन प्रसाद पाण्डेय, 'प्रभा' ; छंद १८, पृष्ठ ६१-६२ ।

४—'प्रभा' —श्री समर्थ रामदास स्वामी और छत्रपति ; हरिपालसिंह ; छंद १५, ३० अक्तूबर, १९१३ ; पृष्ठ ४४५-४४६ ।

५—'प्रभा'—स्वामी भक्त मंत्री, लोचन प्रसाद पाण्डेय, छंद ३७, ५ जून, १९१३ ; पृष्ठ १२५-१३० ।

६—'प्रभा'—वीर चण्ड का आत्म-त्याग ; द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' ; छंद ४१ ; १ फरवरी, १९२१ ; पृष्ठ ८६-९० ।

७—'प्रभा'—वेन विनाश, जून, १९२१ ; पृष्ठ ३६१-३६३ ।

८—'प्रभा'—श्री छत्रसालाष्टक, गुरुप्रसाद टण्डन, फरवरी, १९२५ ; पृ० १०२-१०३ ।

९—'प्रभा'—स्वाभिभक्ति और पितृभक्ति, श्यामसुन्दर खत्री ; छंद ६० ; २५ फरवरी, १९१४ ; पृष्ठ ६७५-६८० ।

१०—'प्रभा'—होली : समता की जय ; 'राष्ट्रीय पथिक', छंद २४, १ अप्रैल, १९२०, पृ०३२

११—'प्रभा'—हल्दीघाटी का एक दृश्य, भगवती प्रसाद वाजपेयी, मार्च १९२२, पृ० २३८-३९ ।

किया गया।[1]

इन आख्यानों में हमारे महापुरुषों की महिमा,[2] आत्मत्याग,[3] भारत-गौरव[4] सत्शिक्षा[5] आदि की पवित्र थाती भरी पड़ी है। अन्य वृत्तों में सीतान्वेषण[6] प्राचीन युद्ध,[7] वन-

---

१—'प्रभा'—'कारथेज-विध्वंस' 'परन्तप', छंद २५, १ जून, १९२०; पृ० ११-२१।

२—'गो, ब्राह्मण, अबला प्रतिपादक धन्य शिवाजी वीर!
हरते हैं तुम जैसे सुत ही मातृभूमि की पीर!
अतुलनीय है मित्र! शिवाजी का यह मनो महत्त्व!
मनुष्यत्व में देखो यह अमरत्वपूर्ण देवत्त्व॥'
—लोचनप्रसाद पाण्डेय, छंद १५, मई १९१३; पृष्ठ ६२!

३—'इतना था वह धन तब हो सकता था जिससे,
भामा 'शाह'!
बाहर वर्षों तक पच्चीस हजार मनुष्यों का निर्वाह।
तुझसे स्वामी भक्त चतुर मंत्री वर आत्मत्यागी वीर,
भारत में क्या दुर्लभ है इस वसुधा में भी धार्मिक धीर!!'
—लोचनप्रसाद पाण्डेय, छंद ३७, जून, १९१३; पृष्ठ १३०।

४—'भारत! सिवा तेरे किसे यह महत गौरव प्राप्त है?
सत्कीर्ति जिसको गगनवत संसार भर में व्याप्त है।
महिमा अनन्त दिगंत तक सन्तत विशद जिसने लही;
यह है पुनीत वही मही स्वर्गीय वसुधा जो रही॥'
—श्यामसुन्दर खत्री, छंद ५६, फरवरी, १९१४; पृष्ठ ६८०।

५—'भगवन! करके दया देश की दशा सुधारो;
आत्मत्याग का सुखद मंत्र सर्वत्र प्रचारो।
कलह-भाव हो दूर, ऐक्य का भाव प्रसारो;
डूब रहा मँझधार हिन्द को नाथ! उबारो।
स्वार्थ जाल को तोड़कर, पर-हित वाला तत्त्व दो।
पाले निज कर्त्तव्य सब; प्रभु सच्चा मनुजत्व दो॥'
—द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', छन्द ४१, फरवरी, १९२१; पृष्ठ ९०।

६—रामचरित उपाध्याय, छंद ५, फरवरी, १९४३; पृष्ठ ६४३।

७—रामचरित उपाध्याय, छंद २२, अगस्त, १९१३; पृष्ठ २४९-२५१-

विहंगम,[१] सीता का शोक और कुश का क्रोध ('रामचरित चिन्तामणि' से उद्धृत)[२], एक मूर्त्तिकार का आदर्श[३] आदि पौराणिक काल्पनिक कथा अंशों को सम्मिलित किया जा सकता है।

अपने युग की सामयिक प्रवृत्ति के अनुसार, हमारे कवियों ने महिलाओं के प्रति अपने सम्मान[४] व उनकी प्रगति-कामना की है। उनकी दृष्टि विधवा[५] पर भी गयी और उन्होंने नारी-जगत के प्रभावपूर्ण आख्यानों को भी अपनी कविता में आबद्ध किया। इस क्षेत्र में कवियों ने प्राचीन व वर्तमान इतिहास से कथा-सूत्र बटोरे और उनके आधार पर कृष्णाकुमारी[६], कृष्णा गीति नाट्य,[७] भारतीय बाला,[८] श्रीमती

१—रूपनारायण पाण्डेय, छंद १७, सितम्बर, १९१३ ; पष्ठ ३३६-३३८।

२—रामचरित उपाध्याय, छन्द २०, अगहन-पौष, सं० १९७२, भाग २, संख्या ९-१० ; पृष्ठ ४९३-४९६।

३—लक्ष्मीधर वाजपेयी, छंद १२, अप्रैल, १९१३ ; पृष्ठ १३-१४।

४—'दुःख-अश्रु उरस्थल सिंचित हैं ; विपदा तन में रंजित हैं।
वनिता हतमान अशिक्षित हैं, नर किन्तु प्रतिष्ठित शिक्षित हैं॥
इस कुस्थिति का अवसान करो।
महिला-गण का सन्मान करो॥'
—भगवानदास पाठक, महिलागण का सन्मान करो, छद १०, जनवरी, १९२० ; पृष्ठ ४९।

५—'सनकर पराग से जो, सुरभित कभी न होगी ;
वह वायु मानता हूँ॥
आमरण राग से जो, रंजित कभी न होगी :
वह आयु मानता हूँ॥
मरुभूमि है, कभी भी, जिस पर न घन घिरेंगे ;
मृतभाग्य वह शिखा है।
आजन्म फिर कभी भी, इसके न दिन फिरेंगे।
भगवान! क्या लिखा है ?'
—राजाराम शुक्ल, जुलाई, १९२२ ; पृष्ठ ४०।

६—लोचनप्रसाद पाण्डेय, छंद ३५, सितम्बर, १९१३ ; पृ० ३२६-३२७।

७—सियारामशरण गुप्त : (क) अप्रैल, १९२१; पृ० २१७-२२० ; (ख) मई, १९२१; पृ० २७६-२७९ (ग) जून, १९२१ ; पृ० ३३५-३३७।

८—'परन्तप', दिसम्बर, १९२०; पृ० ६४१-४४।

सरला देवी चौधरानी[१] आदि शीर्षक से कविताएँ लिखी। इन कथानकों में उदयपुर के महाराजा भीमसिंह की पुत्री कृष्णा के आत्मोत्सर्ग[२] और जलियाँ वाला बाग के हत्या-काण्ड में अपने पति के शव को ढूंढ़ती वीर महिला रतनदेवी[३] तथा असहयोग-आन्दोलन में चरखा को प्रश्रय देने व नारी समाज को जागृत करने वाली सती सरलादेवी चौधरानी[४] के आदर्श अंशों को वाणी प्रदान की गयी। इस उग्र पक्ष के अतिरिक्त, 'प्रभा' के कवियों ने नारी-जीवन के मर्म-पक्ष को भी स्पर्श किया जिसकी अभिव्यंजना प्रणय-पूर्ण काल्पनिक आख्यानों के द्वारा की गयी यथा कपोत-कपोती का प्रतीकात्मक-प्रेमपूर्ण

१—जगमोहन 'विकसित', चित्र पर लिखित कविता : अप्रैल, १९२१; पृ० २०५ व २०६ के मध्य।

२—'यह जाति-देश-हितैषिता तेरी अपूर्व, अनन्य है,
है नाम तेरा अमर, तू 'कृष्णाकुमारी' धन्य है।
तुझसी जहाँ, जिस देश में वर वीर बाला जात हो,
वह क्यों न इस संसार में वन्दित तथा विख्यात हो॥'
—लोचनप्रसाद पाण्डेय, छंद ३४, सितम्बर, १९१३; पृष्ठ ३२८।

३—'कहाँ है तानाजी, शिवराज ?
धनंजय कहाँ न पृथ्वीराज ?
जरा जर्जरित जटायु न आज।
बचे क्यों आर्यभूमि की लाज ?
नराधम से नाता है।
विनिष्ठुर बना विधाता है।' (रतनदेवी का विलाप)
—'परन्तप', छंद २९, दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३४३।

४—'मनुजता की छाती पर, देख निरंकुशता का निर्मम नृत्य।
सरलता भरा हृदय हिल गया, सहमकर, तड़पा कर कुकृत्य।
बजी जब, असहयोग की बीन, सुनाई पड़ी मधुर झंकार :
'न बिलखो, कटती हैं बेड़ियाँ और रह गये मास दो चार॥'
उठी तब अन्तर शक्ति पुकार—'कुशासन देने के पश्चात्
कुशासन की अर्थी बांधने—के लिये, देवि ! सूत लो कात।'
सती सरला देवी ! तू धन्य, झुकाकर इस निदेश पर माथ।
समर में बढ़ी ; देश के लिये ले लिया चरखा सादर हाथ॥'
—जगमोहन 'विकसित, अप्रैल, १९२१।

जीवन,[१] कुटियों की रानी[२] आदि। यह भी द्रष्टव्य है कि 'प्रभा' को श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान,[३] इन्दुबाला देवी बी० ए०[४] और श्रीमती कमला कुमारी[५] सदृश्या कवियत्रियों की रचनाएँ भी प्राप्त हुई थीं।

उपदेश तथा उद्बोधन :

'प्रभा' की कविताएँ उपदेशात्मकता की विशेषता से भी विभूषित हैं जो कि स्वतन्त्र अथवा कथा-प्रधान रचनाओं के माध्यम से व्यंजित हैं। आख्यानक रचनाओं के अन्त में भी, प्रायः कवियों ने, कुछ न कुछ उपदेश अवश्य ही दिया है। श्री रूपनारायण पाण्डेय ने 'वन विहंगम' कविता के कपोत-कपोती की काल्पनिक प्रेम-कथा के अन्त में हमें यह उपदेश प्रदान किया है :—

'प्रिय पाठक ! आप तो विज्ञ ही हैं,
फिर आपको क्या उपदेश करें ?
शिर पै शर ताने बहेलिया काल
खड़ा हुआ है यह ध्यान धरै ।।
दशा अन्त को होनी कपोत की ऐसी ;
परन्तु न आप जरा भी डरें।
निज धर्म के कर्म सदैव करैं ;
कुछ चिह्न यहाँ पर छोड़ मरें ।।'[६]

उपदेश जीवन के कई क्षेत्रों में दिया गया है यथा धर्म,[७]

१—रूप नारायण पाण्डेय, छंद १७, सितम्बर, १९१३ ; पृष्ठ ३३६-३३८।

२—लक्ष्मणसिंह, छंद ५०, फाल्गुन सं० १९७२ ; पृष्ठ ६०३-६०७।

३—(क) चिन्ता—जून, १९२१; पृष्ठ ३२५ (ख) चलते समय, सितम्बर, १९२२; पृष्ठ १६३ (ग) कलह कारण—अक्तूबर, १९२४; पृष्ठ २६२

४—(क) पूजा-प्रलाप—अगस्त, १९२३; पृष्ठ १३९ (ख) स्वागत-चिन्ता—दिसम्बर, १९२३; पृष्ठ ४५२।

५—अन्योक्ति—जून, १९२१ ; पृष्ठ ३४३।

६—छंद १७, सितम्बर, १९१३ : पृष्ठ ३३८।

७—'मैं सत्पुरुषों को सदा बड़ाई देता।
शुभ गुण उनके सब स्वीकृत मैं कर लेता ।।
पुत्रो ! शिक्षा मैं देता यही सदाई।
सब धर्म-सेवकों को समझो निज भाई ।।'
—श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र, धर्मों का अपार्थक्य,

सत्कर्म,[१] आयु,[२] साहित्य,[३] रीति-नीति,[४] कर्त्तव्य[५], विचार-स्वातन्त्र्य[६] आदि।

छंद, १५, मई, १९१३ ; पृष्ठ ९९ ।

१—'होती आयु विनाश है नित, लखो, जाता चला यौवन ।
आते लौट नहीं गये दिन कभी, है काल भू-रक्षक ;
लक्ष्मी तोय-तुरंग-तुल्य चपला, ज्यों चंचला जीवन,
सत्कर्मादिक भ्रात ! नित्य कर तू है धर्म्म ही रक्षक ।।'

—लोचनप्रसाद पाण्डेय, उपदेश माला, छंद ५, अप्रैल, १९१३ ; पृष्ठ ६९

२—'प्रिय युवको ! दो ध्यान, बात तुम इस मेरी पर,
तरुणावस्था सभी अवस्था से है सुखकर ।
जब तन में श्रम, शक्ति, स्वास्थ्य, दृढ़ता रहती है,
तब सब विधि धर्म-कर्म-वीरता हो सकती है ।।'

—शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, वृद्ध का पश्चात्ताप, छन्द १६, नवम्बर, १९१३; पृष्ठ ४८७ ।

३—'सब अंग साहित्य के, भली भाँति पुष्ट करो,
न्याय, नीति, काव्य, कला, विज्ञान, दर्शन, ज्ञान ।
कर दो—प्रयोग-शाला, विद्यालय, वेद शाला,
कल-कारखाने, आदि खोलने में—जीवदान ।।'

—गिरिधर शर्मा, काम करो, छंद ३, मई, १९१३ ; पृष्ठ १०३ ।

४—'मन सरलता, प्रण अटलता, सद्भाव, शुचिता, नीति,
करुणाधिपति विश्वेश के पद-पद्म में दृढ़ प्रीति ।'
हों इन गुणों से पूर्ण जो देवोपमान यथेष्ट
मानों उन्हें, प्रिय ! पूज्य, अनुकरणीय, मानव श्रेष्ठ ।।'

—माखनलाल चतुर्वेदी, नीति निवेदन, छंद ७, मई, १९१३; पृष्ठ १०७ ।

५—'कर्त्तव्य-शौर्य मुख-मण्डल पा चुका है,
उत्साह बाल ! हिय मध्य समा चुका है ।
बेटा उठो ! अब 'वही' कर के दिखा दो,
भावी समस्त जग को सुतता सिखा दो ।।'

—कृष्णचैतन्य गोस्वामी, पितृ-शिक्षा, छंद १३, जुलाई, १९१३; पृ० २१६ ।

६—'अब स्वातन्त्र्य विचार कार्य में अपने तुम लग सकते हो,
इस भारत-जननी को उन्नति पथ में पहुँचा सकते हो ।

उपदेश में ही उद्बोधन का गुण भी समाहित रहता है। 'प्रभा' के कवि समाज के प्रति सर्वथा उदासीन नहीं थे। उन्होंने वर्तमान समाज व राष्ट्र की परिस्थितियों का अवलोकन किया था और तद्नुकूल उद्बोधित भी किया। हम देखते हैं कि इस क्षेत्र में उन्होंने समाज की वास्तविक दशा से हमें परिचित कराया और अपने युगानुकूल दृष्टिकोण के अनुसार, उनका मार्ग-दर्शन भी किया। इस सम्बन्ध में कवियों ने व्यष्टि तथा समष्टि—दोनों—के पक्षों को स्पर्श किया। कहीं भजन करने का उपदेश दियागया;[१] कहीं जननि-मुख उज्ज्वल करने की सामयिक बात कही गयी।[२] कवियों ने युवकों को जागृत किया[३] और नयी किरण का अभिनन्दन किया।[४] नव-

---

क्यों निर्वीर्य बने बैठे हो, उठकर देशोद्धार करो !
करो न कुछ कर्त्तव्य-मूर्खता ! शुद्ध स्वतंत्र विचार करो ॥'
—महेश्वर प्रसाद मिश्र, छंद १०, दिसम्बर, १९१३ ; पृष्ठ ५३४ ।

१—'उठ ! उठ ! ! उठ ! ! ! जल्दी, त्याग दे मोह तन्द्रा,
अब निकट न लाना सृष्टि का पाँच-पन्द्रा,
सुन, शिर पर बाजा काल का बाजता रे !
भज मन ! अब सीताराम को नित्य प्यारे ॥'
—शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, छंद ७, अक्तूबर, १९१३; पृष्ठ ४५९ ।

२—'हुए क्या से क्या हो विधि-वश ? समाधान कर लो !
अवस्थाएँ सारी, हृदय भरके, ध्यान कर लो !
करो कर्त्तव्यों को, जननि-मुख को उज्ज्वल करो !
करो प्रेमाकांक्षा, हृदय अपना निर्मल करो ॥'
—महेश्वर प्रसाद मिश्र, उद्बोधन, छंद ७, अक्तूबर, १९१३; पृष्ठ ४२४ ।

३—'भ्रातृत्व भाव भर, शीघ्र स्वदेश जोड़ो,
हाँ, फूट का कठिन मस्तक आज फोड़ो।
विज्ञान, शिल्प, पढ़; होकर कर्म्मयोगी;
स्वाधीन तत्त्व समझो नव-नीति-भोगी।
भाग्य-प्रभाव-तरु को जड़ से उखाड़ो,
जागो, उठो, युवक ! जीवन को सुधारो ॥'
—गोकुलचन्द्र शर्मा, छंद ५, अप्रैल, १९१५; पृष्ठ ९६ ।

४—'भारतीयों ! अब उठो, सब सूर्य का स्वागत करो,
योग आ पहुँचा अनोखा, मूर्खता अब मत करो।

वर्ष[1] नूतन सन्देश लेकर आता है; अतएव हमारे कवियों ने उससे सुख-समृद्धि की कामना की।[2] हमारे कवियों को समाज-दुर्दशा का मूल कारण विदित था। श्रीधर पाठक ने देश की परतन्त्रता की ओर इस सम्बन्ध में संकेत किया है :—

'जहाँ मनुष्यों को मनुष्य-अधिकार प्राप्त नहिं,
जन-जन सरल सनेह सुजन-व्यवहार व्याप्त नहिं,
निर्धारित नर-नारि-उचित उपचार प्राप्त नहिं,
कलिमल मूलक कलह कभी होवे समाप्त नहिं,
वह देश मनुष्यों का नहीं, प्रेतों का उपवेश है,
नित नूतन अघ-उद्देश-थल, भूतल नरक-निवेश है।'[3]

हमारे कवियों को इस बात की भी गम्भीर चिन्ता थी कि धार्मिक भेद-भाव[4] अत्यधिक बढ़ गया है जिसके कारण भारत-माता को नित-नूतन यातनाएँ भोगनी पड़

अर्क के इस अर्क को बनो सच्चे अमर,
वीर माता, वीर बाला, वीर बालक, वीर नर।।'
—हेमचन्द्र जोशी, नव-ज्योति, छंद २, दिसम्बर, १९१३; पृष्ठ ५६६।

१—'नव वर्ष! गए शत वर्ष कई,
नव वर्ष हैं आये गये कितने?
कुदशा के हमारी, विशाल कराल,
तनाव हैं आज भी यों ही तने।।
जितनी तुमसे इस भारतवर्ष को,
आशा लगी, फल हों उतने।
बस 'जागृति' हो इस भारत में,
अजराजर नाम तुम्हारा बने!'
—श्यामसुन्दर खत्री व 'एक भारत सन्तान', छंद ७, मार्च, १९१५; पृ० ३६।

२—'हो हेमन्त-हेम से-व्याप्त—
पौरुष, कर्मयोगिता प्राप्त,
हो सचेष्ट सब जन तन मन से,
करें अनय अपकर्ष; आ नव वर्ष।।'
—मुंशीराम शर्मा 'सोम', छंद ३, मई, १९२५; पृष्ठ ३६३।

३—श्रीधर पाठक, कुदेश, छन्द २, ज्येष्ठ सं० १९७२, पृष्ठ १४१।

४—'जाना नहीं अच्छा कभी जैनियों के मन्दिर में,

रही है और हम स्वतंत्र विचार-चेता होने की अपेक्षा कोरे उपदेशक अधिक हो रहे हैं।[१]

व्यंग्य-काव्य :

'प्रभा' के कवियों ने अन्योक्ति, व्यंग्य आदि के माध्यम से भी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। ये व्यंग्य व्यक्ति परक तथा समाज-परक, दोनों हैं। इनमें राष्ट्र की पराधीनता पर भी आक्रोश प्रकट किया गया है। मृत फूल के माध्यम से वर्त्तमान परतन्त्र भारत का चित्रण किया गया[२] और गौरांग महाप्रभुओं पर भी अन्योक्ति

किसी भाँति अच्छी नहीं कृष्ण की उपासना !
शम्भु का स्मरण किये होना जाना क्या है कहो ?
राम नाम लेने से क्या सिद्ध होगी कामना !'
'बुरे हैं मुसलमान !', 'हिन्दू बड़े काफिर हैं !'
ऐसी ही परस्पर में जहाँ बुरी भावना।
प्रेम हो न आपस का; एका फिर क्यों कर हो ?
क्यों न भोगे हिन्द-माता नई-नई यातना !'
—गिरिधर-विनोद, गिरिधर शर्मा, छन्द २, नवम्बर, १९१३; पृष्ठ ४८०।

१—'अब, वेद, न ब्राह्मण, सूत्र तथो-
पनिषत्स्मृति शास्त्र कभी पढ़ते।
कहते—'पढ़ना अब शक्य नहीं–,
हमको कुछ 'टैम' नहीं मिलता !'
पढ़ना यदि शक्य न है; फिर भी–
करते न स्वतंत्र विचार कभी।
उपदेश परन्तु सदा करते;
इस योग्य अब हैं, हम क्या ?'
—भीकाजी बिलोरे, छंद ७ व ८, आषाढ़ सं० १९७२, पृष्ठ २१६।

२—'पर हा एक पथिक घुस आया, मुझे देखकर जी ललचाया,
अपने सुख के लिए दुष्ट ने, मुझे मिलाया धूल।
नष्ट किया सर्वस्व हमारा, छलिया छलकर किया किनारा,
हा ! क्या उस वैभव की बातें, सकता हूँ मैं भूल ॥
अलिगण ने भी अब मुख मोड़ा, ललित लता ने नाता तोड़ा,
होता हूँ पद दलित नाथ ! अब मेटो दुःख समूल ॥'
—हरिश्चन्द्र देव विद्यार्थी, अन्योक्ति, अक्तूबर, १९२०; पृष्ठ २१०।

लिखी गयी ।[१] हिन्दी के प्रश्न पर 'प्रभा' के कवि कितने सचेत व सतर्क थे; इसका एक दृष्टान्त निम्नलिखित पंक्तियों में प्राप्त होता है :—

'अँग्रेजी साहित्य का, नहिं है पारावार,
त्यों ही जर्मन, फ्रेंच का, नहिं मिलता है पार ।
नहिं मिलता है पार, जापानी का भी भाई ।
रहे तुम्हीं मुरदार, न जो हिन्दी जग छाई ।
सिद्धि करो, तज विकलता; अब भी, गिरिधर-मीत !
'मन के हारे हार है, मन के हारे जीत' ।'[२]

धार्मिक काव्य :

'प्रभा' के कवियों ने धर्म, प्रार्थना और भक्तिपरक कविताओं के द्वारा भी अपनी सहजाभिव्यक्ति की है । भक्ति की तन्मयता[३] तथा राम-भक्ति[४] की प्राप्ति को

१—'कोरे सुचिक्कन स्वच्छ कागज क्या तुझे ?
है हुआ अभिमान गोरे गात पर ।
कहता बुरा क्यों व्यर्थ काले रंग को,
ध्यान क्यों लाता नहीं इस बात पर—
तू जगत के हाट में बेकाम सा—
था पड़ा काली सियाही के बिना ।
श्यामता ने साथ है जब से दिया,
मूल्य तेरा हो गया है सौ गुना ।।'
—श्रीमती कमला कुमारी, अन्योक्ति, छंद १ व २, जून १९२१; पृष्ठ ३४३ ।

२—गिरिधर शर्मा, अन्योक्ति-विलास, छंद २, सितम्बर, १९१३; पृष्ठ ३१३-१४ ।

३—'भक्त भक्ति में लीन हो बनता है इस भाँति ।
घन गर्जन सुन नाचनी, ज्यों मयूर की पाँति ।।'
—बी० जी० बिलोरे, प्रार्थना, छंद १, जनवरी, १९१४, पृष्ठ ५२३ ।

४—'मैं चाहता हूँ नहिं राज्य-लक्ष्मी,
है एक इच्छा, मम पूर्ण हो, सो,
हे राम ! तेरे पद-पंकजों में,
निर्विघ्न सद्भक्ति रहै मदीय ।।'
—शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, कातर भक्त, छंद १५ वाँ, फरवरी, १९१४; पृष्ठ ६८४ ।

ही सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया गया। मैथिलीशरण गुप्त[१] ने परमात्मा के प्रति निवेदन के भाव को प्रदर्शित किया है और सियारामशरण गुप्त ने उनका अपने मानस में आह्वान किया :—

'यद्यपि अतिशय मालिन्य यहाँ है छाया,
है महामोह ने अन्धकार फैलाया।
लघुता में इसका साम्य न कोई पाया,
तिस पर मद-मत्सर निकट यहाँ बैठाया।
फिर भी दयालुता प्रभो ! आप दरसाओ,
आओ, आओ, इस मनोभवन में आओ।'[२]

इस युग में कवियों ने ईश्वर से अवतार लेने की प्रार्थना की;[३] मातृभूमि पर निज स्वत्व के लिए विनय प्रकट की[४] और सद्भावना की तान आलापी।[५]

१—'सर्वज्ञ, सर्वेश सदा स्वतंत्र,
तुम्ही चलाते यह विश्व यंत्र।
पाती तुम्हीं से गति गात्र-नाड़ी
मैं हूँ खिलौना, तुम हो खिलाड़ी।'
—सम्बन्ध, छंद ४ था, मार्च, १९१५; पृष्ठ ४१।

२—आह्वान, श्रावण—भाद्रपद, सं० १९७२; पृष्ठ २६६।

३—'नाथ फिर कब लोगे अवतार !
अच्युत अगम अधर्म मिटाने।
जग में सदाचार फैलाने !
इसी देश में प्रकट हुए विश्वम्भर बारम्बार॥'
—मन्नन द्विवेदी गजपुरी, छंद १ ला, अगहन—पौष, सं० १९७२; पृ० ४८२।

४—'चाहे अरि-बन्धन के लिए, ऐक्य भाव जोड़े न हम।
पर मातृभूमि पर भाग निज, कटकर भी छोड़े न हम॥'
—मैथिलीशरण गुप्त, प्रार्थना, जनवरी, १९२१; पृष्ठ १।

५—'रहें सौख्य से हिल मिलकर सब,
धरें आपका ध्यान।
विद्या प्रेमी बने सब जन, करें स्वार्थ बलिदान।
हरा भरा हो शीघ्र हमारा, भारत भूमि उद्यान॥'
—श्यामलाल पाठक, प्रार्थना, जून, १९२०; पृष्ठ १५।

विविध स्थूल विषय :

'सरस्वती' के कवियों के समान, 'प्रभा' के कवियों ने भी अनेक विषयों पर कविताएँ लिखीं। कवियों का दृष्टिकोण स्थूल था। यश[1] और उत्साह[2] का वर्णन किया गया।

त्याग[3] तथा परोपकार[4] के गुण-गान किए गए। एकत्व[5] और

१—'सारवान सर्वस्व तुम्हीं यश ! जगती तल पर ;
सबका ही है प्रेम-पात्र अविरल उत्तमतर।
सुकृति-वृक्ष-फल, कर्म्म-बाण का लक्ष तु ही है ;
आत्म प्रशंसित करने का वर पक्ष तु ही है।'
—श्यामसुन्दर खत्री, छद १ ला, जुलाई, १९१३ ; पृष्ठ २१९।

२—'मित्र सबका सार-मय उत्तर मनोहर है यही।
चाहिये 'उत्साह' जिससे कार्य शुभ होते सही॥
कार्य-कारिणि शक्ति का प्यार पिता 'उत्साह' है,
दुख, निराशा, भीरुता, चिन्ता-चिता; 'उत्साह' है॥'
—सैयद अमीर अली 'मीर', छन्द ७ वां, मई, १९१३; पृष्ठ ७६।

३—'पुष्प से तो मान था उद्यान का,
पुष्प ही तो प्राण था उद्यान था।
किन्तु उसने पुष्प जग को दे दिया,
और काँटों को हृदय में रख लिया !'
—पदुमलाल बक्षी, त्याग, छन्द १ ला, फाल्गुन सं० १९७२ ;
पृष्ठ ६००।

४—'द्विरेफ पाता मकरन्द पुष्प से, कदापि देता उसको न मूल्य है।
निमग्न यों ही रहता विनोद में, परोपकाराय सतां विभूतयः॥'
—भगवान्नारायण भार्गव, छन्द ३ रा, श्रावण—भाद्र पद,
सं० १९७२; पृष्ठ ३४१।

५—'भाई ! अनोखा मति-मोह-नाशी ;
पवित्र-प्रेमांकुर का विकासी।
स्वदेश-कल्याण-विधान-यत्न,
'एकत्व' है एक अपूर्व रत्न॥'
—श्रीकृष्ण चैतन्य गोस्वामी, अनुरोध, छन्द १ ला, आषाढ़,
सं० १९७२ ; पृष्ठ २३३।

स्वार्थ[१] की विशेषताओं का निरूपण किया गया। सादगी की महत्ता का आकलन, 'हरिऔध' जी की इन पंक्तियों से होता है :—

'क्या हुआ उच्च वंश में जनमे, जो जँचा जी में पाप का कूँचा।
नीचे कुल का हुए न कुछ बिगड़ा, जो हृदय हो महान औ ऊँचा॥
कब भला ठाट है अमीरी का, ऐंठ जिसमें विकास है पाती।
सादगी है कहीं भली, जिसमें, है सुजनता झलक दिखा जाती॥'[२]

प्रेम[३] भी कविता का वर्ण्य-विषय बना। उसे विश्व व्याप्त तत्व माना गया[४] और उसी के ही बन्धन में समस्त चराचर बँधे हैं।[५] श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र 'श्याम' ने अपनी एक काल्पनिक प्रणय पूर्ण कहानी से युक्त 'स्वप्न' शीर्षक कविता में, प्रेम के प्रणय-पक्ष को मानव-जीवन का सार प्रदर्शित किया है :—

१—'अब चतुर्दिक स्वार्थ! तूती बोलती—
एक तेरी; अब न तुझ सा अन्य है।
वायु तेरा है सँदेसा डोलती;
विश्व के सम्राट्! तुझको धन्य है॥'
—भगवन्त गणपति गोइलीय, छन्द ४ था, दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३५८।

२—अयोध्यासिंह उपाध्याय, जो टटोलो (चतुष्पद), छन्द ४ था व ५ वां, आश्विन, सं० १९७२; पृष्ठ २६८।

३—'लोक में साधनों का यही हेतु है,
सिन्धु संसार का एक ही सेतु है।
प्रेम ही यज्ञ है, प्रेम ही दान है;
प्रेम ही ध्यान है, प्रेम ही गान है॥'
—हरिपालसिंह, छंद ४ था, अप्रैल, १९१५; पृष्ठ ११४।

४—'है कौन सा तत्त्व, जो सारे भुवन में व्याप्त है,
ब्रह्माण्ड पूरा भी नहीं जिसके लिये पर्याप्त है?
है कौन सी वह शक्ति, क्यों जी! कौन सा वह भेद है?
बस, ध्यान ही जिसका मिटाता आपका सब शोक है,
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है॥'
—माखनलाल चतुर्वेदी, छंद १ ला, सितम्बर, १९१३; पृष्ठ ३०४।

५—'यों चराचर जीव सब हैं 'प्रेम-बन्धन' में बँधे।
जन्म ही से प्रेम के दृढ़ पाश में जाते फँदे॥
भाइयों! संसार में सत्प्रेम क्या ही रत्न है।

'जैसे सरिता नीर बिना, बिन तड़िता पावस-घन है।
जैसे सविता तेज बिना, बिन दुहिता, रम्य अयन है॥
जैसे ज्योत्स्ना बिना चन्द्र, मृदु-गन्ध विहीन सुमन है।
तैसे बिना प्रणय जग में, निष्प्रभ मानव-जीवन है।'[1]

अन्य स्थूल विषयों के समान, कविता के विभिन्न पार्श्वों पर भी रचनाओं का निर्माण किया गया। कविता-सरस्वती की विनम्र प्रार्थना गायी गयी;[2] कवि की प्रशस्ति की गयी[3] और लेखनी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया।[4] स्थूलता से नीचे उतर-कर भाव-पक्ष का भी विश्लेषण किया गया।[5] श्री मैथिलीशरण गुप्त को 'सम्पादक

सन्त जन सन्तत इसी की प्राप्ति-हित कृतयत्न हैं॥'
—पं० केशवानन्द चौबे और पं० मुकुटधर शर्मा, छंद ९ वां, अप्रैल, १९१३; पृष्ठ ३९।

१—छन्द ४ था, नवम्बर, १९२१; पृष्ठ २८९।

२—'अये मनोज्ञे कविता-सरस्वती !
सदा मनोवांछित मोह-दायिनी॥
महत्त्व-पूर्णे ! कवि-कीर्त्ति वर्द्धिनी;
लघुत्व में भी, प्रभुता विधायिनी॥'
—प्रेमदास वैष्णव, छंद प्रथम, ज्येष्ठ सं० १९७२; पृष्ठ १९४।

३—'जय हितकारी-वाणी-भव्य वक्ता महान्।
जय जय प्रतिमाढ्ये ! सर्व गामी ! सुजान !
जय गुणनिधि ! सिद्धि ! सौम्य ! सत्कीर्त्ति ग्राम !
जय जग उपकारी ! पूज्य ! साहित्य-धाम !'
—शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, छंद प्रथम, अगस्त, १९१३; पृष्ठ २७५।

४—'सम्मुख लाकर रख देती है, अन्तस्थल अन्तस्थल से,
किये हुए है मुग्ध सभी को तू किस कौशल से, बल से ?
श्री वाल्मीकि, व्यास के तूने दर्शन हमें कराये हैं,
कालिदास से, और भास से रस-भण्डार भराये हैं।'
—सियारामशरण गुप्त, मई, १९२२; पृष्ठ ३४९।

५—'भाव का मृग क्यों भाग रहा ?
कवि कुल पंडित कविता पति ने, संविता शक्ति त्रिशूल।
खेल खेल में हन्त, आज यों दिया अंग में हूल॥
अलंकार से रस अर्थ कामिनी भूषित वीणा-कूक।'

और लेखक'[१] शीर्षक व्यंग्य-कविता में काव्य-रचना को पत्र-सम्पादक के आग्रह मात्र अथवा प्रलोभन विशेष के वशीभूत न मानकर अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिभा के तत्त्व को ही घोषित किया है।[२] गुप्त जी ने अपनी 'कविता' में अलंकारों की अपेक्षा हृदय-दान अथवा रसानुभूति पर अधिक जोर दिया है।[३] काव्य-कुंज में विचरण को शान्ति व अद्भुत सुख का स्रोत माना गया।[४] इस प्रकार 'प्रभा' के कवियों ने कला-पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया। हिन्दी भाषा, जिसमें काव्य-रचना कर हमारे कवि गौरवान्वित हुए, की समृद्धि[५] की कामना की और उसके भक्तों को ही, श्री 'अभिलाषी' ने, 'माता के कण्ठके हार' माना :—

'बकते नहीं हैं, काम कुछ करके दिखाते हैं,
हिन्दी स्व-मातृ भाषा को आशा जगाते हैं।
मोटे स्वदेशी वस्त्रों से नाता लगाते हैं,
आजाद हिन्द हो यही मन से मनाते हैं।
'अभिलाषी' पगे धर्म में जिनके विचार हैं,
वे मातृभूमि कण्ठ के छविद्वार-हार हैं।।'[६]

हिन्दी काव्य के प्रमुख स्तम्भ 'तुलसी'[७] तथा 'मतिराम और

विवर-बन्ध से विगल हुई बस हुई मूक, दो टूक।।
चमत्कार मय चपल बिज्जु थे दृष्टि वृष्टि तम पुंज।
हुई और नीरवता जागी कर निनादमय कुंज।।'
—ब्रह्मेश्वर शर्म्मा, भाव-मृग, जुलाई, १९२४; पृष्ठ ४७।

१—मई, १९२३ ; पृष्ठ ४००।

२—डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त—'आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त,' मैथिलीशरण गुप्त; पृष्ठ १८९।

३—श्रावण-भाद्र पद, सं० १९७२ ; पृष्ठ ३१७।

४—दशरथ बलवन्त जाधव, काव्य-कुंज, श्रावण भाद्रपद, सं० १९७२; पृ० २९८।

५—महेश्वर प्रसाद मिश्र, अवनत-अवस्था, ज्येष्ठ सं० १९७२ ; पृष्ठ १६५-१६६।

६—जुलाई, १९२१; पृष्ठ ४३।

७—'पूरण प्रभाकर प्रभा समान तुलसी जी,
पावन प्रमोद प्रेम पंथ परखैया थे।
राम रणधीर श्याम शोभित शरीर, वीर,
भक्ति भाव भूषित सुभावना भरैया थे।।'

भूषण'[१] पर भी कविताएँ लिखी गयी।

द्विवेदी युगीन काव्य-प्रवृत्तियों के दो सामान्य रूप आलोच्य कवियों के काव्य में और भी प्राप्त होते हैं : एक तो चित्रों के आधार पर कविता-लेखन और दूसरा नाना स्थूल कल्पनाओं व उपमानों के सहित किसी विषय का प्रस्तुतीकरण। प्रायः समस्त आख्यानक कविताएँ सचित्र प्रकाशित हुई थी। चित्रों के आधार पर एकाधिक कविताओं का निर्माण किया गया जिसमें कवियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण तथा सूझ-बूझ का सम्यक् परिचय दिया। कतिपय कविताएँ इस ढंग की भी लिखी गयी जिनमें नाना उपमानों, रूपकों अथवा उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया गया। इस श्रेणी की रचनाओं के अन्तर्गत श्री रामदहिन मिश्र की 'रति या रामा,'[२] श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'आँसू', [३] श्री दीनानाथ 'अशंक' की 'तारे'[४] आदि कविताओं की गणना की जा सकती है। मिश्र जी अपनी कविता 'रति या रामा' में लिखते हैं :—

'भूतल पर क्या स्वर्ग-धाम से गिरी 'परी' है।
चलती-फिरती कान्तिमयी क्या फूल छरी है॥
गन्धर्वी क्या यक्ष-बहू किन्नरी नरी है।
मुक्ता-फल को निरी खरी क्या सरस लरी है॥'[५]

प्रकृति-चित्रण :

'प्रभा' के काव्य में प्रकृति का लावण्य भी बिखरा पड़ा है। कवियों ने इसके चित्रण की कुछ विशिष्ट पद्धतियाँ अपनायी हैं। यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवियों का प्रकृति के प्रति स्थूल दृष्टिकोण ही प्रमुख था। प्रकृति पर लिखित कविताओं को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। भाव की दृष्टि से प्रकृति

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', छन्द प्रथम, सितम्बर, १९२२; पृष्ठ २१०।

१—'काव्य-ब्रह्माण्ड के उठाने को, बन्धु दो तारे हो गए क्षण में।
छोड़ सहवास जा बसे ध्रुव से, एक 'उत्तर' में एक 'दक्षिण' में॥
एक 'नौरंग' में रंगा जाकर, एक 'सौरंग' में समाया है।
एक श्रृंगार शान्त का साथी है, एक को रौद्र वीर भाया है॥'
—अनूप शर्मा, छन्द ६ व ७ वां, जुलाई, १९२४; पृष्ठ २३।

२—छन्द ४, दिसम्बर, १९१३; पृष्ठ ५४७।

३—छन्द ५, चित्र पर लिखित कविता जून, १९२०; पृष्ठ ४८ व ४९ के मध्य।

४—छन्द ८ वाँ, दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३५२।

५—छन्द २ रा, दिसम्बर, १९१३; पृष्ठ ५४७।

का दो-दो रूपों में वर्णन किया गया : एक तो भाव-चित्रण और दूसरा रूप-चित्रण। भाव-चित्रण में कवि का भाव-तत्त्व भी मुखर हो पड़ता है :

'हँस हँस कर ये मर जावेंगे, खिलखिलाकर ये झड़ जावेंगे,
कैसा जीना, कैसा मरना, जब तक रहना, हँसते रहना।
हँसना इनसे मैं सीखूँगा, तेरे बगीचे में बैठूँगा,—
दरवाजे को खोल दे माली, मुझे बुलाती डाली डाली ।।'[१]

कला-चित्रण में कवि, एक कुशल चितेरे की भाँति, दृश्यांकन करता है :—

'ऊपर नभ नीलाभ रक्त रवि बिम्ब विराजित।
ककुभ परम रमणीय राग द्वारा आरंजित।
नीचे पुलकित हरित लता तरु पूरित भूतल।
नव श्यामल तृणराजि बड़े कमनीय फूल फल।
बहु विकच सरोरुह से लसित कान्त केलि युग बत बलित।
कलकल कल कलरव मुखरिता सरिक लिन्द तनया कलित ।।'[२]

दूसरी ओर हम प्रकृति के मृदुल-मधुर और उपदेशात्मक चित्र भी देखते हैं। प्रकृति के कोमल अंगों के उद्घाटन में उसका नैसर्गिक सौन्दर्य निहित है :—

'वसन्तोपम हरियाली है; अमल-अम्बर में लाली है।
सलिल की छटा निराली है; अनिल मन हरने वाली है।
प्रकृति अति रंग रंगीली है ; प्रकाशित प्रभा छबीली है।'[३]

उपदेश-वृत्ति सर्वत्र छायी थी। यह अपने युग के धर्म-प्रचारकों की देन थी। प्रकृति भी इसी रग में रंग गयी है :—

'देखकर उन्नति दिवाकर की, कमल-वन खिल गया।
मिल गया अलिगण उसे, कैरव-कलेजा हिल गया।
टल गया नक्षत्र-चय भय से छिपे जा चूक भी,
दुष्ट जन पर की भलाई देख सकते क्या कभी ?'[४]

१—वंशीधर विद्यालंकार, फूलों की बहार, छन्द ६ वां, फरवरी, १९२५; पृष्ठ ११२।

२—अयोध्यासिंह उपाध्याय, कमल-लीला, छन्द प्रथम, जनवरी १९२३; पृष्ठ ६३।

३—राजाराम शुक्ल, कालिन्दी तट, छन्द प्रथम, दिसम्बर, १९२२; पृष्ठ ४१५।

४—रामचरित उपाध्याय, प्रभात, छन्द ६ वाँ, जुलाई, १९१३; पृष्ठ २०४।

'प्रभा' के काव्य में कोमल-मृदुल चित्रों का ही प्राधान्य है; भयंकर—उग्र चित्रों का प्राय: अभाव।

प्रकृति का चित्रण, दृश्य-दर्शक-सम्बन्ध सूचक और तादात्म्य-सूचक भी किया गया। कवि अपने को भिन्न मानकर, प्रकृति की दृश्य-दर्शक-सम्बन्ध-सूचक चित्रण करता है :—

'झरने झरने की कहीं झंकार, फुहार का हार विचित्र ही था;
हरियाली निराली, न माली लगा,
फिर भी सब ढंग पवित्र ही था।
ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था;
बस, जान लो, सात्विक सुन्दरता,
सुख संयुत शांति का चित्र ही था।।'[१]

तादात्म्य-सूचक प्रकृति-चित्रण में कवि ने अपने हृदय की अभिव्यक्ति की:—

'प्रकृति की उमंग, नील नभ के भू भंग,
विश्व-वीणा की तरंग, रुको, यों ही चले जाते हो!
मम हृदय शून्य, शान्त, फिरो यही क्यों न भ्रान्त,
मुझे देख क्यों यों क्लान्त, दो अश्रु नहीं बहाते हो?'[२]

प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन के रूप की भी व्यंजना की गयी :

'उमड़ि उमड़ि घन बरसन आवैं।
शरद ताप सन्तप्त भूमि में शीतल पवन बहावै।।
अलसित हिय हर्षित सुख संकुल हँसि-हँसि घनहि बुलावै।
तुव दर्शन आनन्द भरत हिय, गर्जन मनहि लुभावै।।
शरद-श्याम-घन नभहिं सजावै, रवि नहि कमल लजावै।
दीन कृषक के कर्ण कहावत सूखन धान न पावै।।...'[३]

प्रकृति का उद्दीपक रूप, हमारे मानस में नाना भावों की सृष्टि करता है :

'अहा! यह कैसा रम्य प्रभात।
लाया जो स्वर्गीय ज्योति और नवोत्साहप्रद वात।।

१—रूपनारायण पाण्डेय, वन-विहंगम, छन्द ४ था, सितम्बर, १९१३; पृष्ठ ३३६।

२—राजबहादुर, बादल, मार्च १९२२.; पृष्ठ २११।

३—वीरेन्द्र विद्यार्थी, शरद-श्याम-घन, नवम्बर, १९२१; पृष्ठ २६५।

भक्ति शांति के हिलकोरे दे खोला हृदय कपाट ।....'[१]

आलोच्य काव्य में प्रस्तुत-विधान की ही सामान्यतया प्रमुखता दिखायी देती है; अप्रस्तुत विधान स्वल्प मात्रा में ही उपलब्ध होता है। प्रस्तुत-विधान का दृष्टान्त अधोलिखित पद्यांश में प्राप्त हो सकता है :—

'हरी ये दूब की क्यारी, हरे पौधे, हरी बेले—
कली पर भटकते भौंरे, सुनाते राग अलबेले।
नजारा एक कुदरत का, अनूठा आँख में छाया।
अरे ! गुलशन है वाकै यह, खुदाई का नमूना या ?'[२]

प्रकृति के चित्रण के अप्रस्तुत-विधान में व्यंजकता तथा रमणीयता का उत्कर्ष अधिक मिलता है :—

'हीरक हार गले में डाले
घन-घूँघट से बदन निकाले;
व्योम-अटा पर विहँस रही थी चन्द्र कला अभि राम ॥...'[३]

काव्यानुवाद :

द्विवेदी-युग में काव्यानुवाद का कार्य भी विपुल रूप में सम्पन्न हुआ था। इस क्षेत्र में 'प्रभा' ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य-भूमिका का निर्वाह किया। 'प्रभा' के समूचे अनुवाद-कार्य पर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि इस क्षेत्र में दो प्रकार के कृत्य सम्पन्न हुए : एक तो मर्मस्पर्शी अथवा प्रभावोत्पादक भावों को ग्रहणकर, उनके आधार पर कविताओं का सृजन किया गया और दूसरे, व्यवस्थित रूप में काव्य-ग्रंथों कि आँशिक अनुवादों को प्रकाशित किया गया। संस्कृत, बँगला तथा अंग्रेजी के काव्यानुवाद ही इस पत्रिका में आ पाए। पंडितराज जगन्नाथ के 'भामिनी-विलास' के तृतीय विलास का अनुवाद 'वामा-वियोग' के नाम से, न० प० मिश्र और रामदयाल तिवारी ने प्रस्तुत किया।[४] इसका एक रूप द्रष्टव्य है :—

'कनक-प्रभा सी कान्ति और निर्मलता तुझ में—
देव अग्नि की शिखा हुई लज्जित अति मन में ॥

१—'हृदय', 'प्रभात,' मई, १९२०; पृष्ठ १७।
२—हरिभाऊ उपाध्याय, गुलशन, अगस्त, १९२४; पृष्ठ ९८।
३—'कुसुम', जागरण, छन्द २ रा, मई १९२३ ; पृष्ठ ३९३।
४—१८ छंद, ७ मई, १९१३; पृष्ठ ८३-८४।

इसीलिये कर रोष तुझे उसने दाहा है।

कमल नयनि ! तव घात अनल ने आज किया है।'[१]

किरातार्जुनीय के आधार पर, कृष्ण चैतन्य गोस्वामी ने 'कृष्णा' की कोपोक्तियाँ' शीर्षक लम्बी आख्यानक कविता लिखी।[२] एक संस्कृत श्लोक के भावानुवाद के रूप में, रामस्वरूप गुप्त ने 'आदर्श अर्थ पिशाच' कविता की रचना की।[३] प्रत्येक दृष्टिकोण से हिन्दी भाषा-भाषी, वंग-भाषा-भाषी के निकट रहे हैं। बंग-साहित्य का अनुवाद हमारे यहाँ अधिक हुआ ; द्विजेन्द्रलाल राय के स्वर को लेकर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में मातृ-भूमि की वन्दना की :—

बन्दूँ मैं अमल कमल, चिर सेवित चरण युगल—

शोभामय शान्ति पाप ताप हारी, मुक्त बन्ध, घनानन्द मुद मंगलकारी।

वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।

जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥'[४]

बंग-काव्य के अनुवाद में मैथिलीशरण गुप्त ने अभूतपूर्व कार्य किया है। 'प्रभा' में प्रकाशित उनके अनुवाद-अंश 'मधुप' के नाम से छपे। बंग-भाषा के बायरन[५] श्री नवीनचन्द्र सेन के 'पलाशीर युद्ध' का अनुवाद गुप्त जी ने 'पलासी का युद्ध' शीर्षक पुस्तक के रूप में किया। इसका एक अंश 'रानी भवानी की वक्तृता' शीर्षक से 'प्रभा' में प्रकाशित हुआ जिसमें मुर्शिदाबाद के जगत सेठ के मन्त्रणागार में जगत सेठ, मीर जाफर, रायकृष्णचन्द्र और रानी भवानी इत्यादि नवाब सिराजुद्दौला को राज्यच्युत करने के लिए मंत्रणा करते हैं।[६] नवीनचन्द्र सेन ने यह रचना राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर की थी। मैथिलीशरण जी का भी यह स्वानुभूत विषय है। इसीलिए यह अनुवाद इतना भाव-प्रवण बन सका है। सौरस्य की दृष्टि से पलासी का युद्ध मूल से किसी प्रकार भी कम नहीं है।[७]

बंगभाषा के महाकवि माइकेल मधुसूदनदत्त की अमर रचनाएँ 'वीरांगना'

१—वही, छंद १५ वाँ, पृष्ठ ८३।

२—२५ छंद, ज्येष्ठ सं० १९७२; पृष्ठ १७१-१७४।

३—दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३६४।

४—छंद प्रथम, जून, १९२०; पृष्ठ ४०।

५—बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, 'पलासी का युद्ध'; समालोचना; पृष्ठ ४१।

६—छंद १-३९, जनवरी, १९२०; पृष्ठ ९-११।

७—डॉ० उमाकान्त—'मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता'; पृष्ठ ३४२।

तथा 'मेघनाद-वध' के अनुवाद भी गुप्तजी ने किए। 'वीरांगना' के सम्बन्ध में कहा गया है कि वीरांगना काव्य में मेघनाद-वध और व्रजांगना का संयोग-सूत्र और मधुसूदनदत्त की प्रतिभा के गम्भीर और कोमल अंशों का संगम-स्थल है। सुप्रसिद्ध रोमन कवि ओविड (ovid) की वीर पत्रावली (Heroic Epistles)[१] के आदर्श पर मधुसूदन ने अपनी वीरांगना की रचना की है। गुप्तजी के 'वीरांगना' के दो पत्र—दशरथ के प्रति कैकेयी[२] और लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा[३]—इस पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। जहाँ 'दशरथ के प्रति कैकयी' को अनुयोग-पत्रिका[४] माना गया है; वहाँ 'लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा' को प्रेम-पत्रिका।[५] वीरांगना की अनुयोग-पत्रिकाएँ बहुतों के मत से इस काव्य में सर्वोत्कृष्ट हैं।[६] गुप्तजी ने लिखा है कि अनुवाद में जहाँ तक हो सका है, मूल के क्रम की रक्षा करने का यत्न किया गया है।[७] इसके लिए निम्न निदर्शन पर्याप्त है :—

'ए कि कथा शुनि आज मथरार मुखे
रघुराज ? किन्तु दासी नीचकुलोद्भवा
सत्यमिथ्या ज्ञान तार कभु न सम्भवे
कहो तुमि के न आजि पुरवासी यत
आनन्द-सलिले मग्न ? छड़ाइछे केह
फूल-राशि राजपथे, केह बागांथिछे
मुकुल-कुसुम-फल-पल्लवेर माला
साजाइते गृहद्वार—महोत्सवे येन
केन वा उड़िछे ध्वज प्रति गृह चूड़े ?'[८]

अनुवाद—

'मैं यह क्या सुनती हूँ मन्थरा के मुख से,

१—श्री योगीन्द्रनाथ वसु, 'वीरांगना', आलोचना; पृष्ठ ११४।

२—गुप्तजी की 'वीरांगना', सितम्बर १९२०; पृष्ठ १४७-१४९।

३—गुप्तजी की 'वीरांगना' पुस्तक में पंचम सर्ग; पृष्ठ ४५-५२, नवम्बर, १९२०।

४—श्री योगीन्द्रनाथ वसु, वीरांगना, आलोचना; पृष्ठ ११७।

५—वही; पृष्ठ ११६।

६—वही; पृष्ठ १३०।

७—वही; निवेदन; पृष्ठ ४।

८—वीरांगना काव्य, सम्पादक ब्र० वन्दोपाध्याय तथा सं० दास; पृष्ठ २७।

आज रघुराज ? किन्तु दासी नीच कुल की
वह है, विचार सच-झूठ का उसे कहाँ ?
तुम बतलाओ सब पौरजन आज क्यों—
मोद जल में हैं मग्न ? कोई राज-पथ में,
छींटता है फूल, कोई गूंथता है मालाएँ,—
फूल-फल-पल्लवों से, द्वारों के सजाने को
मानो महाउत्सव में, और उड़ते हैं क्यों
प्रति गृह शीर्ष पर केतु ?............।'[१]

'मेघनाद वध' की रचना से ही मधुसूदन दत्त उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े प्रतिभाशाली और युग प्रवर्त्तक पुरुष माने गए हैं।[२] सुप्रसिद्ध महात्मा परमहंस रामकृष्ण देव ने भी कहा था कि तुम्हारे देश में यह एक अद्भुत प्रतिभाशाली पुरुष उत्पन्न हुआ था। मेघनाद-वध जैसा काव्य तुम्हारी बंगभाषा में तो है ही नहीं, भारतवर्ष में भी इस समय ऐसा काव्य दुर्लभ है।[३] इस काव्य के तृतीय सर्ग का अनुवाद 'प्रमीला का लंका प्रवेश'[४] शीर्षक से और नवम सर्ग का अनुवाद,[५] 'प्रभा' में प्रकाशित हुआ था। श्री योगीन्द्रनाथ वसु ने लिखा है कि 'प्रमीला-चरित ही मेघनाद-वध में एक नूतन और मधुसूदन में कल्पना-कानन का सर्वोत्तम पुष्प है। × × × बहुतों की राय में 'मेघनाद वध' काव्य में तीसरा सर्ग ही सर्वोत्कृष्ट है।'[६] 'प्रभा' के सम्पादक ने नवम सर्ग के विषय में लिखा है कि मधुपजी के सदृश काव्यमर्मज्ञों की राय में इस सर्ग

१—सितम्बर, १९२०; पृष्ठ १४७।

२—श्री मैथिलीशरण गुप्त 'मेघनाद-वध', निवेदन; पृष्ठ ९।

३—श्री मैथिलीशरण गुप्त 'मेघनाद-वध', निवेदन, पृष्ठ १३।

४—(क) सितम्बर, १९२१; पृष्ठ १५५-१५९; (ख) अक्तूबर, १९२१; पृष्ठ २१५-२१८।
गुप्तजी के 'मेघनाद-वध' में ये अंश निम्नलिखित पृष्ठों में प्रकाशित हुए हैं:—
तृतीय सर्ग : (क) पृष्ठ २२४-२३४; (ख) पृष्ठ २३५-२४६।

५—(क) २१४ छन्द, अप्रैल, १९२४; पृष्ठ २६५-२६८ (ख) २१५-४७२ छन्द, मई, १९२४; पृष्ठ ३५४-३५८। गुप्तजी के 'मेघनाद-वध' पुस्तक में ये अंश निम्नलिखित पृष्ठों में प्रकाशित हुए :—नवम सर्ग : (क) पृष्ठ ३९५-४०३; (ख) पृष्ठ ४०३-४१३।

६—'मेघनाद-वध', परिचय और आलोचना, पृष्ठ ८९ व ९३।

में माइकेल की लेखनी ने अपनी शक्ति की पराकाष्ठा दिखलायी है[१] गुप्तजी का अनुवाद दृष्टव्य है :—

'यथा दूर दावानल पशिले कानने
अग्निमय दशदिश देखिला सन्मुखे
राघवेन्द विभा-राशि निर्धूम आकाशे,
सुवर्ण वारिध-पुंजे !......'[२]

अनुवाद—

'लगने से दावानल दूर यथा वन में,
अग्निमय होती हैं दिशाएँ दसो, सामने
देखी विभा-राशि राघवेन्द्र ने गगन में
धूमहीन, करती सुवर्ण-वर्ण मेघों को ।'[३]

इन अनुवादों का गुप्तजी के काव्य-विकास पर गहन प्रभाव पड़ा । डॉ० पाठक ने लिखा है कि वर्णनच्छटा, चित्रण-कला, उचित-चमत्कार, भाव-चमत्कार, भाव-वैदग्ध्य, औचित्य-विधान इत्यादि अनेक काव्य-गुण गुप्तजी के काव्य में क्रमशः इस अनुवाद के पश्चात् ही विकसित हुए ।[४]

सन् १९१३ में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबल-पुरस्कार के प्राप्त होने पर उन्हें संसार-व्यापी सम्मान प्राप्त हुआ । उनकी ओर हिन्दी भाषा-भाषियों का विशेष ध्यान गया । इसी के परिणाम-स्वरूप श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'रवीन्द्र दर्शन' शीर्षक से 'प्रभा' में एक सचित्र कविता भी लिखी जिसमें उनकी प्रशस्ति गायी गयी ।[५] पाण्डेय जी ने महाकवि को बधाई-पत्र भी लिखा था जिसका उन्होंने ललित हिन्दी में उत्तर

१—अप्रैल, १९२५; पृष्ठ २६५ ।

२—'मेघनाद-वध काव्य', सम्पादक ब्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय तथा सजनीकान्त दास; पृ० ९५ ।

३—अक्तूबर, १९२१; पृष्ठ २१७ ।

४—डॉ० कमलाकान्त पाठक—'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य' पृष्ठ ६४३ ।

५—'गीतांजलि—अमर-काव्य रचना प्रधान,
पाया विशुद्ध इनने यश है महान् ।
दे नव्य शक्ति शुचि पूर्व-प्रभाव बीच,
लाया नवीन युग-भूतल-भाव-बीच !
गावे महा-मिलन का शुचि, शान्ति-गान,

दिया था[१]। श्री 'रमेश' ने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा कांग्रेस को भेजे गए सन्देश की छाया पर 'आकांक्षा' शीर्षक कविता 'प्रभा' में लिखी।[२] श्री मदनमोहन मिहिर ने 'रवीन्द्र गीतांजलि' शीर्षक से 'प्रभा' में, मूल बंगला से, गीतों का काव्यानुवाद प्रस्तुत किया।[३] रवि बाबू के प्रसिद्ध गीत 'जगत पारावारेर तीरे छेलेरा करे मेला' का काव्यानुवाद इस प्रकार किया गया :—

'जगती पारावार किनारे, बालक करते मेला।
विस्तृत अन्तहीन अम्बर तल, छाया अहो भाल पर निश्चल,
झाग भरा हाँ, वह सुनील जल, नचता सारी बेला।
तट पर यह कैसा कोलाहल ! बालक करते मेला......।'[४]

आंग्ल भाषा के माध्यम से भी, मिहिर जी ने गीतांजलि का काव्यानुवाद प्रस्तुत किया।[५] अनुवाद की परख के लिए एक अंश दर्शनीय है :—

"Thou hast made me endless,
Such is thy pleasure.
This frail vessel thou emptiest again and again
and fillest it ever with fresh life.
This little flute of a reed
thou hast carried over with hills and dales,
and hast breathed through it
melodies eternally new"...[६]

है मुग्ध सा कर लिया युग-लोक-प्राण।
पाश्चात्य-सभ्य-नर-नायक गर्व त्याग—
हैं पूजते, सब इन्हें अब सानुराग।।'

—लोचनप्रसाद पाण्डेय, छन्द ४ था व ५ वां, अक्तूबर, १९१३; पृष्ठ ४१३।

१—'धर्मयुग' (सन् १९६१) में प्रकाशित एक लेख के आधार पर।

२—फरवरी, १९२०, पृष्ठ ८।

३—(क) जून, १९२४; पृष्ठ ४१५-४१६; (ख) जुलाई, १९२४; पृष्ठ १-२; (ग) अक्तूबर, १९२४; पृष्ठ २४९ (घ) दिसम्बर, १९२४; पृष्ठ ४२३; (ङ) मई, १९२५; पृष्ठ ३४०।

४—जुलाई, १९२४; पृष्ठ १।

५—(क) अप्रैल, १९२४; पृष्ठ २७१; (ख) मई, १९२४; पृष्ठ ३३६-३३७।

६—अप्रैल, १९२४; पृष्ठ २७१।

अनुवाद—
'किया अनन्त मुझे तूने !
प्रभु ! लीला ऐसी है तव ।
यह कोमल कच्ची प्याली-तू करता फिर-फिर खाली
भर देता जीवन नव नव ।
कितने गिरि पर—किन-किन नदी किनारे
लिए फिरा तू यह लघु वशी सारे ।
टेरी कैसी तानें मृदुल-सुरीली-अतुल रागिनी गाई नवल रसीली,
नित फूंका नया मधुर रव ।।......'[१]

अँग्रेजी के माध्यम से, कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने उमर खय्याम की रुबाइयों का सुन्दर अनुवाद किया जिसके अनेक पद 'प्रभा' में सचित्र प्रकाशित हुए ।[२] गुप्तजी आँग्ल भाषा से परिचित नहीं हैं,[३] अतएव, श्री रायकृष्णदास की प्रेरणा तथा उनके द्वारा भावार्थ समझाने पर और श्री शिवनारायण मिश्र के सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ है ।[४] गुप्तजी नें फिट्जरेल्ड कृत अँग्रेजी अनुवाद के आधार पर यह कार्य सम्पन्न

१—वही ।

२—(क) जनवरी, १९२३—पृष्ठ १; (२) फरवरी, १९२३; पृष्ठ ८४; (३) मार्च, १९२३; पृष्ठ १६५ (४) अप्रैल, १९२३; (५) मई, १९२३, पृष्ठ ३३१-३३२ । (६) जून, १९२३; पृष्ठ ४११; (७) अगस्त, १९२३; पृष्ठ ८२; (८) जनवरी, १९२४; पृष्ठ १; (९) मई, १९२४; पृष्ठ ३३४; (१०) जून, १९२४; पृष्ठ ४१४; (११) अगस्त, १९२४; पृष्ठ ८१ । गुप्तजी की रुबाइय्यात, उमर खय्याम पुस्तक में ये पद निम्न पृष्ठों में प्रकाशित हुए :—

(१) पद ५१, पृष्ठ ५५; (२) पद ११, पृष्ठ ३५; (३) पद २, पृष्ठ ३१; (४) पद ४८, पृष्ठ ५४; (५) पद ८, पृष्ठ ३४; (६) पद २९, पृष्ठ ४४; (७) पद २६, पृष्ठ ४३; (८) पद ४६, पृष्ठ ५३; (९) पद १७, पृष्ठ ३८; (१०) पद ३९, पृष्ठ ४५; (११) पद ६७, पृष्ठ ६३ !

३—'जिस बात को न तो मूल में और न उस मूल के भी मूल में स्वयं समझ सकूं; उसे ही दूसरों को सुनाने को बैठ जाऊँ, इससे बढ़कर और क्या धृष्टता हो सकती है ?' —श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'रूबाइयात उमर खय्याम', अनुवादक का निवेदन, पृष्ठ ३ ।

४—'वे हैं हिन्दी जगत के सुपरिचित कला-कोविद् रायकृष्णदास जी । इतना

किया। कहा गया है कि फ़िट्जरेल्ड ने उमर खय्याम को अमर बना दिया है। साथ ही पठित समाज में जब तक उमर खय्याम का नाम जीवित है, तब तक फ़िट्जरेल्ड भी विश्व साहित्य के इतिहास में अमर रहेंगे।[१] गुप्तजी ने अनुवाद के विषय में लिखा है कि मैंने कहीं-कहीं दो-एक वाक्य अपनी ओर से बढ़ाये हैं। ऐसा करने में इस बात का पूरा ध्यान रक्खा है कि वे मूल के अर्थ का ह्रास न करके विकास ही करे। × × × एक आध बात मैंने कुछ भिन्न प्रकार से भी कही है। यदि फ़िट्जेराल्ड अपने अनुवाद में मूल की काट कांट कर सकता है तो दो एक स्थान पर वैसा करने का मैं भी अपना अधिकार कैसे छोड़ सकता हूँ।'[२] गुप्तजी की इस अनुवाद-कला से भी परिचित होना चाहिए :—

"Here with a loaf of Bread beneath the Bough,
A Flask of Wine, a Book of Verse and Thou,
Beside me singing in the wilderness–
And wilderness is paradise anew."[३]

अनुवाद—

'इस तरू-तले कहीं खाने को रोटी का टुकड़ा हो एक;
पीने को मधु-पात्र पूर्ण हो, करने को हो काव्य-विवेक,
तिस पर इस सन्नाटे में तुम बैठ बगल में गाती हो;
तो मेरे हित इसी विजन में स्वर्ग-राज्य का हो अभिषेक !'[४]

गुप्तजी की यह पुस्तक 'रूबाइय्यात उमर खय्याम' सम्वत् १९८८ वि० में

ही नहीं, प्रसिद्ध राष्ट्रीय साप्ताहिक 'प्रताप' के 'अपरधुर्य पदावलम्बी' प्रिय शिवनारायण जी मिश्र ने 'भिषग्रत्न' होकर भी मेरे बन्धु के हठ-जनित मस्तिष्क का उपचार न कर उसे इस कार्य के लिए उलटा उत्तेजित किया। बड़े उत्साह से चित्रों के ब्लाक बनवाये और अपने आग्रह के प्रलेप से मेरे असवत मस्तक को एक ही दिन में उमर खय्याम का अनुवाद करने में सक्षम बनाने के लिए उतारू हो गये। उनकी आतुरता यहाँ तक बढ़ी कि बीच ही में उन्होंने मेरे अनूदित पद्यों के साथ दो एक चित्र भी अपनी स्मरणीय 'प्रभा' में प्रकाशित करा दिये।'—वही, पृष्ठ ५।

१—वही, उमर खय्याम और उनकी कविता, पृष्ठ ९।
२—'रूबाइय्यात उमर खय्याम', अनुवादक का निवेदन, पृष्ठ ६ व ७।
३—फरवरी, १९२३, पृष्ठ ८५।
४—वही।

प्रकाशित हुई थी। उसमें मूल ('प्रभा' में प्रकाशित पद) का संशोधन-परिवर्द्धन कर कर दिया गया। उपरिलिखित पद की अंतिम पंक्ति का संशोधित रूप इस प्रकार है :—

'तो नन्दन-सम इसी विजन में, मुझे स्वर्ग का हो अभिषेक !'[१]

इस प्रकार 'प्रभा' के काव्य में द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों के जो तत्त्व प्राप्त हुए; उनसे इस युग को अधिक स्पष्ट व मांसल स्वरूप प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे कविता के भाव तथा कला-पक्ष में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा और स्वच्छन्दतावादी स्थितियों का रूप स्पष्ट होने लगा।

छायावादी काव्य-प्रवृत्तियाँ

'प्रभा' के कवियों में मुकुटधर पाण्डेय, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' रामनाथ 'सुमन', भगवतीचरण वर्मा, मोहनलाल महतो 'वियोगी', शान्तिप्रिय द्विवेदी, ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' आदि के काव्य में छायावादी प्रवृत्तियों के चिह्न दृष्टिगोचर होते थे। श्री रामनाथ 'सुमन' की कतिपय कविताओं[२] को 'प्रभा' में ही 'छायावाद' की संज्ञा से विभूषित किया गया था।

नूतन भाव सृष्टि :

छायावादी काव्य-धारा ने हिन्दी-काव्य के स्वरूप में यथेष्ट परिवर्धन उपस्थित किया। डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि उच्चकोटि की कल्पना, प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन, सुख दुख की एक तीव्र संवेदना, सौन्दर्य का एक आलोकमय दृष्टिकोण और चित्रात्मकता-छायावाद की विभूतियाँ हैं जो खड़ी बोली हिन्दी-कविता को प्राप्त हुई।[३] इस विशिष्ट काव्य-धारा ने कवियों के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर को जन्म दिया। भावना के क्षेत्र में नूतन आयाम आए। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'यमुने' का मानवीकरण करते हुए, उसके नारीत्व और वेदना को वाणी प्रदान की :—

'बह जाती हो,
सुप्त विश्व के कानों में कुछ कह जाती हो
करुण कण्ठ से—
किसी एक अज्ञात वेदना से;
ओ प्रखर विकल !

१—'रूबाइयात उमर खय्याम', द्वितीयावृत्ति, पद ११ वां, पृष्ठ ३५।

२—(क) प्रियतम से, अक्तूबर, १९२२; पृष्ठ २५५ (ख) छलिया, दिसम्बर, १९२२; पृष्ठ ४७४; (ग) अगाध की गोद में, सितम्बर, १९२३; पृष्ठ २१८।

३—डॉ० रामकुमार वर्मा—'विचार दर्शन', पृष्ठ ७५।

कह जाती हो
'कल-कल, कल-कल, कल-कल।'[१]

छायावाद में प्रेम-पक्ष को भी प्रमुखता दी गयी थी। द्विवेदी युगीन प्रेम-पक्ष संयत, नैतिक तथा स्थूल था परन्तु यहाँ आकर उसे लाक्षणिकता, वक्रता, उक्ति-वैचित्र्य तथा मार्मिकता की प्राप्ति हुई। श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ने भ्रमर के माध्यम से प्रेम-पंथ की महानता तथा मुक्ति-प्राप्ति की विवेचना की :—

'प्रिय मधुकर ! पैने काँटों की मारों से मत घबराना।
कठिन यातना मिले निरन्तर उतना ही प्रमोद पाना।
सौरभ युत कुसुमित कलियों पर मधुर प्रेम रस बरसाना।
'प्रेम पंथ में दुख ही सुख है', निज जीवन पर इतराना॥
सतत तरसते जाओगे तो, मुक्ति मार्ग मिल जावेगा।
पूर्ण सुधा रस पान करोगे, कनक-कमल खिल जावेगा।'[२]

प्रेम के उन्माद पक्ष का चित्रण श्री उदयशंकर भट्ट की लेखनी के द्वारा चित्रित हुआ।

'मैं हो गया लीन-सा उसमें तन मन को फिर वह भाया।
अहंकार ने देकर झटका कहलाया फिर मैं आया॥
मीठी तन्द्रा की मुद्रा से अननुभूत आनन्द मिला।
मुद्रा मुखरित हो रह फड़की, प्रेम पुष्प मकरन्द मिला॥'[३]

छायावाद में वैयक्तिकता को समुचित स्थान प्राप्त हुआ। इसी कारण व्यक्ति का हृदय-पक्ष प्रधान रूप से वाचाल हुआ। जीवन के दुःख, वेदना, रुदन आदि ने अपनी सीमाओं को विस्तृत किया। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने रुदन के मार्मिक प्रसंग की सूक्ष्म भावना को प्रस्तुत किया :—

'रो रोकर तेरे चरणों का आँखों से अभिषेक किया।
रुदन किसी का, हृदय किसी का—दोनों का व्यतिरेक किया॥
द्रवित प्रणय के कम्पित स्वर में अपना तेरा एक किया।
तुम रो पड़े हृदय के भूले जादू ने अविवेक किया॥
अंचल से आँखें मत पोछो, हृदय बुझा अब लेने दो।
दुखिया के गीले आँसू से अपने चरण भिगोने दो।'[४]

१—फरवरी, १९२५; पृष्ठ ८१।
२—भ्रमर से, मई, १९२४; पृष्ठ ३७१।
३—प्रेमोन्माद, छन्द ४ था, फरवरी, १९२५; पृष्ठ १२०।
४—तुमसे, फरवरी, १९२५; पृष्ठ ९४।

प्रकृति-चित्रण :

छायावाद के प्रकृति-चित्रण में परोक्ष-तत्त्व को प्रमुखता मिली। अभिधा के स्थान पर व्यंजना ने अपनी छवि दिखायी। 'अनोखे पागल' कविता की सीमाओं में प्रकृति की परोक्ष व्यंजना भी प्राप्त हो जाती है। बिहार के प्रमुख छायावादी कवि श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' की सराहना आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा ने की थी; यद्यपि वे और द्विवेदी-युग के प्रायः सभी लेखक तथा समालोचक नवोदित छायावाद के विरोधी थे।[1] 'वियोगी' जी की उक्त कविता की कतिपय पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :—

'मलयानिल की मधुर बास दे चन्द्र किरण को कर के पान—
मूक प्रकृति के शान्त अंक में करता मन्द-मन्द प्रस्थान।
सुखद कल्पना की वीणा पर गाता फिर अनन्त-संगीत।
स्वर-तरंग में विश्व बहा चलता है शान्त व किंचित भीत॥
वह पागल है, निकट पहुँचकर क्या अपने को पाओगे?
थिरक-थिरक तालों पर उसमें ही लय हो जाओगे !!'[2]

श्री मदनमोहन मिहिर का प्रकृति-चित्रण भी, द्विवेदी युग के कवियों से भिन्न तथा नूतन प्रतीत होता है :—

'चमक उठा सौभाग्य व्योम का जिसकी उज्ज्वल छाया—
प्रतिबिम्बित हो उठी—काँपते बहते निर्मल जल पर॥
झलमल झलमल लगी झलकने दर्पण सी शैवलिनी
अहो भाग्य लौटा पृथ्वी का होकर पट-परिवर्त्तन॥'[3]

छायावादी कवि यद्यपि प्रमुखतः अन्तर्मुखी ही रहे; परन्तु वे अपने देश के प्रति सर्वथा उदासीन नहीं थे। श्री मुकुटधर पाण्डेय ने लिखा था कि 'हमारे प्रदेश में कई होनहार नवयुवक कवि हैं। उनसे हमारा कहना है कि भाई, देश और जाति को जगाना तुम्हारे ही हाथ है। उठो, जनता में वीरता के भाव भर दो, उसके कानों में आशा, उत्साह और शक्ति का संचार कर दो; उसके कानों में सजीवता, चेतनता तथा अमरता का मन्त्र फूंककर उसे निर्भय बना दो।'[4]

१—श्री बैजनाथसिंह 'विनोद'—'द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र', भूमिका, पृष्ठ झ-ञ।
२—जुलाई, १६२४; पृष्ठ २१।
३—'निसर्ग गीत : प्रभात', फरवरी १६२४, छन्द २१वाँ, पृष्ठ १०४।
४—'सरस्वती', दिसम्बर, १६२१; पृष्ठ ३३६।

पाण्डेय जी के मतानुसार—

'लघु-गुरु जितने हैं देश के भ्रात मेरे,
जननि ! उन सबों की मूर्खता तू मिटा दे ।
सह-श्रम-सद्शिक्षा-शीलता-सद्गुणों के-
सब समय अहो ! तू दे उन्हें नव्य-शक्ति ।।'

समाजोन्मुखता के आधार पर हो 'निर्मल' जी ने 'जन्म-भूमि' की वन्दना की है :—

'जयति जयति जन्म भूमि पावन मन हरनी ।।
सुन्दर सुखप्रद सुहात, प्रतिभा नित जगमगात,
दुख भय कलिमल नसात, पाप की कतरनी ।।
सुखमय सब गुण निधान, मंजुल मंगल विधान,
अद्भुत आभा महान्, विमल शक्ति भरनी ।।'[1]

रहस्य-भावना :

छायावादी काव्य में अज्ञात प्रियतम के प्रति अपनी भावनाओं को प्रकट किया गया । इस प्रकार की कविताओं ने ही 'प्रभा' में छायावाद की उपाधि प्राप्त की ।

'बहुत सुन चुके ताने इस जग में, बनकर दीवाने तो ।
हरे भरे हैं रहे खूब, अब होने दो वीराने तो ।
हाथ नहीं आये—तुमको मैं चला व्यग्र अपनाने तो ।
बहुत दिनों के बिछुरे हैं, दो जरा इन्हें मिल जाने तो ।
कैसे निष्ठुर हो जीवन-धन ! कुचल रहे मनमाने तो ।
अच्छा जीवन-तार बज उठे सुन लूँ तेरे गाते तो ।।'[2]

इस प्रकार की कविताओं में आध्यात्मिकता के स्वर को प्राधान्य मिला । दर्शन की बौद्धिक भूमियों ने भी हमारे छायावादी कवियों को अपनी ओर आकृष्ट किया जिसके परिणाम स्वरूप वे रहस्यवाद की ओर उन्मुख हुए । श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है कि रहस्यवाद ने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्रा ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली ।[3] श्री उदयशंकर भट्ट की निम्न कविता में अद्वैत की छाया आभासित होती है :—

१—नवम्बर, १९२२, पृष्ठ ३७२ ।

२—प्रियतम से, अक्तूबर, १९२२; पृष्ठ २५५ ।

३—'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य', पृष्ठ १०६ ।

'न' 'मैं', 'तू' का यह 'भेद' रहा।
एक रस अकथनीय आनन्द।
विश्व का वैभव फीका वहाँ—
भक्ति रस का उद्रेक अमन्द।'[१]

निरालाजी ने अपनी कविता 'अध्यात्म पुष्प'[२] में मुक्ति को ही महत्त्व प्रदान किया :—

'जब कड़ी मारें पड़ी दिल हिल उठा;
पर न कर चूं भी कभी पाया यहाँ;
मुक्ति की तब युक्ति से मिल खिल उठा—
भाव, जिसका चाव है छाया यहाँ।।'[३]

रहस्यवादी कविता का द्वितीय रूप भक्ति-भावना की भूमिका में प्रकट हुआ। श्री माखनलाल चतुर्वेदी[४] के इन उद्गारों में उसकी भाव-व्यंजना हुई है :—

१—सोपान, छन्द ६वाँ, जून, १९२४।

२—(क) 'कानपुर से निकलने वाली 'प्रभा' में 'निराला' जी की मात्र 'अध्यात्म का फल' नामक कविता के आधार पर, अद्वैत आश्रम रामकृष्ण-मिशन, मायावती, अलमोड़ा के अध्यक्ष श्री माधवानन्द को उनकी 'समन्वय' नामक पत्रिका के लिए आचार्य म० प्र० द्विवेदी ने 'निराला' जी का नाम बताया था।'—प्रो० क्षेम, 'छायावाद के गौरव-चिह्न', पृष्ठ ४५। (ख) 'निराला' जी की 'प्रभा' में प्रकाशित 'जन्मभूमि' (१ जून, १७९२०, पृष्ठ ४०) तथा 'अध्यात्म पुष्प' (१ नवम्बर, १९२१, पृष्ठ २९४) शीर्षक कविताएँ उनके काव्य-संकलन 'अपरा' (पृष्ठ २५ एवं ४८-४९) में संगृहीत हो चुकी हैं।

३—छन्द प्रथम, नवम्बर, १९२१, पृष्ठ २९४।

४—'मैं छायावाद का बिलकुल विरोधी नहीं पर छायावाद के नाम पर जो पद्य आजकल निकल रहे हैं, उनमें कविता का प्रायः अभाव रहता है। श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी की छायावादी कई कविताएँ मुझे बड़ी प्रिय हैं।'—अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अट्ठारहवें मुजफ्फरपुर-अधिवेशन में पं० पद्मसिंह शर्मा के अध्यक्षीय भाषण का एक अंश; 'विशाल भारत', श्रावण, सं० १९८५, जुलाई १९२८; सम्पादकीय विचार, पृष्ठ १३०।

'अरे अ शेष ! शेष की गोदी तेरा बने बिछौना सा ।
आ मेरे आराध्य ! खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना सा ।।'[१]

रहस्योन्मुख भक्ति का सहज रूप श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में मुखर हो पड़ा है। डॉ० शुक्ल ने लिखा है कि सादगी, भावानुभूति, समानुभूति और अकृत्रिमता इनकी रचनाओं की विशेषता है।[२] श्रीमती चौहान की 'कलह कारण' कविता में सहज भाव दृष्टिगोचर होता है :—

"अचानक ध्यान पूजा का हुआ, झट आँख जो खोली।
नहीं देखा उन्हें बस सामने सूनी कुटी देखी।
हृदय धन चल दिए, मैं लाज से उनसे नहीं बोली,
गया सर्वस्व, अपने आपको दूनी लुटी देखी।।"[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'प्रभा' के काव्य में छायावाद का स्वरूप अधिक प्रधान व वाचाल होकर नहीं आया। उसकी धूमिल रेखाएँ ही हमारे समक्ष प्रकट होकर रह गयो। साथ ही, 'प्रभा' सदृश्य समाजोन्मुखी एवं राष्ट्र पोषक पत्रिका में छायावाद के वायवी रूप को अधिक स्थान मिलना सम्भव नहीं था। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है कि छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास, भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।[४]

'प्रभा' के वस्तुन्मुखी तथा राष्ट्र परक दृष्टिकोण ने उसे राष्ट्रीय काव्य की वीणा की झंकार में ही सर्वस्व निरूपित किया। अन्य भावनाओं अथवा विचार धाराओं को प्रधानता मिलना, इसीलिए ही, सम्भव न हो सका। 'प्रभा' के काव्य की धमनी राष्ट्रीय काव्यधारा रही है और उसका हृदय-स्थल वर्तमान परतंत्र भारत की प्रतिक्रिया।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा

सामान्य विवेचन :

आलोच्य धारा को 'प्रभा' पत्रिका का प्राण कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह काव्य-प्रवाह पत्रिका के आरंभ से अन्त तक सतत प्रवहमान रहा। 'प्रभा' के

१—'खीझ गयी मनुहार', जुलाई, १९२२; पृष्ठ १।
२—डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्य-धारा', वर्तमान काव्य की भावना, वर्तमान युग, पृष्ठ २१०।
३—अक्तूबर, १९२४; पृष्ठ २६२।
४—'आधुनिक कवि', भाग २, भूमिका, पृष्ठ ११।

व्यक्तित्व की परिचायिका तथा ख्याति की मूल भित्ति भी यही काव्य-प्रवृत्ति रही है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता-धारा के प्रमुख उन्नायक माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा', एक राष्ट्रीय पथिक, 'एक राष्ट्रीय हृदय', गोकुलचन्द्र शर्मा, मदन-मोहन मिहिर, उदयशंकर भट्ट, सियारामशरण गुप्त, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि साहित्यकार रहे। इस धारा विशेष के कवियों के अन्तर्गत 'एक भारतीय आत्मा' की कविताएँ सर्वाधिक संख्या में प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् 'नवीन' जी की कविताओं की संख्या आती है। 'प्रभा' में वैद्य भूषण श्री दयाशंकर भट्ट शास्त्री 'हृदय', वैद्य भूषण श्री उदयशंकर भट्ट शास्त्री 'हृदय' इन दो नामों की कविताएँ प्राप्त होती हैं; जो कि वास्तव में श्री उदयशंकर भट्ट की ही रचनाएँ हैं। मुद्रण अशुद्धि से 'उदय' का 'दया' हो गया था।[१] साथ ही दयाशंकर के नाम की सिर्फ एक ही कविता है। भट्ट जी की 'प्रभा' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ, बाद में उनकी 'विसर्जन' तथा 'राका' काव्य-कृतियों में संगृहीत की गयी।[२] सिर्फ 'हृदय' नाम से लिखित कविताएं श्री रमाशंकर शुक्ल द्वारा लिखित हैं।[३] राजस्थान के श्री विजय सिंह पथिक 'राष्ट्रीय पथिक' के नाम से लिखते थे।[४]

डॉ० हरदेव बाहरी ने राष्ट्रीय कविताधारा की चार प्रमुख शैलियाँ बतलायी हैं :—

(१) हिन्दुत्व तथा हिन्दू समाज में सुधार।
(२) भारत का उज्ज्वल अतीत और दीन हीन वर्तमान।
(३) गाँधी जी का अहिंसावाद, और।
(४) मातृभूमि के लिए प्रेम तथा उसकी स्वतन्त्रता के लिए उग्र भावना।

१—श्री उदयशंकर भट्ट का मुझे लिखित दिनांक १-९-१९६१ का पत्र।

२—श्री उदयशंकर भट्ट का मुझे लिखित पत्र दिनांक १२-४-१९६१ का पत्र।

३—डॉ० सूर्य नारायण व्यास का मुझे लिखित दिनांक १८-११-१९६१ का पत्र।

४—पथिक जी के विषय में महात्मा गाँधी ने कहा था : "I can tell you something about pathik. Pathik is worker while others are talkers. Pathik is a soldier, brave impetuous, but obstinate. He was Mahadev's infallible guide in Bijaulia and the remarkable thing is that the masses of Bijaulia have implicit confidence in him."

'प्रभा' की इस काव्य-धारा को परिप्रेक्ष्य में रखते हुए, हम इन शैलियों[१] को प्रस्तुत रूप में उपस्थित कर सकते हैं और इन्हीं के ही आधार पर काव्य-विवेचन करना समीचीन प्रतीत होता है :—

(क) राष्ट्र वन्दना और प्रशस्ति गान।

(ख) स्वतन्त्रता और उसके प्रति अपनी भावाभिव्यंजना।

(ग) सत्याग्रह-असहयोग, स्वदेशी महिमा, अहिंसावाद तथा नेतास्तवन।

(घ) बलि पूजा, गीता तथा कारागृह-उपासना।

(ङ) सामयिक राजनीति-राष्ट्रीयता, व्यंग्य-अन्योक्ति और विप्लववादिता।

(च) गरिमामय अतीत का गायन, वर्त्तमान की दुर्दशा, उसका निराकरण और भविष्य का रूप।

(छ) सामाजिक पक्ष, दलित पात्रों के प्रति सहानुभूति तथा समाज-उद्बोधन।

राष्ट्र वन्दना तथा प्रशस्ति :

प्रत्येक युग तथा राष्ट्र के प्रबुद्ध कवियों के सदृश्य, 'प्रभा' के कवियों ने हमारे राष्ट्र की वन्दना की है। श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'भारत महिमा' का गायन किया :—

'यह भारत भूतल भूषण है,
यह पुण्य प्रभामय पूषण है।
सुख शान्ति सुकर्म सुधाकर है,
सुषमा, शुचि-सद्गुण आकर है॥'[२]

श्री सियारामशरण गुप्त ने भी 'हमारा देश' शीर्षक कविता में भारतीय होने पर गर्व प्रकट किया है :—

'वह है मुकुट भू लोक का, सुरलोक का वह मित्र है,
श्रीराम-कृष्ण-पदाब्ज रज से वह हुआ सुपवित्र है।
वह विश्व-वंदित है विदित, उसका तत्त्व विचित्र है,
देखा सुरों तक ने अहा! साश्चर्य उसका चित्र है।
इस बात का अभिमान हमको सर्वदा सविशेष है,
हैं भारतीय हम, भारत हमारा देश है॥'[३]

—'रेखा चित्र'—श्री पथिक जी, पृष्ठ २१७-२१८।

१—डॉ० हरदेव बाहरी—'हिन्दी की काव्य-शैलियों का विकास', वीर-काव्य, पृष्ठ ३६।

२—५ जुलाई, १९१३; छन्द प्रथम, पृष्ठ १८१।

३—छन्द ३ रा, अक्तूबर, १९१३; पृष्ठ ३५७।

श्री हरिपालसिंह ने स्वदेश आरती उतारी।[१] श्री 'विमल' ने भारत-भूमि को विश्व में परम-पवित्र बताया।[२] 'सनेही' जी ने भी अपनी लेखनी को मातृ-वन्दना द्वारा पुनीत बनाया।[३] भारत की स्तुति की वन्दना के बोल कई कवियों द्वारा प्राप्त होते रहे। हमारी मातृ-भूमि के कण-कण को स्नेह तथा सम्मान से परिपूरित किया गया। जन्म-भूमि के रूप में, स्वदेश की स्तुति श्री 'परन्तप' ने की और उसे देव-स्वरूप बतलाया :—

"देश हमारा देव स्वरूप।
स्वर्ग समान, गौरववान, पौरुष पुंज, नीति-निकुंज,
हिमगिरि उसका कीर्त्ति स्तूप, भावुक भेष, भव्य विशेष,
साधन धाम, लोक-ललाम, तरल-त्रिवेणी धार अनूप।"[४]

भारतवर्ष के रूप में अनेक कवियों ने हमारे राष्ट्र की भौगोलिक तथा परम्परा से युक्त विशेषताओं का उद्घाटन किया। श्री दीनानाथ 'अशंक' ने उसे जगद्-गुरु माना।[५] श्री गोकुल चन्द्र शर्मा ने 'राष्ट्र-गीत' द्वारा उसकी भव्यताओं की ओर संकेत

१—'परम उच्च हिमालय श्रृङ्गसो, उठि रही ध्वनिपूर्ण उमंग सों, स्वर मनोरम कल कोकिल सारती, जयति-भारत, भारत-भारती।'
—छन्द प्रथम, अप्रैल, १९२०; पृष्ठ ४७।

२—'भक्त जनों पर सहज दाहिनी।
ओज शौर्य बल बुद्धि दायिनी।
वीर प्रसू वर वीर वाहिनी।
धाक सबों पर भारी है॥
अनुपम परम पवित्र विश्व में, भारत भूमि हमारी है॥'
—छन्द एकादश, मई, १९२०; पृष्ठ ३५।

३—'तेरे पद जलजात सुयश सौरभ के देने वाले हैं।
मनोमोहिनी छवि पर इनकी मन मिलिन्द मतवाले हैं॥
हैं सनाथ सब इनको पाकर, गोरे हैं या काले हैं।
कोटि कोटि प्राणी जगती में इनकी रज के पाले हैं॥'
—चित्र पर लिखित कविता, जून, १९२०; पृष्ठ ८ व ९ के मध्य।

४—सितम्बर, १९२१; पृष्ठ १६९।

५—'भारत गेय तव गुण गान!
है न तुझ-सा अन्य कोई देश गौरववान। भारत....
जिस समय भी अन्यान्य देशों में रहा अज्ञान,

किया।[1] श्री इकबाल वर्मा 'सेहर'[2] और श्री श्यामलाल पाठक[3] ने अपनी कविताओं के द्वारा भारत का जय-जय कार किया और उसकी गरिमा से हमें परिचित कराया। श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारतवर्ष' शीर्षक कविता, इस वन्दना-धारा का सही अर्थों में प्रतिनिधित्व करती है :—

'अंकित सी आदर्श मूर्त्ति है, सरयू के तट में अब भी,
गूंज रही है मोहन-मुरली व्रज वंशी वट में अब भी।
लिखा बुद्ध निर्वाण मंत्र जय पाणि-केतु-पट में अब भी,
महावीर की दया प्रकट है माता के घट में अब भी।

उस समय भी हर विषय का था तुझे प्रज्ञान। भारत····
देव तक गाते रहे तब कीर्त्ति मुद्‌मान,
तू जगद् गुरु है तथा तू ही विशेष पुराण। भारत···'
अक्तूबर, १९२०; पृष्ठ २०४।

१—'वह स्वाधीन, विघ्न-विहीन,
बल-संयुक्त, वैर-विमुक्त,
हो, न पर पच्छी का कर पावे उसमें कभी प्रवेश।
वह दिग्विजयी, ध्रुव-नय-निलयी,
जग-सम्राट्, हो विभ्राट्,
गूंजे राष्ट्र गगन में यह ध्वनि 'जय भारत भुवनेश'।'
—दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३२२।

२—'जय जय भारतवर्ष महान्।
जय जय धर्मवान, यशवान्, गौरवमय औ' तेज निधान।
अनुपम शोभाओं की खान, पृथिवी पर सुर-लोक समान।
जय जय भारतवर्ष महान्।।'
—राष्ट्रीय गीत, छन्द प्रथम, दिसम्बर, १९२२; पृष्ठ ४७९।

३—''जय जगती तल शृङ्गार, हिन्द!
जय सर्व-सृष्टि-सुख सार, हिन्द!!
शुभ कण्ठ त्रिवेणी-हर, हिन्द!
मन-भावन प्रकृति विहार, हिन्द!!'
—मई, १९२५, पृष्ठ ३२८।

मिली स्वर्ण लंका मिट्टी में यदि हमको आ गया अमर्ष,
हरि का क्रीड़ा क्षेत्र हमारा भूमि भाग्य सा भारतवर्ष ।।[१]

इस प्रकार हमारे कवियों ने, राष्ट्रीयता के उस युग में, अपने देश की स्तुति कर, अपने कवि, कर्म को सार्थक किया। इन वन्दना तथा प्रशस्ति के गीतों में जहाँ प्रगीत तत्वों को निखार प्राप्त हुआ; वहाँ दूसरी ओर हमारी देश-भक्ति की भावना में भी ज्वार आ गया। देश के लिए मर मिटने की पुनीत प्रवृत्ति को इसी गीत-धारा के द्वारा सम्बर्द्धन मिला।

परतन्त्रता जन्य उद्वेग :

हमारा देश, जो कि प्राकृतिक तथा वैचारिक सम्पदाओं से आप्लावित है, की परतन्त्रता के प्रति हमारे साहित्यकारों के हृदयों में उद्वेलन का होना स्वाभाविक था। अपने देश पर किसी बाह्य सत्ता का आधिपत्य अथवा शासन, कोई भी जागृत जाति सहन नहीं करती है। राजनीति में भी यह लहर जोर से आयी और इसकी प्रतिच्छाया हमारे संवेदनशील तथा युग-सापेक्ष्य हिन्दी-काव्य पर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होने लगीं। स्वतंत्रता ही हमारा लक्ष्य बना और स्वाधीनता के लिए ही हमने अपने कर-तल पर मस्तक को उतारकर रख लिया। हमारे कवियों ने स्वतंत्रता का ही गुण-गान किया। देवी के रूप में उसकी स्तुति की गयी[२] और उसका स्वागत किया गया।[३] कवियों ने उसे हिन्द के अवलम्ब के रूप में ग्रहण किया।[४] हमारे कवियों को इस

१—अप्रैल, १९२१; पृष्ठ २०५।

२—'जयति देवि, सुर सेवि, सुजन सुचि हृदय विहारिनी,
जय नित प्रफुल्लित वदन, सदा सुभ मंगल कारिनि।—
नवविद्या अरु कौशल कला ज्यहि आवाहन मन्त्रवर,
सोद्रवहु देवि करुना करनि आरत भारत देस पर।।'
—ठाकुर प्रसाद शर्मा, छंद प्रथम, आश्विन, सं० १९७२; पृष्ठ ३९७।

३—'तू भूतल की शान्ति दायिनी, तथा जाति-जीवन है;
चरि अभ्युदय सहचरी तू है, तू कर्त्तव्य नमन है।
चुन-चुन कंटक शूल समुन्नति पथ में आभामय हो—
दे आलोक, अग्रसर करती अनुकम्पा आलय हो।।'
—लक्ष्मीनारायण मिश्र, छन्द तृतीय, अक्टूबर, १९२२; पृष्ठ २८९।

४—'खड़ा हूँ खोले पश्चिम द्वार, इसी से स्वागत को तैयार,
आ मङ्गलमयि! आ स्वतन्त्रते! लगा न तनिक विलम्ब।
'अब तब' करते हुए हिन्द की तू ही बस अवलंब।'

बात का दुःख था कि हम 'स्वतंत्रता' शब्द को ही विस्मरण कर गए हैं[१] और वे इस तथ्य से भी भली-भाँति परिचित थे कि स्वाधीनता के उपासकों को आपदाओं का डटकर सामना करना पड़ता है।[२] कविवर श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय ने अपने अनुज सुकवि श्री मुकुटधर पाण्डेय को स्वाधीनता के महत्त्व को न भूलने की शिक्षा दी।[३] कवियों ने अपना समग्र वाणी-सर्वस्व अपनी मातृभूमि के श्री चरणों में सानुराग समर्पित कर दिया। उनकी तो यह कामना थी :—

भारत में ही जन्म-मरण हो, भारत में ही वास।
रहना मुझको पड़े न पल भर, बनकर पर का दास॥
कभी मत भूले अपना वेश, कभी मत छूटे अपना देश॥[४]

स्वाधीनता के पुजारी तथा मतवालों को अपने देश की पराधीनता कहाँ सहन

भगवन्त गणपति गोइलीय, प्रतीक्षा, अंतिम छन्द, जनवरी, १९२१; पृष्ठ १८।

१—'हे मातु ! कैसा अब है जमाना,
'स्वाधीनता' वस्तु न जानते हैं,
हैं प्रार्थना देवि ! यही हमारी—
'प्रभा तुम्हारी, शठता हटावे॥'
—प्रयाग नारायण 'संगम', स्वाधीनता, छंद नवम, जनवरी, १९१४; पृ० ६१२।

२—'तेरे भक्तों के मुखों में पड़े ताले, कोड़ों से फोड़े गये हृदय के छाले।
पीने को मिले गरल के प्याले, जीवन के भी अर्थ लिये यहाँ पर लाले
स्वेच्छाचारों से गई जेल में ठेली।
तू अबला सबला बनी सुखद अलबेली॥'
—'एक राष्ट्रीय आत्मा', स्वाधीनता के प्रति, छंद नवम, जून, १९२२; पृष्ठ ४४४।

३—'अनुजवर ! तुम्हारे बाहु में शक्ति आवे।
श्रमफल शुभ पाओ, ईश-निष्ठा निभावै॥
गुण-गण मत जाना भूल स्वाधीनता के,
अनुचर मत होना हाय ! आधीनता के॥'
—लोचनप्रसाद पाण्डेय, अनुज को अग्रज का एक पत्र, छंद प्रथम, फाल्गुन, सं० १९७२; पृष्ठ ६१६।

४—रामचरित उपाध्याय, विनय, छंद तृतीय, मार्च, १९१५; पृष्ठ १९।

थी ? उनकी क्षुब्ध तथा आक्रोशमयी वाणी इन पंक्तियों में, पर्वतीय सरिता के समान, फूट पड़ी :—

'रहा जब तक मन में अज्ञान, नहीं टूटा परता का पाश।
किन्तु जब हुआ शक्ति का भान, हो गया समुदित स्वतः प्रकाश
'हमारे लिए हमारा देश, हमीं कर सकते यहाँ विहार।
करे क्यों कोई और प्रवेश, हमारा हरने को अधिकार ?[१]'

राष्ट्रीय सत्याग्रह तथा वीर-पूजा :

भारतीय राजनीति के रंगमंच पर महात्मा गाँधी का आगमन एक युगान्तरकारी घटना है। उन्होंने राजनीति का स्वरूप ही बदल दिया।[२] सत्याग्रह तथा असहयोग की धूम मच गई। सद्धर्म, स्वातन्त्र्य और स्वदेश-सेवा को ही हमने अपना लक्ष्य बना लिया।[३] सत्याग्रही[४] का गौरव-गान किया गया और उसके पद-रज लेने हमारे कवि-गण लालायित हो पड़े।[५]

१—'परन्तप', हृदयोद्गार, छन्द तृतीय, अप्रैल, १९२१; पृष्ठ २८६।

२—'कभी मोहिनी, मधुर रूपिणी, कभी चंचला-चण्डी,
बहुरूपा जो राजनीति थी, एक अनोखी रण्डी।
सन्यासिनी बनाया उसको, धन्य महात्मा गाँधी,
लिये खड़ी है आज यहाँ वह, सत्याग्रह की झण्डी !'
—एक राष्ट्रीय कवि की भावमयी फुलझड़ियाँ, एक तटस्थ, छंद २० वां, मार्च, १९२२; पृष्ठ १९४।

३—'कभी हमारी इस जन्मभूमि को, भूले न भाई हम स्वप्न में भी,
हो आर्य्य भू गौरव की शिरोमणि, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'।
—माखनलाल चतुर्वेदी, छन्द सप्तम, कार्तिक, सं० १९७२; पृष्ठ ४६६।

४—'संकट को सौभाग्य समझकर बढ़-बढ़ स्वागत करता है,
जीवन से ज्यों रूठा बैठा मुग्ध मृत्यु पर मरता है।।
हाथ जोड़ हथकड़ियों को ज्यों भूषण तन पर धरता है।
हृदय देश दुर्गा का बेड़ी के ताण्डव से हरता है।।
धारण भूत-विभूति जो, करता जगहित साधना।
ऐसे शम्भू को सदा, कर दुर्गे आराधना।।'
चमूपति, छंद तृतीय, मई, १९२४; पृष्ठ ३८३।

५—'मनुज प्रकृति की सुन्दर भूल, दुख के गुरु समता के मूल,
जग की सुखमा शान्ति, ललित कला की कान्ति।
सर में प्रिय सविता की भ्रान्ति त्यागूं,

सच्ची-उच्चता[१] का आधार दूरदर्शिता तथा सत्याग्रह-वृत्ति माना गया। कवियों ने ऐसे आख्यानों का चयन किया जिनमें सत्याग्रह के जादू का प्रभाव दिखलाया जा सकता था।[२] ऐसे कथानकों में राष्ट्रीय संग्राम की तत्कालीन भावनाओं की झलक दिखलायी गयी। स्वालम्बन बिना, कोई भी राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता। आत्म-निर्भरता का एक रूप, असहयोग आन्दोलन के समय में, स्वदेशी तथा चरखा-महत्त्व के माध्यम से आया। अपने हाथ से बने और हमारे ही देश में निर्मित वस्त्रों को महत्ता प्रदान की गयी। खादी का मूल मन्त्र अग-जग में परिव्याप्त हो गया। महिलाओं को भी खादी की साड़ी पहनने का परामर्श दिया गया।[३] महिलाओं ने भी असहयोग आन्दोलन में सोल्लास भाग लिया।[४] उनका राष्ट्रीय तथा वीर रूप हमारे सामने आया। स्वदेशी के पक्ष में

धाऊँ लेने तव शुचि पद-पद्मों की धूल, भूल ॥'
—ठाकुर प्रसाद शर्मा, सत्याग्रही, जनवरी, १९२०, पृष्ठ ३४ ।

१—'ऊँचा बैठ नहीं दिखलाता वह लोगों का अपना ठाठ ।
अविरल रटना से सिखलाता सत्याग्रह का सच्चा पाठ ॥
समतल बैठा हुआ चतुर वह रक्षा पाता है भरपूर ।
किन्तु, दृष्टि है कितनी ऊँची-कितनी ऊँची-कितनी दूर ?'
—'नयन', सच्ची उच्चता, फरवरी, १९२१; पृष्ठ १०६ ।

२—'दमन नीति से शान्त हुई बाहर से हलचल ।
किन्तु हृदय में बढ़ा निरन्तर भावों का दल ॥
तिल भर भूमि न रही उरान्तर में रहने को ।
भाव हुए तय्यारमुक्त होने, सहने को ।।
इसी समय प्रह्लाद ने सत्याग्रह धारण किया ।
जिसने अस्थि-रगों का, उग्र भाव वारण किया ॥'
—'राष्ट्रीय पथिक', होली : समता की जय, छन्द चतुर्थ, अप्रैल, १९२०; पृष्ठ ३२ ।

३—'सालती शर सम शिशिर-समीर,
केवल झीना चीर पहिनकर-चलने का लो स्वाद,
खद्दड़ की साड़ी होती तो, कँपता यों न शरीर ।'
—'रसिकेन्द्र', शिशिर-समीर का उपसंहार, मई १९२२, पृष्ठ ४०० ।

४—'सत्याग्रह करने निकली हैं, भारत की कुछ ललनाएँ,
अबलाओं को भी असह्य है, अब शासन की छलनाएं ।'
—'एक राष्ट्रीय कवि की भावमयी फुलझड़ियाँ', एक तटस्थ, मार्च, १९२२; पृष्ठ १९४ ।

हमारे कवियों ने कई गीत लिखे।[१] श्री रामनाथ 'सुमन' ने 'स्वदेशी' की महिमा का आकलन इन पंक्तियों के द्वारा किया :—

'सालै नित अरिगन के मन में कसाला करैं,
पाला जीतिवै में एक एकन ते आला है।
दूरि दूरि दौरि दौरि हूकत करेजन में,
आइ देखौ रिपुगन को निकस्यो दिवाला है।
सहसन कोस के महान् रनक्षेत्र माहिं,
जोर सोर उठै चहुँ सत्रुन को नाला है।
आओ चलि दैखौ यह मुँह को निवाला नाहिं,
घोर अनीवाला सुचि सुदेसी को भाला है।।'[२]

गांधीजी के प्रिय चरखे[३] की निर्माणकारी ध्वनि, कविता के संगीत से मिलकर, दिक्-दिगन्त में व्याप्त हो गयी। राष्ट्रीय संघर्ष[४] के दिनों में कालों ने गोरों को सत्याग्रह का

१—'बढ़ी स्वदेशी की महिमा है, चरखा चक्र सुदर्शन ने,
सभी तरह मिट्टी पलीद की, परदेशीय-दुकूलों की।'
—'अभिलाषी', भूलों की भर्त्सना, छन्द ६ वां, अप्रैल, १९२२।

२—राष्ट्रीय प्रसंग, छन्द प्रथम, अगस्त, १९२२; पृष्ठ १५१।

३—'तेरी तानों का झन्नाटा, दूर करे जग का सन्नाटा।
भरे 'स्वदेशी' का झन्नाटा, रहे न भारत गीला आटा।।
मारे मारे फिरै न कोई, पूर्व-प्रभा के खुले पिटारे।
चल, चल मेरे चरखे प्यारे।।'
—'रसिकेन्द्र', मेरा चरखा (गायन), चित्र पर लिखित कविता, मार्च, १९२१; पृष्ठ १६५ व १६६ के मध्य।

४—'सत्याग्रह से अनुशासन की, असहयोग के दुःशासन की
साम्यवाद से सिंहासन की, स्वतंत्रता से आश्वासन की।
छिड़ी हुई है, कर्मक्षेत्र में शुचि संग्राम मचाने आवें।
यदि मानव होंवे भूतल पर, मानवता दिखलाने आवें।।'
—'एक राष्ट्रीय आत्मा', संघर्ष समीक्षा, छन्द द्वितीय, जुलाई, १९२१; पृ० ३५-३६।

पाठ सिखलाया।[१] इस संग्राम में अहिंसावाद[२] को प्रश्रय मिला और शस्त्र-विहीन युद्ध लड़ा गया; इसीलिए श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी एक कविता में इसे 'विचित्र संग्राम'[३] के रूप में सम्बोधित किया। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की संघर्ष की बेला में, हमारे महापुरुषों तथा युग निर्माताओं ने, समूचे राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन किया। इस युग ने भी भारत के महापुरुषों की समृद्ध परम्परा का निर्वाह किया। हमारे कवियों ने अपनी वाणी की माला में इनके गुण-ज्ञान के प्रसूनों को पिरोया। राष्ट्रीय नेताओं को कर्मवीर[४] और कर्णधार[५] के रूप में गौरव प्रदान किया। उनकी जय-जयकार की

१—'गये दिनों में भी भारत ने, निज गौरव दिखलाया है।
अब भी 'सत्याग्रह' सिखलाया है गोरों को कालों ने।'
मैथिलीशरण गुप्त, विचित्र संग्राम, फरवरी, १९२२; पृष्ठ १०१।

२—'हाँ दृढ़ता से हम शान्त रहें; युद्धार्थ अहिंसाशास्त्र गहें।
देकर न कष्ट, खुद कष्ट सहें, हरदम जबान से यही कहें;
हम भारत को अपनावेंगे; उसको स्वाधीन बनावेंगे।।'
—इकबाल वर्मा 'सेहर', प्रतिज्ञा, छन्द एकादश, अप्रैल, १९२२; पृष्ठ २८२।

३—'अस्थिर किया टोप वालों को, गांधी टोपी वालों ने,
शस्त्र बिना संग्राम किया है, इन माई के लालों ने।'
—फरवरी, १९२२, पृष्ठ १००।

४—'जीतकर बाधा विघ्न कठोर, आप पर रख अपना अधिकार,
स्वत्व बल करते शीघ्र सुधार, शत्रुओं का होता प्रतिकार।
राष्ट्र है उनका जीवन-प्राण, राष्ट्र ही है उनका आधार,
राष्ट्र पर होते वे बलिदान, स्वर्ग में भी पाते सत्कार।।'
—'विमल', कर्मवीर, अंतिम अंश, अक्तूबर, १९२०; पृष्ठ २३३।

५—'सुदृढ़ वल्ली भी नहीं औ' पंक है।
वीचियाँ भी हैं, जलधि का अंक है।
द्रोहियों का वार है, आतंक है।
हृदय कम्पित है, विशेष सशंक है।
और हा! पवि-पात है, व्याघात है,
तू मारा त्राण कर्त्ता तात है।।'
—'एक राष्ट्रीय आत्मा', कुशल कर्णधार, छन्द सप्तम, अप्रैल, १९२२; पृ० २९८।

गयी,[१] और उनका अभिनन्दन किया गया।[२] श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने हमें बतलाया कि यद्यपि समाज अद्भुत प्रतिमा सम्पन्न महज्जनों को पागल कहता है; परन्तु देश की फटी गुदड़ी को सीने व व्यवस्थित करने का महान् कृत्य, इन्हीं के द्वारा ही सम्पन्न होता है।[३] अपनी मातृभूमि के लिए सर्वस्व अर्पित करने वाले को आराध्य माना गया।[४] हमारे कवियों ने राष्ट्रीय संग्राम के योद्धाओं और नेताओं का स्तवन किया। देश भक्त गोखले[५] की मृत्यु के पश्चात् कई शोक-

---

१—'होगी भारत भूमि तुम्हारी, शान्ति सदन स्वच्छन्द सुखारी।
माता का मुख उज्ज्वल करके पाओगे यश गौरवकारी।
कीर्त्ति केतु से जगत कहेगा, 'जय जय कर्मवीर बलिहारी'।'
—'विमल', बलिहारी, मई, १६२२; पृष्ठ ३८६।

२—'कर्मवीर के लिए यहीं पर मैं मन में हुलसाती,
गूंथ गूंथ कर पारिजात को पुष्पमाल पहनाती,
पथी, यहाँ है जाति-भेद की कहीं न बन्धन बेड़ी,
आदि काल से विश्व-बन्धुता—तान गई है छेड़ी।'
—'परन्तप', सफलता, छन्द १५ वां, अगस्त, १६२२; पृष्ठ.१२५।

३—'स्वयं बुद्ध भी तो पागल थे मारी लात राज्य सुख को,
थे प्रताप पागल जिनने हँस हृदय लगाया था दुख को।
ईसा क्या कुछ कम पागल थे सुखदासन में क्रूस लिया,
देशभक्त मेक्स्विनी ने अनशन कर आत्मोत्सर्ग किया।
फटी हुई माता की आँचल को बढ़कर सीने वाले?
तुझे बधाई है ऐ पागल! मरकर भी जीने वाले!'
—मार्च, १६२५; पृष्ठ १७६।

४—'जो दरिद्रता की संतति हैं जिनका गृह है कारागार,
दैनिक पुरस्कार है जिनको स्त्रार्थ अनृतमय स्वेच्छाचार!
फिर भी जिनका हृदय-पयोनिधि न्याय-सलिल का आकर है,
उन ही में, मैं देख रहा हूँ, वह मेरा नट नागर है।
क्यों न इन्हीं सजीव देशों की सेवा फिर अपनाऊं मैं?
जिसकी है यह शक्ति, उसी को क्यों न स-प्रेम चढ़ाऊँ मैं?
—'राष्ट्रीय पथिक', मेरा आराध्य, अप्रैल, १६२०।

५—'सारा विश्व मान गया, 'परतन्त्र दशा में भी,
भा-त में पैदा होते, गोखले से ग्लैडस्टोन',

गीतियाँ[१] लिखी गयी। श्री बदरीनाथ भट्ट ने गोखले-विरह पर 'दीप निर्वाण' शीर्षक कविता में, मातृ-मन्दिर में अँधकार होने की सूचना दी।[२] भारतवर्ष आधार-विहीन हो गया।[३] लोकमान्य बालगंगाधर तिलक[४] की मृत्यु[५] ने सारे भारत को झकझोर दिया था। कवियों का मानसरोवर भी तरंगायित हो गया। भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के जनक

स्वार्थ त्यागी, महामति, परिश्रमी, ब्रह्म ऋषि,
लोक हितकारी दीर्घ दर्शी, राजप्रीति भौन।'
—गिरिधर शर्मा, हा हन्त गोखले, छन्द पंचम, मार्च, १९१५; पृष्ठ ६३।

१—'अन्तः शोक-चिन्तन-वश से, भाव भी अनित्यात्म,
होते हैं हा! अब न चलती, लेखनी इंच भी है।
होना ज्यों ही गुरुतम अहो! दुःख त्यों मूकता ही—
आ के देती मनुज मन को, सान्त्वना धैर्य आदि।'
—भीकाजी बिलौरे, हाय! गोखले!, मार्च १९१५; पृष्ठ ६४।

२—'मातृ-मन्दिर में हुआ अँधेरा वह प्रकाश का पुंज, हा!
कूच कर गया डेरा, भक्तों का था बड़ा सहारा, मन्दिर का उजियाला,
भीतर बाहिर जलने वाला, था वह दीप निराला।'
—छन्द द्वितीय, मार्च, १९१५; पृष्ठ ४।

३—'प्रेम की वह मूर्त्ति होकर, दया का आगार था।
इसलिए वह दीन भारतवर्ष का आधार था।
जिस तरह वह लोक को, देता सदा आश्वास था,
उस तरह उस पर निरन्तर, लोक का विश्वास था॥'
—पदुमलाल बक्षी, गोखले, छन्द तृतीय, माघ, सं० १९७२; पृष्ठ ५८२।

४—'राष्ट्र यान का एकमात्र सन्तान खो गया!
पथिकों के पथ में कण्टक दुर्दैव बो गया!
टुकड़े-टुकड़े दुखित देश का हृदय हो गया!
शर-शय्या पर हाय! आज 'गांगेय' सो गया!"
—'राष्ट्रीय पथिक', शोकाश्रु!', सितम्बर, १९२०।

५—'पाता देश दुखी सदा-सुख-भरा सन्देश, 'स्वाधीनता',
आत्मार्य पतिता स्व कर्म-निरता होवे-यही ध्येय था।
देता था अपने चरित्र-बल से शिक्षा सदा धैर्य की,
हा! था भारत की तरी सुरुचि से खेता! कहाँ खो गया!'

तथा भीष्म पितामह तिलक जी की विदाई[१] ने जहाँ हमें शोकाभिभूत किया[२]; वहाँ हम कर्म मार्ग[३] की ओर प्रवृत्त हुए। लोकमान्य की प्रथम पुण्य तिथि पर भी हमारे कवियों ने अपनी श्रद्धांजलियाँ समर्पित की और उन्हें स्वातन्त्र्य-घोषणा की सिंहगर्जना के नरदेव[४], सुर[५], महान् सेवक[६], राष्ट्र रथी[७] और अवतार[८] के रूप में

—जगमोहन 'विकसित', कहाँ खो गया !, छन्द द्वितीय, सितम्बर, १९२०; पृष्ठ १५८।

१—'भारत माता दुर्बल दीना, विलप रही थी वह प्राण विहीना।
जल्दी कौन पड़ी है, रुककर उसे जरा समझाओ ।।
हे प्राणेश प्राण-गंगाधर, नेता जगत प्रसिद्ध विज्ञवर,
स्वतंत्रता का शंख स्वर्ग में, देश राग में गाओ ।।'
—'चक्र सुदर्शन', छन्द द्वितीय व तृतीय, सितम्बर, १९२०; लोकमान्य की विदाई, पृ० १३९।

२—'क्या कहा ? है गोद खाली बाल बिन,
मातु ! कितने पाल लाल नहीं तुझे ?
सत्य है, हैं लाल, प्यारे पाल भी,
बाल हैं, पर अब न तेरी गोद में,
जननि तू क्या, विश्व शोक मनायगा।'
—भगवन्त गणपति गोइलोय, शाके सान्त्वना, सितम्बर, १९२०; पृष्ठ १७८।

३—'आर्य तिलक के लिए नहीं है यह रोदन यह शोक प्रवाह,
हुआ पूर्ण अवतार कार्य है, है पूरी होने को चाह।
अपने धीर घोष से हमको वीर केसरी जगा गया,
भय की भ्रान्ति भगाकर हमको कर्मयोग में लगा गया।'
—सियारामशरण गुप्त, तिलक-वियोग, छन्द,षष्ठ, सितम्बर, १९२०, पृ० १७२-१७३।

४—'परन्तप', तिलक-स्मृति, १० छन्द, अगस्त, १९२१; पृष्ठ ८२-८३।

५—जगमोहन 'विकसित', तिलक-गुण-कलाप, चार छन्द, पृष्ठ ८९-९० वही।

६—भगवती प्रसाद बाजपेयी, लोकमान्य, पाँच छन्द, पृष्ठ ९९, वही।

७—'एक राष्ट्रीय आत्मा', वह दिन, ४ छन्द, अगस्त, १९२१; पृष्ठ १०६-१०७।

८—'कुसुम', तिलक, तीन छन्द, पृष्ठ ११४, वही।

निरूपित किया। श्री गोकुलचन्द्र शर्मा ने 'तिलक तपस्या' शीर्षक से एक लम्बी आख्यानक कविता लिखी जिसमें तिलक जी के राष्ट्रीय कार्यों व कारावास-गमन की गाथा को गाया गया।[1] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'तिलकावतार' कविता में अपनी भावांजलि सादर समर्पित की :—

'भारत ऋषि के भव्यभाल पर तिलक रूप प्रकटे तुम बाल,
बालचन्द्र से सजता हो ज्यों, गंगाधर का भाल विशाल।
किन्तु दैन्य किंवा राक्षस बन, पोंछ ले गया तुम को काल।
सह सकते हैं दैन्य-दलन क्या, उसकी ऐसी उलटी चाल?
तुम तो शिरोधार्य्य ही होगे, जहाँ रहोगे आर्य्य उदार;
पर प्रतिकार रूप अब प्रभु भी, लेंगे यहाँ नया अवतार।'[2]

श्री हृदय ने नेताओं से आत्म-त्याग की सत्शिक्षा ग्रहण करने का उपदेश दिया :—

'कर आत्म-त्याग हो गये अहो दादाजी।
अब हैं श्री गाँधी, विपिन, घोष, लालाजी॥
सहते थे कष्ट अनेक बाल गगाधर।
सर्वस देते हैं मालवीय पंडित वर॥
यह आत्म-त्याग सिद्धान्त कभी मत त्यागो।
अब उठो-उठो हे आर्य वीर गण जागो॥'[3]

श्री कृष्णबिहारी मिश्र ने स्वाधीनता-सुन्दरी के साथ 'दूलह-भारत' का जो रोचक रूपक चित्रित किया है, वह अविस्मरणीय है :—

'बनक भारत दूलह की अनुपम साज।
स्वाधीनता सुन्दरी दुलहिन समारोह सुख साज।
दमन-अनल एकता भ्रामरी त्याग धूम्र भल भ्राज।
आत्मशुद्धि को हवन मनोहर, प्रेम पुरोहित राज।
शान्ति नीति की पद्धति अनुपम, ज्ञान वितान दराज।
मंगल गीति मधुर रव जय को मेल मिलाप समाज।
सरोजिनी सुगंधि बगरावति मधुकर करत आवाज।

१—४८ छन्द, 'तपस्वी तिलक से उद्धृत', जनवरी; १९२२; पृष्ठ १८-२१।

२—अगस्त, १९२१; पृष्ठ ७६।

३—उत्तिष्ठ, छन्द पंचम्, फरवरी १९२१, पृष्ठ १११।

बासन्ती वैभव मलयानिल नौबति लागै बाज।
मोतीलाल जवाहिर हीरा चमकत दम्पत्ति ताज।
चितरंजन को ठाठ निरालो दीसत सुखद स्वराज्य।
विवश लाजपति लखति न दुलहिन सर्यो सरस सब काज।
बनक भारत दूलह को अनुपम साज।' [१]

असहयोग के समय में हमारे नेताओं के कृतित्व का वर्णन भी किया गया :—

'सत्याग्रह की कड़ी, तू ने भारत रक्खी।
दुःशासन से पांचाली सी, 'लाज' और 'पत' रक्खी।।
करती नहीं' चित्त-रंजन' जो, असहयोग की आय।
तो क्या छोड़ा जाता उस पर लाखों का व्यवसाय ?' [२]

महात्मा गाँधी का स्वतन सर्वाधिक रूप में किया गया। भारतीय राजनीति के रंगमंच के आने के पूर्व ही, दक्षिण आफ्रिका आदि के कृत्यों के आधार पर, हमारे कवियों ने उनके महत्त्व तथा व्यक्तित्व को पहिचान लिया था। इसलिए उन्हें' कर्मवीर' की उपाधि प्रदान की गयी थी।

'सभी जाति हो प्रजातन्त्र–प्रिय, पच्छ-पात का होवे नाश,
जबरदस्त मत छीन सके फिर दीन-जनों के मुख का ग्रास।
भूतल में फिर 'राम-राज्य' हो, कलियुग में आवे त्रेता,
कर्म्मवीर मिस्टर गांधी से, न्यायनिष्ठ जब हों नेता।' [३]

बापू की मुस्कराहट[४] तथा कारागृह-यात्रा[५] ने भी कवियों को प्रेरणा प्रदान की।

१—अप्रैल १९२२; पृष्ठ ३१०।

२—एक राष्ट्रीय कवि की भावमयी फुलझड़ियाँ, एक तटस्थ, छन्द ६ वां व ७ वां, मार्च, १९२२; पृष्ठ १९३।

३—श्री कृष्णदास, कर्मवीर 'मिस्टर गांधी, छन्द तीसरा, १ अक्टूबर, १९१३, पृष्ठ ३९०।

४—'बँधी है तू किस कोने में ? दीन दुखिया के रोने में,
द्रवित हो, सर्वस खोने में, कर्मपथ पर बलि होने में ;
मुझे भी दे वह बन्दि-स्थान, मुझे मिल जा मिल जा मुसकान।।'
—गोकुलचन्द्र शर्म्मा, मुसकान, गांधीजी के हँसते हुए छाया चित्र पर लिखित कविता, छन्द चतुर्थ, दिसम्बर, १९२२; पृष्ठ ४३४।

५—'सच्चा व्रती महात्मा है जो, सिंहासन का अधिकारी—

राष्ट्रीय प्रतीकवाद के लाक्षणिक उपादानों में महात्मा गाँधी 'मोहन' बन गए।[१] निःशस्त्र सेनानी गाँधी जी को 'कृष्ण' के रूप में स्मरण किया गया :—

'माँ के बन्धन ढीले होंगे।
बाधक के मुख पीले होंगे।
काँप उठेंगे हृदय हठीले, 'मोहन' विजय-नाद सुन भारी॥
अत्याचार स्वार्थ की टाँगें टूट-हटेगी सेना भारी॥'[२]

गाँधीजी के सत्याग्रह से उद्भूत अटूट सम्पदा भी दर्शनीय है :—

'गाँधीजी का सत्याग्रह है, सचमुच कैसा मालामाल !

हमने उसमें सब पाये हैं, 'मोती' और 'जवाहर', लाल !'[३]

८ अगस्त, १९२३ को श्री हरदेव नारायण सिंह ने झण्डे पर अपनी बलि चढ़ायी थी। उनकी अर्थी में, राष्ट्रीय 'झण्डे की भेंट' शीर्षक कविता के रचयिता 'एक भरतीय आत्मा' ने भी कन्धा दिया था।[४]

इस सचित्र कविता में, कवि ने बिहार के इस तपोपूत का स्तवन किया :—

'प्यारी माँ, मेरे बाबा, हरदेवा अन्तर्धान हुआ।
रक्षक हो भगवान प्रिये, मैं झण्डे पर कुरबान हुआ।
जननि बिहार ! प्रणाम तुम्हें, तेरे गौरव का गान रहे;
मातृ-भूमि, तेरे ध्वज की मेरे प्राणों से शान रहे।
क्यों सहसा चल पड़ा ? ठहर, आ रही विजय तेरे द्वारे;
'कंधे पर ले चले' या कि चल पड़े पूज्य पथ में प्यारे।'[५]

हमारे पथ में अवरोध उत्पन्न करने वालों के प्रति घृणा व्यक्त की गयी। जलियाँवाले

खूब न्याय है ! बना हुआ वह, आजकल जेल का घोड़ा है।'
'अभिलाषी', उपालम्भ, जून, १९२२; पृष्ठ ४३५।

१—डॉ० सुधीन्द्र— 'हिन्दी कविता में युगान्तर', अन्तरंग दर्शन : राष्ट्रीय कविता धारा, पृष्ठ २११।

२—बलिहारी, मई, १९२२, पृष्ठ ३८६।

३—एक राष्ट्रीय कवि की भावमयी फुलझड़ियाँ, एक तटस्थ, छन्द पंचम, मार्च, १९२२; पृष्ठ १९३।

४—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'माता', पृष्ठ ७६-७८।

५—१ अक्टूबर, १९२३; पृष्ठ ३४९।

बाग का कुख्यात अंग्रेज 'डायर' की भर्त्सना की गयी।[१] लार्ड चैम्सफोर्ड को भी अशुभ कामना का पात्र बनना पड़ा।[२]

बलिदान-महिमा :

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों में बलिदान की भावना को भी अत्यन्त महत्ता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय कविता धारा की एक प्रमुख लहर के रूप में यह प्रवृत्ति भी हमारे समक्ष आती है। कवियों ने बलिवेदी के गीत गाए और स्वाधीनता के यज्ञ में आहुति चढ़ाने को ही महत्त्वपूर्ण कृत्य माना। बिना दान दिए प्राप्ति की आशा निष्फल मानी गयी। असहयोग रण[३] में बलिदान महिमा[४] की रक्त धारा प्रवहमान हो गयी। विदेशी सत्ता अत्याचारों पर तुली थी।[५] ऐसे दारुण समय में कवियों ने प्रार्थनाएँ

१—'भीड़ से जलियाँ वाला बाग, भरा, सुन रहा था राष्ट्र का राग,
अचानक उगली किसने आग! कहाँ से आया काला नाग?
अचेतों पर यों कायर-वार किया पामर डायर! धिक्कार!!'
—'परन्तप', भारतीय बाला, छन्द द्वितीय, दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ३४१।

२—'त्रिशूल', अप्रैल, १९२१, चित्र पर लिखित कविता, पृष्ठ २३७ व २३८ के मध्य।

३—'गोरों का शासन कालों पर, श्वेत कुष्ट-सा बन गया!
घृणा आप उत्पन्न हुई है, असहयोग-रण ठन गया॥'
—एक राष्ट्रीय कवि की भावमयी फुलझड़ियाँ, एक तटस्थ, छन्द तृतीय, मार्च, १९२२, पृष्ठ १९३।

४—'पुनः प्रस्तुत हो भारत आज। मुदित मन करता तव हित साज,
कि जिससे पाकर सुखद स्वराज, बचाए अपनी मिटती लाज।
निभा अब तू ही उसको आन, अमित तेरी महिमा बलिदान।'
—इकबाल वर्मा 'सेहर', बलिदान की महिमा, छन्द आठवाँ, अगस्त, १९२३; पृष्ठ ९७।

५—'पाप का बोझ बढ़ाते क्यों, पाशविक बल से मतवाले?
गौर कर भला जरा देखो, कृत्य क्या तुमने कर डाले?
मात पशुओं को करते हो, सभ्य अपने को बतलाते!
लाज क्या तुम्हें नहीं आती, मनुज अपने को कहलाते!'
—श्यामलाल पाठक, अत्याचारियों के प्रति, दिसम्बर, १९२२; पृष्ठ ४६०।

कीं।[१] हमारे शहीदों ने सब कुछ सहन किया[२] क्योंकि उन्होंने तो अपने जीवन का चरमोद्देश्य ही बना लिया था : मातृभूमि के लिए जीना और मरना।[३] बलि-वेदी के गायक 'एक भारतीय आत्मा' ने 'बलि-वेदी के सन्देश' को इन पंक्तियों में गूंथ दिया है :—

'जाओ, जाओ, जाओ ; प्रभु को पहुँचाओ स्वदेश सन्देश !
गोली से मारे जाते हैं, भारतवासी, हे सर्वेश !
रामचन्द्र, तुम कर्मचन्द्र सुत, बनकर आ जाओ सानन्द,
बार-बार मरकर दिखलाओ, आर्यों का आत्मिक स्वच्छन्द।'[४]

बलि-पुत्रों को, कविता ने, अपना वरेण्य नायक बनाया[५]। बलिदान की भावना को

१—'शक्ति माँ ! दे दो शक्ति अपार।
अन्यायी निःशंक बने हैं, करते अत्याचार।।
करते वो जाये जो चाहे, फिर भी उनको सदा सराहें।
करें वार, बम की बौछार, सहे पर हम हृदयों को मार।
बढ़ा है स्वेच्छाचार,
हाय ! निशस्त्र दीन जनता पर होवे शस्त्र-प्रहार !
शक्ति माँ ! दे-दो शक्ति अपार।।'
—देवीदत्त मिश्र, अभ्यर्थना, छन्द प्रथम, जुलाई, १९२०; पृष्ठ १३।

२—'छा गई मूर्छा-मूर्छा, मौन-मर गया क्षण भर को उत्साह,
किन्तु कानों में कह कुछ कौन ? भर गया विद्युच्छक्ति प्रवाह।
जाल काँटों का पथ में डाल, बधिक था महामोद में मग्न।
किन्तु हे पतितों के प्रतिपाल ! अधम की आशा कर दी भग्न।
चेत, हाँ, हुआ चोट से चेत, उठ पड़ा होने को बलिदान,
सहूँगा कोड़े, गोले, बेत, रखूँगा मातृभूमि का मान।'
—'परन्तप', शूल, अक्तूबर, १९२०, पृष्ठ १९३।

३—'आँखें लाल भवें टेढ़ी कर क्रोध नहीं करना होगा,
बलिवेदी पर तुझे हर्ष से चढ़कर कट-मरना होगा।
नश्वर है नर-देह मौत से कभी नहीं डरना होगा।
सत्यमार्ग को छोड़ स्वार्थ पथ पैर नहीं धरना होगा।
होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा।
मातृभूमि के लिए जगत में जोना औ मरना होगा।'
—'विमल', शान्ति-समीर, छन्द द्वितीय, सितम्बर, १९२२; पृष्ठ १८९।

४—जून, १९२०; पृष्ठ २।

५—'जननी जन्मभूमि वेदी पर जो सर्वस्व चढ़ाते हैं,

पुनीत व शुद्ध बनाये रखने के लिए, उसमें द्वेष-रोष को स्थान नहीं दिया गया[१]। सन् १८५७ की कहानी[२] तथा अमृतसर के जलियाँवाले बाग के कारुणिक हत्याकाण्ड[३] ने हमारे समक्ष दानवता तथा बलिदान के दो पक्षों को प्रस्तुत किया।

राष्ट्रीय संघर्ष के युग में भगवान श्रीकृष्ण की गीता ने अद्भुत प्रेरणा तथा संजीवनी बूटी का कार्य सम्पन्न किया। गीता में कर्मठता की अद्वितीय शिक्षा का मूल मन्त्र भरा पड़ा है। क्रान्तिकारियों के लिये गीता मूलाधार बन गयी। आत्म-पौरुष के

धन्य धन्य जीवन है उनका वही जन्म-फल पाते हैं।
अत्याचार, अनीति दबाते, दीन दुखी का हाथ बटाते;
स्वतन्त्रता का स्रोत बहाते, मातृभूमि की लाज बचाते,
जो बन्दी गृह जाते हैं॥'
—जगदीश झा 'विमल', धन्य जीवन, जनवरी,१९२१; पृष्ठ २३।

१—'चली है वीरों की वह अनी, रुकेगी कहीं न जिसकी बाट,
आत्मबल में लेकर सब आश, दिशाओं को देंगे वे पाट।
कवच से नहीं उन्हें कुछ काम, न कर में लेंगे कभी कृपान।
बहावेंगे न रुधिर की बूंद, स्वयं हो जावेंगे बलिदान।
भरा होगा हृदयों में जोश, न होगा द्वेष, न होगा रोष।
चरण-चिह्नों को सादर विजय, चूमते पायेगी सन्तोष॥'
—ठाकुरप्रसाद शर्मा, शक्ति संहार, फरवरी, १९२१; छन्द ३ रा, पृष्ठ ६५।

२—'मानवता' भी भागी लेकर प्राण तव,
'दानवता' की ऐसी लीला देखकर,
स्तब्ध रह गये वे लेखक इतिहास सब,
व्यग्र 'उग्र' हो गये नेत्र में अश्रु भर!
—'उग्र', दानवता, अप्रैल, १९२३; छन्द १० वाँ, पृष्ठ ३०७।

३—'आहतों पर श्वानों के वार! किन्तु किसको कहते हैं आह!
गुरु गोविन्द-सीख का सार—'धर्म पर मर मिटने की चाह!'
युद्ध की निपट निराली रीति, मद न मोह न का होता चूर्ण,
हट रही पर-सत्ता की प्रीति, हो रहा पापी का घट पूर्ण।
प्रकट सीता स्वतन्त्रता आप, दलेगी दर्पों का अभिमान,
बना रावण को राघव-चाप, सिक्ख वीरों का यह बलिदान।'
—'परन्तप', बलिदान, नवम्बर, १९२२; पृष्ठ ३३३।

बिना जीवन निस्सार है।[१] कर्म-योग हमारे कृतित्व का प्राणधार बन गया[२]। गीता ने ही तो हमें यह सिखलाया था—

'रण में किसका कैसा नाता ?
जो सम्मुख होगा वह अरि हैं, पितु, सुत हो, चाहे हो भ्राता।
तुम्हें सुहाती उच्च पदवियाँ, हमको निज कर्त्तव्य सुहाता,
तुमको प्यारा है यश-वैभव, हमको है प्रिय भारत-माता।
सारे नाते साथ धर्म के, धर्म हमें यह मर्म सिखाता।।'[३]

भगवान श्रीकृष्ण से गीता-गायन की सानुरोध प्रार्थना की गयी—

'कन्हैया गा दे गीता गान।
सत्याग्रह के समर स्थल में, करते तव आह्वान।
भीति-भावना शीघ्र भगा दे, नई ज्योति जातीय जगा दे,
मन में प्रेम-अग्नि सुलगा दे, कृपा—कोर इस ओर लगा दे।
औ ऐसा उत्साह फूंक दे, करे समर्पण प्राण।'[४]

कन्हैया का आह्वान किया गया।[५] एक कैदी की कामना ही यही रही :—

१—'जो आत्म-पौरुष नहीं जन धारते हैं,
द्रव्यार्थ हाथ सब ठौर पसारते हैं।
वे आत्म गौरव महा जड़ मारते हैं,
मानुष्य-जन्म अपना ऽहह हारते हैं।।'
—गिरिधर शर्मा, जीवन-मृतक, छन्द तृतीय, अप्रैल, १९१५; पृष्ठ ८४।

२—'जब गाण्डीव परन्तप कर से, गिरा मोह-माया में भूल।
कर्मयोग के भूल मंत्र तब, झड़े वचन गीतामय फूल।
दृग खुल गये ; सामने देखा, प्रकट पार्थ ने पथ अनुकूल,
सस्मित श्याम वदन की वह छवि, हरे हमारे बन्धन शूल।'
—'परन्तप', प्रार्थना, जुलाई, १९२१; पृष्ठ १।

३—'एक राष्ट्रीय पथिक', रण में किसका कैसा नाता ? अक्टूबर, १९२१; पृष्ठ २०५।

४—'एक राष्ट्रीय हृदय', कन्हैया गा दे गीता गान, छन्द प्रथम, दिसम्बर, १९२१; पृष्ठ ३६०।

५—'एक बार फिर इस पृथ्वी पर, जग-तम चीर प्रकट हो नटवर !
भरी हुई है अघ की मटकी, आकर के ढुलका जा रे !
'कन्हैया आ जा रे !'
—'कुसुम', कन्हैया आ जा रे, छन्द पंचम, जुलाई, १९२२; पृष्ठ ५०।

'कन्हैया बनकर करूं विहार।
मुकुट समान जेल टोपी हो, हँसली मणिमय हार।
हाथों में हथकड़ी युगल, कंगनों का दे सुख सार।
बेड़ी पग की पैजनियाँ हों करें मधुर झंकार।
मित्र सुने पुलकित हों, रिपु-दल देह ले बारम्बार।
कष्ट, त्रास, यन्त्रणा, दमन के साधन, अत्याचार,
कुण्डल, क्रीट, सुबसन आदि सम, शोभित हो शृङ्गार।
असहयोग वंशी की ध्वनि में, गाऊँ राष्ट्र गुहार,
गूंज उठे भारत का घर-घर, हो पुलकित संसार,
निर्भय कूंद पड़ूं; समझू, कालीदह कारागार।
नौकरशाही काली की, सब व्यर्थ करूं फुफकार।
ठुमक-ठुमक कर नाचूं, उसके, फन पर हो असवार।
फिर स्वराज्य की प्रेम डारि में नाथूकर लाचार।
कन्हैया बन कर करूं विहार॥'[१]

कारावासी 'एक भारतीय आत्मा' ने जेल की जन्माष्टमी (सं० १९७८ वि०) पर कन्हैया के रोचक तथा हास्योत्पादक पद्य को प्रस्तुत किया;[२] परन्तु, श्री रामनाथ लाल 'सुमन' ने, जन्माष्टमी के बाद कृष्ण को सम्बोधित करते हुए 'अपनी बात' सुना दी :—

'गोलियां हैं, चल रही दिल जल रहा,
पेट भर भी रोटियां मिलती नहीं।
पर हमारी आह से, करुणामयी,
मंजु, कोमल वृत्ति तव हिलती नहीं॥'[३]

बलिदान[४] के आसव को अपने में समाहित किए, हमारे देशभक्तों को गौरांग-महाप्रभुओं की अनुकम्पा से कारागृह की बार-बार यात्राएँ करनी पड़ीं। 'उग्र' जी ने तो बन्दीगृह की वन्दना ही कर डाली :—

१—लतीफ हुसैन, 'कैदी की कामना', जून, १९२४; पृष्ठ ४७१।
२—श्री माखनलाल चतुर्वेदी, कैदी की भावना (एक पुराना विचार), नवम्बर, १९२२; पृष्ठ ३२५।
३—नवम्बर, १९२२, छन्द पंचम, पृष्ठ ३६६।
४—'प्रपीड़ित होती परवश प्रजा, उड़ाते प्रभुतावादी चैन,
कलपता मातृभूमि का हृदय, ढ़ालते अविरल आँसू नैन।;

'वन्दे, मुकुन्द की जन्मभूमि सुखकारी !
वन्दे स्वतन्त्रता के उदार भण्डारी !
वन्दे, भारत-उन्नति के एक सहारे !
वन्दे, बन्दीगृह 'कर्मवीर' के प्यारे !
'गंगाधर' की तप-भूमि निराली वन्दे !
'अरविन्द' मुक्ति-जप-भूमि निराली वन्दे
'पंजाब केसरी' के अत्यन्त दुलारे !
वन्दे, बन्दीगृह 'कर्मवीर' के प्यारे !'[१]
कारागृह को देव-सदन[२], तीर्थराज,[३]

तपभूमि[४], पावन[५] आदि विशेषणों से विभूषित किया गया। 'एक भारतीय आत्मा'

दासता करने लगती नृत्य, दमन का चलता चक्र प्रधान;
पोंछने को माता के अश्रु, बढ़ाता है तब कर 'बलिदान' ॥'

द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', बलिदान, छन्द चतुर्थ, जुलाई, १९२३; पृष्ठ १४।

१—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', बन्दीगृह वन्दना (अप्रकाशित 'बंदी काव्य से'), जनवरी, १९२३; पृष्ठ ४६।

२—'निर्वासन है नन्दन वन सा, कटि कोपीन पवित्र-वसन सा,
है जंजीर सुमन-बन्धन सा, कारागृह है देव-सदन सा—
वही स्वर्ग-सुख पाते हैं; धन्य-धन्य हैं जीवन उनका—
वही जन्म फल पाते हैं।'
—जगदीश झा 'विमल', धन्य जीवन, जनवरी, १९२१; पृष्ठ २३।

३—'माता का ऋण मातृ भक्त ममता से यहाँ पटाते हैं;
मतवाले पतंग से शासक का भी गर्व घटाते हैं।
उन्नति पथ के तीक्ष्ण कंटकों को भी दूर घटाते हैं;
कूटनीति के कड़े-कड़े बन्धन भी यही कटाते हैं।
तीर्थराज है यही यहाँ पर मुक्त पुरुष ही आते हैं,
स्वतन्त्रता देवी का दर्शन इस मन्दिर में पाते हैं।"
'एक राष्ट्रीय आत्मा', बन्दी-गृह, जनवरी, १९२२; पृष्ठ ४९।

४—'भारत माँ के लाल देशहित, बलिवेदी पर चढ़ते हैं।
बन्दूकें, तलवारें, सब—बेकार हुई मकतूलों की ॥
जेलें अब तप-भूमि बनी हैं, देशभक्त तप करते हैं;
निश्चय ही अब कुशल नहीं है, दास्य-विटप के मूलों की।'
'अभिलाषी,' भूलो की भर्त्सना, छन्द १९ वाँ, अप्रैल, १९२२; पृष्ठ २६८।

५—मैं जाता हूँ, घबड़ाओ मत, फिर लौट शीघ्र ही आऊंगा।

ने अपनी रचनाओं का लेखन कारागृह में ही किया;[१] एतदर्थ, उनकी सम्बन्धित रचनाओं को 'प्रभा' में 'तपोभूमि की रचना' शीर्षक प्राप्त हुआ।[२] अपनी एक तपोभूमि की रचना में, कवि ने कारावास-जीवन का भावमय चित्र खींचा है :—

'दी आज्ञा, आदर से पालूँ तंग जगह में कर दो बन्द,
दुःख और एकान्त-चिन्तना दोनों का लूटूँ आनन्द।
वे हथकड़ियाँ, मृतुल बेड़ियाँ, गनी कोट, कोड़े, स्वच्छन्द—
देने में तुमको बल देवे, इन सबके हित करुणा-कन्द,
भूख और भोजन में बाधा, मुझ पर बरसाते हैं स्फूर्ति,
सखे ! करे कल्याण तुम्हारा, माधव की वह मंजुल मूर्ति।'[३]

कारागृह की भित्तियाँ मुक्त विचारों को सीमित नहीं कर सकी।[४] भयभीत बन्दी

उस पावन तपोभूमि में जा तप में कुछ समय लगाऊँगा।
नश्वर नर-तन जो मिला मुझे, उसको क्यों व्यर्थ बिताऊँगा,
माता के पावन मन्दिर में हो पद्म-पाद चढ़ जाऊँगा।
अर्चना अनोखी होगी तब शुभ कीर्ति जगत में पाऊँगा,
जंजीर-गुलामी कड़ी काट स्वातन्त्र्य स्वर्ग से लाऊगा।'
—'विमल', प्रबोध, नवम्बर, १९२२; पृष्ठ ३८८।

१—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—(क) 'हिमकिरीटिनी'—खीझमयी मनुहार, पृष्ठ २५; बिलासपुर जेल में लिखित, सन् १९२१; (ख) 'माता'—निश्चिन्त, पृष्ठ ७९, सन् १९२१ में बिलासपुर जेल में लिखित; (ग) 'युग-चरण'—पुष्प की अभिलाषा, पृष्ठ ३१; बिलासपुर जेल में लिखित (घ) **'समर्पण'**—कैदी की भावना, पृष्ठ ४५; बिलासपुर जेल में सन् १९२१ में लिखित।

२—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—(क) जुलाई, १९२२; पृष्ठ १ (ख) अप्रैल, १९२३; पृष्ठ २७१; (ग) अप्रैल, १९२२; पृष्ठ २४१; (घ) नवम्बर, १९२२; पृष्ठ ३२५।

३—निश्चिन्त, अप्रैल १९२३; पृष्ठ २७१।

४—'कहीं आज तक स्वतन्त्रता का रंग उड़ाये उड़ा नहीं,
धुँआँ उड़ाया है अपना ही बन्दूकों की नालों ने,
कभी बन्द कर पाया है क्या मधुर मुक्ति के भावों को,
जेलों की उन दीवारों ने, जंजीरों ने, तालों ने ?'
—मैथिलीशरण गुप्त, विचित्र संग्राम, फरवरी, १९२२; पृष्ठ १०१।

हृदयों को कवियों ने सान्त्वना तथा प्रोत्साहन दिया[१] और कारागृह में प्राण त्यागने को महिमामय कृत्य माना गया।[२] श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को सुख का वास्तविक पता कारागृह-शृंखला-हार में मिला :—

'बागन में बारिज में बल्लरी में बापिका में,
बौर में बसन्त-द्रुम हूँ के खोजि डारचो मैं।
वृन्दावन कुँज वर वृज वनितान पुंज,
गुँजरत मंजुल-मलिन्द पेखि हारयो मैं।
वाराणसी धाम वामदेव जू को नाम दिव्य,
देव-सरि धार में न देखि निरधारयों मैं।
विश्व बीच है न सुख 'उग्र' पर, इतै माहि—
कारागार-शृङ्खलानि-हार में निहारयो मैं॥[३]

श्री दिवाकर प्रसाद वर्मा ने भी हथकड़ियों का मुक्त रूप से स्वागत किया :—

'पूज्य शिक्षिका सदृश तुम्हारा, स्वागत करता हृदय हमारा
बन्दीगृह को सुखद स्वर्ग सा रहकर संग बन बनाती हो,
जननी जन्मभूमि के प्रति बहुभव्य भाव उपजाती हो,
आओ! अब कष्ट सहन का पाठ प्रशस्त पढ़ाओ,
जंजीरो आओ।।'[४]

समसामयिक राष्ट्रीय चेतना :

'प्रभा' के काव्य में सामयिकता को भी यथेष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। देश की

१—'देश कंटक! तू है भयभीत, जा रहा अवसर परम पुनीत,
मिटेंगे माँ के निश्चय क्लेश, रहेगा तेरा कलुषित वेश॥'
—'परन्तप', बन्दी हृदय के प्रति, छन्द सप्तम, मार्च, १९२२; पृष्ठ १६२।

२—'हुई अर्चना आज अनूठी, कारागृह में काया छूटी।
पुत्र, कलत्र, मित्र को छोड़ा, सारे सुख को धता बताई।
खादी की कोपीन बनाई तन ढकने को शान्ति रजाई।
सिर को सुमन बनाया न्यारा, माता के चरणों पर वारा।
साम्यवाद का मन्त्र उचारा, तप में त्यागी माया झूठी,
अमर किया अपने को मरकर कीर्त्ति कौमुदी छोड़ अनूठी॥'
—'विमल', जनवरी, १९२३; अर्चना, पृष्ठ ३८।

३—सुख का पता, नवम्बर, १९२२; पृष्ठ ३४९।

४—स्वागत, नवम्बर, १९२०; पृष्ठ ३०१।

राजनैतिक तथा सामाजिक घटनाओं की ओर हमारे कवियों का ध्यान गया और उनकी प्रतिक्रिया कविता में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार के काव्य में समसामयिक राजनीति तथा राष्ट्रीयता के उबाल को अपने में आत्मसात किया। जलियाँ वाला बाग के नरमेध ने सारे भारत में हड़कम्प उपस्थित कर दिया था।[१] इसका गहरा प्रभाव हमारे कवियों पर लम्बी अवधि तक रहा।[२] मलाबार, बारडोली और चौरी-चौरा की घटनाओं के प्रति भी हमारा कवि सतर्क था :—

'जी की जलन न जलियाँवाला बुझा सका हा ! तेरी,
मलाबार में बजवा ही दी तूने रण की भेरी,
सजती देख शान्ति की सेना रुका न तेरा दौरा,
वीर वारडोली के पथ पर पटका चौरी-चौरा ॥[३]

प्रिन्स आफ वेल्स के भारत-आगमन पर भी लाक्षणिक कविताएँ लिखी गयी।[४] भारत में कांग्रेस के विभिन्न दलों तथा राष्ट्रीय पक्ष, लिबरल पार्टी आदि की सामयिक स्थिति का चित्रण किया गया।[५] नेताओं को सावधान किया

१—'चले जाते हैं वे निःशस्त्र, बढ़ाते 'वाह गुरु' का मान,
शिरों पर श्वेत साँवले वस्त्र, सिक्ख सेना की अनुपम शान
अकाली बन काली के ग्रास, रुधिर से सींच गुरु का बाग।
मौत का करते हैं उपहास, मिटाते हैं माता का दाग।
क्रूरता का वह क्रीड़ा क्षेत्र, अमृतसर अमृत सुतों की भेंट,
देख लो, देता खोले नेत्र, अहो अधिकारों की आखेट !
मुखों में भरती है जब खूंद, मनुजता लेती है दृग मूंद,
केष-कर्षण ! घोड़ों की रूंद !! बरसती शिर से शोणित बूंद।'
—'परन्तप', बलिदान, नवंबर, १९२२; पृष्ठ ३३३।

२—'कहीं लाल घन देखो ये क्या, क्रोधित होना सीख रहे हैं,
नहीं ! बाग जलियाँ के शोणित-पुंज आज लौं दीख रहे ॥'
—रामचरण लाल द्विवेदी, आकाश मण्डल, नवम्बर, १९२३; पृष्ठ ३६०।

३—'परंतप', नैसर्गिक क्षमा, छन्द चतुर्थ, मई, १९२२; पृष्ठ ३४४।

४—'होते हैं आनन्द अनोखे' नित्य नये इस बार के,
प्रिन्स हमारे अतिथि और हम प्रतिथि हुए सरकार के।'[१]।
—फरवरी, १९२२; पृष्ठ ८१।

५—राष्ट्रीय पक्ष वाले, स्टीम भर रहे हैं;
लिबरल परन्तु जो हैं, वे लीग कर रहे हैं ॥३॥
—वही।

गया[१] और दलबन्दी के दुष्परिणामों से भी अवगत कराया गया।[२] इस समय कई 'फुलझड़ियाँ' लिखी गयी जिनमें सामयिक चर्चाओं को स्थान दिया गया। बड़े लाट साहेब ने फरमान जारी किया था कि उनकी सभाओं में लोग धोती पहन कर न जाए। इस पर मोठी चुटकी ली गयी और यह बताया गया कि वस्त्र और भोजन का आधार तो रुचि होती है।[३] लेजिसलेटिव कौंसिल में हिन्दी की स्थिति पर भी कवियों ने विनोद किया।[४] वर्तमान राजा-नरेशों की दुर्दशा का चित्रण किया गया।[५] हमारे कवियों को सक्रिय राजनीति से कभी-कभी विरक्ति भी हो जाया करती थी। 'एक भारतीय आत्मा' ने राजनीति से ऊब कर एक कविता गणेश जी को भेजी थी,[६] सो वह

१—'सावन के अन्धे को चाहे, दिखलाई दे हरा-हरा,
नेतावर सब सावधान हों, अब जनता है स्वयंवरा।'।२॥
—'भ्रमर', विचित्र दृश्य, फरवरी, १९२२; पृष्ठ ८१।

२—'तारागण क्यों बिखर गये ? क्या चन्द्र विचारा फूट गया ?
नहीं, राष्ट्र का एक हार था, दल-बन्दी से टूट गया !'
—रामचरण लाल द्विवेदी, आकाश मंडल, नवम्बर, १९२३; पृष्ठ ३६०।

३—'मजलिस बड़े लाट साहब की है आदम की वारी,
उसमें दिखलाई न पडेगा कोई धोती धारी;
किन्तु पैण्ट शैतान चैन से किसे बैठने देगा ?
सिर पर न सही, पैरों पर चढ़ पकड़ कमर धर लेगा॥
शासक श्रीमन् बड़े लाट हैं, हम शासित भिखमंगे हैं,
पर अपराध क्षमा हो तो ये अनुशासन बेढंगे हैं,
वस्त्र और भोजन रुचि पर हैं; अन्तर्दृष्टि डालिए तो,
हम धोती में, आप पैण्ट में; भीतर दोनों नंगे हैं !'
—'विदग्ध'; फुलझड़ियाँ; छन्द १ व २; जुलाई, १९२४; पृष्ठ २९।

४—मछन्दरनाथ, लेजिस्लेटिव कौंसिल में हिन्दी, मार्च, १९२४; पृष्ठ २२८।

५—'अब के भूप बहुत बलहीन, दुर्व्यवसनों में हैं लवलीन !
'जी हाँ, जो हुजूर' के दास, करते अपना सत्यानाश !
करें न कोई कार्य नवीन, दिन दिन करे प्रजा को दीन !
'गिरिधर' फिर यह क्यों न कहाय, 'लू ली डाकन घर को खाय !'
—गिरिधर शर्मा, गिरिधर-विनोद, छन्द प्रथम, जनवरी, १९१४, पृष्ठ ५८५।

६—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'माता', पृष्ठ १०१।

'व्याकुल' शीर्षक से 'प्रभा' में प्रकाशित हुई।[१]

'प्रभा' का सम्पूर्ण आधार राजनीति ही था। कांग्रेस-अधिवेशनों के समय 'प्रभा' के विशेषांक भी छपे। भारत में झण्डा-आन्दोलन और नागपुर-कांग्रेस के समय, 'प्रभा' ने भी अपनी युग-चेतना का नेतृत्व किया। हमारे कवियों ने झण्डे की शान में कई गीत गाए। हमारा झण्डा कभी भी झुक नहीं सकता है[२] और हम उस पर प्राणार्पण करने के लिए सदा-सर्वदा सन्नद्ध हैं।[३] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के झण्डे का स्तवन किया :—

'इसके नीचे अखिल जगत का होता है अद्भुत आह्वान !
कब है स्वार्थ मूल में इसके ? है बस त्याग और बलिदान !
ईर्षा, द्वेष, दम्भ, हिंसा का हृदय हार कर हहरै।
भारत का झण्डा फहरै।'[४]

हमारी दृष्टि हमारे देश की राजनीति तथा घटनाओं के आरोहावरोह तक ही परिमित नहीं थी। हमने आयर्लेण्ड से भी प्रेरणा ग्रहण की[५] और विश्व युद्ध की स्थिति को भी भली भांति समझा।[६]

१—'जुलाई, १९२०, पृष्ठ १।

२—जगमोहन 'विकसित', झण्डा, छन्द प्रथम, अक्तूबर, १९२३; पृष्ठ २५१।

३—'प्रिय अतीत के स्वेद-बिन्दु को धारण करती हुई खड़ी
नभ के पथ में इंगित करती जो जीवन की छाया को,
वही पताका, माँ ! तेरे आँगन में उड़ती है, कैसे—
कोई उसे झुका पाएगा ? माँ, हम सब दे देंगे प्राण।'
—रामनाथ लाल 'सुमन', तेरी पताका, पृष्ठ २४७, वही।

४—पृष्ठ २५६, वही।

५—'देशभक्ति, साहस, सजीवता, स्वाभिमान, सुख-स्वार्थ-त्याग,
सीख रहा संसार तुझी से सत्सेवा, स्वदेश अनुराग।
सुभगे ! विश्ववंद्य तू होगी बनकर स्वतन्त्रता की मूर्ति,
तेरी विजय करेगी कितने ही होनों की इच्छा-पूर्ति।'
—'परन्तप', आयर्लेण्ड, छन्द आठवाँ, फरवरी, १९२१; पृष्ठ ७८।

६—'सुनकर, तुम्हारी चीज हूँ, रण मच पड़ा यह घोर,
वे विमल छोटे से, युगल, ये भीमकाय करोर।
मैं घोरख में खिंच पड़ा, कितना भयंकर जोर !
वे खींचते हैं, हाथ थे जकड़े महान् कठोर,

राष्ट्रीय काव्य-धारा में व्यंग्य-विद्रूप तथा अन्योक्ति की मात्रा का प्राचुर्य भी प्राप्त होता है। कवियों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति में लाक्षणिकता का आश्रय ग्रहण किया है और परोक्ष-कथन की शैली को अपनत्व प्रदान किया है। इस प्रकार के समस्त कथनों में वर्तमान भारत की दुर्दशा, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश व क्षोभ और ब्रिटिश राज्य के प्रति कटाक्ष भाव निहित हैं। इस काल के कवियों को 'पुष्प' का माध्यम या अन्योक्ति-साधन अतीव प्रिय रहा है। इसके द्वारा पराभव,[१] शक्ति-विहीनता[२] और भारत-पतन की दृश्यावलियाँ प्रस्तुत की गयीं।[३] पुष्प का उपासक तथा प्रणयी भ्रमर होता है;

हे देव ! प्यारे दांव ही निर्णय करेंगे आप,
उस ओर तेरे पाँव हैं, इस ओर मेरे पाय।'
—माखनलाल चतुर्वेदी, युद्धों के बीचों बीच, दिसम्बर, १९२३; पृष्ठ ४७१।

१—'शुद्ध वायु का वास नहीं है, रवि का पूर्ण विकास नहीं है,
दिन दिन सूख रहा हूँ देखो, जीवन की ये अंतिम घड़ियाँ मोहन !
किस भाँति बिताऊँ ? वन माली ! तेरी माला में,
मैं किस भाँति पिरोया जाऊँ ?'
—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, असमर्थ पुष्प, छन्द द्वितीय, सितम्बर, १९२०; पृष्ठ १३४।

२—'अब वह मनहारी शक्ति तेरी कहाँ है ?
मलिन पड़ गया है, सर्व लावण्य तेरा।।
प्रमुदित मन वाले, भाव सारे हवा हैं।
अब गत दिन भूले, पूँछता है न कोई।।'
—जगन्नाथ शर्मा 'रसिकेश', अन्योक्ति, सुमन के प्रति, छन्द छठवाँ, नवम्बर, १९२१; पृष्ठ ३०२।

३—'मतृक सा पड़ा हुआ यह फूल।
पहली दशा सोचकर उर में उठते हैं दुःख शूल।
उपवन में जो खिला हुआ था, स्वच्छ वारि से धुला हुआ था,
नित नव मोद मनाता था, जो गौरव भूले भूल।
पवन सुरभि नित फैलाता था, अलि दल मोद भरा पाता था,
सुरभि हेतु सज्जन आते थे, निज रुचि अनुकूल......।।'
—हरिश्चन्द्र देव विद्यार्थी, अन्योक्ति, अक्तूबर, पृष्ठ १९२०; २१०।

सो उसका भी चित्र खींचा गया। भ्रमर की गुनगुनाहट में भारत की पराधीनता[1] और अंग्रेजों की विष-वमनता[2] दोनों का सम्मिलित स्वर कर्णगत हुआ। ग्रीष्म ऋतु में सुमन तथा भ्रमर दोनों की बहार चली जाया करती है। ग्रीष्म के माध्यम से ब्रिटिश राज्य के प्रति कटु व्यंग्य की सर्जना की गयी।[3] ब्रिटिश राज्य के स्वत्वाधिकारी की 'उग्र' जी ने भी रोचक ढंग से खबर ले ली :—

'गोरे भगवान ! कर जोरे पाँव तोरे परौं,'
भोरे भोरे भारतीन भोरे न भुलाइयो।
भारतीन रीवरी कृपा ते सिर धारे खड़े,
दासता, दरिद्र, दुःख और न बढ़ाइयो।
जेते कर आपके कलंक ते रंगे हैं तेते,
येते कर अधिक न सेंते सरमाइयो।

१—'अब कैसे पिण्ड छुड़ाऊँ, पहली आजादी पाऊँ।
फिर मैं अपना कहलाऊँ, टूटे यह जाल पराया,
मैं किधर हाय उड़ आया।।'
—अचलेश्वर नाथ व्यास, भौंरे का पश्चात्ताप, छन्द तृतीय, पृष्ठ २७८; नवम्बर, १९२१।

२—'भ्रमर तू वृथा करे अभिमान !
उलटे मुँह की खानो होगी, झूठो है सब शान।
भेद भाव क्यों मन में लाता, क्यों करता अपमान,
नीले, पीले और दुरंगे, हैं सब फूल समान।
स्वार्थ-सिद्धि में जो तत्पर हैं, उसका क्या ईमान ?
यश का रस तुझको न मिलेगा, कर अपयश-विष-पान।।'
—अचलेश्वरनाथ व्यास, चेतावनी, जून, १९२२; पृष्ठ ४५४।

३—'ग्रीष्म ! तुम्हारा राज सदा क्या बना रहेगा ?
क्या द्रुम लता-समूह सदा यह व्यथा सहेगा ?
नष्ट कलाएँ पूर्ण कलाकार की भी होंगी।
भरकर क्रमशः अन्त डूब जाएँगी डोंगी।
प्रत्येक समुत्थित का पतन है अनिवार्य्य नियत अटल,
नित मिलता है इस जगत में अन्त बुरे को बुरा फल।।'
—दिवाकर प्रसाद वर्मा, ग्रीष्म, छन्द चतुर्थ, जुलाई, १९२१; पृष्ठ २३।

दूनो कर-गेह, तीनों गूनो कर-नेह, कर-
चार गूनो नूनो घर सूनो न बनाइयो।'[१]

गोरे भगवान बात से नहीं माने[२]; इन्हें तो बलिदान की आवश्यकता थी सो पतंगे की गाथा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया।[३]

राष्ट्रीय कविताधारा में क्रान्ति-वादिता का पक्ष विद्रोह तथा विप्लव की कविता के रूप में प्रस्फुटित हुआ। इसे हम व्यंग्य-अन्योक्ति काव्य-धारा का स्पष्ट, निर्भीक तथा प्रत्यक्ष रूप मान सकते हैं। हृदय की उमंगे अपने भीषणतम रूप में अभिव्यक्त हो गयी। श्री हरिभाऊ उपाध्याय प्रलयाग्नि के धधकने की प्रार्थना करते हैं :—

'प्रभो ! कब धधकेगी प्रलयाग्नि ?
कब चेतेगी मार्तण्ड को वह प्रचण्ड किरणाग्निन ? प्रभो०
घोर मेघ गर्जन कब होगा, भीषण विद्युत्पात ?
कब उगलेगा आग ज्वाल-मुख डोलेगा भू-गात ? प्रभो'[४]

सहन-शक्ति की भी एक सीमा होती है। हमारे कवियों ने विदेशी सत्ता को सावधान किया कि भारत रूपी सिंह, आघातों से क्षुब्ध हो उठा है।[५] भारतीयों को टुकड़े खोर

१—कर, छन्द प्रथम, मई, १९२२; पृष्ठ ३८९।

२—'पुष्प वर्षा से नहीं तू मानता, मानता है वज्र के आघात से
मिष्ट बातों से कदापि न मानता, मानता है सर्वदा खल लात से।'
—दीनानाथ 'अशंक', पाषाण, छन्द तृतीय, जून, १९२१, पृष्ठ ३५०।

३—'अच्छा क्या पतंग-जीवन के व्रत की कहीं सुनी है बात ?
सरल समझते हैं पतंग, हँस स्वत्व-हेतु दे देना गात।
स्वत्व-प्राप्ति की बलि-वेदी पर, होवें क्यों न कोटि बलिदान,
तो भी होगी सबके मन में, दृढ़ आशा मुँह में मुसकान।।'
—भगवन्त गणपति गोयलीय, दीप-निर्वाण, छन्द तृतीय, मई, १९२२; पृष्ठ ३६९।

४—प्रलयाग्नि, जून, १९२३; पृष्ठ ४५४।

५—'गिरि शृंगों के व्रण पूर्ण हृदय जिसका बल शौर्य्य दिखाते हैं,
जिसके भय से यूथप निशि में कुंजों में शीस छिपाते हैं।
जिसकी हुँकार श्रवण कर ही मृग शावक पीठ दिखाते हैं,
जिसके नख लेखन की स्मृति से गज-गण्डस्थल थर्राते हैं।

गुलाम के घोर तिरस्कार-मय-सम्बोधन से हमारा कवि-समाज बौखला उठा ।[१] ऐसे समय में परिवर्त्तन का आह्वान किया गया ताकि वह सत्ता की शान को मिटा दे ।[२] श्री भगवतीचरण वर्मा ने महाक्रान्ति को आमन्त्रित किया :—

'हृदय-स्थल की जो अशान्ति है, जीवन की जो महाक्रान्ति है—,
पग पग पर जो विकट भ्रान्ति है,
इसे तोड़ दो ! और विश्व में हाहाकार मचा दो !
हम दरिद्र हैं किन्तु शक्तिमय जग को यही जंचा दो,
हाहाकार मचाकर पृथ्वी तल तक, चलो, हिलाओ ।
आओ ! कर्मक्षेत्र में आओ !'[३]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी भी शूल को फूल समझकर कर-तल पर ब्रह्माण्ड उछालने के लिए ही प्रोत्साहित करते हैं—

'मत व्यर्थ पुकारे शूल शूल, कह फूल फूल, सह फूल फूल ।
हरि को हीतल मे बन्द किये, केहरि से कह नख हूल हूल ;
कागों का सुन कर्त्तव्य-राग कोकिल का कलि को भूल भूल,
सुर पुर तज दे, आरध्य कहे तो चल रौरव के कूल कूल ।
भूखण्ड बिछा, आकाश ओढ़, नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल, अपना जीवन धन ले निहार ।'[४]

वह सिंह सगर्वाघातों से यदि क्षुब्ध हुआ, क्या विस्मय है !
मदमाते पशुओं ! सावधान !! अब जीवन, धन का अन्वय है ।।'
—'एक राष्ट्रीय पथिक'; सावधान, दिसम्बर, १९२३; पृष्ठ ४४७ ।

१—'जहाँ आत्म स्वातन्त्र्य ज्ञान था और भावना थी स्वच्छन्द,
कभी न दृग से देख सकूँगा उसको यों पिंजड़े में बन्द ।
वीर हृदय, निर्भय, साहस मय, वीरोचित थे जिनके काम,
कैसे सुनूँ उन्हें कानों से ? हा ! हा ! 'टुकड़े खोर गुलाम' ।'
—'हृदय', आर्तनाद, छन्द सप्तम, मई, १९२१; पृष्ठ २९४ ।

२—'सत्ता की शान मिटाओ, परिवर्तन ! स्वागत आओ ।
अन्यायी की अनृत नीति का हो विनाश भरपूर,
जल में थल, थल में जल का भ्रम हो जाये सब दूर ।।'
—देवीदत्त मिश्र, आह्वान, छन्द चतुर्थ, जनवरी, १९२१; पृष्ठ २९ ।

३—आह्वान, छन्द द्वितीय, मार्च, १९२०; पृष्ठ २० ।

४—प्रोत्साहन (जेल में लिखी हुई), अगस्त, १९२२; पृष्ठ ८१ ।

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता :

राष्ट्रीय काव्यधारा का सांस्कृतिक पक्ष अतीत-गायन में अभिव्यक्त हुआ है। हमारे कवियों का ध्यान भारत के उज्ज्वल और महिमा मण्डित अतीत की ओर गया। प्रत्येक देश की जाति अपने विगत के गौरव से ही प्रेरणा ग्रहण करती है और उसी के द्वारा ही अपने वर्तमान के मार्ग को प्रशस्त बनाती है। पूर्वजों के सद्गुणों को अपनाने से ही हमारा उत्थान होता है।[१] श्री रामनरेश त्रिपाठी को अपने देश के ज्योतिर्वान दीपकों का स्मरण हो आता है :—

'राम, भीष्म, हनुमान, भीम, अर्जुन, गौतम गिरिधर का,
चन्द्रगुप्त, चाणक्य, वीर विक्रम, अशोक, शंकर का।
गुरुगोविन्द, प्रतापसिंह, श्री दयानन्द, अकबर का,
बाल तिलक का पिता आज है मार्ग ढूंढ़ता घर का।
सिर पर मृत्यु, ओंठ पर ईश्वर, साथी कौन किधर है !
हाय ! अंधेरे में दीपक से खाली इसका कर है।।'[२]

कवियों ने हमारे अवतारों तथा वीर पुरुषों का जयकार किया।[३] राष्ट्रीय पथिक' को देश की पुरातन चराचर विभूतियों की स्मृति हो आयी :—

"कहाँ वह सौख्य, कहाँ स्वातन्त्र्य ?
है यमुना, मथुरा, मधुवन युत वंशी वट अभिराम !
किन्तु कहाँ वह हरि-अधरामृत पूरित गीत ललाम ?
हैं षट्ऋतु, निकुंज, गिरि-कानन, उपत्यका, रमणीय ;
किन्तु, कहाँ वाल्मीकि, व्यास की ललित कला कमनीय ?
है दिल्ली, चित्तौर, सिंहगढ़, मरू, बुन्देल, पांचाल !

१—'निज पूर्वजों के चरित का जिसको नहीं अभिमान है,
उस जाति का जीना जगत में मित्र ! मरण-समान है।
रखती सदा जो पूर्वजों के सद्गुणों का ध्यान है,
उस जाति का निश्चित समझ लो शीघ्र ही उत्थान है।'
—लोचनप्रसाद पाण्डेय, वक्तव्य, छन्द चतुर्थ, २९ नवम्बर, १९१३; पृष्ठ ४७८।

२—दीपक, अप्रैल, १९२४; पृष्ठ २५६।

३—'जैराम जैकृष्ण प्रताप वीरता, जै न्याय की जै शुभ सत्यकोसदा
जै गान गावें हम शान्ति शक्ति की 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा।'
श्री माखनलाल चतुर्वेदी, हिन्दुओं का रणगीत, छन्द १५ वाँ, कार्तिक, सं० १९७२; पृ० ४६६।

किन्तु कहाँ, दुर्गा, प्रताप, शिव, पृथ्वीराज, छत्रसाल ?
हैं पानीपत, हल्दी-घाटी, कुरुक्षेत्र चौगान !
किन्तु कहाँ वह युद्ध-कला, वीरत्व त्याग-विज्ञान ?'[१]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी की वाणी भी भूतकाल का गौरव और भावी उज्ज्वल आशाओं के स्वागतार्थ मुखर है :—

'भूतकाल का गौरव, भावी उज्ज्वल आशाएँ ले,
लाट, किला, मीनार, सभी को अपने दाएँ बाएँ ले,
इस तट पर बैठी-बैठी मैं व्याकुल बिता रही घड़ियाँ,
चिन्तित थी, मत बिखर जाय ये वन-कुसुमों की पंखड़ियाँ,
यमुना का कल-कल दुहराकर कब से स्वागत गाती हूँ,
हरि जाने स्वागत गाती हूँ या सौभाग्य बुलाती हूँ।

दिल्ली के दुर्ग की दुर्दशा हमारे क्षोभ का कारण बनती है।[२] विजयदशमी हमें, पुराने दर्प-पूर्ण कृत्यों की ओर आकृष्ट करती है।[३] वर्तमान बहुदलवाद को देखकर हमें प्राचीन भारत का दृश्य दिखायी देता है जिसमें सब एक ही दल के अन्तर्गत थे।[४]

१—कहाँ ? जुलाई, १६२०; पृष्ठ २४।

२—'कभी था जो दवरि आम, आज है वह खण्डहर अवशेष !
जड़े थे जहाँ सुरत्न लालम—वहाँ हैं कंकड़-पत्थर शेष,
प्रभातोन्मुख खण्डित प्राचीर—छोड़ती हुई दीर्घनिःश्वास,
कह रही मानो बनो अधीर दासता बुरी, सुखद है नाश।'
—'राष्ट्रीय पथिक', क्या देखा ? , मार्च, १६२०; पृष्ठ १५।

३—'बोलो, बोलो बहा के अमृत हृदय में दर्प से वीरता से,
आर्यों में है अनोखे रण निपुण बली बांकुरे शत्रु हन्ता,
आर्यों के शौर्य द्वारा, निज रिपुगण से इन्द्र ने मुक्ति पायी,
शान्ति स्वाधीनता के हित रुधिर सदा आर्य भू है बहाती।'
—श्री माखनलाल चतुर्वेदी, विजयदशमी और प्रवासी भारतीय वृन्द, छन्द पंचम, आश्विन सं० १६७२; पृष्ठ ४०४।

४—'भैंसे सा क्रोधी, कपोत सा प्रेमी, सीधा खर सा,
मधुमक्खी सा कृपण, स्यार सा कायर, वीर बबर-सा।
बक सा छली, कुटिल कौवे सा, मोह मुग्ध मधुकर सा,
लोभी श्वान समान, गाय सा सरल, सुस्त अजगर सा।
तितली सा चंचल मनुष्य भी जिसकी ज्योति विमल में,
मन्त्र मुग्ध सा चलता था निश्शंक एक ही दल में॥'
—रामनरेश त्रिपाठी, दीपक, अप्रैल, १६२४; पृष्ठ २५६।

भारत के अतीत को इतना महान् और वर्त्तमान को इतना अकिंचन देखकर हमारे कवियों को हार्दिक खेद हुआ। दुर्दशा के कारणों की खोज उन्होंने समाज, राजनीति, पराधीनता, आर्थिक ह्रास आदि क्षेत्रों में की। जिस देश का भूतकाल इतना विश्व सम्मानित रहा हो; उसकी वर्त्तमान दुर्गति पर कौन अश्रुपात नहीं करेगा? समाज के अध: पतन ने हमारे हृदयों में टीस पैदा कर दी। आर्य-रक्त का प्रवाह अब हममें सूख गया।[१] समाज के चार वर्णों में असन्तुलन तथा विशृंखलता उत्पन्न हो गयी।[२] हमने बातों को तोड़-मरोड़ना सीख लिया।[३] अबलाओं का अपमान होने लगा।[४]

१—भगवन्त गणपति गोयलीय, मौनावलम्बन, छन्द षष्ठ, जुलाई, १९२१; पृष्ठ ९।

२—'हिन्द को इन्सान' गर हम मान लें, बेशुबा तव 'विप्र' को 'सिर' जान ले।'
और 'क्षत्रिय' 'बाहु' है पहचान लें, वैश्य जन, उसका 'उदर' अनुमान लें।
शूद्र तब उपमान 'पद' की पायेंगे,
सब मिलेंगे वे चार, 'तन' कहलायेंगे।
पर समय ने खण्ड तन के कर दिये,
फूट-पत्थर बीच में है धर दिये।
विप्र के मस्तिष्क विकृत कर दिये,
दासता के भाव मन में भर दिये।
है नहीं 'सिर' ही सलामत हिन्द जब,
पा कहाँ सकता बिचारा चैन तब।
—सैयद मीर अली 'मीर', सुदुपदेश, छन्द द्वितीय, फरवरी, १९२३; पृष्ठ ९९-१००।

३—'छोड़ दे पेंच पाँच की आदत, बीच का खींच तान कर दें कम।
तोड़कर औ मरोड़ कर बातें, जाति का क्यों गला मरोड़े हम॥'
—अयोध्यासिंह उपाध्याय, चेतावनी, सप्तम छन्द, मार्च, १९२१; पृष्ठ १३५।

४—'मार्ग मंजुल में शूल कराल, चुभ गया मर्मस्थल को भेद,
फट गया सहसा वक्ष विशाल, छा गया अंग-अंग में स्वेद।
अरे! अबलाओं का अपमान, सभ्यते! तेरा हो कल्याण!
यही क्या वीरों का अभिमान? दुधमुहें बच्चों की ले जान॥'
—'परन्तप', शूल, अक्तूबर, १९२०; पृष्ठ १९३।

समयान्तर का प्रभाव पुरुषत्व पर भी पड़ा।[१] भ्रष्टाचार ने अपना वितान तान लिया।[२]

हमारी आर्थिक स्थिति में दुरावस्था उत्पन्न हो गयी। तत्कालीन भारत की आर्थिक दशा का चित्र श्री 'त्रिशूल' ने भी खींचा :—

'कुछ भूखों मर रहे महातनु शीर्ण हुआ है,
कुछ इतना खा गये कि घोर अजीर्ण हुआ है।
कैसा यह वैषम्य भाव अवतीर्ण हुआ है,
जीर्ण हुआ मस्तिष्क हृदय संकीर्ण हुआ है।
कुछ मधु पीकर मत्त हो, आँसू पीकर कुछ रहें,
कुछ लूटें संसार-सुख, मरते जी कर कुछ रहें।'[३]

१—'प्रिय ! ये सब गीदड़-सिंह बने,
फिरते किस कारण से वन में ?
पिक-गान विमानित हाय ! सभी
अति उत्सुक बायस हैं मन में।
जलदान न देकर केवल गर्जन—
शब्द रहा सब ही घन में।
परिवर्तन है यह क्यों ? सुनिए !
समयान्तर है सबके तन में॥'
—प्रेमदास वैष्णव, समयान्तर और पुरुषत्व, छंद द्वितीय, आषाढ़ सं० १९७२; पृष्ठ २४७-२४८।

२—'लगा ज्ञान-अंजन दृग खोल,
भारत प्रजा न रख अब पोल !
खा जाते हैं तेरा माल,
लुच्चे गुण्डे फैला जाल !
सच्चे साधु न कुछ पाते हैं,
इधर-उधर धक्के खाते हैं,
'गिरिधर' फिर क्यों यों न सुनाय,
'अन्धे पीसे कुत्ता खाय'।'
—गिरिधर शर्मा, गिरिधर-विनोद, छन्द द्वितीय, जनवरी, १९१४, पृष्ठ ५८५।

३—वर्त्तमान भारत की आर्थिक अवस्था, चित्र पर लिखित कविता, अप्रैल, १९२१; पृष्ठ २२१ व २२२ के मध्य।

रोटी न मिलने को शिकायत तो 'हरिऔध' जी ने भी की है :—

'है नहीं कुछ अजब, हमें रोटी,
पेट भर आज जा नहीं मिलती ।
आह ! तब किस तरह कमाई हो,
जाति की टाँग जबकि है हिलती ।[1]

श्री रामचरित उपाध्याय को हमारी अन्न-सम्पदा के 'बाहरी' उपयोग पर दुःख-मिश्रित क्रोध हो आता है :—

'गेहूँ को पैदा हम करते, खाते उसे बाहरी लोग,
क्षुधा-क्षीण हो हम मरते हैं, सहते हैं नाना विध रोग ।
फिर भी हमको होश न आता, हा ! मारे अज्ञान के,
हिन्दुस्थान हमारा मित्रों ! हम हैं हिन्दुस्थान के ।'[2]

हमारी वर्त्तमान दुर्दशा का मूल स्रोत परतन्त्रता ही प्रतीत हुआ । हमारी फूट के कारण ही हम इस फल को भोग रहे हैं ।[3] जयचन्द जैसे देश द्रोहियों ने हमें पराधीन बनाया[4] और आज भारत परतन्त्रता के तिमिर मे डूबा हुआ है ।[5]

१—दिल के फफोले, छन्द षष्ठ, मई, १९२०; पृष्ठ २२

२—जातीय गीत, छन्द द्वितीय, नवम्बर, १९१३; पृष्ठ ४७२ ।

३—'है बुरा रोग लग गया पीछे, है अबस धाक जाति की खोते
सुर सदा है अलग-अलग रहता, एक सुर हम कभी नहीं होते ।।'
—अयोध्यासिंह उपाध्याय, चेतावनी, चौपदे, छन्द पंचम, फरवरी, १९२१; पृष्ठ ७० ।

४—'आपस के झगड़े रगड़े में जयचन्द हठी पग धरते क्यों'
जंजीर-गुलामी जोर जड़ी उसको काटो, यों डरते क्यों ?
प्रभुता पौरुष पर पाला रख,इस हेट पेट को भरते क्यों ?
जग में काया है छाया सी, इसकी माया में मरते क्यों ?
स्वातन्त्र्य-शिखिर पर चढ़ने को जीवन उतसर्ग न करते क्यों ?
अपवर्ग स्वर्ग सब इसमें है ; बन्धन में पशु से चरते क्यों ?
—'विमल', क्यों ? फरवरी, १९२३; पृष्ठ १२४ ।

५—'आज विश्व के घर में देखो कितना है आलोक ।
और हमारे घर का दीपक बुझा हुआ, हा शोक !
हृदय को किस प्रकार समझाऊँ ?
कहो मैं कैसे दीप जलाऊँ ?'
—'कुसुम', कहो ! मैं कैसे गीत-दीप जलाऊँ ?, फरवरी, १९२२; पृष्ठ १२४ ।

भारत में अनेक जातियाँ तथा धर्म आए परन्तु हमारे कवियों का मूल कथन था कि भारत-माता से कपटाचार करने की आवश्यकता नहीं है। भारत ने जिस प्रकार अन्य जातियों को प्रश्रय प्रदान किया; उसी प्रकार गौरांग जाति को भी, कुटिलता व अभिमान त्यागने के पश्चात्, अपनत्व प्रदान किया जा सकता है। श्री 'कर्मशील' ने अपने एक गीत में परदेशी के प्रति सारयुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति की है :—

'तुम्हें भी वही मिलेगा प्यार,
मत कर रे परदेशी तू मैय्या से कपटाचार।
पहले हुआ यहाँ पर जिस परदेशी का अवतार,
कहकर हमको असुर घृणा का उसने किया प्रसार।
उसके बाद दूसरा आया जो ढ़ाकर अत्याचार,
रक्खा काफिर नाम हमारा, चमकाई तलवार।
दोनों रहे मचाते घर में पहले कुछ दिन रार,
पर अपने बन गए अन्त में, बना एक परिवार।
अब तू आया है परदेशी करके सागर पार,
हमको काला कहता है, करता है अत्याचार।
प्रगट सभ्यता-शैशव, करता यह तेरा व्यवहार,
पर तू भी तो मिल जायेगा, हममें अरे गँवार।
आ तू भी रह जा, इस घर में, हमें नहीं इंकार।
क्या करना तकरार विदेशी रहना दिन चार।
त्याग कुटिलता सुख से, रह जा, सब अभिमान बिसार,
बन्द न होगा तेरे हित भी माँ के घर का द्वार।'[१]

परम पिता परमेश्वर के प्रति प्रार्थना और भविष्य के प्रति आशा-वादिता के द्वारा ही हमारे कवियों ने वर्तमान भारत की दुर्दशा तथा परतन्त्रता के निराकरण का मार्ग खोजा। दीन-दुखियों और प्रताड़ित व्यक्तियों का एक मात्र आश्रय व सम्बल ईश्वर ही होता है। अन्त में हमारी दृष्टि उसी की ओर झुक जाती है। हमारे कवियों ने भी अनेक रूप से अनुनय-विनय की। ईश्वर से देश की मुक्ति[२] के लिए, शक्ति-सुधा की

१—मई, १९२३; पृष्ठ ३७८।

२—'तुम्हीं हो एक मात्र आधार।
पड़ी देश-जीवन-नौका है कर्णधार! मँझदार।
शिथिल डाँड-पतवार, हुए सब साधन हैं बेकार।
चलती द्वेष-वायु, बहती है प्रबल काल-जल धार,
उठते आपद्-भंवर अनेकों विघ्नों की भरमार।
जर्जर हुई नाथ! यह नौका सहकर कठिन प्रहार,
करो दया कर अब भी मोहन! विघ्नों का प्रतिकार॥'
—श्यामलाल पाठक, प्रार्थना, अक्तूबर, १९२१; पृष्ठ २३०।

वृष्टि[१], पतित बन्धुओं के उद्धार[२] और पुण्य पताका फहराने के लिए[३] विनम्र प्रार्थनाएँ की गयी। प्रो० सम्पूर्णानंद ने प्रभु से अपने लीला-क्षेत्र की स्थिति को अवगत कराया :—

'जो लीला क्षेत्र तुम्हारा था, तुमको स्वधाम से प्यारा था,
वह नीचे गिरता जाता है, उसका उद्धार करो न करो।
बल-वैभव ज्ञान विहीन हुए, हा ! सब हत् दीन मलीन हुए,
अब भी हममें सद्वस्था का, भाये विस्तार करो न करो।।'[४]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी ईश्वर को ही एकमात्र अवलम्बन माना—

'अब तो अवलम्बन तेरा है।
होकर भी अस्तित्व नहीं-सा आज कहीं भी मेरा है।
जो प्रकाश था, बुझा अचानक झंझा के झोंके से,
खड़े रह गये हैं सब साथी चित्रित-से, चौंके से,
यह विस्तीर्ण विश्व अब मानो एक संकुचित घेरा है।

१—'नाथ ! अब और न अधिक रुलाओ।
सुखमा-सौख्य-खानि, सुर-दुर्लभ, पावन भारत देश।
सदियों से दासत्व पाश में, सहता अगणित क्लेश,
जर्जर तन मय प्राण शेष है, बचे न धन-बल मान लेश है।।
शक्ति-सुधा बरसाकर भारत-अन्तर्दाह बुझाओ।।'
—राजबल्लभ सहाय, नवम्बर, १९२१; छन्द प्रथम, दीन पुकार, पृष्ठ २७१।

२—'सुन्दर स्वर दे, मधुर कण्ठ में तेरे गौरव गाऊँ,
पुण्य प्रीति दे, प्रेम डोर में तुझको बांधू, हर्षाऊँ।
वह अनन्त गति दे, गौरव में जिससे कुछ उपकार करूँ,
पतित बन्धुओं के हृदयों में, उच्च भक्ति के भाव भरूँ।।'
—'गुलाब', भिक्षा, जून, १९२३; पृष्ठ ४६०।

३—'तेरी पुण्य पताका फहरे।
मुक्त मुक्ति पट उसका लहरे, आंधी उठे, घटा भी घहरे।
मेरी दृष्टि उसी पर ठहरे, लाख-लाख कण्टक हो पथ में,
चलूं जिधर वह छहरे, भय-विघ्नों से हृदय न हहरे।'
—मैथिलीशरण गुप्त, स्वप्नोत्थित, जनवरी, १९२०; पृष्ठ २।

४—करो न करो, मार्च, १९२१; पृष्ठ १४६।

चारों ओर अँधेरा है, अब तो अवलम्बन तेरा है ।।'[1]

भारत की दुर्दशा का वर्णन श्रवण कर, ईश्वर भी भारत के भाग्य खोलने के लिए तत्पर होते हैं । इस प्रकार कवियों ने भविष्य के प्रति आशावादिता का संचार किया । हमारे कवि भविष्य की प्रत्येक प्रकार की स्थिति के लिए तैयार थे ।[2] आशावादी तथा कर्मठ होने के कारण उन्हें पूर्ण विश्वास था कि भारत में सौख्य की वृष्टि होगी ।[3] आर्थिक सम्पन्नता की भी उन्होंने कल्पना की । भारत की परतन्त्रता के बन्धनों से मुक्त होने में भी उन्हें पूर्ण आस्था थी ।[4] इसीलिए स्वराज्य का स्वागत मुक्त रूप से किया गया ।

'हृदय राज ! शुभ स्वराज्य ! है न आज सुभग साज,
आओ इन कुशासनों हो पै रहो विराज ।
दीन देश, क्षीण-वेश, नींद त्याग, सानुराग,
चरण शरण आ पड़ा है, छोड़ लोक लाज ।

१—शरणागत, जनवरी, १९२२; पृष्ठ ८० ।

२—'चलो तुम, हम भी आकर वहाँ, करेंगे लीला नई ललाम,
चलाकर चक्र सुदर्शन चक्र, हरेंगे बाधा विघ्न तमाम ।
उड़ेगी धवल धर्म की ध्वजा, सत्य की जय होगी भरपूर,
अमृतमय कर्म-योग का मन्त्र, करेगा अँधकार विष दूर ।
बजेगी शान्ति मुरलिका मधुर, बढ़ेगा आत्मत्याग अनुराग,
फलेंगे साम्य-वृष्टि से बाग, खुलेंगे भारत के भी भाग ।।'
—'रसिकेन्द्र', विष्णु और वसन्त, छन्द सप्तम, मार्च, १९२१; पृष्ठ १४७ ।

३—'पर्ण कुटी या भव्य भवन में, पीताम्बर या मुनि पट तन में;
षट् रस-रत या शाक अशन में, नव्य-नगर या कानन में,
होंगे, रत्नाभरण युक्त या दृढ़-जंजीर बंधावेगा,
देखेंगे, वह सब देखेंगे जो भविष्य दिखलावेगा ।।'
—राजाराम शुक्ल, भविष्य के प्रति, नवम्बर, १९२०; पृष्ठ २८६ ।

४—'देखेंगे दृश्य नाना सुरगण फिर भी, आर्य्य स्वाधीनता के,
गावेंगे गान आ हा ! जय जय कहते, वीरता धीरता के ।
देवों के हस्त द्वारा हम पर फिर भी, पुष्प की वृष्टि होगी,
है भाई, है न देरी भरत-वसुमति, सौख्य की सृष्टि होगी ।।'
—लोचन प्रसाद पाण्डेय, नवयुग-भावना, छन्द १० वां, अप्रैल, १९१५, पृष्ठ ७६ ।

शुल युक्त, धूल युक्त, मार्ग, धाम, हे ललाम !
पंक पूर्ण वीथियाँ हैं स्वागतार्थ साज ।
परिभोग, राज-रोग, दास-योग, याग लोग,
क्षेत्र में खड़े किये अमोघ अस्त्र आज ।
दिव्य दान, आत्म-मान, शुभ-सुयोग, असहयोग,
आपके लिए सजा चुका स्वतन्त्र ताज ।'[1]

सामाजिक पक्ष :

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य में हमारे सामाजिक पक्षों[2] की प्रभावपूर्ण उद्भावना[3] हुई है। समाज के प्रमुख अंग, हिन्दुओं को, सावधान किया गया;[4] हिन्दुत्व को सीमित अर्थों से दूर, राष्ट्र की व्यक्तिवादी समग्रता के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया।

१—'परन्तप', स्वराज्य-स्वागत, मार्च, १९२१, पृष्ठ १३० ।

२—'खेत में, घर में, पथों पर भी, अहा !
अन्न ही सर्वत्र होगा ढेर में ।
हम सुखी होंगे, मिटेंगे दुःख सब,
फिर न होंगे रोटियों के फेर में ।।'
—दिवाकर प्रसाद वर्मा, नवांकुर, मई, १९२५; छन्द ११ वाँ, पृष्ठ ३२९ ।

३—'हे साँकल-वद्धी, शर-पीड़ित, हे घायल-हिय कीर,
थोड़े हि दिन ठहरहु हे प्यारे, राखि हियै माँ धीर ।
केवल, सेवन हित सुवायु यह, जग बैठहु अब वीर.
आपुहिं सब सन्ताप मिटि हिंगे, टुटि जइहें जंजीर ।
बहत जग, सुखद स्वतन्त्र-समीर ।।'
—लतीफ हुसैन, नवम्बर, १९२०; सुखद-समीर, पृष्ठ २७६ ।

४—'भारत माता के दुःखों को, क्यों आज नहीं तुम हरते हो !
नश्वर काया है छाया के सम, माया में क्यों मरते हो !
दुनिया में विजयी होना है, दुर्गम पथ से क्यों डरते हो !
मिल-जुल कर आपस में वीरों ! संगठन क्यों नहीं करते हो !
'निर्मल' शूलों पर निर्भय हो, तेजी से दौड़ लगाने का,
देखो तो आधा लोक ऋणी, है इसाई कहलाने का ।।'
—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', हिन्दुओं सावधान, मई, १९२३; पृष्ठ ३८३ ।

हिन्दुओं[१] तथा हिन्दुत्व के गौरव का अंकन किया गया।[२] भगवान राम का गुणगान किया गया।[३] महात्मा ईसा के आदर्श-सिद्धान्त तथा पुनीत पथ से विचलित इसाईयों के प्रति गहन विक्षोभ प्रकट किया गया।[४] हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी हमारे कवि-गण प्रयत्नशील रहे।[५] मंदिर व मस्जिद के मिलन को, नवयुग के वरदान

१—'आर्यों की धर्मनिष्ठा, शुचि-रण-पटुता, पूर्वजों की प्रतिष्ठा,
रक्खो, प्यारे हमारे, समर कुशल ऐ क्षत्रियों स्वाभिमानी !
हिन्दू, हिन्दी हिला दें इस भवरिपु के मान का खम्भ ऊँचा,
गूँजे आकाश वीरों समुद विजय के गान से हिन्दुओं के।'
—माखनलाल चतुर्वेदी, विजयादशमी और प्रवासी भारतीय वृन्द, छन्द चतुर्थ, आश्विन, सं० १९७२।

२—'स्वाधीनता भारत की अखण्ड हो, हिन्दुत्व का गौरव विश्व व्याप्त हो,
सगर्व धारें हम युद्ध मन्त्र ये, "सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा॥"
—माखनलाल चतुर्वेदी, हिन्दुओं का रण गीत, छन्द तृतीय, कार्तिक, सं० १९७२।

३—'जन्म-जन्म में सदा राम हैं साथ हमारे,
हम सब के आधार वही हैं जीवन प्यारे।
भारत में जो धर्म आज भी सब पाते हैं,
हम सब उसके लिये राम का गुण गाते हैं।'
—कामताप्रसाद गुरु, राम, जून, १९१३; छन्द द्वितीय, पृष्ठ १३६।

४—'कहाँ ईसा के उच्चादर्श, कहाँ वह ईश्वर आदेश,
तुम्हारे कहाँ दानवी कृत्य, सतत पहुँचाया पर को क्लेश।
दूसरों पर जो है मर-मिटा, जन्म भर झेले कष्ट तमाम,
बने हो अनुयायी उसके ? कलंकित करते उसका नाम।
न कहना कभी आज से तुम, भूल अपने को इसाई,
करोड़ों दिल पर है गहरी, चोट जब तुमने पहुँचाई॥'
—श्यामलाल पाठक, अत्याचारी इसाईयों के प्रति, फरवरी, १९२३; पृष्ठ १२०।

५—'चिन्ता है होवे न कलंकित, हिन्दू धर्म पाक इस्लाम,
गावें दोनों सुध-बुध खोकर, या अल्ला, जय-जय घनश्याम।'
—माखनलाल चतुर्वेदी, बलिवेदी का सन्देश, जून, १९२०; पृष्ठ २।

के रूप में, ग्रहण किया गया।[१]

मानव-जाति की सेवा को महत्त्वपूर्ण जीवन-घटक माना गया[२] और मानवता के अपमानित होने पर दुःख प्रकट किया गया।[३] गार्हस्थ्य-धर्म[४] और शिक्षा[५] की ओर भी हमारे कवियों का ध्यान गया। शिक्षा में समानाधिकार को मान्यता प्रदान

१—'मिले आज मन्दिर और मस्जिद, राम और रहमान,
हिन्दू मुसलमान मिलते हैं, अब होगा उत्थान।
छूतछात के परित्याग में सामाजिक कल्याण—
सुलभ तथा सादी खादी में इज्जत की पहिचान।
अहा ! यह नवयुग का वरदान।'

—'कर्मशील', नवयुग का वरदान, जनवरी, १९२३; पृष्ठ ७१।

२—'तुमसे वे, उनसे तुम, पा साहाय्य शक्ति भर,
सकते हो कुछ बड़े कार्य भी सम्पादन कर।
बुन्द-बुन्द जल सिमिट-सरित जो बन जाता है,
वही अगम्य अगाध महोदधि कहलाता है।
जिसके द्वारा व्यवसाय बढ़, देशोन्नति होती सदा,
तुम उसी मनुज-समुदाय को, तुच्छ न पुत्र गिनो कदा।'

—हरिपालसिंह, श्री समर्थ रामदास स्वामी और छत्रपति शिवाजी, छन्द १४ वाँ, ३० अक्तूबर, १९१३; पृष्ठ ४४६।

३—'प्रतिष्ठा की अभिलाष अनन्य, कराती कितने कार्य जघन्य ?
मनुज मनुजों को रखकर श्वान, मनुजता का करते अभिमान ?'

—'परन्तप', आलोक का आभास, जनवरी, १९२३; पृष्ठ ३३।

४—'एक से पहिये नहीं हैं, इसलिए,
चल रहा रुकता हुआ गार्हस्थ्य धर्म।
योग्य एवं अनुभवी हो एक से,
सुख सहित दम्पति चलावेंगे उसे॥'

—दीनानाथ अशंक, आशा है, छन्द ५ वाँ, अगस्त, १९२०; पृष्ठ ८४।

५—'शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक-बालकों को—
सर्वोत्तम शिक्षा मिले, इस्पै खूब रक्खो ध्यान।
समय है सम्पत्ति, समय को न खोओ व्यर्थ,
करो पूर्ण परिश्रम रहो सदा सावधान॥'

—गिरिधर शर्मा, काम करो, छन्द तृतीय, ७ मई, १९१३; पृष्ठ १०३।

की गयी।[१] 'कहनी' को 'करनी' में परिणत करने का मार्ग सुझाया गया।[२] संगठन शक्ति की महिमा गायी गयी[३] और मन में गौरव के भाव व उमंग उत्पन्न होने की स्थिति

१—शिक्षा बिन नर क्यों आत्म-धर्म्म जानेगा ?
फिर गम्यागम्य विवेक न वह आनेगा ;
सेवी या सेव्य न मान्य मान पावेगा,
होकर उजड्डु मन में पाप ठानेगा।
होगी न, कहो उससे कौन-कौन सी ख्वारी ?
है शिक्षा के समभाग सभी अधिकारी ।।'
—हरिपालसिंह, आषाढ़ सं० १९७२, छन्द षष्ठ, पृष्ठ २४५।

२—'निरमल अपना मन, रक्खेंगे सदा ही हम,
वीर श्याम सुन्दर को हिय में बिठावेंगे।
देखि-देखि वाकी ओर करेंगे वचन सांचे,
'कहनी' की सी 'करनी' करके दिखावेंगे।
बोलेंगे न झूठ कभी चाहे प्राण चले जायँ,
भूल पड़े पंथियों को पथ पै लगावेंगे।
गहेंगे परोपकार, करेंगे स्वदेश सेवा,
भारत को एक कर भारती कहावेंगे।'
—गिरिधर शर्मा, गिरिधर-विनोद, उद्देश्य, छन्द प्रथम, २६ नवम्बर, १९१३; पृष्ठ ४८०।

३—'सहस्त्रों लाखों जल कण एक, एक उद्देश्य, एक ही इष्ट,
एक ही लक्ष्य, एक ही टेक, संगठन बल से बने बलिष्ठ,
मधुर समता के गाते गीत, सलिल धारा की छोड़ फुहार,
समझकर सदा सत्य की जीत, दरिद्रों का कर दो उद्धार।'
—'राष्ट्रीय पथिक', बिन्दु-विनोद, द्वितीय छंद, अक्तूबर, १९२०; पृष्ठ २००।

को उत्कृष्ट माना गया ।[१] समाज की कुरीतियों का भण्डाफोड़ किया गया ।[२]

हमारे कवियों ने समाज के प्रताड़ित व त्रस्त अंगों तथा पात्रों के प्रति भी अपनी मार्मिक समवेदना प्रकट की । कृषकों की अन्तर्दशा[३] और क्रन्दन ने उन्हें झकझोर दिया ।[४] इसी भावना से प्रेरित होकर, उन्होंने कृषि की दशा में सुधार करने का उपदेश

१—'था हमें एक मुख, पर दस मुख को मारा,
था सहस बाहु दो बाहों के बल हारा ।
था सहस नयन दबता दो नयनों द्वारा,
रवि देख छिपा तारात्रों का दल सारा ।
यह जान मन उमंग जो उमंग में आवे,
तो किसे ताब है हमें आँख दिखलावे ॥'
—अयोध्यासिंह उपाध्याय, दमदार पावे, छन्द तृतीय, मार्च, १९२४; पृष्ठ २१३ ।

२—'जो यौवन का लूट चुके सुख, अब मलते रहते हैं हाथ,
'बाबा' कहलाते, पर रहती, विषय-वासना जिनके साथ ।
देख किशोरी को हो जाते, जिनके आनन-कूप स-नीर,
धिक्-धिक् उन बूढ़ों की मति को, रहें ब्याह के लिए अधीर ।'
—बूढ़े का व्याह, चित्र पर लिखित कविता, प्रथम चित्र, कार्तिक सं० १९७२, भाग २, संख्या ८ ।

३—'भूखे-प्यासे कृषक हमारे, करते श्रम दिन रात,
उनको लूट-लूट ठग खाते नहीं पूछते बात ।
कृषक-द्रोही, गुरु-शत्रु समान, दुखी है मेरा कृष्ण किसान ।'
—'नयन', मेरा किसान, छन्द चतुर्थ, नवम्बर, १९२०; पृष्ठ २९० ।

४—'कृषक गण दुखी दीन अत्यन्त, दुहाई देते चारों ओर,
हो चुका निष्ठुरता का अन्त, करो प्रभु हम पर करुणा कोर ।
श्रमी भी पावे निज अधिकार, छट चले महाजनों के पेट,
न ढोनी पड़े हमें बेगार, छुटे उन 'जो हुजूर' की भेंट ।
उगावें हम जो दाने चार, नाथ ! दो पर तो हो अधिकार,
बन्द हो विभो ! विदेशी द्वार, हुई दुःसह मँहगी की मार ॥'
—रघुवंशलाल गुप्त, कृषक क्रन्दन, छन्द १२वाँ, मार्च, १९२१; पृष्ठ १४२ ।

दिया।[१] वैधव्य के अभिशाप से ग्रसित, दुखिया को देख कर हमारे कवियों के हृदय में टीस उठने लगी।[२] शूद्र की गर्वोक्ति को भी वाणी में पिरोया गया।[३] श्री मैथिली-शरण गुप्त ने प्रभु के प्यारे अछूतों से घृणा न करने की बात बतलायी :—

'श्री कबीर, रैदास कौन थे, सोचो बारम्बार,
उन पर कौन घृणा करता है, जिन पर प्रभु का प्यार।

शुद्धाचार-विचार चाहिए और सत्य-व्यवहार,
धारण करो साधुता, लेगा पद-रज तक संसार।

१—'कृषि की दशा को सुधारें, बढ़ो !
नये यंत्र यारों ! प्रचारें, बढ़ो !
हिये ज्ञान-विज्ञान धारें, बढ़ो !
करें काम, गधें न मारें, बढ़ो !
गुणी को गुणों से सदा मान दें,
उठो भाइयों ! ध्यान दें, ध्यान दें।।'
—द्वारका प्रसाद गुप्त, उठो भाइयो ! ध्यान दें, ध्यान दें, छन्द एकादश, आश्विन, सं० १९७२, पृष्ठ ३९३।

२—'फैला कर नभ की ओर हाथ तब माँगा दीप-दान मैंने,
पाये बंकिम शशि के टुकड़े दो हीरों के समान मैंने।
स्मृति दीप-शिखा लेकर मैंने आशाओं के कपाट खोले,
यह देख 'कौन है, रुक जाओ', हो स्तब्ध नयन प्रहरी बोले।
क्यों विश्व सरसता के ऊपर दुखिया का विद्वेष हुआ,
जो अब तक था आनन्द, वही अब समझ कि तुझको क्लेश हुआ,
मैं रोकर कहने लगी 'नाथ ! दो मृत्यु किन्तु वैधव्य न दो।।''
—क ख ग, दुखिया, छन्द तृतीय, अप्रैल, १९२४; पृष्ठ २८१।

३—'नहीं हमें तलवार चलाना, योरप सा रण-रक्त बहाना,
हलधर के उस हल मूसल से करना है संग्राम,
नहीं है बाबा तुमसे काम।
कपड़ा बुनकर, खेत जोतकर, पृथ्वी रखकर, रत्न खोदकर,
दूर-दूर देशों से लेकर भर दें धन से धाम।
नहीं है बाबा तुमसे काम।।'
—मन्नन द्विवेदी गजपुरी, शूद्र की गर्वोक्ति, माघ सं० १९७२; पृष्ठ ५५३।

पूत कर्म कर मातृ भूमि के बनो विशेष सपूत,
छुत बुरी है, अहोभाग्य है यदि तुम हुए अछूत ।'[1]

सामाजिक पक्षों को स्थितियों का उद्घाटन करने के साथ ही साथ, कवियों ने समाज को मार्ग भी सुझाया। समाज-उद्बोधन में उन्होंने हमें प्रगति करने और भूतकाल के गौरव को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित किया। श्री गिरिधर शर्मा ने भारत की पताका को समूचे विश्व में फहराने की भावना प्रकट की :—

'मेरे प्यारे भारत-निवासी ब्रह्म वेत्ता वीर,
आज जग जीतने को अनोखी तयारी हो,
दिखला दो ब्रह्म तेज सिखला दो ब्रह्म-विद्या,
फैला दो त्यों ब्रह्म-ज्ञान दृढ़ व्रतधारी हो।
विजय-पताका उड़े भारत की सभी ठौर,
इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी झुकावै शीस,
देखकर दंग होवे विश्व आज्ञाकारी हो।'[2]

इस प्रकार समाज के प्रति अपनी दायित्व-भावना का हमारे कवियों ने सफलतापूर्वक निर्वाह किया।

'प्रभा' के काव्य का शिल्प-पक्ष

भाषा-शैली :

'प्रभा' के कवियों ने सभी प्रकार की काव्य-शैलियों को अपनाया : आख्यानक, निराख्यानक, प्रगीत-काव्य, मुक्तक, चतुष्पदी आदि। काव्य के इन सब रूपों तथा शैलियों में प्रगीत-काव्य को प्रधान स्थान प्राप्त हुआ। 'प्रभा' के प्रगीतों ने हिन्दी काव्य को नूतन द्रव तथा प्रगति-सूत्र प्रदान किए हैं। आचार्य वाजपेयो जी ने लिखा है कि ऊपर जिस नयी प्रगीत-सृष्टि की चर्चा की गयी है, उसके आरम्भिक सृष्टा कानपुर की 'प्रभा' के कवि थे। इनमें श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्री बालकृष्ण शर्मा के नाम मुख्य रूप से लिये जा सकते हैं। एक नए काव्य-स्वरूप का नव-निर्माण बड़े भावुक हाथों से हो रहा था। राजनीतिक और राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित ये, प्रगीत स्वरूप में अति लघु और संख्या में अति स्वल्प थे, जिससे यह सूचित होता है कि प्रगीत की कला हिन्दी में अभी-अभी अवतरित हो रही थी। वाजपेयी जी ने आगे लिखा है : 'यह उल्लेख किया जा चुका है कि 'प्रभा' के कवियों ने किस प्रकार राष्ट्रीय भावना

१—अछूत, मई, १९२२; पृष्ठ ३२१।

२—विचार तरंग, छन्द प्रथम, २५ फरवरी, १९१४; पृष्ठ ६५५।

को 'पथिक' और 'सुमन' जैसे आख्यानों और 'सनेही' के स्फुट 'राजनीतिक' पद्यों की सीमा से अलग निकालकर मुक्तक गीतों का स्वरूप दिया।[१]

'प्रभा' के गीतकारों को शास्त्रीय संगीत का भी पर्याप्त ज्ञान था; इसलिए उन्होंने अपने गीतों को विभिन्न राग-रागिनियों में बाँधा है। इसके लिए उन्होंने विहाग,[२] कामोदी,[३] सिन्धु झपताल[४], बिलावल[५] पीलू (तिताला)[६] जोगिया,[७] भैरवी (एक ताल[८]) रागिनियों के उल्लेख यथा-स्थान किए हैं। कहीं-कहीं अधिक निर्देश भी प्राप्त होते हैं यथा राग हमीर, तीन ताल १॥ मात्रा से शुरू।[९] 'प्रभा' में प्राचीन परिपाटी का अनुसरण करते हुए गीत मिलते हैं और आधुनिक तन्त्र का निर्वाह करते हुए प्रगीत भी। गीति-काव्य में व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया। राष्ट्रीय, मुक्तक, प्रबंध आदि विविध प्रकार के गीतों की रचना की गयी।

'प्रभा' के कवियों की भाषा विविध मुखी रही है। खड़ी बोली को 'प्रभा' की मुख्य भाषा माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, ब्रज भाषा की कतिपय कविताएँ भी मिल जाती हैं; यथा :—

'धारि कै अहिंसा-मन मारि कै कुठारहूँ सोंठ,
ए रे अन्याय ! तोहि गारत में करि हौं।
तो व्रत सुदेसी हू को चरखा चलायनित,
रहुरे विदेसी ! भुजदण्ड ठोंकि लरि हौं।
हौं जो शस्त्रहीन दीन हीन तू न जाने मोहिं
चरखा मशीन गन मेरे; नाहिं टरि हौं।

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य', भूमिका, नवीन प्रगीत रूप, पृष्ठ २४ तथा २७।

२—(क) बदरीनाथ भट्ट, दीपनिर्वाण, मार्च, १९१५; पृष्ठ ४;
(ख) लतीफ हुसैन, सुखद-समीर, नवम्बर, १९२०; पृष्ठ २७६।

३—जगमोहन 'विकसित', सरोज उपालम्भ, जून, १९२०; पृष्ठ ३३।

४—जगमोहन 'विकसित', तिलक-गुण-कलाप, अगस्त, १९२१; पृष्ठ ८९-९०।

५—'एक राष्ट्रीय पथिक', 'रण में किसका कैसा नाता ?' अक्तूबर, १९२१; पृष्ठ २०५।

६—जगमोहन 'विकसित', मोहन-मुरली, जुलाई, १९२२; पृष्ठ ८०।

७—राजबहादुर, छाया, मई, १९२४; पृष्ठ ३६५-३६६।

८—चतुरसेन शास्त्री, मन के मोती, अक्तूबर, १९२४; पृष्ठ २७३।

९—हरिभाऊ उपाध्याय, प्रलयाग्नि, जून, १९२३; पृष्ठ ४५४।

'नाहीं' अब कैसी ए री, मेरो नौकरनसाहि,
भारतहि भारत अधीन आज करिहौं ।।'[१]

उर्दू की छटा भी देखने को मिल जाती है :—

'उस शोख के आने की तमन्ना है कयामत,
क्या-क्या दिले मुश्ताक में बरपा है कयामत ।
घनघोर घटाओं के अन्धेरे में भी साकी,
रंगीनिये सहबा का उजाला है कयामत ।'[२]

'प्रभा' की कविताओं में भाषा के छः रूप दृष्टिगोचर होते हैं । भाषा का सरल, सुगम्य तथा परिमार्जित रूप सर्वत्र दिखायी देता है ।[३] साथ ही संस्कृत-निष्ठ भाषा के भी दर्शन होते हैं । श्री भीकाजी बिलौरे ने इस प्रकार की भाषा का अधिक प्रयोग किया है ।[४] उन्हें हम 'मध्यप्रदेश का हरिऔध' कह सकते हैं । एक ओर यदि प्रवाहमयी प्रसन्न भाषा का प्रयोग किया गया है[५] तो दूसरी ओर

१—रामनाथ लाल 'सुमन', राष्ट्रीय प्रसंग, असहयोगी और नौकरशाही, अगस्त, १९२२; पृष्ठ १५१ ।

२—मौलाना फजहल हसन हसरत मोहानी, कलाम हसरत, नवम्बर, १९२४; पृष्ठ ३४५ ।

३—यथा—

'बड़े यत्न से माला गूँथी, किसे इसे पहनाऊँ ?
वरण करूँ मैं जिसे प्रेम से उसे कहाँ मैं पाऊँ ?
काँटों में ये फूल खिले थे, बड़े कष्ट से मुझे मिले थे,
चुनने जाकर अंग छिले थे,
अब मैं इनके योग्य अनोखा पात्र कहाँ से लाऊँ ?'
—मैथिलीशरण गुप्त, माला, नवम्बर, १९२३; पृष्ठ ३५५ ।

४—'त्वदीय अयि भूमिजे ! वदन देख पूर्णन्दु भी—
सलज्ज अति हो स्वकीय मुख को छिपाने लगा :—
कभी विटप-ओट में, अचल-ओट में हो कभी,
कलंक अब पोंछने जलधि में चला, देख तो ।'
—अगस्त्य-आश्रम, छन्द चतुर्थ, २८ दिसम्बर, १९१३; पृष्ठ ,५२५ ।

५—यथा—

'बजाये जइयो यों ही बेसुरिया श्याम, बजाये जइयो ।।
बंसुरिया श्याम, मुरलिया श्याम, बजाये जइयो ।।'
—जगमोहन' विकसित', मोहन-मुरली, जुलाई, १९२२; पृष्ठ ८० ।

छायावादी कवियों की अतिगूढ़ात्मक भाषा के दृष्टान्त भी प्राप्त होते हैं।[१] कहीं पर मुहावरों तथा बोलचाल के शब्दों का प्राचुर्य मिलता है[२] तो कहीं उर्दू मिश्रित भाषा का रूप भी हृदय को प्रभावित करता है।[३]

'प्रभा' की कविताओं की भाषा की तीन विशेषताएँ और भी दृष्टिगोचर होती हैं; जो कि वस्तुतः उपर्युक्त भाषा-रूपों की प्रशाखाएँ ही मानी जा सकती हैं। एक स्थान पर संस्कृत की सूक्तियाँ या सुभाषित का प्रयोग किया गया है[४] तो दूसरे स्थान

१—यथा—

'मिष्ट है, पर इष्ट उनका है नहीं,
शिष्ट पर न अभीष्ट जिनका नेक है ;
स्वाद का अपवाद कर भरते नहीं—
पर सरस वह नीति-रस का एक है।'

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला,' अध्यात्म-पुष्प, छन्द पंचम, नवम्बर, १९-२१; पृष्ठ २९४।

२—यथा—

'क्या न होता है उसमें दिल उजला, मैले कपड़ों से क्यों झिझकते हो
देख उजला लिबास मत भूलो, दिले मैला कहीं न उसमें हो।
जो न सोने के कन उसे मिलते, न्यारिया राख किस लिये धोता,
मत रुको देखकर फटे कपड़े,लाल गुदड़ी में क्या नहीं होता ?'

—अयोध्यासिंह उपाध्याय, जो टटोलो (चतुष्पद), छन्द प्रथम व द्वितीय, आश्विन सं० १९७३; पृष्ठ २६८।

३—यथा—

'मुरव्वत की हजारों की, खुशामद हाजरी बाजी,
तुम्हारा आसरा हो बस, विभव-व्यवहार के बदले।
करूँ कुरबान तन मन सब, तुम्हारे नाम पर प्यारे,
अटल हृद्देश में आओ, अखिल आधार के बदले।।'

—गणपति जानकीराम दुबे, बदले, छन्द ५वाँ व ६वाँ, माघ, सं० १९७२; पृ० ५८८।

४—यथा—

'खाता सदा हंस ! कठोर मुक्ता,' 'पक्वान्न है उत्तम भोज्य मेरा'
'तेरे बुरे पैर, अरे मयूर !' यो गर्व के शब्द न बोल, काक !
आत्मानुरूपा लख कोकिलायें, वृथा न तू हा ! कर स्व प्रशंसा,
रे काक काले ! चुप हो निकम्मे, 'विभूषणं मौन पण्डिता नाम्।'

—भगवान्नारायण भार्गव, अन्योक्ति विलास, काक, २७ जनवरी, १९१४; पृष्ठ ५९९।

पर संस्कृत के पद्यांशों को ही उद्धृत कर लिया गया है।[१] कहीं तो कविता रचना संस्कृत में ही मालूम पड़ती है।[२] लोकोक्तियों का प्रयोग भी सटीक रूप में हुआ है।[३]

भाषा में प्रसाद गुण का सर्वत्र प्रसार है परन्तु ओज भी कम नहीं। माधुर्य का आधार भी देखा जा सकता है। अभिधा तथा लक्षणा को प्राधान्य प्राप्त हुआ है। परन्तु व्यंजना भी अपनी छटा कहीं-कहीं बिखेर देती है। कविता में चमत्कार की वृत्ति[४] अधिक दृष्टिगोचर होती है, परन्तु उत्तरकालीन काव्य में चित्रात्मकता, वचन-विदग्धता

१—यथा—

'किन्तु हंत ! यह आज कहना पड़ेगा कि :—
सं-गच्छस्व पितृभिः सं यमे—
नेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावधं पुनरस्तमेहि।
स गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥'
—ऋग्वेद मं० १०, सू० १४

—भीकाजी बिलोरे, हाय ! गोखले !, मार्च, १९१५; पृ० ६४।

२—'दयासिन्धो ! विष्णो ! प्रणत-जन-बन्दौ सविनयं—
'भजामस्त्वां दीना गिरिधर-मुखा भारत जनाः।
श्रियां विद्यां वीर्यं प्रमुदमुदयं शातिमभयं,
यशस्तेजः श्रेयः सकलमपि सौख्यंच दिशनः॥'
—गिरिधर शर्मा, विचार तरंग, छन्द तृतीय, २५ फरवरी, १९१४, पृ० ६५५।

३—'आयी थी चुनने ये विकसित, सुरभित, शुभ्र प्रसून,
सोचा था, मंदिर जाऊँगी, सुमन सहित ले नीर।
किन्तु, 'करेला यों ही कड़ुवा, और चढ़ा फिर नीम।'
शिशिर समीर और हिम आवृत, पर्वत अंचल तीर !
सालती शर सम शिशिर-समीर॥'
—जगमोहन 'विकसित,' शिशिर-समीर, अप्रैल, १९२२; पृष्ठ ३२०।

४—'शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परमावश्यक है। यदि कविता में चमत्कार नहीं—कोई विलक्षणता नहीं तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।'
—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'रसज्ञ-रंजन', पृ० २६।

तथा मार्मिकता के गुणों का विकास भी अवलोकनीय है। 'प्रभा' के काव्य में उत्साह, करुणा, रति और हास्य की व्यंजना प्रधान रूप से हुई है। राष्ट्रीय पत्रिका होने के कारण, वीर-रस की अभिव्यक्ति सर्वोपरि है। प्राचीन ऐतिहासिक वीर तथा आधुनिक राष्ट्रीय सत्याग्रही तथा नेतागण उत्साह के आलम्बन माने गए।

क्रिया-कल्प :

'प्रभा' के कवि अलंकारवादी नहीं थे। उन्होंने हृदय-पक्ष को प्रधानता प्रदान की।[1] इसीलिए कविताओं में साज-सज्जा की अपेक्षाकृत न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। उस युग की कविता सम्बन्धी मान्यता, श्रीधर पाठक की इन पंक्तियों द्वारा व्यंजित है :—

'जिस रचना में सुलभ माधुरी मोहन मन्त्र न,
अलभ अमोल विचार-चातुरी-सरणि स्वतंत्र न,
निपट निडर निःशंक निरकुंश भाव-प्रभाव न,
वर विवेचना-सहित, अहित, हित का अलगाव न,
वह रचना विफल-प्रयास-फल, विफल प्रमाद, प्रताप है,
वह कविता कुकवि कुबुद्धि कृत केवल कुपद-कलाप है।'[2]

अलंकारों का सहज प्रयोग कविता में मिलता है। अन्योक्तियाँ खूब लिखी गयी। श्लेष अलंकार का एक दृष्टान्त दर्शनीय है :—

'तेरे कर देखि, ये रे मेरे अंगरेजी राज !
तीन लोक वासी कर मीजैं पछताय के।
नाग नर पायकर छुद्र निज एक दोरे,
घूरि में लपेटे सीस पीटैं सरमाय के।
उग्र, हरि, करतार जानि कर चार हाय !
खाद् विष, सिन्धु बूडे, बैठे सिर नाय के।
अम्ब भई काली कर आठ के सकोच ही ते,
बीस कर खीस काढ़ि कर रह्यो सकुचाय के।[3]

'प्रभा' के काव्य में हिन्दी तथा संस्कृत के, तुकान्त तथा अतुकान्त, सभी प्रकार के छन्द उपलब्ध होते हैं। आचार्य द्विवेदी जी ने अतुकान्त कविता को विशेष प्रोत्साहित

१—मैथिलीशरण गुप्त, कविता, श्रावण-भाद्रपद, सं० १९७२; पृष्ठ ३१७।
२—श्रीधर पाठक, कुलेख, छन्द प्रथम, ज्येष्ठ, सं० १९७२; पृष्ठ १४१।
३—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', कर, मई, १९२२; छन्द द्वितीय, पृष्ठ ३८९।

किया था;[१] एतदर्थ, यह रूप भी प्रचुरता से मिलता है। पृथ्वीवृत्त,[२] दोहा, शिखरिणी, हरिणी, प्रहर्षिणी, मालिनी, उपजाति,[३] त्रोटक,[४] मंजु माधवी वृत्त,[५] कवित्त,[६] शार्दूल विक्रीड़ित,[७] विषमाक्षरी[८] आदि छन्दों को प्रयोग किया गया। उस युग में लावनी के लय की आभा खूब फैली। हिन्दी के छन्दों का चरण और लावनी का अंत्यानुप्रासक्रम लेकर 'हरिऔध' जी ने 'दमदारे दावे' कविता लिखी।[९] हरिऔध जी के चौपदे अधिक मात्रा में प्रकाशित हुए। गुप्त जी ने अपने काव्यानुवाद में घनाक्षरी का उत्तर चरणार्द्ध,[१०] पन्द्रह वर्ण का अमित्राक्षर छन्द[११] और रूबाई छन्द का प्रयोग किया। उमर खयाम की रुबाइय्यों के अनुवाद में, गुप्तजी ने तीस और इक्तीस मात्राओं के ताटंक, शोकहर, ककुभ और वीर छन्दों को रूबाई के बंध में बाँधा है। छन्द हिन्दी के हैं, केवल तुकान्त-पद्धति फारसी भाषा की रूबाई बहर के अनुसार रक्खी गयी है।[१२]

१—"पादान्त में अनुप्रास हीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए।" 'रसज्ञ रंजन', पृष्ठ ४।

२—बी० जी० बिलोरे, अगस्त्य-आश्रम, २८ दिसम्बर, १९१३; पृष्ठ ५२५-५२६।

३—बी० जी० बिलोरे, प्रार्थना, २७ जनवरी, १९१४; पृष्ठ ५२३।

४—भीकाजी बिलोरे, उपदेश पांडित्य, आषाढ़, सं० १९७२; पृष्ठ २१५ २१६।

५—माखनलाल चतुर्वेदी, हिन्दुओं का रणगीत, आश्विन १९७२; पृष्ठ ४६५-४६६।

६—रामनाथ लाल 'सुमन', राष्ट्रीय प्रसंग, अगस्त, १९२२; पृष्ठ १५१।

७—जगमोहन 'विकसित', झण्डा, अक्तूबर, १९२३; पृष्ठ २५१-२५२।

८—सियारामशरण गुप्त, बाढ़, नवम्बर, १९२४; पृष्ठ ३७६-३७८।

९—मार्च, १९२४; पृष्ठ २१३।

१०—पलासी का युद्ध, जनवरी, १९२०; पृष्ठ ९-११;
मेघनाद-वध, प्रमीला का लंका प्रवेश, सितम्बर व अक्तूबर, १९२१; पृष्ठ १५५-१५९; २१५-२१८; नवम सर्ग, अप्रैल व मई, १९२४; पृष्ठ २६५-२६८; ३५४-३५८।

११—दशरथ के प्रति कैकयी (वीरांगना काव्य), सितम्बर, १९२०; पृष्ठ १४७-१४९;
लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा, नवम्बर, १९२०; पृष्ठ २६२-२६४।

१२—डॉ० कमलाकान्त पाठक—'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य', अनुवाद, पृष्ठ ६४५।

निष्कर्ष

अभिनिवेश पूर्वक 'प्रभा' तथा उसके कवियों पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'प्रभा' ने हिन्दी-पत्रकारिता तथा काव्य में नूतन उत्थान उपस्थित किया। 'प्रभा' को अपने युग की राजनैतिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चित्त-प्रवृत्तियों का स्वच्छ दर्पण सहज ही माना जा सकता है। यथार्थ घटनाओं रूपी अवनि तथा कल्पना रूपी अम्बर का सुन्दर समन्वय इस पत्रिका में प्राप्त होता है। 'प्रभा' के साहित्यकारों ने ही आधुनिक हिन्दी-काव्य के इतिहास के विविध पार्श्वों का दृढ़तापूर्वक निर्माण किया और आगे जाकर मातृ-भाषा को राष्ट्र-भारती की गरिमामयी संज्ञा से विभूषित किया। साहित्य तथा राजनीति का सामंजस्य ही 'प्रभा' के सर्वोपरि महत्त्व की अप्रतिम घटना है। 'प्रभा' के द्वारा राष्ट्रीय काव्य के प्रधान विचार-केन्द्र को मूल-भित्ति प्राप्त हुई और हिन्दी में प्रगीति-तत्त्वों का उन्मेष अग्रसर हुआ। कला तथा कविता, दोनों की आभा इस पत्रिका में विकीर्ण हो रही है। यद्यपि 'प्रभा' को 'सरस्वती' जैसा साहित्यिक महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि उसके पीछे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सदृश्य दृढ़ युग-निर्माता का हाथ नहीं था; परन्तु फिर भी 'एक भारतीय आत्मा', गणेश जी और 'नवीन' जी के कारण, इस पत्रिका ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता-धारा को निश्चित दिशाएँ प्रदान कीं और अपने निर्धारित लक्ष्य से परिचित कराया।

'प्रभा' की राष्ट्रीय काव्य-धारा को ही उसके सहयोगी 'प्रताप' ने अपने अंक में समेटकर, उसे अपने जीवन तथा प्रगति का पाथेय बना लिया। वास्तव में, 'प्रभा' व 'प्रताप' एक ही वृक्ष की दो प्रबुद्ध शाखाएँ थीं। इन दोनों ने अपने युग के निर्माण में ऐतिहासिक कार्य-भूमिका का निर्वाह किया।

●

तृतीय खण्ड

षष्ठ अध्याय

'प्रताप' के प्रकाशन का इतिहास

पूर्व-पीठिका

हिन्दी साप्ताहिक पत्रों में 'प्रताप' का अपना गरिमामय एवं अनूठा स्थान रहा हैं। साप्ताहिक पत्रों के गतिमय इतिहास को नूतन दिशा और राजनैतिक भूमि प्रदान करने का श्रेय भी इसी स्व-नाम धन्य पत्र को दिया जा सकता है। भारत में पत्र-कारिता का श्रीगणेश, सन् १७८० ई० में कलकत्ते में सर्वप्रथम श्री जान आगस्ट हिकी के 'बंगाल गजट 'नामक पत्र से हुआ। हिन्दी का सर्वप्रथम पत्र 'उद्दन्त मार्तण्ड' भी कलकत्ता में ही उदित हुआ जिसका प्रकाशन ३० मई, सन् १८२६ ई० को श्री जुगल-किशोर शुक्ल ने हिन्दी-जन हितार्थ तथा हिन्दी भाषा प्रसार-प्रचारार्थ किया था।[१]

साप्ताहिक पत्रों के इतिहास की प्राचीनता के सम्बन्ध में अनेक मत प्राप्त होते हैं। स्वर्गीय श्री बालमुकुन्द गुप्त ने, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मासिक पत्र (जो बाद में पाक्षिक और तद्नन्तर साप्ताहिक भी हो गया था) 'कवि वचन सुधा' के पूर्व के दो समाचार पत्रों का उल्लेख किया है। पहला समाचार पत्र 'बनारस अखबार' का प्रकाशन काशी में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की सहायता से, सन् १८४५ ई० में हुआ और द्वितीय पत्र 'सुधाकर' ने भी सन् १८५० ई० में काशी में जन्म लेकर, अपने जीवन को एक बंगाली सज्जन श्री तारामोहन मित्र के द्वारा सँवारा। उपर्युक्त पत्रों के सम्बन्ध में गुप्त जी ने यह बात स्पष्ट नहीं लिखी है कि ये साप्ताहिक थे अथवा नहीं। साथ ही इन पत्रों में न तो कोई महत्त्वपूर्ण बात ही थी और न ये दीर्घजीवी हुए। प्रसिद्ध पत्र-कार श्री विष्णुदत्त शुक्ल ने 'अलमोड़ा समाचार' को हिन्दी का सर्वप्रथम साप्ताहिक पत्र माना है। यह पत्र भारतेन्दु जी के 'कवि वचन सुधा' से, जो १८६८ ई० में काशी से प्रकाशित हुआ था, तीन वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुआ। 'कवि वचन सुधा' मासिक पत्र था और बाद में साप्ताहिक हुआ; जब कि यह जन्म से ही साप्ताहिक निकला।[२]

१—श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृ० १६५।

२—श्री विष्णुदत्त शुक्ल—'त्यागभूमि,' हमारा साप्ताहिक साहित्य, आश्विन, सं० १९८५; पृ० ४३।

इस प्रकार हिन्दी-पत्रकारिता के सन् १८२६ ई० के सतत प्रवाह से, जो प्रबाध क्रम स्थापित हुआ; उसमें, 'प्रताप' ने अपने आराध्यदेव की प्रेरणा, संस्थापक के व्यक्तित्व, राष्ट्रोपासना तथा निर्भीकता से, अपना ताप उत्पन्न कर दिया। 'प्रताप' के जन्म, विकास तथा प्रगति की कहानी भी राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की जीवन्त निशानी है। राष्ट्रीय जन-जागृति के कारण देश का समग्र वातावरण अत्यन्त उद्दीप्त तथा संवेदनशील था। चहुँ ओर स्वतन्त्रता-प्राप्ति की उष्ण भावनाएँ संचरण कर रही थीं। थिरकती वायु जन-जन के मन-मन को आन्दोलित कर रही थीं। क्रान्ति की ज्वाला धधक उठी थी। यह वह युग था जब कि लोग शहीद की चिता की राख को गण्डा-तावीज बनाने के लिए लूट लिया करते थे ताकि उनकी सन्तानें भी उसी तरह निर्भीक, वीर और देशभक्त हों।[1]

राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम की फहराती ध्वजा के रूप में 'प्रताप' ने अपना प्रताप विकीर्ण किया। कानपुर नगर हिन्दी-पत्रकारिता का गढ़ था। पत्रकारिता के शिलान्यास में रक्त, बलिदान, निःस्वार्थ सेवा-भावना आदि ने ही प्रमुख उपादानों का कार्य किया। पत्रकारों की गौरवमयी शृंखला में कानपुर ने अनेक नाम संलग्न किए जिनमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू सीताराम, आचार्य द्विवेदी जी, गणेशशंकर विद्यार्थी, लक्ष्मीधर वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, उदयनारायण वाजपेयी, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, रमाशंकर अवस्थी, द्वारकाप्रसाद मिश्र, विष्णुदत्त शुक्ल, किशोरीदास वाजपेयी, देवव्रत शास्त्री, युगलकिशोरसिंह शास्त्री, बालकृष्ण शर्मा, सत्यदेव शर्मा, बलभद्रप्रसाद मिश्र, दशरथप्रसाद द्विवेदी, मदनलाल चतुर्वेदी, कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर,' रामदयाल पाण्डेय, जयदेव गुप्त, रामनाथ गुप्त प्रभृति कानपुर की देन हैं।[2] कानपुर ने अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं के लिए अपनी उर्वर तथा दायित्वपूर्ण भूमि भी प्रदान की। समाचार पत्रों के इतिहास में, उस युग में जो पत्र-पत्रिकाएँ महत्त्वपूर्ण मानी गयी; उनमें 'कान्यकुब्ज हितकारी', 'संसार' 'चिकित्सक', 'प्रभात', 'प्रभा', 'वैश्य', 'हिन्दो ला जर्नल', 'ऊमर वैश्य शुभचिन्तक', 'गुलहरे वैश्य हितकारी', 'स्त्री दर्पण', 'कवीन्द्र' आदि मासिक पत्र, 'हिन्दी मनोरंजन', 'महिला-सुधार', 'फक्कड़' आदि साप्ताहिक-अर्द्ध साप्ताहिक पत्र और 'वर्तमान,'

१—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—अमर शहीद राम प्रसाद 'बिस्मिल', परिशिष्ट १, पृष्ठभूमि : श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १५३।
२—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृ० १६४।

'विक्रम', 'भूत' आदि दैनिक पत्रों के नामों की गणना की जा सकती हैं।[१] सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि कानपुर में समाचार पत्रों की नींव क पत्थर यदि हम 'प्रताप' को कहें तो भी अत्युक्ति नहीं है।[२]

जन्म तथा प्रारंभिक स्थिति :

हिन्दी-पत्रकारिता के उल्कापिण्ड 'प्रताप' का जन्म कार्तिक शु० ११ (देवोत्थानी एकादशी) सं० १९७० वि० (दिनांक ९ नवम्बर, १९१३ ई०) को कानपुर के फीलखाने के एक चार रुपया महीने के किराये के अन्धेरे और टूटे-फूटे मकान में हुआ।[३] श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा तथा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी में इस पत्र के प्रकाशन के लिए, पूर्व रूप में ही योजना-बद्ध बातचीत हो गयी थी। 'प्रताप' की संस्थापना के पूर्व, गणेश जी 'कर्मयोगी,' 'सरस्वती' तथा 'अभ्युदय' में भी कार्य कर चुके थे। पत्रकार-कला की दीक्षा गणेश जी ने अपने गुरुदेव आचार्य द्विवेदी जी के श्रीचरणों में बैठकर, 'सरस्वती' की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर, ग्रहण की। गणेश जी ने इस पत्रिका में एक वर्ष से अधिक कार्य किया। यह वर्ष उनके जीवन का पाथेय बन गया।[४] 'अभ्युदय' में गणेश जी को ४० रु० प्रतिमास प्राप्त होता था; परन्तु 'प्रताप' में उन्होंने सर्फ ३० रु० प्रतिमास लेना स्वीकार किया। 'प्रताप' के जन्मदाता गणेश जी और सहयोगी अरोड़ा जी के अतिरिक्त, पं० शिवनारायण मिश्र और श्री यशोदानन्दन भी 'प्रताप' के प्रारम्भिक मण्डल के दो अन्य स्तम्भ थे। श्री यशोदानन्दन के कोरोनेशन मुद्रणालय से 'प्रताप' छपने लगा। अरोड़ा जी ने १२७ रु० देकर पैंका टाइप की व्ही० पी० बुलायी। मिश्र जी ने आजीवन गणेश जी का साथ दिया। उन्होंने 'प्रताप' की पूंजी में सौ रुपये जमा किए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त पं० ब्रह्मानन्द तिवारी और पं० गिरजानन्द जी तिवारी आदि का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। प्रारंभ में गणेश जी सम्पादक हुए और अरोड़ा जी व्यवस्थापक।[५] सेठ कमलापति सिंहानियाँ और सेठ राम गोपालजी ने धन से अच्छी सहायता

१—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—'समाचार पत्रों का इतिहास', पृ० ३८९।

२—वही, पृ० २६६।

३—श्री देवव्रत शास्त्री—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' 'प्रताप', पृ० १२१।

४—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे—'सरस्वती', हीरक जयंती विशेषांक, 'सरस्वती' तथा अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० ३५।

५—श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा—'नर्मदा', अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी स्मृति अंक, कर्मयोगी गणेश जी : एक स्मृति, अक्टूबर १९६१; पृ १६।

की ।[१] साधन सुविधाओं के अभाव में भी गणेश जी तथा मिश्र जी ने अपनी आस्था, साहस, निःस्वार्थ त्यागवृत्ति और अदम्य लगन के साथ हिन्दी-पत्रकारिता को उज्जवल कक्ष प्रदान किया। साप्ताहिक 'प्रताप' का जन्म, १६ पृष्ठों के रूप में और वही आकार में, जिसमें कि आजकल भी वह निकलता है, हुआ। नगरवालों के लिए दो रुपया और बाहर वालों के लिए ढाई रुपया मूल्य रखा गया। 'प्रताप' सिर्फ १६ अंकों तक कारोनेशन प्रेस से छपा और इसके पश्चात् अपने निजी 'प्रताप' प्रेस में छपने लगा। सम्पादक होने के अतिरिक्त, अब गणेश जी उसके मुद्रक तथा प्रकाशक भी हो गए। इस समय कानपुर के प्रसिद्ध विद्वान् महाशय काशीनाथ जी के अमूल्य विचारों और मार्गदर्शन से गणेश जी तथा मिश्र जी को काफी सहयोग व ढाढ़स मिला।[२] प्रारम्भ में 'प्रताप' का सब काम प्रूफ रीडरी और सम्पादकी से लेकर, पते लिखने और डिस्पैच करने तक का, गणेश जी और उनके सहयोगी स्वर्गीय शिवनारायण मिश्र को ही करना पड़ता था।[३] कार्य-पद्धति के विषय में श्री चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि उन दिनों 'प्रताप' सम्पादन का क्रम यह था कि चाहे चिट्ठी-पत्री हो, चाहे समाचार पत्रों का संकलन हो, पूरा स्टाफ मिलकर एक टेबल पर बैठ जाता था और 'प्रताप' की तैयारी होती जाती थी।[४] इस समय 'प्रताप' का आकार १३ १० का था। 'प्रताप' की प्रारम्भिक मण्डली से श्री यशोनन्दन चार मास पश्चात् और श्री अरोड़ा जी लगभग दस मास के तद्नन्तर पृथक् हो गए।[५] 'प्रताप' मण्डली के एक मात्र अवशिष्ट सदस्य मिश्र जी से गणेश जी की मैत्री इतनी घनिष्ठ थी कि 'प्रताप' के जन्म के कई वर्ष बाद तक कानपुर के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति दोनों को सहोदर समझते थे। मिश्र जी 'प्रताप' का पुलन्दा अपने सिर पर लादकर बड़े डाकखाने ले जाते और स्वयं ही उसे बाजार में बेचते थे।[६] गणेश जी की श्री महावीर प्रसाद पोद्दार

१—श्री शिवव्रतनारायण—साप्ताहिक 'रामराज्य', अमरशहीद गणेश जी, वर्ष ११, अंक २२, १६ मार्च, १९५३; पृ० ५।

२—'गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० १२१-१२२।

३—श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल—'आजकल,' गणेश जी की याद में, मार्च, १९५५; पृ० १९।

४—हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर,' पृ० १९०।

५—श्री श्रीराम शर्मा—'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० १९-२०।

६—श्री श्रीराम शर्मा—'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० १९-२०।

से घनिष्ठता होने के कारण 'प्रताप' की सर्वप्रथम एजेंसी गोरखपुर में ही खुली और आज तक विद्यमान है।[1] कानपुर शहर में 'प्रताप' भी विशेष नहीं पढ़ा जाता था। मुश्किल से दो-ढ़ाई सौ उसके खरीददार थे और ४०-५० प्रतियाँ फुटकर बिक जाती थीं। युक्त प्रान्त तथा बिहार प्रान्त के देहातों में अलबत्ता उसका बेहद प्रचार था। 'प्रताप' इसीलिए निकाला ही गया था। इतने कम समय में देहाती संसार में जितना 'प्रताप' का प्रचार हुआ, उससे पूर्व किसी हिन्दी पत्र का नहीं हुआ था।[2]

नामकरण तथा नीति :

प्रारम्भ में, पर्याप्त वादविवाद के पश्चात्, इस साप्ताहिक पत्र का नाम 'प्रताप' रखा गया। गणेश जी ने इस नाम को राणाप्रताप के स्मारक के रूप में ग्रहण किया और अरोड़ा जी ने स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र की स्मृति के रूप में रखा।[3] 'प्रताप' के एक लेखक श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि यह निर्विवाद है कि 'प्रताप' का जन्म हिन्दी-भाषी प्रान्तों के राजनैतिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। किसी दूसरे एक कारण ने राजनैतिक जीवन को इतना आगे नहीं बढ़ाया है; जितना कि इस पत्र ने। महाराणा उदयसिंह और गणेशशंकर विद्यार्थी के चरित्र में समानता भले ही न हो, परन्तु महाराणा प्रताप और समाचार पत्र 'प्रताप' के चरित्र में समयायानुकूल समानता अवश्य है।[4] गणेश जी ने अपने इष्टदेव महाराणा प्रताप का स्मरण करते हुए, बलिदान को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया :

'बलिदान—केवल बलिदान—चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी बलिदान चाहती है। बादल उमड़े थे, बिजलियाँ कड़की थीं और घोर अन्धकार छा गया था। अपवित्रता पवित्रता पर कब्जा करना चाहती थी और अनाचार आचार और व्यवहार की ईंट से ईंट बजा देने वाला था। हृदय काँप उठे। अशान्ति की लहरें बड़े जोरों में शान्ति के कंगूरों को एक-एक करके ढ़ा रही थीं। सूर्यदेव भी अपने वंशजों को सदा के अन्धकार में छोड़

१—श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी—'गणेश स्मारक ग्रन्थ', अनोखा मालिक, पृ० ३७।

२—श्री दशरथ—'नर्मदा', गणेश स्मृति अंक, उस समय के कानपुर की घटनाएँ, पृ० १३९।

३—श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा—वही, पृ० १६।

४—श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा—'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, प्रताप और स्व० विद्यार्थी जी, पृ० ४७।

देने के लिये तैयार थे और चित्तौड़ की दीवारें भी ऊँचा सिर रखते हुये नीची नजर कर चुकी थीं। बेढ़ब बाजी लगी थी। पद्मिनी का दाँव था। पाँसे उलटे पड़ रहे थे। लेकिन रुख बदला। किसी की दया या कृपा से नहीं, और किसी की कमजोरी या नीचता से भी नहीं। रक्त की वर्षा हो गयी। रक्त की प्यासी भूमि की प्यास मिट गयी। चित्तौड़ की देवियों को राख का ढेर होते देखकर चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी के हृदय को ताप मिट गयी।'[१] महाराणा प्रताप की स्वातन्त्र्य-शिखा को कर में प्रज्वलित किये, 'प्रताप' ने कण्टकाकीर्ण मार्ग पर अपने पग बढ़ाए। उसके मूलाधार अथवा सिद्धान्त-निकष का निर्माण तो पहले ही हो चुका था। गणेश जी ने, आदि अंक में, 'प्रताप' की नीति की घोषणा अधोलिखित रूप में की :

'आज अपने हृदय में नई-नई आशाओं को धारण करके और अपने उद्देश्यों पर पूर्ण विश्वास रख कर, 'प्रताप' कर्मक्षेत्र में आता है। समस्त मानव-जाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति को समझते हैं। उन्नति से हमारा अभिप्राय देश की कृषि, व्यापार, विद्या, कला, वैभव, मान, बल, सदाचार और सच्चरित्रता की वृद्धि से है। भारत को इस उन्नतावस्था तक पहुँचाने के लिए असंख्य उद्योगों, कार्यों और क्रियाओं की आवश्यकता है। इनमें से मुख्यतः राष्ट्रीय एकता; सुव्यवस्थित, सार्वजनिक और सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षा का प्रचार, प्रजा का हित और भला करने वाली सुप्रबन्ध और सुशासन की शुद्ध नीति का राज-कार्यों में प्रयोग, सामाजिक कुरीतियों का निवारण; तथा आत्मावलम्बन और आत्मशासन में दृढ़ निष्ठा है। हम इन्हीं सिद्धान्तों और साधनों को अपनी लेखनी का लक्ष्य बनावेंगे। हम अपनी प्राचीन सभ्यता और जातीय गौरव की प्रशंसा करने में किसी से पीछे न रहेंगे, और अपने पूजनीय पुरुषों के साहित्य, दर्शन, विज्ञान और धर्म भाव का यश सदैव गावेंगे। किन्तु अपनी जातीय निर्बलताओं और सामाजिक कुसंस्कारों तथा दोषों को प्रकट करने में हम कभी बनावटी जोश या मसलहत-वक्त से काम न लेंगे, क्योंकि हमारा विश्वास है कि मिथ्या अभिमान जातियों के सर्वनाश का कारण होता है। किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा, किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, किसी की घुड़की या धमकी, हमें अपने सुमार्ग से विचलित न कर सकेंगी। साम्प्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से 'प्रताप' सदा अलग रहने की कोशिश करेगा। उसका जन्म किसी विशेष सभा, संस्था, व्यक्ति या मत के पालन-पोषण, रक्षण या विरोध के लिए नहीं हुआ है; किन्तु उसका मत स्वातन्त्र्य-विचार

१—साप्ताहिक 'प्रताप' महाराणा प्रताप, ९ नवम्बर, १९१३ ई०।

और उसका धर्म सत्य होगा।—मनुष्य की उन्नति भी सत्य की जीत के साथ बँधी है। इसीलिए सत्य का दबाना हम महापाप समझेंगे और उसके प्रचार और प्रकाश को महापुण्य। हम जानते हैं कि हमें इस काम में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और इसके लिए बड़े भारी साहस और आत्मबल की आवश्यकता है। हमें यह भी अच्छी तरह मालूम है कि हमारा जन्म निर्बलता, पराधीनता और अल्पज्ञता के वायुमन्डल में छिपा हुआ है। तो भी हमारे हृदय में सत्य की सेवा करने के लिए आगे बढ़ने की इच्छा है और हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई तथा अच्छाई का अटल विश्वास है। इसीलिए हमें अन्त में इस शुभ और कठिन कार्य में सफलता मिलने की आशा है। लेकिन जिस दिन हमारी आत्मा इतनी निर्बल हो जाय कि अपने प्यारे आदर्श से डिग जावे, जान-बूझकर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशरमी करें और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरूता दिखावें, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा और हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ ही साथ हमारे जीवन का भी अन्त हो जाय।'[1] कहना न होगा कि 'प्रताप' को गणेश जी ने उपर्युक्त सिद्धान्त-मंजूषा की जीवित प्रतिमूर्त्ति बना दिया और कष्ट-कण्टकों के मध्य उसके जीवन सुमन को सुवासित बनाये रखा। स्वर्गीय 'नवीन' जी ने 'प्रताप' का सुरुचिपूर्ण मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि सन् १९१३ से लगा कर सन् १९३० तक इस देश में कोई ऐसा आंदोलन नहीं है जिसका प्रसार और आंशिक नेतृत्व गणेशशंकर विद्यार्थी और उनके 'प्रताप' ने न किया हो। चम्पारन के निलहे गोरों के अत्याचार की कहानियाँ सर्वप्रथम गणेशशङ्कर के 'प्रताप' के द्वारा जनता के सम्मुख आयीं। इसके उपरान्त कहीं गाँधी बाबा का ध्यान उधर खींचा गया। देशी राज्यों में होनेवाले अनाचारों की कथाएँ सर्वप्रथम 'प्रताप' ने जनता के सम्मुख रखी। देशी राजाओं के विरुद्ध 'प्रताप' द्वारा किए गए तीव्र आन्दोलन से घबड़ाकर ही तत्कालीन ब्रिटिश भारतीय शासन ने देशी नरेश संरक्षक विधि (Princess' Protection Act) की सृष्टि की थी। विदेशों में कुली बनाकर भेजे गए भारतीयों के कष्टों का प्रकाशन 'प्रताप' में जिस निर्भीकता और निरन्तर रूप से हुआ; उस रूप में भारतवर्ष के अन्य किसी पत्र में नहीं हुआ। बहुत वर्षों तक तो 'प्रताप' ही एक प्रकार से गाँधी जी का मुख-पत्र बना रहा। जब बहुत पहले, भारत के राजनीतिक नेतृत्व की बागडोर को हाथ में लेने से पूर्व, गाँधी जी कानपुर पधारे थे। तब 'प्रताप'-कार्यालय में गणेशशंकर विद्यार्थी को ही उनके आतिथेय होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गणेशशंकर के जीवन-काल में हिन्दी पत्रों में 'प्रताप' का वही स्थान था जो लोकमान्य के जीवनकाल में मराठी पत्रों में 'केसरी'

१—साप्ताहिक 'प्रताप', महाराणाप्रताप, ९ नवम्बर; १९१३ ई०।

का स्थान था। आज यह सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि हिन्दी-पत्रकारिता के विकास में एक समय ऐसा रहा है जब बिहार और उत्तरप्रदेश की जनता समाचार पत्र का अर्थ केवल 'प्रताप' ही समझती थी।[1]

'प्रताप' की व्यथा-कथा तथा विकास :

प्रारम्भ से ही गणेश जी ने अपनी 'प्रताप' रूपी नौका को दरिद्रता के सागर में में खेया। दिनांक १०-१०-१९२८ के अपने एक पत्र में, उन्होंने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा था कि-मैं 'प्रताप' के सम्बन्ध में इससे अधिक क्या बतलाऊँ कि १९१३ में जन्म हुआ, १५ वर्ष से चल रहा है, दिन किसी प्रकार कट रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ रहा है कि अब आगे से ऐसे कंगलेपन से पत्र न निकाले जा सकेंगे जैसे कंगलेपन से 'प्रताप' का जन्म हुआ था। कुछ समय ही बदला सा मालूम होता है,[2] विलायती कीमती अखबार खरीद सकने की 'प्रताप' में दम नहीं थी, अतएव, सम्पादक गणेशशंकर स्टेशन पर व्हीलर के बुकस्टाल पर घण्टों जाकर बैठते और देश-विदेश के आन्दोलनों व समस्याओं का अध्ययन व सिंहावलोकन कर 'प्रताप' के पाठकों को शिक्षा-दीक्षा दिया करते थे।[3] राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन 'प्रताप' तथा गणेश जी की सहायता करते थे। वे चाहते थे कि किसी भी प्रकार 'प्रताप' पत्र बन्द नहीं होने दिया जाय।[4]

द्रव्याभाव, साधनाविहीनता तथा अत्याचारों के होते हुए भी, 'प्रताप' ने अपनी आँखों की ज्योति भारत में बिखेर दी। भारत-माता के पुनीत चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर करना ही उसका निःश्रेयस था। उसके मुख-पृष्ठ पर ये पंक्तियाँ शोभायमान थीं :

'जय अतीत अपूर्व गौरव, ज्ञान, गुण, विस्तारिणी।
वर्तमान विचारिणी, भावी शुभाशाकारिणी॥

१—श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन—'आजकल', पुण्य श्लोक गणेश जी, वर्ष १०, अंक ११, मार्च, १९५५; पृ० १५।

२—श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखित दिनांक-१०-१०-१९२८ का पत्र, 'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, पृ० ८६।

३—श्री शिवनारायण टण्डन—'नर्मदा', श्रद्धांजलि अंक, पृ० ९९।

४—श्री गुरुप्रसाद टण्डन, उज्जैन में हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक ९-१२-१९६१) में ज्ञात।

शक्ति और प्रताप पूर्णा, भव्य-भाव-विहारिणी ।
जयति जयसिंह-प्रसू भारत जननि ! भय हारिणी ।।'[१]

भारत तथा भारतीय संस्कृति के अनुगायक गणेश जी को अपनी रीति-नीति के अनुकूल, अपने पत्र के लिए, एक आदर्श वाक्य (मोटो) की आवश्यकता थी । विद्यार्थी जी ने यह आदर्श वाक्य श्री मैथिलीशरण गुप्त से लिखवाना चाहा ।[२] गुप्त जी के आदर्शवाक्य में चार पंक्तियाँ होने के कारण और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की दो पंक्तियाँ मौलिक होने के कारण, गणेश जी ने 'प्रताप' के सिद्धान्त-वाक्य को, द्विवेदी जी की इन पंक्तियों से, विभूषित किया :

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है, और मृतक समान है ।'

'प्रताप' का सर्वत्र स्वागत किया गया । खण्डवा की 'प्रभा' में श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने 'प्रताप' के स्वागतार्थ टिप्पणी लिखी जिसमें कहा कि कानपुर में अब जातीय जीवन का संचार हुआ । यद्यपि वहाँ साहित्य सेवियों और विद्वानों की कमी नहीं है; तो भी, हमें विदित नहीं कि, वहाँ के साहित्य-सेवी जातीय जीवन फूंकने के हेतु सामयिक साहित्य द्वारा कुछ अनुकूल प्रयत्न कर रहे हैं । 'प्रताप' नामक साप्ताहिक पत्र अब यहीं से प्रकाशित होने लगा है । इसके सम्पादक हैं श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थी । यही महाशय गत वर्ष कुछ दिन 'अभ्युदय' का सम्पादन भार भी सँभाल चुके हैं । 'प्रताप' की सम्पादन शैली अच्छी, बहुत कुछ अनुकूल है । हम इस सहयोगी की उन्नति हृदय से चाहते हैं । जिस निष्पक्षपात और निर्भय नीति से 'प्रताप' अपने संकटाकीर्ण एवं कठिन मार्ग में चल रहा है; उसे देखकर उसके सम्पादक की प्रशंसा करनी पड़ती है । 'प्रताप' मानो मृत 'हिन्दी केसरी' और 'कर्मयोगी' का सगा भाई है । परन्तु अनुकूलता और समय की गति पर इस पत्र की दृष्टि है और प्रार्थना है कि संसार कर्मयोगी मण्डल है । इस पर कर्मयोग के सिद्धान्तों को अधिक दिन तक निबाह कर जागृति और शाँति के घोड़ों से अपने कर्म-पथ पर, धर्मरथ चलाकर भारतवर्ष के गौरव की रक्षा करनी चाहिए ।'[३]

१—साप्ताहिक 'प्रताप', राष्ट्रीय अंक, विजयादशमी, सं० १६७१; भाग ३, अंक ४६, मुख पृष्ठ ।

२—श्री मैथिलीशरण गुप्त—'सुधा', गणेश जी, नवम्बर, १६३६; पृ० ४३५ ।

३—'प्रभा', भाग १, संख्या ६, मार्ग शीर्ष शुक्ल १, सं० १६७०, २३ नवम्बर, १६१३ ई०; स्फुट प्रसंग, प्रताप, पृ० ५२१ ।

'प्रताप' को अपने जन्म-वर्ष के ही अन्तर्गत, १६ से २० पृष्ठों के आकार का हो जाना पड़ा, परन्तु कागज की महँगाई के कारण दूसरे वर्ष वह पुनः १६ पृष्ठों का हो गया। पर बाद को पुनः २० पृष्ठ का प्रकाशित होने लगा और १८ मई, १९२५ ई० तक इसी आकार में ही विद्यमान रहा।[1] २५ मई, १९२५ ई० से २४ पृष्ठ हुए और सन् १९२७ में २८ और फिर द्वितीय-तृतीय वर्ष क्रमशः ३२ तथा ३६ पृष्ठ। सन् १९३० में, प्रेस आर्डिनेंस के समय, ४० पृष्ठों का था। विद्यार्थी जी का विचार और अधिक पृष्ठ बढ़ाने का था; परन्तु वजन की वृद्धि के साथ ही साथ, डाक-खर्च के बढ़ जाने के विचार से, यह योजना स्थगित कर दी गयी। प्रेस आर्डिनेंस के कारण, पत्र छः मास तक बन्द रहा। विज्ञापन कम हो गया और फिर ३२ पृष्ठों का निकला। पाठ्य सामग्री के परिमाण में कोई अन्तर नहीं आया।[2]

२४ अप्रैल, १९१५ ई० को 'प्रताप' प्रेस, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के मकान, पं० शिवनारायण मिश्र के मकान तथा कुछ दिनों के पश्चात् जहाँ 'प्रताप' का कार्यालय जाने वाला था; उसकी, तलाशी पुलिस द्वारा आपत्तिजनक साहित्य के सम्बन्ध में ली गयी। इसका 'प्रताप' की व्यवस्था तथा प्रचार-प्रसार पर बुरा प्रभाव पड़ा। ग्राहक टूटने लगे और रुपया वापस माँगने लगे। प्रथम वर्ष की भाँति द्वितीय वर्ष भी घाटे में ही गया।[3]

प्रारम्भ से ही 'प्रताप' अधिकारियों की आँख का काँटा था। इसके फलस्वरूप, ३० अक्टूबर, १९१६ ई० को प्रेस एक्ट के अनुसार 'प्रताप' प्रेस से एक सहस्त्र रुपये की जमानत माँगी गयी सो भर दी गयी। फिर प्रेस एक्ट के वार के कारण, प्रताप की जमानत जब्त हो गयी और १० जून, १९१८ ई० से अंक बंद हो गया। मुख पृष्ठ पर निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रकाशित हुईं :

'धर्म युद्ध में लड़ी लड़ाई आन बान की।
रहे निभाते शान सदा देशाभिमान की॥
सेवा करते रहे राष्ट्र, हिन्दोस्तान की।
रहे आप के बने और कुर्बान जान की॥
लगा घाव है अब कठिन रह रह के होती चमक।
रहा काम अब आप का मरहम रखिये या नमक।'[4]

१—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' प्रतापी 'प्रताप', पृ० १२३।
२—वही, पृ० १२४।
३—वही, पृ० १२४-१२५।
४—साप्ताहिक 'प्रताप', ज्येष्ठ २, सं० १९७५, १० जून, १९१८, संख्या ३१, मुखपृष्ठ।

अस्थायी विदाई की बेला में, 'प्रताप' ने कवि वर 'त्रिशूल' के शब्दों में, अपना सन्देश सर्वत्र पहुँचा दिया :

'अब तक जो बन पड़ी आपकी सेवा कर दी;
देश-दशा दिल खोल आपके आगे धर दी;
आर्य्य गणों की कीर्त्ति, भुवन भर में है भर दी;
दे सो बदला विषय काल की है बेदरदी ॥
प्रिय 'प्रताप' से आप अब करना कभो न प्रेम कम।
दो 'त्रिशूल' मुझको विदा, प्रियवर ! वन्दे मातरम ॥'[१]

इसी अंक में 'त्रिशूल' जी ने अपनी क्षुब्ध भावनाओं को 'गम खाने दो',[२] 'आप बीती'[३] और 'अपनी हसरत'[४] शीर्षक कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया। गणेश जी के जमानत दाखिल करने के बाद[५], ८ जुलाई, १९१८ को 'प्रताप' पुनः प्रकाशित हुआ। कवि-समाज एवं पाठक-वर्ग में प्रसन्नता की लहर परिव्याप्त हो गयी। श्री 'त्रिशूल' ने 'स्वागत' किया।[६] 'श्री' भारतीय हृदय' ने सहर्ष लिखा :

'प्यारे पाठक देखे आप पुनः प्रकाशित हुआ 'प्रताप'।
मिटा अभी इसका उपराग, फैले मानस पद्म पराग ॥'[७]

'शाप'[८] की मुक्ति और 'पुनरागमन'[९] पर श्री शम्भूदयाल श्रीवास्तव और श्री सियारामशरण गुप्त ने हर्ष प्रकट किया। 'रमेश' ने मंगलाशीष देते हुए लिखा :—

'जगे ज्योति की शिखा और जग जाय भारती।
राष्ट्र उतारे प्रिय स्वदेश की भव्य आरती ॥

१—साप्ताहिक 'प्रताप', ज्येष्ठ २, सं० १९७५, १९१८; संख्या ३१, पृ० ५।
२—वही।
३—वही।
४—वही।
५—'श्री गणेशशंकर विद्यार्थी,' पृ० १२६।
६—साप्ताहिक 'प्रताप', आषाढ़ कृष्ण ३०, सं० १९७५, ८ जुलाई, १९१८; संख्या ३२, पृ० ५।
७—वही, 'पुनरोक्ति'।
८—वही, १५ जुलाई, सं० ३३, पृ० ५।
९—वही।

नस नस में गँस जाय देश-अभिमान हमारे।
पग पीछे मत हटे, किसी सत्ता के मारे।।
तो त्रिशूल की शूल से मिट जाये त्रयताप ये।
कर्ममार्ग में ध्रुव रहे प्यारा अमर 'प्रताप' ये।।'[1]

'प्रताप' की स्पष्टवादिता, सराहनीय नीति, निर्भीकता तथा निःस्वार्थ सेवा-भावना का अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके परिणाम-स्वरूप 'प्रताप' सहायक 'निधि' में आठ सहस्त्र से अधिक रुपये एकत्र हो गए। गणेश जी तथा मिश्र जी ने तय करके, 'प्रताप ट्रस्ट' का निर्माण कर दिया और उसे, १५ मार्च, १९१९ ई० को विधिवत् रूप में पंजीकृत करवा दिया। ट्रस्टियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त, चिरगाँव, डाक्टर जवाहर लाल रोहतगी, कानपुर, श्री फूलचन्द, कानपुर, श्री शिवनारायण मिश्र वैद्य, कानपुर तथा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी थे। लाला फूलचन्द के त्याग देने और श्री गणेश जी के स्वर्ग-वास के पश्चात्, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन और विद्यार्थी जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरि-शंकर विद्यार्थी नवीन ट्रस्टी नियुक्त हुए। श्री हरिशंकर विद्यार्थी की मृत्यु के पश्चात् उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा विद्यार्थी ही आजकल, 'प्रताप' की संचालिका तथा मैनेजिंग ट्रस्टी हैं।

ट्रस्ट-निर्माण के पश्चात्, ट्रस्ट ने मिश्र जी को 'प्रताप' प्रेस का कीपर, मुद्रक तथा प्रकाशक बनाया। न्यायाधीश श्री स्टाइफ ने अपने निर्णय में 'प्रताप' से दो सहस्त्र रुपये की जमानत की माग की। इस वार को भी सहन किया गया और जमानत भर दी गयी। इस वर्ष भी 'प्रताप' को चार चेतावनियाँ दी गयी। 'प्रताप' के सप्तम वर्ष में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। कागज के मूल्य में वृद्धि हो जाने के कारण १४ जून, १९२० ई० से उसका मूल्य ३ रुपये के स्थान पर साढ़े तीन रुपये कर दिया गया।[2]

'प्रताप' के जीवन में, उसका अष्टम वर्ष अत्यन्त घटनापूर्ण एवं कण्टकाकीर्ण रहा। आपत्तियों से विचलित होने की अपेक्षा, गणेश जी ने अधिकाधिक उत्साहित होकर, कार्तिक शु० सं० १९७७, तद्नुसार २३ नवम्बर, १९२० ई० को अपने सम्पादकत्व में, दैनिक 'प्रताप' का प्रकाशनारम्भ किया। जनवरी, १९२१ ई० में संयुक्त प्रांत के राय-बरेली जिले में कृषकों पर भीषण गोलीकाण्ड हुआ। इसमें वहाँ के ताल्लुकेदार सरदार

१—साप्ताहिक 'प्रताप', आषाढ़ शुक्ल १९७५, १५ जुलाई, १९१८; सं० ३३, पृष्ठ ५।
२—गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० १२६-१२७।
३—वही, पृ० १२७-१२८।

वीरपालसिंह का जबर्दस्त हाथ था। 'प्रताप' ने पूर्ण जाँच करवायी और अपने दैनिक पत्र में उसका भण्डाफोड़ किया। ये लेख १३ तथा १६ जनवरी के दैनिक 'प्रताप' में प्रकाशित हुए। वीरपाल ने धारा ५०० के अन्तर्गत मानहानि का अभियोग प्रारम्भ कर दिया। 'प्रताप' के पक्ष में और सफाई के ५० साक्षियों में पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री सी० एस० रंगाऐयर, श्री कृष्णराम मेहता, डा० अवन्तिका प्रसाद आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। 'प्रताप' की ओर से डाक्टर जयकरण नाथ मिश्र आदि ७-८ लब्ध प्रतिष्ठित अभिवक्ता पैरवी करते रहे। इस मुकदमे के कारण गणेश जी ग्राम ग्राम में, 'प्रताप-बाबा' नाम से विख्यात हो गए। अन्ततोगत्वा 'प्रताप' के संचालकों से तीस हजार की जमानतें तथा मुचलके माँगे गए और विद्यार्थी जी को तपोभूमि की कठिन यात्रा सहन करनी पड़ी। एक महा प्रभु ने कहा था कि—

"The Public life in U. P. can not be safe unless the 'Pratap' is crushed."

अर्थात् जब तक 'प्रताप' का अन्त न कर दिया जायगा, तब तक संयुक्तप्रान्त का सार्वजनिक जीवन सुरक्षित नहीं हो सकता।[1] 'प्रताप' पर, नाना प्रकार की विपत्तियाँ आयीं परन्तु उसके जन्मदाता अपने पथ पर अडिग रहे। उपर्युक्त मुकदमें में 'प्रताप' के लगभग तीस सहस्त्र रुपये खर्च हुए। यद्यपि अंग्रेज सरकार के न्यायालय में 'प्रताप' की पराजय हुई! परन्तु विश्व की वास्तविक अदालत में 'प्रताप' सिर-आँखों चढ़ गया। उसके सम्मान में कोई परिवर्त्तन नहीं आया और उसकी ग्राहक संख्या बढ़कर १४ सहस्त्र तक हो गयी। इसके पश्चात् अपने जीवन के नवम से द्वादश वर्ष के अन्तर्गत कोई विशिष्ट घटना नहीं घटी। फतेहपुर जिला राजनैतिक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण के कारण, गणेश जी को १९२३ ई० में ('प्रताप' का दशम वर्ष) पुनः कारागृह जाना पड़ा।[2] गणेश जी ने क्षमा माँगना सीखा ही नहीं था। उनका जीवन तो 'तलवार की धार पर धावनो' का साकार रूप था। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने, अपनी 'लीला' पुस्तक में, उन्हीं को ही लक्ष्य करके, यह वाक्य लिखा था—

'क्षमा चाहने वाला काम—
कभी नहीं करता है राम॥[3]

'प्रताप' पर रायबरेली-मानहानि-अभियोग के पश्चात्, दूसरा प्रसिद्ध मुकदमा मैनपुरी-मानहानि-केस चला। शिकोहाबाद (मैनपुरी) का थानेदार शिवदयाल

१—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' पृ० १२७-१२८।

२—वही, पृ० १२८-१२९।

३—श्री मैथिलीशरण गुप्त—'सुधा', गणेश जी, नवम्बर, १९३१; पृ० ४४५।

सिंह उत्कोच लेने तथा अत्याचार करने में प्रसिद्ध था। 'प्रताप' ने इस बात की जाँच करवाकर, इसका भण्डाफोड़ किया। आँग्ल-शासन का संकेत प्राप्त कर, शिवदयालसिंह ने मानहानि के रूप में, 'प्रताप' के मुद्रक और प्रकाशक श्री सुरेन्द्र शर्मा और सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी पर अभियोग चला दिया। १७ नवम्बर, १९२६ ई० को प्रथम श्रेणी न्यायाधीश श्री ज्वालाप्रसाद ने दोनों ही अभियुक्तों को चार-चार सौ रुपये जुर्माना या छः-छः महीने के सामान्य कारावास का दण्ड दिया।[१] परन्तु उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को बिलकुल निर्दोषी घोषित कर दिया। इस मामले की उत्तरप्रदेशीय विधान सभा में भी गूंज उठी और राज्यपाल तक मामला गया। आठ मास तक अभियोग चला। 'प्रताप' के लगभग तीन सहस्त्र रुपयों का अपव्यय हुआ। गणेश जी अपनी धुन तथा न्यायप्रियता पर डटे रहे।[२] 'प्रताप' के १५ वें वर्ष में, १९२८ ई० में, साईं-खेड़ा मानहानि-केस चला जिसके अन्तर्गत साईखेड़ा (जिला नरसिंहपुर; मध्यप्रदेश) के श्री दादा जी धूनीवाले के ढ़ोंगों का भण्डाफोड़ किया गया था। यह अभियोग, १९ मार्च, १९२८ ई० को, दादा जी के शिष्य श्री दण्डीस्वामी गुरु केशवानन्द ने चलाया परन्तु बाराबंकी के राजा पृथ्वीपालसिंह ने मध्यस्थता कर, सितम्बर, १९२८ को समझौता करा दिया और छोटे दादा ने मुकदमा उठा लिया।[३]

२२ अप्रैल, १९२८ के 'प्रताप' में 'नैनी जेल का उपद्रव और श्री दुबलिस' शीर्षक टिप्पणी प्रकाशित हुई। प्रयाग उच्च न्यायालय ने इस कारण, 'प्रताप' पर, न्यायालय की मान हानि का मुक़दमा, ३० जुलाई, १९२८ को चला दिया। भ्रम के कारण यह भूल हो गयी थी; एतदर्थ, उत्तरदायी पत्रकार होने के नाते, गणेश जी ने खेद प्रकट कर दिया और उच्च न्यायालय ने भी मामला उठा लिया।[४] आँग्ल शासन ने 'प्रताप' को विनष्ट करने का बीड़ा उठा लिया था। अँग्रेजों ने उसे राजद्रोहियों क्रांतिकारियों और दुश्मनों का आश्रय-स्थल मान लिया था। गणेश जी के जीवन का यही मूलमन्त्र था कि 'अमानुषिकता, असज्जनता के विरुद्ध लड़ता रहा और ईश्वर बल दे कि आगे भी लड़ सकूँ।'[५] गणेश जी की लेखनी के लिए तो राम के मुख से

१—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' पृ० १२९।

२—वही, पृ० १३२-१३३।

३—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' प्रतापी 'प्रताप', पृ० १३३-१३४।

४—'गणेशशंकर विद्यार्थी, प्रतापी 'प्रताप', पृ० १३३-१३४।

५—श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी की जेल-डायरी का एक पृष्ठ, २९ जनवरी, सन् १९३१, 'नर्मदा' विद्यार्थी स्मृति अंक', पृ० १७।

कहलवायी वाल्मीकि की यह सहज शौर्य-वाणी कितनी अनुकूल बैठती है—'क्षत्रियै-र्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति'—'क्षत्रिय इसलिए धनुष धारण करते हैं कि राष्ट्र में कहीं आर्त्तशब्द सुनायी न पड़े।' वास्तव में गणेश जी भी इसलिए लेखनी धारण करते थे कि उनके आसपास कहीं आर्त्तनाद न सुनाई पड़े।[१]

४ सितम्बर, १६२७ ई० के 'प्रताप' में इंग्लैंड के विभिन्न राजनैतिक दलों के सम्बन्ध में 'एक ही थैली के चट्टे-बट्टे' शीर्षक सम्पादकीय लेख के प्रकाशन पर, ६ जनवरी, १६२८ ई० को इस पत्र को चेतावनी दी गयी। १६३० में आर्डिनेंस के बाद 'प्रताप' के पुनर्प्रकाशन पर, 'डिक्लेरेशन' के समय, चेतावनी दी गयी। इसके पूर्व ही, ४ मई, १६३० ई० का अंक निकालने के बाद 'प्रताप' छः मास तक बन्द रहा था। सन् १६३० में सत्याग्रह-संग्राम अपने पूर्ण उन्मेष पर था। आँग्ल-शासन ने 'प्रेस आर्डिनेंस' जारी कर दिया था। सत्याग्रह को 'धार्मिक युद्ध' के रूप में ग्रहण किया गया।[२] कांग्रेस ने सभी पत्रों को इस काले कानून के विरुद्ध, अपने पत्रों के प्रकाशन को बन्द करने का आदेश दे दिया। सम्पादकाचार्य श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर जी ने लिखा था : 'सरकारी खबर है कि १४० पत्र-पत्रिकाओं से जमानत माँगी गयी है। अवश्य ही ये सब हिन्दुस्तानियों द्वारा प्रकाशित और सम्पादित पत्र हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के इस तरह मारे गये पत्रों की संख्या इस प्रकार है—बम्बई ३५, पंजाब २५, दिल्ली २५, मद्रास १८, युक्तप्रान्त १३, बंगाल ६, बर्मा ५, आसाम ४, सीमाप्रान्त ३, मध्यप्रान्त और बिहार १,: इनमें से ६३ का प्रकाशन बन्द हो गया, ७ ने जमानत न देकर सत्याग्रह किया, १५ ने जमानत दे दी और १६ की जमानत माफ कर दी गयी। असेम्बली में सरकार की ओर से बताया गया है कि प्रेस सम्बन्धी काले कानून के मुताबिक कुल १३१ पत्र पत्रिकाओं से जमानत माँगी जा चुकी है और उनमें से ६१ का प्रकाशन बन्द हो गया है।[३] 'प्रताप' प्रेस से भी तीन सहस्त्र रुपये की जमानत माँगी गयी। जमानत देने से सर्वथा इंकार कर दिया गया। उसी युग में ही, पराड़कर जी ने ठीक ही लिखा था कि अखबारों के दमन के लिए जब काला कानून जारी कर दिया गया; तब बहुत ही कम साइक्लोस्टाइल वाले परचे निकालते थे पर जब से इन परचों के खिलाफ भी काला कानून बना दिया गया तब से इनकी तादाद बेतरह बढ़ती जाती है। ऐसा

१—श्री रतनलाल जोशी-मृत्युंजयी गणेशशंकर विद्यार्थी, वही पृ० १६६।

२—डा० राजेन्द्रप्रसाद-'आत्मकथा', बिहार में नमक सत्याग्रह, पृ० ३२८।

३—सम्पादकाचार्य श्री पराड़कर-'रणभेरी', काले कानून के शिकार, जुलाई १६३०।

कोई बड़ा शहर नहीं रह गया है जहाँ से एक भी 'रणभेरी' जैसा परचा न निकलता हो। अकेले बंबई में इस समय ऐसे एक दर्जन परचे निकल रहे हैं। शुरू में वहाँ से सिर्फ 'काँग्रेस बुलेटिन' निकलती थी। नये परचों के नाम भी समयानुकूल हैं, जैसे 'रिवोल्ट' (बलवा), रिवोल्यूशन (विप्लव), बलवो (गुजराती), फितूर (द्रोह), गदर, बगावत 'बदमाश अंगरेज सरकार आदि। ये परचे मराठी, उर्दू, गुजराती आदि अनेक देशी भाषाओं और विदेशी भाषा अँगरेजी में भी निकलते हैं। दमन से द्रोह बढ़ता है, इसका यह अच्छा सबूत है। पर नौकरशाही के गोबर भरे गन्दे दिमाग में इतनी समझ कहाँ? वह तो शासन का एक ही शास्त्र जानती है—बन्दूक।[1] परन्तु, इसके विपरीत 'प्रताप' सर्वसाधारण की बन्दूक थी। छः मास के आर्डिनेंस के पश्चात् भी 'प्रताप' प्रकाशित नहीं हुआ। इन दिनों, उसके जीवन-सर्वस्व गणेशशंकर विद्यार्थी, संयुक्त सम्पादक पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दो सहकारी सम्पादक श्री युगलकिशोर सिंह और श्री देवव्रतशास्त्री और उसके ट्रस्टियों में एक को छोड़कर शेष सब-अर्थात् समग्र कर्त्ता-धर्ता-कारागृह में थे। उसकी आर्थिक-स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी थी। अन्ततोगत्वा, विद्यार्थी जी के आदेशानुसार, 'प्रताप' के सहकारी संपादक श्री प्रकाशनारायण शिरोमणि के संपादकत्व में 'प्रताप' का पुनरागमन हुआ। योग्य पिता के योग्य पुत्र श्री हरिशंकर विद्यार्थी ने इस समय 'प्रताप' को सुन्दर व्यवस्था की और सम्पादन करने लगे।[2]

२० मार्च, १९२९ ई० को समूचे भारत में मेरठ षड्यन्त्र अभियोग के प्रसंग में तलाशियाँ व गिरफ्तारियाँ हुई। उस दिन 'प्रताप' प्रेस में भी तलाशी हुई और अनेक कागजात बोरों में भरकर ले जाए गए। १९ अप्रैल, १९३१ को 'सरदार भगतसिंह का बलिदान', शीर्षक लेख के प्रकाशन पर, 'प्रताप' सम्पादक को बुलवाकर चेतावनी दी गयी। 'प्रताप' कार्यालय से प्रकाशित 'काकोरी के शहीद' और 'आयर्लेंड का स्वातन्त्र्य-युद्ध' नामक दो पुस्तकों के प्रकाशन पर, उन्हें जप्त करके, कार्यालय की तलाशी करके, समग्र प्राप्त प्रतियों को पुलिस ने अपने अधिकार में कर लिया। बोलशेविक रूस, नामक पुस्तक के प्रकाशन की सूचना पढ़कर ही, मुद्रणालय की तलाशी ली गयी और सूचना-पत्र तक पुलिस अपने साथ ले गयी। इस प्रकार शतशः बार तलाशियाँ ली गयीं परन्तु पुलिस को

१—'रणभेरी,' मर्ज बढ़ता ही गया, २५ अगस्त, १९३०।

२—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' पृ० १३६-३७।

कोई आपत्तिजनक वस्तु प्राप्त नहीं हुई।[१] 'प्रताप' कार्यालय[२] और उसके सम्पादकों[३] का जीवन ही तलाशियों, कारागृह-यात्रा तथा त्रासों के मध्य व्यतीत हुआ। ५ जुलाई, १९३१ के अग्रलेख 'क्या सूखे में आग लगाने का इरादा है, के प्रसंग में 'प्रताप' सम्पादक 'नवीन' जी पर धारा १२४-ए० का अभियोग चला।[४]। 'प्रताप' का अष्टादश वर्ष सर्वाधिक दारुण तथा आघातजनक रहा। गणेश जी ९ मार्च १९३१ ई० को अपनी पंचम एवं अन्तिम कारावास यात्रा से मुक्त होकर आए थे।[५] इस समय उसका मानस नाना प्रकार की अभिलाषाओं तथा योजनाओं से परिप्लावित हो रहा था। गणेश जी ने यह तय किया था कि 'प्रताप' का दैनिक संस्करण पुर्नकाशित हो; साप्ताहिक 'प्रताप' में अनेक संशोधन तथा परिवर्द्धन करके, उसे एक बहुत उच्चकोटि का साप्ताहिक पत्र बना दिया जाय और एक मासिक पत्र भी निकाला जाय।[६] परन्तु विधि को यह स्वीकार नहीं था। अपनी कारागृह मुक्ति के १६ दिन बाद ही वे 'अमर शहीद' हो गए। गणेश जी जैसा तपस्वी लेखक, कलम का धनी पत्रकार, हिन्दी जगत का गौरव ही था। वे केवल पत्रकार ही नहीं; त्यागी, तेजस्वी, कार्यकर्त्ता भी थे। जन्म भर संघर्षरत रहकर अन्त में भी उन्होंने संघर्ष में ही वीरगति प्राप्त की।[७] महात्मा गाँधी ने लिखा कि उनकी मृत्यु हम सबकी स्पर्द्धा के योग्य थी।[८] एक बार दीनबन्धु एण्डूज ने तो गणेश जी के बलिदान की उपमा प्रभु ईसा मसीह के बलिदान

१—वहीं, पृ० १३६।

२—श्रीमती रमा विद्यार्थी, कानपुर का मुझे लिखित दिनांक ३१-१०-६० का पत्र।

३—हम लोगों के जीवन १९४६ तक तो ऐसे थे कि पुलिस लगभग हर साल सब कागजात तलाशी में ले जाती थी। वर्षों जेलों में रहकर जब बाहर आते थे तो फिर से नया घर बसाना होता था—
श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, आगरा का मुझे लिखित दिनांक—
१२-१०-१९६० का पत्र।

४—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पृ० १३६।

५—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पृ० ४०। जेल जीवन की झलक,।

६—वही, प्रतापी 'प्रताप', पृ० १३८।

७—'विक्रम', मार्च १९५४, पृ० ८।

८—महात्मा गाँधी—'मेरे समकालीन', गणेश जी के प्रति, पृ० ५५७।

से दी थी।[1] सन् १९१६ ई० में, कानपुर में अपने सार्वजनिक अभिनन्दन के समय, महात्मा गाँधी ने भविष्यवाणी की थी कि 'प्रताप' भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का अग्रदूत होगा।[2] गणेश जी के 'प्रताप' ने उनकी भविष्यवाणी को अक्षरशः सत्य प्रमाणित करके बतलाया। 'प्रताप' ने आजन्म गणेश जी के सिद्धान्तों तथा परिपाटी का, एकोन्मुख होकर, अनुगमन किया। आज भी उसके विषय में यह कहा जाता है :

'पक्षपात तज लिखे निडर हो, कभी न झूठा न करे प्रलाप
राणा जी की राजनीति को पाल रहा है पत्र 'प्रताप' ॥[3]

आजकल राष्ट्रीय साप्ताहिक 'प्रताप' छः पृष्ठों का निकल रहा है। उस पर गणेश जी तथा दो चरणों के चित्र अंकित रहते हैं और 'अमर शहीद श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा संस्थापित' लिखा रहता है। उसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये और एक प्रति का मूल्य आठ नए पैसे है। उसमें समाचार, कविताएँ, सम्पादकोय, लेख, कहानियाँ, विज्ञापन आदि के अतिरिक्त चिट्ठी, पत्री, बाल-गोष्ठी आदि के स्तम्भ भी रहते हैं।[4]

दैनिक 'प्रताप' :

साप्ताहिक 'प्रताप' के साथ ही साथ, स्वर्गीय गणेश जी ने २३ नवम्बर, १९२० ई० को 'प्रताप' को भी जन्म दिया था। देश के अतीत गौरव और राष्ट्रभक्ति को घर-घर तक पहुँचाने के लिए ही 'प्रताप' का दैनिक संस्करण प्रकाशित हुआ। दैनिक पत्र का आकार २० × १५ और वार्षिक मूल्य १६ रुपये था।[5] 'प्रताप' साप्ताहिक में उसके लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए गणेश जी ने लिखा था :

'उन्हें अपने भविष्यत् की उज्वलता और अस्तित्व की उपयोगिता का भी विश्वास होता जा रहा है। इन शुभ लक्षणों को, शुभ अवसर के और भी निकट बुलाने के लिए, देश की अनेकानेक आत्मायें इस बात का अथक और अनवरत् परिश्रम कर रही हैं कि केवल कुछ इने गिने घरों ही में नहीं, किन्तु देश के अगणित झोपड़ों तक में देश का अतीत का गौरव गूंजे; प्रत्येक जन अपनी वर्तमान हीन दशा को अनुभव

१—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—'नवीन' जी की सद्भावना, 'नर्मदा' स्मृति अंक, पृ० १५२।
२—नर्मदा—भारतीय पत्रकारिता के महाप्राण: स्व० श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी, स्मृति अंक, पृ० ६५।
३—श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा'—'नवभारत', २६-३-१९५९।
४—राष्ट्रीय साप्ताहिक 'प्रताप', भाग ४९, संख्या २९ आषाढ़, शुक्ल पक्ष ३, सं० २०१७, २७ जून, १९६०।
५—समाचार पत्रों का इतिहास, पृ० ३५२।

करे और उसका हृदय ऊँचे भविष्यत् की गहरी चिन्तना से पूर्णतया आंदोलित हो।[१]

साप्ताहिक के सदृश्य, दैनिक 'प्रताप' का भी सर्वत्र अभिवंदन किया गया। श्री मैथिली-शरण गुप्त ने 'दैनिक दर्शन' शीर्षक कविता में लिखा :

'दैनिक दशा देखने के हित भेजा तूने मुझे कहाँ,
प्रभो, देखने भी तो दे ये आँसू-उमड़े हुए यहाँ,
देखे को कहने के पहले रुँध जाता है गला जहाँ,
तू ही बता कि मुझे सफलता होगी कैसे भला वहाँ ?
सच्चा हाल जनाना है तो, आ, तू स्वयं यहाँ स्वामी
और बढ़ूँ मैं आगे-आगे बन तू मेरा अनुगामी ॥'[२]

कविवर श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने भी अपने 'आशीष सुमन' बिखेर दिए :

'हृदयों में भर रहे हो, देश-प्रेम अनन्य।
दैनिक दर्शन से हुए भक्त तुम्हारे धन्य ॥
बड़भागी तुम से हुआ, यह तुक बन्द 'त्रिशूल'।
शुभ अवसर पर भेंट को, लाया है दो फूल ॥ दोहा ॥'[३]

श्री 'विकसित' ने आशीर्वाद दिया—

'बल पाकर 'वन्दे मातरम' महामन्त्र के जाप से,
प्रतिदिन प्रताप उद्दीप्त हो कनक सदृश्य, उत्ताप से ॥'[४]

गणेश जी के गुरु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने, १६ नवम्बर, १९२० के अपने पत्र में, जुही, कानपुर से अपनी मंगल कामनाएँ 'दैनिक प्रताप' के प्रति प्रेषित की। यह पत्र 'शुभाभिलाषा' शीर्षक से साप्ताहिक रूप में प्रकाशित हुआ :

'प्रताप'! तुम्हारे आविर्भाव के समय ही तुम्हारे कार्य-कलाप देखकर हृदय में यह भाव उदित हुआ कि तुम कुछ काम कर दिखाओगे। वह सम्भावना सच निकली। अत्यन्त छोटे बीज के भीतर जिस प्रकार वट का प्रकाण्ड वृक्ष छिपा रहता है, उसी तरह तुम्हारे उस आरम्भिक अवतार में तुम्हारा यह आज का आकार और प्रकार भी

१—साप्ताहिक 'प्रताप', सम्पादकीय, कार्तिक, कृष्ण ३, सं० १९७७, २९ नवम्बर, १९२०; संख्या ४, भाग ८, पृ० ३-४।

२—साप्ताहिक 'प्रताप' सम्पादकीय, कार्तिक कृष्ण सं० १९७७, २९ नवम्बर, १९२०; संख्या ४, भाग ८, पृ० ८।

३— वही, पृ० ८।

४—वही।

निहित था। थोड़े ही दिनों में बढ़कर तुमने अपनी कर्त्तव्य छाया के आविष्करण से सहस्त्र भारतवासियों के अन्तःकरण को सुखी कर दिया। अब तो तुम उस छाया के प्रभाव को और भी दूर-दूर तक बढ़ा रहे हो। यह तुम्हारी कर्त्तव्य-निष्ठा, सतत चिन्ता, कार्य तत्परता, सत्य-प्रीति और श्रम सहिष्णुता का फल है। ईश्वर करे तुममें पूर्वोक्त गुणों का दिन पर दिन आधिक्य होता जाय। ईश्वर करे, तुम्हारे मार्ग पर चलने वालों की कामनाएँ सफल हों। ईश्वर करे, किसी दिन तुम्हें सभ्य, शिक्षित और स्वतंत्र देश इंगलैण्ड के 'टाइम्स' की पदवी भारत में प्राप्त हो जाय। अपने देश को ही अपना आराधना-मन्दिर और देश-वासियों को ही अपना आराध्यदेव समझो। भेद-भाव से दूर रहो। सत्य का सदा आदर करो। कर्त्तव्य-पालन ही को अपना सबसे बड़ा धर्म मानो। न्याय पथ से कभी भ्रष्ट न हो। परमात्मा को सर्व साक्षी समझकर अपनी आत्मा को अन्याय के लेश से भी संश्लिष्ट न होने दो। न किसी के कोप से विचलित हो, न किसी के प्रसाद से कर्त्तव्य-च्युत। याद रखो, सच्चे, सर्वहित-चिन्तक और सरल मार्ग-गामी सज्जन ही संसार में सफल काम होते हैं। एक बात और करो। विवेक को कभी हाथ से न जाने दो। जो कुछ करो परिणाम पर ध्यान देकर, सोच-समझकर करो। ऐसा न हो कि तुम्हारे किसी अपरिणाम-दर्शी कार्य के कारण तुम्हारे मार्ग का अवरोध हो जाय, अथवा तुम्हारी गति ही मन्द पड़ जाय। सर्व साधारण जनों के सच्चे सेवक बनने की चेष्टा करो। उन्हीं के हित को अपना हित समझो। उन्हीं की सन्तुष्टि, उन्हीं की उन्नति, उन्हीं की कार्य-सिद्धि को अपना सबसे बड़ा पुरस्कार जानो। भगवान इस शुभाभिलाष को सफल करे।

'विघ्नबाधाभयैर्भुक्ताः सवश्वर्यसमन्विताः।
भवन्तु त्वत्प्रयत्नेन सर्वे भारतवासिनः॥'[१]

कुछ ही दिनों के अन्दर दैनिक 'प्रताप' के पांच हजार के लगभग ग्राहक हो गए। अत्याचारी सत्ताधारियों और परम्परागत विषम परिस्थितियों के कारण, 'प्रताप' के कर्णधारों ने आषाण शुक्ल १ सं० १९७८, ६ जुलाई, १९२१ ई० तक प्रकाशित कर, इसका दैनिक संस्करण बन्द कर दिया। रायबरेली मानहानि अभियोग में व्यस्त रहने के कारण, अंतिम कतिपय दिनों का सम्पादन श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने किया।[२] पूरे नौ वर्ष के पश्चात्, सत्याग्रह के ज्वार तथा आन्दोलनकारी युग में, मार्ग शीर्ष शु० १, सं० १९८७ वि०, तद्नुसार २१ नवम्बर, १९३० ई० को, दैनिक 'प्रताप'

१—साप्ताहिक 'प्रताप', शुभाभिलाष, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का पत्र, नवम्बर, १९२०; पृ० ८।

२—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' प्रताप', पृ० १५५।

ने पुन: अपना शिविर स्थापित किया। साप्ताहिक 'प्रताप' के सभी कार्य कर्त्ताओं के 'तपोभूमि' में होने केकारण, इस बार दैनिक 'प्रताप' के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक श्री प्रकाशनारायण शिरोमणि हुए। शिरोमणि जी द्वारा उत्तरप्रदेशीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन का जनसंख्या-बहिष्कार सम्बन्धी संदेश प्रकाशित करने के कारण, उनको क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट एक्ट, की धारा १७ अ० के अभियोग में २९ दिसम्बर, १९३० को गिरफ्तार कर लिया गया। शिरोमणि जी को छ: मास का कठोर कारावास और ५० रुपये जुमाने का दण्ड दिया गया। अन्य परिस्थितियाँ भी अत्यन्त विपरीत तथा असुविधाजनक हो गयी। एतदर्थ, सिर्फ ३५ अंकों के निकालने के बाद ही २ जनवरी, १९३१ ई० से दैनिक 'प्रताप' का प्रकाशन फिर बन्द हो गया।[1] बाद में वह पुन: प्रकाशित हुआ और आजकल छ: पृष्ठों का प्रकाशित हो रहा है। उसका वार्षिक मूल्य २८ रुपये है और एक प्रति का आठ नये पैसे। उस पर 'हुतात्मा श्रद्धेय गणेशशकर विद्यार्थी की पुण्य स्मृति में' और संस्थापक हरिशंकर विद्यार्थी अंकित रहता है। 'सम्पादकीय' के स्तम्भ में अपने परम्परागत आदर्श वाक्य के साथ ही साथ, स्वर्गीय श्री हरिशंकर विद्यार्थी का चित्र प्रकाशित होता है।[2] गणेश जी की मृत्यु के पश्चात्, दैनिक 'प्रताप' का मूल्यांकन करते हुए आचार्य श्री शिवपूजन सहाय ने लिखा था कि 'प्रताप' सुव्यवस्थित निकलता था। 'प्रताप' में कितने ही संग्रहणीय लेख निकले थे। अपने युग के दैनिकों में वह बेजोड़ था। 'प्रताप' और 'अभ्युदय' देश को रोज-रोज उकसाकर जल्दी से जल्दी जगाने के लिए निकले थे। वे असफल नहीं हुए, धार पर डटे हो रहे; जूझे भी शान के साथ।[3]

'प्रताप' के सम्पादक-गण और उसका प्रताप

साप्ताहिक 'प्रताप' के प्रारम्भ से ही गणेश जी सम्पादक रहे परन्तु रायबरेली मानहानि-अभियोग के व्यस्त तथा संघर्षरत दिनों में श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम० ए०, 'साहित्यरत्न', ३ मई, १९२१ ई० से इसके मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक हुए और १० सितम्बर, १९२३ ई० तक रहे। पालीवाल जी के जाने के पश्चात् दो अंकों के सम्पादक पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हुए और फिर अक्टूबर, १९२३ से ३ मार्च

१—वही, पृ० १९२।

२—दैनिक 'प्रताप', भाग ३२, संख्या १७९, वैशाख शुक्ल पक्ष, सं० २०१७; ४ मई, १९६०।

३—श्री शिवपूजन सहाय-मासिक 'हंस' (काशी), हिन्दी के दैनिक पत्र, वर्ष २, संख्या ३, सितम्बर, १९३१ ई०।

१९२४ ई० तक पं० माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' इसके सम्पादक रहे। इस समय गणेश जी कारागृह में थे। पालीवाल जी के तदनन्तर श्री सुरेन्द्र शर्मा ३१ जुलाई, १९२७ ई० तक मुद्रक और प्रकाशक रहे। विद्यार्थी जी ने पुनः 'प्रताप' का सम्पादन, मुद्रण एवं प्रकाशन कार्य क्रमशः १० मार्च, १९२४ ई० और ७ अगस्त, १९२७ ई० से लेकर ४ मई, १९३० ई० तक, प्रेस आर्डिनेंस के कारण, 'प्रताप' के बन्द होने तक, सम्पन्न किया। विद्यार्थी जी के कारागृह में होने के कारण, 'प्रताप' के पुर्नप्रकाशन के समय, ९ नवम्बर, १९३० से श्री प्रकाशनारायण शिरोमणि, बी० ए० मुद्रक-प्रकाशक और सम्पादक हुए। शिरोमणि जी ने भी कारागृह में जाने के कारण, १ फरवरी, १९३१ ई० से १५ मार्च, १९३१ ई० तक श्री श्रीनिवास बालाजी हार्डीकर बी० ए० सम्पादक रहे। मुद्रक तथा प्रकाशक शिरोमणि जी ही बने रहे। कारागृह-मुक्ति के पश्चात् गणेश जी ने साप्ताहिक 'प्रताप' के सिर्फ एक ही अंक (२२ मार्च १९३१ ई० का) सम्पादन किया था कि वे 'हुतात्मा' हो गए। ५ अप्रैल, १९३१ ई० से पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' साप्ताहिक 'प्रताप' के मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक हो गए।[1] श्री 'नवीन' जी तथा हरिशंकर विद्यार्थी ही 'प्रताप' के मुख्य कार्यकर्त्ता तथा सम्पादक रहे। 'प्रताप' का ट्रस्ट विद्यमान रहा और ये दोनों महानुभाव उसके आजन्म ट्रस्टी रहे। गणेश जी के देहावसान के पश्चात्, श्री मैथिलीशरण गुप्त ने ट्रस्टी पद से, मार्च, १९३३ ई० में त्याग पत्र दे दिया।[2] 'प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में श्री दशरथप्रसाद द्विवेदी, श्री विष्णुदत्त शुक्ल, देवव्रत शास्त्री, श्री युगल किशोरसिंह, श्री सुरेन्द्र शर्मा, श्री सद्गुरूशरण अवस्थी आदि प्रसिद्ध पत्रकारों तथा साहित्यिकों ने कार्य किया। श्री द्विवेदी दिसम्बर, सन् १९१५ में आए।[3] शुक्ल जी 'प्रताप' में अक्टूबर, सन् १९२२ ई० से अप्रैल, १९२८ ई० तक कार्य करते रहे।[4] शास्त्री जी 'प्रताप' में २८ जनवरी, १९२७ ई० से ३० जून, १९३४ ई० तक रहे।[5] आजकल

१—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पृ० १२३।

२—डॉ० कमलाकान्त पाठक'मैथिलीशरण गुप्त: व्यक्ति और काव्य', जीवनी, पृ० ५२।

३—'गणेश स्मारक ग्रन्थ', पृ० ४०।

४—श्री विष्णुदत्त शुक्ल, कलकत्ता से हुई प्रत्यच्च भेंट : (दिनाँक २१-६-१९६१) में ज्ञात।

,५—श्री देवव्रतशास्त्री, पटना, (अब स्वर्गीय) से हुई प्रत्यक्ष भेंट : (दिनांक २६-६-१९६१) में ज्ञात।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य साप्ताहिक एवं दैनिक 'प्रताप' के सम्पादक हैं। श्री भट्टाचार्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रह चुके हैं। वे प्रथम महायुद्ध के समय नजरबन्द थे और इसके पश्चात् काकोरी षड्यन्त्र में उनको दस वर्ष की सजा हुई थी।[१] 'प्रताप' के पुरातन एवं नवीन सहयोगियों में पं० श्रीराम शर्मा, पं० रमाशंकर अवस्थी, श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, श्री जनार्दन भट्ट, श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा, सरदार भगतसिंह, श्री जगमोहन 'विकसित', श्री देवीदत्त मिश्र, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्रीरामचन्द्र शुक्ल, श्री जयदेव गुप्त, श्री राघवेन्द्र, श्री रामनाथ गुप्त, श्री गनपतराय सक्सेना, श्री रामदुलारे त्रिवेदी, श्री सत्यनारायण जायसवाल, श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, श्री जगदीशप्रसाद रूसिया, श्री अज्ञात एम० ए०, श्री अर्जुनप्रसाद शुक्ल, श्री दुर्गादत्त पांडे, श्री गौरीशंकर त्रिवेदी, श्री ज्ञानेन्द्र पथिक, श्री रामनारायण, श्री गोपीकृष्ण तिवारी आदि के नाम प्रमुख हैं।[२] श्री बिहारीलाल ओमर द्वारा प्रताप प्रेस, गणेशशंकर विद्यार्थी मार्ग, कानपुर से 'प्रताप' मुद्रित तथा प्रकाशित हो रहा है।

साप्ताहिक 'प्रताप' जनता-जनार्दन का पत्र रहा है। उसके अधिकांश पाठक कृषक तथा श्रमिक वर्ग के थे। श्री अवस्थी जी ने उसे आर्त्तों और गरीबों का अड्डा कहा है।[३] 'प्रताप' की लोकप्रियता के विषय में डॉ० शर्मा ने लिखा है कि छोटे-बड़े नगरों और ग्रामों तक में 'प्रताप' का अच्छा प्रचार था। वह जिस ग्राहक के पास जिस दिन आता, उस दिन श्रोताओं की भीड़-सी लग जाती थी और जब तक अपढ़ लोग गणेश जी के विचारों को भली-भाँति न सुन-समझ लेते, सन्तुष्ट न होते थे।[४] समाचार देने के मामले में भी 'प्रताप' अग्रणी रहता था। दादाभाई नौरोजी की कठिन बीमारी की खबर पढ़कर विद्यार्थी जी ने उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में अग्रलेख लिख ही नहीं लिया, उसे छाप भी डाला और जब उन महापुरुष के शरीरान्त में देर होने लगी तो आप बड़े चिन्ताकुल होकर उनकी मृत्यु की बाट जोहने लगे। सौभाग्य से पत्र के

१—'अमरशहीद रामप्रसाद बिस्मिल', पृ० १५६।

२—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृ० १९५।

३—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी—'गणेश स्मारक ग्रन्थ', सच्चे समाजवादी, पृ० १३७।

४—डॉ० हरिशंकर शर्मा—'दैनिक हिन्दुस्तान', स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी, २५ मार्च, १९६२ ई०, पृ० १०, कालम १।

प्रकाशन तक यह समाचार आ गया और 'प्रताप' विलम्ब तथा क्षति से बच गया।[१] निष्पक्षता, निडरता तथा स्पष्टवादिता के तत्त्व 'प्रताप' के रक्त में प्रवहमान थे। इन्दौर के महाराजा तुकोजीराव को गद्दी से उतारने के लिए हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी के पत्र एक मत से, समर्थन कर रहे थे परन्तु केवल 'प्रताप' ने ही उनके गद्दी से उतारे जाने का विरोध किया। श्री देवव्रत शास्त्री ने लिखा है कि देश में जितने भी राष्ट्रीय, सामाजिक और किसानों तथा मजदूरों सम्बन्धी आन्दोलन चले, 'प्रताप' ने सदा उनमें एक बहुत बड़ा भाग लिया। होमरूल लीग, १९२१ ई० का असहयोग, १९३० का देश व्यापी सत्याग्रह, मुल्शीपेठा, बारडोली, खेड़ा और पटुआखाली सत्याग्रह, देशी राज्यों की प्रजा का कष्ट निवारण आदि सम्बन्धी आन्दोलनों को आगे बढ़ाने तथा सफल बनाने में 'प्रताप' सदा आगे रहता आया है। उसने इन आन्दोलनों की मदद के लिए 'प्रताप' के स्तम्भों में चन्दे के लिए फंड खोले तथा अपने कृपालु पाठकों से हजारों रुपये प्राप्त कर आन्दोलन संचालकों के पास भेजे।[२] 'प्रताप' के विषय में यह सामान्योक्ति हो गयी थी :—

'हिन्दू वीरवरों में 'लक्ष्मी' जैसे राणा हुए प्रताप।
साप्ताहिक पत्रों में हमने, देखा ऐसा सिर्फ 'प्रताप' ॥[३]

'प्रताप' कार्यालय यद्यपि एक ओर सी० आई० डी० के भयंकर आक्रमणों के बीच में था, किन्तु नगर के लोगों की श्रद्धा अभूतपूर्व थी। सरकारी और धनिक शक्तियाँ यद्यपि प्रताप की शक्तियों की आलोचना का कोई अवसर खाली नही जाने देतीं थी; किन्तु 'प्रताप' दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की ओर अग्रसर होता चला जा रहा था।[४] 'प्रताप' सरकारी वारों और आघातों की अवहेलना करके निर्भीकता पूर्वक अपनी बात कहने, बड़े से बड़े आदमी और बड़ी से बड़ी शक्ति के अन्यायों का विरोध करने तथा न्याय और सत्य का पक्ष समर्थन करने में, सदैव सबसे अधिक आगे रहा और आज भी सबसे आगे है। 'प्रताप' के जन्म के बाद इस प्रवृत्ति को बहुत उत्तेजना

१—'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, पृ० ४७।
२—'श्री गणेशशंकर विद्यार्थी', प्रतापी 'प्रताप', पृ० १३९।
३—श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा'—'हिन्दी मनोरंजन,' मार्च-अप्रैल, संयुक्तांक, १९२७ ई०।
४—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'जीवनी', पृ० ३४४-४५।

मिली।[१] चम्पारन के नीलहरों के अमानुषिक अत्याचारों की विशद् कहानी को 'प्रताप' ने प्रश्रय प्रदान किया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि 'अपना काम छुड़ाकर चाहे उससे किसी की खेती खराब क्यों न हो जाय—नील के खेतों में काम कराया जाता। मजदूर को अपने घर से खाकर काम करना पड़ता। पर इतना ही नीलवरों के लिए काफी न था, उन्होंने हर किसान को मजबूर किया कि उसके पास जितनी जमीन हो उसके एक चौथाई या कम से कम तीन-बटा-बीस हिस्से में उनको नील की खेती करनी ही होगी। नीलवर के हुक्म के मुताबिक उसके खेतों में से जो नील के लिए चुन लिये जायेंगे; उन्हीं में उसको अपने परिश्रम, हल-बैल और खर्च से नील की फसल तैयार करनी ही पड़ेगी। इतना ही नहीं; फसल तैयार हो जाने पर उसे काटकर कोठी तक पहुँचा देनी होगी। यह सब करने के लिए वे फी एकड़ या फी बीघा उसको कुछ दिया करते थे; पर वह इतना कम होता कि किसान को जितना खर्च करना पड़ता उतना भी नहीं मिलता। इस तरह नीलवरों ने एक प्रकार का कानूनी हक हासिल कर लिया था कि वे मजबूर करके नील की खेती करा सकते हैं—इन सब बातों से रैयतों को बहुत कष्ट था।'[२] 'प्रताप' अपनी अत्याचार विरोधी नीति के आधार पर, इन बातों को सहन नहीं कर सका और उसने एक क्रियात्मक आन्दोलन ही छेड़ दिया। इस प्रकार साप्ताहिक 'प्रताप' ने भारतीय स्वाधीनता के पथ के निर्माण में महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक योगदान दिया। सम्बन्धित अंक जप्त किए परन्तु 'प्रताप' महीनों तक लिखता रहा। चम्पारन के २०-२२ लाख कृषकों का उद्धार ही करके बतलाया।

'प्रताप' का मूल्यांकन करते हुए 'प्रभा' ने ठीक ही लिखा था कि उनसे यह भी छिपा नहीं कि 'प्रताप' ने न केवल जातीय जीवन की ज्योति जगाने में अनुपम सफलता प्राप्त की है, बल्कि देशी राज्यों में जागृति का सन्देश पहुँचाने में। चम्पारन की अत्याचार पीड़ित जनता के कष्ट दूर कराने में, दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह आन्दोलन, कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन, भारतीय स्वराज्यान्दोलन, मजदूर आन्दोलन, भारतीय सत्याग्रह आन्दोलन तथा असहयोग आन्दोलन में 'प्रताप' का भारी भाग रहा है और रायबरेली हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में 'प्रताप' की आवाज सबसे अधिक तीव्र और ऊँची रही है।[३]

१—श्री विष्णुदत्त शुक्ल—'त्यागभूमि', हमारा साप्ताहिक साहित्य, आश्विन सं० १९८५; पृ० ४५।

१—डॉ० राजेन्द्रप्रसाद—'बापू के कदमों में', पाँचवाँ अध्याय, पृ० ४२-४३।

३—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, नवम्बर, १९२१; पृ० ३२४।

'प्रताप' उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, मध्यभारत आदि प्रदेशों के कोने-कोने में परिव्याप्त था और उसे अपनी आभा बंगाल, उड़ीसा, दक्षिण भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब आदि प्रदेशों में भी बिखेर रखी थी। वह अपने युग की 'नब्ज' था। देशी राज्यों के अत्याचारों की कहानी भी उसमें खूब छपती थी। देशी नरेशों ने कई बार 'प्रताप' तथा उसके संस्थापक गणेश जी को साम, दाम, दण्ड तथा भेद से मिलाना चाहा परन्तु वे कभी भी प्रलोभन में नहीं आए। चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि गणेशशंकर जी के कार्य की विशेषता यह थी कि जो लोग विशुद्ध क्रान्ति के उपासक थे, उनकी भी कानपुर शहर में सहायता की जाती थी। जो लोग सरकारी नौकरी में रहकर देश सेवा के प्रति जागरूक थे, उनकी सुधि लेना भी गणेश जी ने अपने कन्धों पर ले रखी थी। उन दिनों 'प्रताप' कार्यालय न होकर 'प्रताप'-परिवार था और छोटे से चपरासी रामेश्वर से लेकर दशरथ जी तक मानो सब एक ही कड़ी में निबद्ध थे। लगता था कि 'प्रताप' की देश-सेवा ही उसमें काम करने वालों का वेतन है और वेतन लेते समय मानों प्रत्येक कहता था कि वह जरूरत से ज्यादा को हाथ न लगाए। उन दिनों युक्तप्रान्त के लेफ़्टिनेंट गवर्नर के यहाँ 'प्रताप' और गणेशशंकर जी की जो (गुप्त) फाइल बनी हुई थी; उसमें नीले निशानों से जो लिखा गया था, उन नीले निशानों की जानकारी देशभक्ति के सूत्रों से 'प्रताप' के पास पहुँच जाया करती थी। जिस श्रद्धा से देश की शक्तियों के वफ़ादार होकर गणेशशंकर जी कानपुर में खड़े होते थे, लगता था कि मानो हिन्दी की पत्रकारिता और त्याग-परम्परा का अद्भुत इतिहास बन रहा है। धनिक शक्तियाँ जब भी 'प्रताप' पर हावी होती, गणेश जी स्पष्ट कहते, 'किसी भी मूल्य पर 'प्रताप' को और 'प्रताप' के द्वारा गरीबों की शक्ति को पराजित नहीं होने दूँगा।' यह कारण है कि उत्तर प्रदेश के सार्वजनिक जीवन के व्यक्ति तथा संस्थाएँ 'प्रताप' को अपनी रक्षा का बल तथा प्राण संचारक मानती थी। इसी स्थल पर मुझे गणेश जी का एक कथन और याद आ रहा है; जो उन्होंने इसी विषय को बहुत ही मार्मिक शब्दों में गूँथते हुए कहा था, 'मानव अभागे की एक विचित्र आदत है। जब तक सूरज की किरणें उसे प्रकाश देती हैं, वह सूरज को भूले-सा रहता है। किन्तु जब वह अपने साथ नहीं रहता, तब वह सूरज के अपमान की परवाह किए बिना छोटी-सी टिमटिमदानी को सूरज का स्थान दे देता है।[१] देशी राज्यों पर भारत सरकार के अन्यायों का विरोध भी 'प्रताप' करता था। 'प्रताप' कई बार देशी रजवाड़ों का कोप-भाजन बना। ग्वालियर, मेवाड़, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, इन्दौर, टिहरी आदि अनेक रियासतों में 'प्रताप' का प्रवेश निषिद्ध था। राजस्थान के निस्पृह सेवक

१—'माखनलाल चतुर्वेदी: जीवनी' पृ० ३४१-४२।

भाई 'पथिक' को उदयपुर राज्य में १ वर्ष की कैद और एक सहस्त्र रुपये जुर्माने की सजा इसलिए हुई थी कि उनके ऊपर राजविद्रोह, अराजकता और वर्जित साहित्य ('प्रताप' तथा 'तरुण' के अंक) के रखने के आरोप लगाए गए थे।[1] गणेश जी मध्य-भारत की ही देन थे[2] और इसलिये वे मध्यभारत को विशेष स्नेह करते थे। इस राज्य में राजनैतिक जागृति लाने का श्रेय गणेश जी तथा 'नवीन' जी और जी और उनके 'प्रताप' को है। 'प्रताप' में 'रियासत या राजा' के विरुद्ध जो समाचार या गोपनीय बातें भेजी जाती थी; उनका नाम प्रकाशित नहीं किया जाता था और न किसी भी मूल्य पर ऐसे व्यक्तियों के नाम ही बताए जाते थे; यद्यपि ग्वालियर-नरेश ने इस सम्बन्ध में कई बार प्रयत्न किए।[3] इस सम्बन्ध में 'प्रताप'-मण्डल के एक प्रमुख लेखक श्री भगवन्नारायण ने अपने संस्मरण में लिखा है कि सन् १९१६ में मैंने सम्वाददाता की हैसियत से एक समाचार प्रकाशित कराया कि अमुक फैक्टरी के अँग्रेज मालिक ने अपने मजदूरों को बेतों से खूब मारा, मजदूर घायल हो गए। इस पर उस मिल-मालिक ने कानपुर के एक बैरिस्टर द्वारा 'प्रताप' को नोटिस दिलाया कि सम्वाददाता का नाम-पता बता दो, वरना हम तुम पर दीवानी-फौजदारी में दावा करेंगे। गणेश जी ने उत्तर दे दिया कि सम्वाददाता का नाम बताना हमारी नीति के विरुद्ध है, आप यदि अपना बयान भेज दें तो हम उसे छाप देंगे। इस पर वह चुप हो गया।[4] 'प्रताप' में 'बेगम के शासन में भूपाल के हिन्दू' शीर्षक प्रकाशित टिप्पणी में, भोपाल में हिन्दुओं पर होने वाली सख्तियों के विरुद्ध, लिखा गया था। इसे 'प्रिंसेस प्रोटेक्टशन एक्ट' के विरुद्ध समझ कर, कानपुर के जिलाधीश ने विद्यार्थी जी को बुलाकर, चेतावनी दी थी। परन्तु गणेश जी जिलाध्यक्ष की बातों से सहमत नहीं हुए।

१—'प्रभा', मार्च १९२५, पृ० २३४।

२—श्री सूर्यनारायण व्यास—'नर्मदा', अमर आत्मा की स्मृति में अभिवादन, विद्यार्थी स्मृति अंक, पृ० १४।

३—स्वर्गीय जमनालाल बजाज के भूतपूर्व निजी सचिव श्री गोविन्द पंढरीनाथ हिरवे, बैरिस्टर, उज्जैन से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १०-१२-१९६१) में ज्ञात।

४—श्री भगवन्नारायण भार्गव—'नर्मदा,' प्रिय साथी गणेश जी, विद्यार्थी स्मृति अंक, पृ० ४१।

'प्रताप' की पाठ्य-सामग्री और साहित्यिक सेवा :

'प्रताप' ने 'चिट्ठी पत्री' के स्तम्भ का समारम्भ करके, अपने को जनता का सही प्रतिनिधि प्रमाणित किया। सहस्त्रों पत्र, पाठ्य सुपाठ्य तथा कुपाठ्य लिपि में लिखे हुए, आते थे और अपनी करुण कहानी को 'प्रताप' में अभिव्यंजित करते रहते थे। 'प्रताप' के सह-सम्पादक श्री सुरेन्द्रशर्मा ने लिखा है कि गणेश जी का आदेश था कि 'प्रताप' के दफ़्तर में आयी हुयी एक भी चिट्ठी की कभी उपेक्षा न की जाय। साधारण झोपड़ी में रहने वाले एक किसान से लेकर राजप्रासादों में निवास करने वाले सम्पन्न व्यक्तियों तक के पत्रों पर यथा-समय यथोचित कार्यवाही की जाती। जो पत्र ऊटपटांग बातों से भरे होते, उनकी भी उपेक्षा न की जाती। उनके सम्बन्ध में भी 'प्रताप' में न छापने के कारण की स्पष्ट सूचना दे दी जाती।[1] उन दिनों बलिया के पीर मुहम्मद यूनिस की चिट्ठियाँ उसमें बहुधा निकला करती थीं।[2]

'प्रताप' में 'नहीं छापेंगे' शीर्षक एक विशिष्ट स्तम्भ रहता था जिसमें 'प्रताप' में प्रकाशनार्थ आयी अनावश्यक तथा अनुपयुक्त सामग्री की सकारण सूचना दी जाती थी। इस स्तम्भ पर प्रकाश डालते हुए और 'प्रताप' तथा उसकी आधारभूत भावना का महत्त्वांकन करते हुए, श्री यशपाल ने कहा है कि 'मैं छोटे-छोटे गद्य काव्य लिख-लिखकर कानपुर से प्रकाशित होने वाली 'प्रभा' और साप्ताहिक 'प्रताप' को भेजने लगा। इन लेखों के साथ भट्ट जी (श्री उदयशंकर भट्ट) ने अपनी सिफारिश भेजी थी। स्वर्गीय गणेशशंकर जी विद्यार्थी के जीवन-काल मे 'प्रभा' और 'प्रताप' हिन्दी जगत में क्रान्ति के अग्रदूत थे। 'प्रताप' और 'प्रभा' में उन दिनों एक छोटा-सा कालम 'नहीं छापेंगे' शीर्षक के नीचे उन रचनाओं के नाम रहते थे, जिन्हें पत्र स्थानाभाव या निस्सार समझने अथवा नीति के विरुद्ध होने के कारण प्रकाशित न कर सकते थे। मैं 'प्रताप' और 'प्रभा' के नये अंकों में, धड़कते दिल से पहले यही कालम देखता। इसमें अपनी रचना का नाम न पाने पर, विषय-सूची देखता और वहाँ भी न पाने पर अगले अंक की प्रतीक्षा करता। उस समय लेख लौटाए जाने की आशंका बड़ी खलती थी। सौभाग्य की बात है कि मेरे वे छोटे-छोटे गद्य काव्य 'प्रताप' या 'प्रभा' से कभी लौटाए नहीं गए। इसका कारण यह भी था कि वे रचनाएँ 'प्रभा' और 'प्रताप' की भावना के अनुकूल थी अर्थात् उनमें व्यंजना और संकेत से रक्त का मूल्य देकर स्वतंत्रता-प्राप्त करने की पुकार रहती थी।'[3] रक्त के बलिदान तथा राष्ट्र-भक्ति के कारण ही,

१—'नर्मदा', स्मृति अंक, पृ० १११।

२—समाचार पत्रों का इतिहास', पृ० २६६।

३—श्री पद्मसिह शर्मा कमलेश—'मैं इनसे मिला', श्री यशपाल, पृ० ६६-६७।

'प्रताप' अपने युग की समकालीन पत्र-पत्रिकाओं का भी स्नेह तथा आदर का पात्र बन गया था। 'प्रभा' ने उसके विषय में लिखा था कि उनका (गणेश जी) का 'प्रताप' ही पहला राष्ट्रीय पत्र है जो महाराणा प्रताप जैसी निर्भीकता, वीरता, स्पष्टवादिता, आदर्शवादिता, कष्ट सहिष्णुता, वीरता और अटलता के साथ भारतीय आकांक्षाओं के शत्रुओं, भारतीय नौकरशाही तथा समस्त स्वेच्छाचारी और अत्याचारी सत्ताधारियों का अनवरत कट्टर विरोध करते हुए भी अपने को उनके वारों से बचाकर न केवल अभी तक जीवित है बल्कि पापियों के हृदय को कँपाते हुए दिनों दिन वृद्धि पा रहा है।[१]

'प्रताप' प्रतिवर्ष विजयादशमी या होली के शुभावसर पर 'राष्ट्रीय विशेषांक' प्रकाशित किया करता था। यह अंक साहित्य तथा राजनीति की विविध एवं विपुल सामग्री से परिप्लावित रहता था। इस विशेषांक के विषय में एक समसामयिक मासिक पत्रिका ने लिखा था कि 'पिछले वर्षों की तरह कानपुर के 'प्रताप' का विजयादशमी पर इस वर्ष भी, विशेषांक निकला है।—आरम्भ में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री बाबू मैथिलीशरणगुप्त की 'नवयुग के स्वागत' पर एक कविता है। छन्द अनोखा है और भाव अनूठे हैं। बनारस की श्रीयुत् रायकृष्णदासकी 'स्वतन्त्रता का जन्म स्थान' शीर्षक कविता भी अच्छी हुई है। सनेही जी की कविता भी सदा की भाँति भाव पूर्ण हुई है।—'प्रताप' युक्तप्रान्त में राजनीति का उत्कृष्ट पत्र है। अपनी निर्मल आलोचना से वह दिन-दिन देशवासियों का प्यारा होता जाता है।'[२] उस युग के लेखक श्रीलक्ष्मीधर वाजपेयी ने लिखा है कि प्रत्येक वर्ष दशहरे पर 'प्रताप' के राष्ट्रीय अंक निकालकर हिन्दी वालों में विशेषांक निकालने की परिपाटी, गणेश जी ने चलायी थी।[३] सन् १९२५ से 'प्रताप' ने विशेषांक-प्रकाशन को शिथिलता प्रदान कर दी। 'प्रताप' के विगत विशेषांक हिन्दी-पत्रकारिता तथा साहित्य की स्थायी तथा सुरक्षित निधि हैं।

प्रारम्भ में 'प्रताप' में कोई चित्र प्रकाशित नहीं हुए। इसका कारण धन तथा साधनों का नितान्त अभाव था। गणेश जी की मृत्यु के कुछ वर्षों पूर्व से वह, अपने प्रति साप्ताहिक अंक में ८-१० सादे चित्र, बाह्याडम्बर के दृष्टिकोण से नहीं, प्रत्युत आवश्यकता की प्रतीति कर, देने लगा था। अन्य समयानुकूल चित्रों के अतिरिक्त

१—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, नवम्बर, १९२१; पृ० ३२४।

२—'प्रतिभा', साहित्य संवाद, 'प्रताप' का राष्ट्रीय अंक, दिसम्बर, १९१७; पृ० २९३।

३—श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी—'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, मेरा प्रथम परिचय, पृ० ३६।

आजकल 'प्रताप' में हुतात्मा गणेश जी और स्वर्गीय हरिशंकर विद्यार्थी के चित्र स्थायी रूप में रहते हैं।

'प्रताप' में सात्त्विक तथा स्तरीय विज्ञापन प्रकाशित होते थे। अश्लीलता को कदापि प्रश्रय नहीं दिया गया। यद्यपि विज्ञापनदाता उससे रुष्ट हो गए थे तथा विज्ञापन देना बन्द कर दिया था और अपने रुपये वापस मँगा लिए थे, परन्तु 'प्रताप' ने आर्थिक हानि को सहन-वहन करते हुए भी, अपनी संकल्प-वृत्ति तथा निर्धारित नीति को कभी भी तिलांजलि नहीं दी।

'प्रताप' ने अपने लेखकों की सेवा यथोचित पारिश्रमिक से भी की। संकट के दिनों में, 'प्रताप' ने लेखों के पुरस्कार के रूप में, प्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की सहायता की थी।[१] घोर आर्थिक दुरावस्था के रहते हुए भी, दैनिक 'प्रताप' में एक रुपया प्रति कालम का पारिश्रमिक देना निश्चित किया गया था।[२]

उस युग में, नौकरशाही के अत्याचार, दण्ड, कारावास, निर्ममताएँ आदि के कारण, अनेक साहित्यिक छद्म अथवा उपनाम से लिखा करते थे। स्वयं गणेश जी 'प्रताप' में अनेक नामों से लिखते थे। 'प्रताप' के पूर्व उन्होंने, 'सरस्वती', 'अभ्युदय' आदि पत्रों में 'गजेन्द्र', श्रीकान्त एम० ए० आदि उपनामों से लिखा था। 'प्रताप' में भी उन्होंने 'भारतीय युवक', 'हरि', 'दिवाकर', 'वक्रतुण्ड', 'कलाधर' 'लम्बोदर' 'वन्देमातरम' आदि छद्म नामों से लिखा था।[३] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारतीय हृदय'[४] और 'कवि मण्डल'[५] के नाम से भी लिखा था। विद्यार्थी जी ने श्री सियारामशरण गुप्त को 'धनुर्धर' छद्म नाम प्रदान किया था।[६] गणेश जी ने श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' को 'रामश्याम किंकर' नाम प्रदान किया था।[७]

१—श्री गणेशंकर विद्यार्थी का श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखित दिनांक-१९-११-१९० का पत्र, 'नर्मदा', स्मृति अंक, पृ० ८३।

२—वही।

३—'गणेशशंकर विद्यार्थी', साहित्य-सेवा, पृ० ६६-६७।

४—श्री मैथिलीशरण गुप्त का मुझे लिखित दिनांक २३-१०-१९६१ का पत्र।

५—'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य', जीवनी, पृ० ५२।

६—श्री सियारामशरण गुप्त का मुझे लिखित दिनांक १९-४-१९६१ का पत्र।

७—श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'—'गणेश स्मारक ग्रन्थ', नखल में विद्यार्थी जी, पृ० ९८।

श्रीमन्ननद्विवेदी ने 'चक्रसुदर्शन' के नाम से 'प्रताप' में अनेक राजनैतिक लेख और कविताएँ लिखीं।[१] श्री गुलाबरत्न वाजपेयी, 'गुलाब' उपनाम से लिखते थे।[२] श्री मातादीन शुक्ल 'विदग्ध' के नाम से लिखते थे।[३] श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने 'एक भारतीय आत्मा' 'श० श० श०' 'च त्र ज्ञ' व 'भारतवासी'[४] और डॉ० विनयमोहन शर्मा ने 'वीरात्मा'[५] के नाम से कविताएँ लिखीं। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'एक भारतीय हृदय' और 'एक भारतवासी' के नाम से लिखा।[६] 'नवीन' जी ने 'उठल्लू', 'श्री नवनीतचोर चरण रत' 'विपुतुआ' 'उम्मेदवार'[७] और 'चक्रपाणि' आदि के छद्म नामों से लिखा। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने 'मालव मयूर'[८] श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने 'एक सभासद[९]' 'गड़बड़ानन्द[१०]' श्री लक्ष्मणसिंह चौहान ने 'कुली' व' अनुज[११] और जौनपुर के वकील श्री रामानुजदास ने 'रामानुज' के नाम से 'प्रताप' में लिखा।[१२] श्री विजयसिंह पथिक ने' राष्ट्रीय पथिक' के नाम से और

१—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, पंडित मन्नन जी द्विवेदी की परलोक यात्रा, दिसम्बर, १९२१; पृ० ३९०।

२—लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' का मुझे लिखित दिनांक ३०-९-१९६१ के पत्र से ज्ञात।

३—श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', जबलपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट : (दिनाँक ८-१-१९६२) में ज्ञात।

४—'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी', पृ० २८८।

५—श्री विनयमोहन शर्मा—साप्ताहिक 'प्रताप', सात्वना, १७ अप्रैल, १९२२; पृ० ८।

६—श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।

७—श्री माखनलाल चतुर्वेदी की सूचना के आधार पर, 'विशाल भारत', फरवरी-मार्च, १९६२; पृ० १६७।

८ श्री माखनलाल चतुर्वेदी की सूचना के आधार पर।

९—वही।

१०—श्रीवृन्दावनलाल वर्मा का मुझे लिखित दिनाँक १५-७-१९६२ का पत्र।

११—चतुर्वेदी जी द्वारा ज्ञात।

१२—श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव, जबलपुर का मेरे नाम लिखित दिनाँक ५-१-१९६२ के पत्र से ज्ञात।

श्री राजाराम शुक्ल ने 'एक राष्ट्रीय आत्मा' के नाम से 'प्रताप' में अनेकानेक कविताएँ लिखी।[१] श्री दामोदर सहाय सिंह,[२] श्री महावीरप्रसाद चौधरी,[३] श्री नन्दकिशोर लाल,[४] श्री मनोरंजन प्रसाद एम० ए०[५] और श्री नृसिंह पाठक[६] क्रमशः' कवि-किंकर,[७] 'विभूति',[८] 'किशोर'[९] 'मनोरंजन'[१०] तथा 'अमर'[११] के उपनामों से लिखा करते थे। श्री बदरीनाथ भट्ट 'गोलमालानन्द' के नाम से लिखा करते थे।[१२] इनके अतिरिक्त, छद्म और उपनामों से 'प्रताप' में लिखने वाले शतशः कवि थे यथा कुमार, परन्तप, लश्करी, मोहन, स्वाधीन भारत, बेकस, वागीश्वर, भारत-संतान, एक कवि, रत्न, बहादुर, धर्मन हाथरस, वर्मन, होरिहार, राउ, गोंयार, व्यक्ति विशेष, भीष्म, विमल, खारा, आनन्द, क्षुब्ध, चातक, राहत, कुशल, अज्ञात, उपासक, बन्धु, अजेय, एक प्रेमी, शरण, एक सनातनीय, भानु, एक भारतीय, प्रज्ञाचक्षु, राम, जयंत, वल्लभ, अष्टावक्र, कर्ण, वसन्तुआ, कबिरहा, अकड़बेग, अलख, एक स्वयंसेवक, भारतीय किसान, एक स्वराज्य प्रेमी, स्वराज्यवादी, भंगड़ सुलतान, वनवासी, निरंकुश, भारत-भक्त, प्रेमी, क्षेत्रपति, गाण्डीव, शिव, हिन्दू, एक भारतवासी, एक युवक विद्यार्थी, एक भक्त, उच्च जीवन, एक देशप्रेमी, वज्र, निरस्त्र आदि।[१३]

सामान्यतया 'प्रताप' में कविताएँ पृ० ५ या ८ पर प्रकाशित होती थीं। 'प्रताप' ने अपने वायुमण्डल का निर्माण कर लिया था। उसके लेखकों में राजामहेन्द्र प्रताप, डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० बेनीप्रसाद, प्रो० जयचंद्र

१—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृ० ३२५
२—'मिश्रबन्धु विनोद', पूर्व नूतन, पृष्ठ २९२।
३—वही, उत्तर नूतन, पृष्ठ ४११-४१२।
४—वही, पृष्ठ ५४४।
५—वही, पृष्ठ ५५३।
६—वही, पृष्ठ ५८४।
७—साप्ताहिक 'प्रताप', ३१ जनवरी, १९१८; पृष्ठ ६।
८—वही, १३ मई, १९१८, पृष्ठ ६।
९—वही, ९ अक्टूबर, १९२२, पृष्ठ ८।
१०—'राष्ट्रीय वीणा', प्रथम भाग, पृष्ठ २८।
११—साप्ताहिक 'प्रताप', २९ जुलाई, १९१८; पृष्ठ ९।
१२—श्री वृन्दावनलाल वर्मा का मुझे लिखित दिनाँक २१-७-१९६२ का पत्र।
१३—साप्ताहिक 'प्रताप' की पुरानी संचिकाओं के निरीक्षण के आधार पर

विद्यालंकार, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पण्डित लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री पीर मुहम्मद यूनिस, पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी आदि को प्रधान स्थान प्राप्त था।[1] श्री शास्त्री ने लिखा है कि 'विद्यार्थी जी ने अपने १७-१८ वर्षों के पत्रकार-जीवन में जितने नए लेखक, कवि और सम्पादक तैयार किए, उतने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सिवा और किसी दूसरे व्यक्ति ने तैयार नहीं किए। जहाँ तक पत्रकारों का सम्बन्ध है, सर्व श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, विष्णुदत्त शुक्ल, बालकृष्णशर्मा, रमाशंकर अवस्थी, दशरथप्रसाद द्विवेदी, श्रीरामशर्मा, इन पंक्तियों का लेखक आदि विद्यार्थी जी की देन हैं जो आज विभिन्न स्थानों से राष्ट्रीय पत्रों के सम्पादन और प्रकाशन द्वारा हिन्दी और भारत माँ की सेवा में संलग्न हैं।'[2] गणेश जी ने हिन्दी पत्रकार-कला में नवीन-प्रणाली स्थापित करके, 'प्रताप' के द्वारा युगान्तर की सूचना दी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, 'प्रताप' के सम-सामयिक पत्रों में, 'भारत मित्र' 'बंगवासी', वेंकटेश्वर समाचार', 'आनन्द', 'अवधवासी', 'अभ्युदय', 'हिन्द केसरी',, 'कर्मयोगी', 'भविष्य', 'कर्मवीर', 'स्वराज्य', 'सैनिक, 'स्वदेश' आदि पत्रों की गणना महत्त्व के दृष्टिकोण से की जाती थी। इन सबमे 'प्रताप' को सर्वाधिक महिमामया स्थान प्राप्त था। उसने नूतन परंपराओं को जन्म दिया और देश में विशिष्ट वातावरण उत्पन्न किया। डॉ० सिंह ने लिखा है कि 'भारत मित्र' आदि साप्ताहिक पत्रों की राजनैतिक दृष्टि नरम थी। टण्डन जी के सम्पादनकाल में 'अभ्युदय' के विचार भी नरम रहे किन्तु कृष्णकान्त मालवीय के जाने पर वह गरम दल का समर्थक हो गया। 'हिन्दी केसरी' लोकमान्य तिलक के 'मराठी केसरी' 'का अनुवाद-मात्र था। 'कर्मयोगी' के राजनैतिक विचार उग्रतम थे; अतएव, वह सरकार का कोप-भाजन हुआ। राष्ट्रीय 'प्रताप' सच्चे अर्थ में जनता का पत्र था। 'कर्मवीर' आदि उसी के आदर्श के अनुपालक थे। 'भविष्य' की निर्भीक और तेजस्वी नीति ने उसे भी शीघ्र ही सरकार की शनि दृष्टि का लक्ष्य बना डाला।[3]

'प्रताप' ने न केवल राष्ट्रीय, राजनैतिक तथा सामाजिक आन्दोलनों को ही अपने क्रोड़ में स्थान दिया; प्रत्युत् उसने साहित्यिक सांस्कृतिक आयोजनों को भी अपना सक्रिय समर्थन प्रदान किया। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के त्रयोदश कानपुर अधिवेशन; द्विवेदी-

---

१—'गणेशशंकर विद्यार्थी,' पृ० १४६-५०।

२—श्री देवव्रत शास्त्री-साप्ताहिक 'रामराज्य', पत्रकार-विशेषांक, विद्यार्थी जी के संस्मरण, १ जून १९४५; पृ० ६०।

३—डा० उदयभानुसिंह—'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग', पृष्ठ २७४।

मेला[१] और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सार्वजनिक अभिनन्दन[२] के क्रियाकलापों तथा भूमिकाओं को 'प्रताप' का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। आन्दोलनों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष समर्थन करने बावजूद भी 'प्रताप' और उसके सम्पादक गणेश जी ने नाम का प्रचार-प्रसार, विज्ञापन अथवा आडम्बर नहीं फैलाया। साप्ताहिक 'प्रताप' में उन्होंने सम्पादक के रूप में अपना नाम तब तक नहीं दिया; जब तक विधान के अनुसार बाध्यता उत्पन्न नहीं हुई। इसी प्रकार दैनिक 'प्रताप' में भी, सम्पादक होने के बावजूद भी, अपना नाम प्रकाशित नहीं किया। उत्तरप्रदेशीय राजनैतिक सम्मेलन के फर्रुखाबाद अधिवेशन (सन् १९२९) और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उन्नीसवें गोरखपुर अधिवेशन के अध्यक्षीय पद को सुशोभित करने बाद भी, उन्होंने अपना छाया-चित्र 'प्रताप' में प्रकाशित नहीं होने दिया; यद्यपि इन सम्मेलनों के सभापति के छाया-चित्रों का प्रकाशन परम्परागत रूप में होता था और श्री देवव्रत शास्त्री तथा 'नवीन' जी ने भी इसके लिए गणेश जी से बहुत आग्रह किया था। पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धान्तों को अपनत्व प्रदान करके और त्याग को, जीवन की धुरी ही बना लेने के कारण, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने पत्रकारों को गण्यमान्य 'त्रिमूर्त्ति' में, सम्पादकाचार्य सी० वाई० चिन्तामणि और ऋषिवर रामानन्द चट्टोपाध्याय के साथ अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को भी पावन स्थान प्रदान किया है।[३] उनके सहयोगी श्री युगलकिशोरसिंह शास्त्री ने समीचीन टिप्पणी की है कि अगर वे किसी स्वतन्त्र देश में पैदा हुए होते, तो विश्व विख्यात सम्पादक स्वर्गीय सी० पी० स्काट आदि से इनका स्थान किसी हालत में कम न होता।[४] उन पर 'डिजरायली' का यह कथन शत-प्रतिशत सटीक चरितार्थ होता है कि "A great man is one whoaffects the mind of his generation."[५]

१—साप्ताहिक 'प्रताप'-२८-८-१९३२ ई०।

२—वही, ९-९-१९३२ ई०।

३—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—'रामराज्य', ,त्रिमूर्त्ति, पत्रकार अंक, वर्ष ३, अंक २४, ज्येष्ठ कृष्ण ९, सं० २००२, १ जून,१९४५।

४—'नर्मदा', स्मृति अंक, पृ० १०३।

५—वही, पृ० १० से उद्धृत।

गणेश जी का व्यक्तित्व तथा उनकी पत्रकारिता :

गणेश जी के जीवन-काल में चतुर्वेदी जी ने लिखा था :

"What is behind that influence of the Pratap-the personality of Ganesh Shankar Vidyarthi. Quite unassuming in his manners with a heart that keenly feels for the pooer and a face that speaks of his long suffering and transparent sincerity, the personality of Ganesh Shankar Vidyarthi has a peculiar charm of its own. He has suffered much, has faced many difficulties and has passed countless troublesome days and anxious nights. He has been sent to jail thrice and his is a record of sufferirg hard to beat."

"Having no are of his own to grind, with no ambition except that of serving the poor, possessing an indomitable courage ever rady to oppose tyranny and injustice from whatever quarterathey may be-the capitalists, the government, mob-shriyut Ganesh Shanakar Vidyarhi, the fighting editor af the Pratap is a representative of the powerful journalism of the coming future in india."[१]

वस्तुत: गणेश जी जन्मतः तथा सिद्धहस्त पत्रकार थे। राजनीतिक विचारों में उन्होंने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को अपना गुरु माना था जिसके कारण वे उग्र पंथी और उनका 'प्रताप' शोलों का आगार, बना रहा। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन पर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्री सुन्दर लाल का गहन प्रभाव अंकित हुआ। महान् राष्ट्रवादी और अत्यन्त निर्भीक होने के कारण, अपने गुरुदेव (द्विवेदी जी) से गणेश जी राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति के विषय में, एक पग आगे थे[२] और इसीलिए उन्होंने 'प्रताप' के सन् १६२० के विशेषांक में श्री मैथिलीशरण गुप्त की दक्षिण आफ्रिका विषयक वह कविता प्रकाशित की थी; जिसे आचार्य द्विवेदी जी 'सरस्वती' में छाप नहीं पा रहे थे।[३] गणेश जी के इसी राष्ट्रोपासक रूप का स्तवन श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' की अभिनन्दनीय वाणी ने किया :

१—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—'दी लीडर', २१ फरवरी, १६२४।

२—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे—'सरस्वती', हीरक जयन्ती विशेषांक, सरस्वती, तथा अमरशहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, सन् १६६१, पृ० ३५।

३—श्री मैथिलीशरण गुप्त—'सुधा', गणेश जी, नवम्बर, १६३१ ई०; पृ० ४४७।

'आत्मदेव ! प्यारी हथकड़ियाँ
और बेड़ियाँ दें परितोष,
उतना ही आदरणीया हैं,
जितना वह जय-जय का घोष।
तू सेवक है, सेवाव्रत है,
तेरा जरा कुसूर नहीं।
'शूली-वह ईसा की शोभा'
वह विजयी दिन दूर नहीं।'[1]

सुन्दरलाल जी का प्रभाव गणेश जी की भाषा पर पड़ा। गणेश जी की भाषा के स्वर-गत, व्यंजनगत, अव्यय, लिंग, कारक, समास, उपसर्ग, प्रत्यय, मुहावरे आदि विषयक उपादानों के संशोधन में आचार्य द्विवेदी जी का भी वरेण्य हाथ रहा है।[2] गणेश जी ने सुन्दरलाल जा के 'हिन्दी कर्मयोगी' और एक अन्यान्य पत्र 'उर्दू स्वराज्य' में, सन् १९१० में कार्य किया था। गणेश जी ने 'सरस्वती' में २ नवम्बर, १९११ से कार्य करना शुरू किया। इसके बाद वे 'अभ्युदय' में चले आए। वहाँ उन्होंने १९१२ से २३ सितम्बर, १९१३ तक कार्य किया।[3] इस प्रकार 'प्रताप' की स्थापना के पूर्व उनकी पत्रकार, वृत्ति परिपक्व एवं साधनामय हो चुकी थी। 'साप्ताहिक प्रताप' तथा 'दैनिक प्रताप' के रूप में उन्होंने अपनी पत्रकारिता की जो चिरन्तन पूँजी हिन्दी-संसार पर बिखेरी; वह सीमा-चिह्न बनकर अंकित हो गयी। उनके दैनिक 'प्रताप' का अभिनन्दन करते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में लिखा था कि कई वर्ष से 'प्रताप' नाम का साप्ताहिक पत्र कानपुर से निकल रहा है। उसका सम्पादन योग्यतापूर्वक होता है। इसी से उसका बड़ा मान है। उसका प्रचार भी बहुत है। उसके लेख बड़े महत्त्व के होते हैं। उनमें सचाई, देश-भक्ति और निर्भीकता टपकती है। देश की दशा और देशवासियों की हृदयगत भावनाओं का खूब ख्याल रखकर उसका सम्पादन होता है। उसके विचार देशवासियों ही के आन्तरिक विचार कहे जा सकते हैं। यही कारण है जो उसका इतना आदर और इतना प्रचार है। अब, विजयादशमी से, उसका एक दैनिक संस्करण भी निकला करेगा। उस संस्करण को भी समयानुकूल और बहुगुण सम्पन्न

१—'हिमकिरीटिनी', बन्धनसुख, पृ० ९३।
२—'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग', आठवाँ अध्याय, भाषा और भाषा-सुधार, पृ० २१३-२४४।
३—'गणेशशंकर विद्यार्थी', प्रारम्भिक जीवन, पृ० ८-१०।

बनाने की पूरी चेष्टा की जावेगी। जहाँ तक हम सोचते हैं, आयोजन को देखने से यही विश्वास होता है कि वह संस्करण भी बहुत ही अच्छा निकलेगा और लोग उसे भी बहुत पसन्द करेंगे। अंगरेजी के दैनिक पत्रों में जो विशेषताएँ रहती हैं, उन सबका चरितार्थ करने का यत्न किया जा रहा है।[1]........

गणेश जी तथा सामान्य पत्रकार-वृत्ति पर प्रकाश डालते हुए भी इन्द्रविद्यावाचस्पति ने कहा था कि 'पत्रकार दो प्रकार के होते हैं। एक तो सर्व श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, महात्मा गांधी और लोकमान्य जैसे मिशनरी पत्रकार तथा दूसरे आर्थिक दृष्टि सेसफल पत्रकार। मेरी सम्पत्ति में पत्रकार किसी भी प्रकार के हों, सफलता उन्हीं को मिलेगी जो स्पष्ट और 'डायरेक्ट' लिखेंगे।....विदेशों में पत्रकार का स्थान मिनिस्टर-के बराबर माना जाता है। मैं तो उसे मिनिस्टर से भी ऊँचा मानता हूँ क्योंकि मिनिस्टर सरकार के नीति से बँधा हुआ है और सम्पादक सर्वथा स्वतंत्र।.जो पत्रकार की तरह चाहे जिस पार्टी का प्रचार करने लग जाता है; वह पत्रकारिता के स्तर को नीचा करता है। यदि यही होता रहा और पत्रकार की स्वतन्त्रता लुप्त हो गयी तो पत्रकारिता की अंत्येष्टि समझनी चाहिए। मेरी सम्मति में सफल पत्रकार वही हो सकता है जो निर्लोभी और तपस्वी हो। इसलिए यह तपस्या ही सफलता का मूलाधार है।[2]-कहना न होगा कि तपस्या तथा निर्लोभिता की जहाँ पराकाष्ठा आती है; उसी शीर्ष स्थल पर हमें गणेश जी विराजमान दृष्टिगोचर होते हैं।

पत्रकारिता तथा राष्ट्रोपासना के पुरस्कार स्वरूप गणेश जी को पाँच बार तपोभूमि की यात्राएँ करनी पड़ी। उनके कारागृह-प्रस्थान तथा मुक्ति को काव्य का विषय बनाकर, राष्ट्रीय कविगण उपकृत हुए। उनके कारागृह-गमन पर 'प्रभा' ने जो मार्मिक टिप्पणी प्रकाशित की थी; उससे गणेशजी के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है :

'उनका (गणेश जी) हृदय तपस्वी है और उनकी आत्मा सात्त्विक सिद्धान्तों, स्वत्वों और दीन-हीन पीड़ितों की रक्षा के लिए मरना उनसा वे ही जानते हैं। निर्भयता उनकी नस-नस में व्याप्त है और सत्यता उनके जीवन की साँस है। अत्याचार पीड़ितों, अनाथों और असहायों के दुखों का अनुभव करने के लिए उनका हृदय कुसुम-

---

१—'सरस्वती', विविध विषय, १६ वां विषय, दैनिक 'प्रताप', अगस्त १६२०, पृ० १०७।

६—'मैं इनसे मिला', प्रो० इन्द्रविद्यावाचस्पति, पृ० १८-१६।

सा कोमल है परन्तु अत्याचारियों और स्वेच्छाचारियों का विरोध करने के लिए वह वज्र से भी अधिक कठोर हैं।'[१] कारावास से लौट आने पर, 'एक भारतीय आत्मा' ने लिखा था :

'यहाँ वहाँ रमने वाले, हो कहाँ कहाँ स्वागत तेरा;
कैसे तुझे सुखी कर पाऊँ, जब विपदा को वृत्त तेरा ?
पीछे चलना भी दुष्कर, ये अघ मेरे, यह सत तेरा !
कैसे सुनूं, कठिन कृतियों से प्रगटित प्यारे मत तेरा ॥
पलकों के पट बन्द किये नयनों में तुझे रमाने दे।
श्री गणेश तो हो, ऐ कैदी, जरा शीश चढ़ जाने दे ॥'[२]

गणेश जी ने एक बार कहा था कि 'मैं पत्रकार को सत्य का प्रहरी मानता हूँ—सत्य को प्रकाशित करने के लिए वह मोमबत्ती की भाँति जलता है। सत्य के साथ उसका वही नाता रहता है, जो एक पतिव्रता नारी का अपने पति के साथ रहता है। पतिव्रता पति के साथ सती हो जाती है और पत्रकार सत्य के साथ।'[३] विद्यार्थी जी सत्य के हेतु मोमबत्ती की भाँति आजीवन जलते रहे और शलभ की भाँति सत्य की शिखा पर लुट गए। 'प्रताप' ने असत्य, अन्याय, अनाचार तथा अनीतियों का विरोध कर, शासन को शनि-दृष्टि की जीवन-पर्यन्त चिन्ता नहीं की।[४] समाज के उत्तरदायी अंग-पत्रकार-के प्रति उनके विचार थे कि पत्रकार को अपने समाज की प्रति बड़ी जिम्मेदारी है; वह अपने विवेक के अनुसार अपने पाठकों को ठीक मार्ग पर ले जाता है; वह जो कुछ लिखे, प्रमाण और परिमाण का विचार रखकर लिखे और मति-गति में सदैव शुद्ध और विवेकशील रहे। पैसा कमाना उसका ध्येय नहीं है, लोक-सेवा ही उसका ध्येय है।[५]

१—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, प्रतापी वीर जेल में, नवम्बर, १९२१, पृ० ३२३-३२४।

२—'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, १ जून, १९२२, पृ० ४७०।

३—'नर्मदा', स्मृति अंक, पृ० १६५-१६६।

४—The Pratap, which continued to be the most popular weekly, was a great force against local injuries. Its vehement criticism of Government called forth a warning from that quarter."—Dr. R. R. Bhatnagar, The rise and Growth of Hindi Jounarlism', page 387.

५—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पत्रकार विद्यार्थी जी, पृ० ६१।

'प्रताप' में लिखित गरोश जी की सम्पादकीय टिप्पणियों तथा अग्रलेखादि से उपर्युक्त बात प्रमाणित हो जाती है। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने लिखा है कि 'प्रताप' के लेखों में विद्यार्थी जी का हृदय अवतरित होता था और उनका हृदय करोड़ों भारतीयों के अरमानों से प्रतिस्पंदित था।[1] गरोशजी 'प्रताप' में प्रतिदिन की सामग्री देखते थे और दूसरे दिन के लिए निर्देश दे दिया करते थे। उनकी सम्पादन-कला तथा कार्य-पद्धति का स्तर तथा आदर्श अत्यन्त उच्चकोटि का था। वे अकसर बोलकर अग्रलेख या टिप्पणी लिखवाया करते थे। इसके लिए पहले से ही एक लघु क़ागज पर, सामग्री-सूत्र लिख लिया करते थे। अपने सहकारी सम्पादकों की सामग्री का सम्पादन करते समय विद्यार्थी जी लाल स्याही से सारे पन्ने रंग डालते थे। वे वास्तव में उस सामग्री में इतनी काँट-छाँट और परिवर्द्धन कर देते थे कि समग्र लेख का रूप ही परिवर्द्धित हो जाया करता था। जब गरोश जी स्वयं लिखने बैठते थे तो प्रायः अपने कक्ष का प्रवेश-द्वार बन्द करवा दिया करते थे और योगी के सदृश्य, अपने लेखन-कार्य में तल्लीन हो जाया करते थे।[2] उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों तथा लेखों ने भारत के मानस में विद्युत्प्रवाह गतिशील कर दिया। ज्ञान और साहस की लहरें दौड़ पड़ती थीं। सहस्राधिक व्यक्तियों के मन तथा मस्तिष्क को वास्तविक आहार, गरोश जी पंक्तियां से ही, प्राप्त होता था। श्री सुरेन्द्र शर्मा ने उचित ही लिखा है कि जो काम जनता को ज़गाने में रूस में टालस्टाय और गोर्की के विचारों ने किया, ठीक वही काम विद्यार्थी जी, यदि वे कुछ दिनों और जीवित रहते, तो अपनी शक्तिशाली लेखनी के बल पर कर जाते।[3]

गरोशजी के लेखों तथा टिप्पणियों में युग की माँग, परिणाम आदि पर अधिक बल दिया जाता था। युवकों के लिए लिखा उनका एक लेख विचारणीय है :

"........इसलिये देश के पुराने आदमी अपनी नई खेती पर खुश हों, वे उसका स्वागत करते हुए केवल उसका पथ-निर्देश करे, न उसे दबाएँ और न उसे घातक समझें। पुरानों की अपेक्षा नयों की अब अधिक बड़ी जिम्मेदारी है; समय उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, सुविधाएँ उनके चरणों को पखारने के लिए तैयार हैं; किन्तु यह सभी जब वे केवल युवकत्व के नाम पर नहीं, केवल इसलिये नहीं कि वे पुनीत विद्रोही हैं, जो इतिहास का निर्माण किया करते हैं; किन्तु अपनी प्रगाढ़ आदर्श भक्ति और आदर्श की

१—डॉ० सम्पूर्णानन्द—'गरोश स्मारक ग्रन्थ', अपने विश्वास के प्रमाण में आहुति, पृ० ४।

२—'नर्मदा', स्मृति अंक, पृ० ११२-११३।

३—वही, पृ० ११४।

ओर बढ़ने वाले व्यक्ति के योग्य विनम्रता और कर्त्तव्य शीलता का अखण्ड परिचय देकर अपने लिये स्थान चाहेंगे। गालियों के देने, डींग मारने, आजादी की व्यर्थ रट लगाने और दूसरों पर धूल फेंकने से न कोई बड़ा होता है और न कोई बड़ा काम करता है। बहुधा तो जो गरजते हैं वे बरसते ही नहीं; और जो बड़ी ड़ींग मारा करते हैं: वे बड़े कायर हुआ करते हैं। देश के नौजवान देश की खातिर और अपनी नौ-जवानी की खातिर इस कुटेव से बचें। वे बढ़ बढ़कर बातें न मारें, वे बढ़ बढ़कर काम करें। वे अपनी बात पर अटल रहें; किन्तु नम्रता के साथ दूसरों पर बाण प्रहार करते हुए नहीं।........"[1]

यह उद्बोधक लेख उस समय लिखा गया था जब कि योगेश चटर्जी, गोविन्द-चरण दर, रामदुलारे, मन्मथनाथ गुप्त, विष्णुशरण दुर्बलिस, सरदार भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त आदि प्रसिद्ध क्रांतिकारी अपने-अपने समय तथा कारागृहों में, दुर्व्यवहारों के विरुद्ध अनशन कर रहे थे। गणेश जी ने व्यक्तिगत प्रयत्न करके और सम्पर्क स्थापित करके, अनशन को तुड़वाया था। 'प्रताप'-प्रेस क्रांतिकारियों का अड्डा था। गणेश जी ने सदा-सर्वदा क्रांतिकारियों को सहायता और मार्ग-दर्शन प्रदान किया। क्रांतिकारियों तथा उनके कार्यों के पक्ष में और उत्साह देने के हेतु, 'प्रताप' में बराबर कुछ न कुछ निकला ही करता था। गणेश जी ने भगतसिंह को 'प्रताप' में क्रान्तिकारी विषयों पर जी खोलकर लिखने की अनुमति दे दी थी। उन्हीं दिनों बब्बर अकालियों के खून से अँग्रेजों ने अपने हाथ लाल किए थे। होली के पूर्व के दिन थे। 'प्रताप' में 'खून की होली' शीर्षक लेख, उस समय सरदार का लिखा हुआ निकला।[2]

गणेश जी अपनी भाषा को टकसाली भाषा कहा करते थे। उनकी भाषा को 'आमफहम' भाषा की संज्ञा दी जा सकती है। 'प्रताप' जनता का कण्ठहार था; एतदर्थ, वे सरल, सादी और सुबोध भाषा का स्वतः प्रयोग करते थे और दूसरों से भी यही अपेक्षा करते थे। उनकी सम्पादकीय नीति में भाषा की सहजता को प्रधान स्थान प्राप्त था। स्वर्गीय अध्यापक रामरत्न जी ने एक बार हिन्दुस्तानी एकेडेमी (यू० पी०) में भाषण देते हुए विद्यार्थी जी की भाषा के सम्बन्ध में कहा था—"आप लोग हिन्दु-स्तानी जबान की सृष्टि कर रहे हैं; पर क्या आपको मालूम है कि जबान की सृष्टि हो चुकी है और उसका सिरजनहार है गणेशशंकर विद्यार्थी। अगर आपको मेरी बात का

१—साप्ताहिक 'प्रताप', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, 'युवक का विद्रोह', १ दिसम्बर, १९२९ ई०।

२—'गणेश स्मारक ग्रन्थ', भारत में क्रान्तिकारी आंदोलन तथा गणेश जी, पृ० १३४।

यकीन न हो तो आप एक बार 'प्रताप' में लिखे गणेश जी के लेखों को पढ़ जाइए। आप शुद्ध हिन्दुस्तानी जबान उन लेखों में पढ़कर आनन्द मग्न हो जायेंगे।"[१] आचार्य द्विवेदी जी ने भी लिखा था कि 'हिन्दी लिखना उन्होंने खूब सीखा। मैं चाहता था कि वह कुछ संस्कृत सीख लें। पर उनका झुकाव राजनीतिक शिक्षा ही की ओर अधिक था। अतएव, मैंने उन पर दबाव नहीं डाला।"[२]

विद्यार्थी जी की भाषा में कुछ खास शब्द और मुहावरे रहा करते थे। लेखन प्रायः भावात्मक तथा ओज प्रधान होता था। भाषा की अपेक्षा उन्होंने विचारों और भावनाओं को महत्ता प्रदान की थी; परन्तु सुगम्मता को बहिष्कृत नहीं किया गया था। वास्तव में गणेश जी प्रभावपूर्ण लेखन-शैली के प्रवर्त्तक आचार्य थे। उन्होंने अपनी शैली का स्वयं निर्माण किया और मार्ग सुझाया। 'प्रताप' में आजन्म इसी शैली को व्यवहृत किया गया। श्री सद्गुरु शरण अवस्थी ने गणेशजी की भाषा-शैली की युक्ति-युक्त समीक्षा करते हुए लिखा है कि "इनकी (गणेश जी) शैली सम्पूर्ण रूप से रागात्मक है। इनका अध्ययन उर्दू और हिन्दी दोनों का ही था। इसीलिए इनकी भाषा में हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुनी शैली सर्वत्र दिखायी देती थी।.........शासन की आलोचना करने में विद्यार्थी जी की व्यंगात्मक ललकार में महावीर प्रसाद द्विवेदी का चुटीलापन है और प्रतापनारायण मिश्र की धुन। वास्तव में इन दोनों लेखकों की गहरी छाप इनकी शैली में है।"[३]

गणेश जी ने अपने लेखन में वक्तृता प्रधान शैली को प्रश्रय प्रदान किया। उनके लेखों में प्रसन्न प्रवाह तथा समर्थ भाषा को गूँथा गया था। वे जनता की भाषा के हामी थे। 'नवीन' जी की संस्कृत-निष्ठ भाषा को वे पसन्द नहीं करते थे और अक्सर क्रुद्ध हो जाया करते थे।[४] 'नवीन' जी संस्कृत गर्भित भाषा के उपासक थे। एक बार, सन् १९२४-२५ में 'निराला' जी की एक कविता 'प्रताप' में प्रकाशनार्थ आयी। उसकी भाषा क्लिष्ट होने के कारण, गणेश जी ने उसके प्रकाशन से मना कर दिया। 'नवीन' जी ने उस कविता का अर्थ गणेश जी को समझाया व प्रकाशन का आग्रह

१—'गणेश शंकर विद्यार्थी', पत्रकार विद्यार्थी जी, पृ० ५२।

२—वही, पृ० ६।

३—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी—'हिन्दी गद्य गाथा', गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० ९१-९२।

४—श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, कानपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १३-६-१९६१) में ज्ञात।

किया, परन्तु वह कविता प्रकाशित नहीं हुई।[1]

राजनीति तथा साहित्य के अतिरिक्त, वे सामाजिक कार्यों में भी क्रान्तिकारी तथा सहृदय थे। 'आज' के सम्पादक श्री पराड़कर जी एक विधवा से विवाह करना चाहते थे। इस सुकृत्य में, विद्यार्थी जी ने पराड़कर जी को पूर्ण उत्साहित किया;[2] सहयोग दिया[3]; व्यवस्था की[4] और कानपुर में सम्पन्न इस शादी के व्यय का उनको विवरण प्रदान किया।[5] पत्रकारों के सम्मेलन तथा संघों में भी गणेश जी पूर्ण सहयोग प्रदान करते थे। सन् १९२५ ई० में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के षोड्श वृन्दावन अधिवेशन के अवसर पर, श्री पराड़कर जी की अध्यक्षता में आयोजित प्रथम सम्पादक-सम्मेलन के अन्तर्गत हिन्दी सम्पादक समिति के मन्त्री श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को गणेश जी ने यह परामर्श दिया था कि नैतिक दृष्टि से हिन्दी पत्र सम्पादकों में बड़ा अन्तर है। आर्थिक सहायता उनकी हम नहीं कर सकते इसलिए इस समिति का काम प्रायः सामाजिक ही रहेगा। हाँ, आपस के झगड़े के सुलझाने में इससे कुछ मदद अवश्य मिल सकती है।[6] पत्रकारों की समान-नीति निर्धारण के सम्बन्ध में भी वे सक्रिय रहते थे। सन् १९३० में, राष्ट्रीय आन्दोलन के समय, अँग्रेजों के दमनचक्र तथा समाचार पत्र बन्द करने के प्रसंग में गणेश जी तथा पराड़कर जी ने पारस्परिक विचार विनिमय किया था।[7]

गणेश जी ने अपनी पत्रकारिता सम्बन्धी नीति में निर्भीक आलोचना को प्रमुख स्थान प्रदान किया था। उन्होंने एक पत्र में पराड़कर जी को लिखा था कि 'मेरा यह

१—श्री विष्णुदास शुक्ल, कलकत्ता से हुए प्रत्यक्ष साक्षात्कार (दिनांक २१-६-१९६१) में ज्ञात।

२—विद्यार्थी जी का पराड़कर जी के नाम लिखित दिनांक १९ मई, १९२६ का पत्र।

३—वही, पत्र दिनांक २४ मई, १९२६।

४—वही, पत्र दिनांक ३१ मई, १९२६।

५—वही, पत्र दिनांक २८-६-१९२६, 'पराड़कर जी और पत्रकारिता', जीवनी खण्ड, पृ० ७५-७९।

६—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का श्री पराड़कर जी के नाम लिखित दिनांक १-४-१९२६ का पत्र : 'पराड़कर जी और पत्रकारिता', पत्रकारिता खण्ड, पृ० ३२६।

७—विद्यार्थी जी का पराड़कर जी को लिखित दिनाँक ३-५-१९३० का पत्र, 'पराड़कर जी और पत्रकारिता', पत्रकारिता खण्ड, पृ० ३३७-३३८।

विचार है कि इस ज्ञान का प्रचार न चाहने वालों पर जो कटु प्रहार होते हैं; यदि वैसे ही कटु प्रहार वे लोग करें; तो दूसरे पक्ष के लोगों को बुरा न मानना चाहिये और जहाँ तक किसी खुले प्रश्न पर खुले ढंग से किन्तु भद्रता के साथ बातें कहने और राय प्रकट करने का प्रश्न है; वहाँ तक मेरी साधारण समझ में तो, यही बात आती है कि अपने विरुद्ध तक कटु बातों के छापने में हमें कोई हिचक न होनी चाहिए।'[1] इसी महान वृत्ति के कारण, उनका 'प्रताप' राजनैतिक पत्रकारिता की नवीन धारा के प्रवर्त्तन में अग्रणी बना।[2]

अपनी मृत्यु के कुछ दिवस पूर्व ही 'प्रताप' में 'अन्त का आरम्भ' शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणी लिखकर, गणेश जी ने अपने अन्त की परोक्ष सूचना दे दी थी। 'प्रताप' ने आजीवन हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की स्थापना के जो व्रत को क्रियान्वित किया था; उसे उसके अमर संस्थापक ने अपने ही जीवन में यथार्थ बनाकर, निराकार को साकार कर दिया। इस महाबलिदान के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने अपने पत्र 'यंग इंडिया' में लिखा था कि उनका खून अन्त में दोनों मजहबों को आपस में जोड़ने के लिए सीमेण्ट का काम करेगा।[3] करांची कांग्रेस की विषय निर्धारिणी समिति में बापू ने उन्हें 'मूर्त्तिमान संस्था' के रूप में स्मरण किया था।[4] पं० माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में 'पत्रकार कला विधवा हो गयी।'[5] गणेश जी के आग्रह, नाम तथा सद्व्यवहार से पत्रकार गण आकृष्ट होकर आते थे।[6] हिन्दी पत्रकारिता के भीष्म पितामह श्री पराड़कर

१—वही, पत्र दिनाँक १८-६-१९२५।

2—"The political Journalism rightly began with 'Pratap' (1913) and 'Hindi Keseri' (1914), 'Gyan Shakti' (1916) and some others followed in its wake. In fact Political Journalism only grew in the following years with the begining of the non-cooperation movement, and the advocacy of Hindi as Lingua India and the language of politics by Gandhi (1919)"—Dr. Ram Ratan Bhatnagar, 'The Rise and growth of Hindi Journalism' (1826-1945), page 271.

३—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पृ० ११४।

४—वही, पृ० ११३।

५—वही, पृ० १०३।

६—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'—साप्ताहिक 'योगी', सम्पादकीय जीवन के मेरे कुछ संस्मरण, २ अप्रैल, १९६०; पृ० ७।

जी ने भी, जिन्हें गणेश जी अपने 'गुरु-तुल्य'[१] मानते थे, उनसे अपना सन् १६०६ से सम्बन्ध निरूपित करते हुए, उनकी ज्ञानार्जन की अपूर्व तेजस्विता की मुक्त कण्ठ से सराहना की थी।[२] 'प्रताप' का अविस्मरणीय प्रताप हिन्दी की अमूल्य धरोहर है जिसे गणेश जी ने अपने बलिदानी रक्त से सींचा था। गणेश जी का महत्त्वांकन करते हुए, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि समाज को सुधारने के लिए जो प्रयत्न थे वे इस काल में राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने की ओर मुड़ गए। राजनीति ने निश्चित रूप से हमारे समस्त प्रयत्नों को आत्मसात करना आरम्भ किया। इस बात ने सामयिक समाचार पत्रों में बहुत बड़ा परिवर्त्तन कर दिया। इस काल में हिन्दी में कुछ इतने महत्त्वपूर्ण पत्रकार पैदा हुए जो दीर्घकाल तक याद किये जायेंगे। बुद्धिगत प्रौढ़ता के साथ-साथ चरित्रगत दृढ़ता ने इन पत्रकारों को बड़ी सफलता दी। गणेशशंकर विद्यार्थी, पराड़कर जी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे और बनारसीदास चतुर्वेदी ऐसे ही पत्रकार हुए।[३]

'नवीन' जी की पत्रकारिता :

'मैं भी एक पत्रकार हूँ और अपने जीवन का बहुत सा भाग पत्रकार-कला की साधना में ही बिताया है।'[४] 'नवीन' जी ने संविधान परिषद् में ये शब्द कहे थे। 'नवीन' के व्यक्तित्व में राजनीति, साहित्य तथा पत्रकारिता का स्वर्णिम संगम उपस्थित हो गया था। श्री 'दिनकर' ने लिखा है कि पत्रकारों के आप शिरोमणि थे। सम्पादक और पत्रकार देश के मानस और मुख होते हैं। मानस जो भी चाहे सोच सकता है, और मुख का धर्म है कि वह बोलने योग्य हर बात को निर्भीकता पूर्वक बोल दे।

१—विद्यार्थी जी का पराड़कर जी को लिखित दिनांक १८-६-१६२५ का पत्र, 'पराड़कर जी और पत्रकारिता', पृ० ३३६।

२—विदर्भ साहित्य संघ तथा नागपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से संयुक्त रूप से १६ नवम्बर, १६५३ को आयोजित अपनी ७० वीं जयन्ती समारोह में श्री पराड़कर जी का भाषण; श्री लक्ष्मीशंकर व्यास कृत 'पराड़कर जी और पत्रकारिता'; पृ० १३६-१४०।

३—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य की भूमिका' उपसंहार, पृ० १४६।

४—Constituent Assembly Debates, Press (Special Powers) Bill, Wednesday, 19 th November, 1947; Volume I, No. 3, Official Report, page 265.

आपने जो कुछ सोचा, निर्भीकता से सोचा ; आप जो भी बोले, निर्भीकता से बोले।[1]

अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के चरणों में बैठकर 'नवीन' ने पत्रकारिता की शिक्षा-दीक्षा ली थी। गणेश जी के समस्त संस्कार और क्रान्ति की भावना 'नवीन' में अवतीर्ण हो गयी थी। डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि उनके अभिभावक और गुरु गणेशशंकर विद्यार्थी में जो दृढ़ता थी, वही दृढ़ता पण्डित बालकृष्ण शर्मा को मिली। अन्तर केवल यह था कि गणेश जी दुबले-पतले किन्तु प्रदीप्त मुख मण्डल के व्यक्ति थे, 'नवीन' जी ने सब प्रकार से सुन्दर और सशक्त शरीर पाया था।[2] दृढ़ता, निर्भीकता तथा ईमानदारी की महिमामयी त्रिपुरी पर ही 'नवीन' की पत्रकारिता आधृत है।

गणेश जी से 'नवीन' का सम्बन्ध सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस से हुआ।[3] इसके पश्चात् वे उज्जैन से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके, कानपुर में ही आ गए और गणेश जी के ही हो गए। दोनों एक दूसरे में घुल मिल गए। सन् १९१७ से 'नवीन' का 'प्रताप' केसाथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुआ और वह मृत्यु-पर्यन्त बना रहा। परोक्ष रूप से, शर्माजी अपनी किशोरावस्था से ही 'प्रताप' के नियमित पाठक थे और 'प्रभा' के ग्राहक थे।[4] अपने विद्यार्थी-काल में, शर्मा जी ने, 'प्रताप' में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था।

मालवा की भूमि की सन्तान होने के कारण, 'नवीन' प्रारम्भ में मस्त तथा अल्हड़ स्वभाव के थे। सम्पादक के गुरुतर दायित्व से अनभिज्ञ थे; एतदर्थ, सम्पादक के रूप में, गणेश जी शर्मा जी से निराश थे। शर्मा जी के सहयोगी श्री पालीवाल जी ने लिखा है कि वह कवि-हृदय युवक होने के साथ ही, अल्हड़ था कि लिफाफों की कौन कहे महीने-महीने भर तो अपने नाम आये हुए तारों को भी नहीं खोलता था।[5] शनैः शनैः उनमें पत्रकार का उत्तरदायित्व तथा महती वृत्ति अपने पल्लव प्रस्फुटित

१—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'—'वट-पीपल,' पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मिट्टी का पत्र आकाश के नाम ; पृ० ३३।

२—डॉ० रामअवध द्विवेदी—'दैनिक नवराष्ट्र' पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', २४ जुलाई, १९६०; पृ० ५।

३—'चिन्तन', 'नवीन' स्मृति अंक, मेरी अपनी बात, जून-जुलाई, १९६१; पृ० १०८।

४—वही, पृ० १०७।

५—दैनिक 'नवराष्ट्र', भाई बालकृष्ण, २४ जुलाई, १९६०; पृ० ३।

करने लगी और अपनी वयः प्राप्ति, अनुभव, परिस्थितियों तथा राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप, वे श्रेष्ठ तथा कुशल पत्रकारों की पंक्ति में शोभायमान होने लगे। पालीवाल जी ने लिखा है कि १९२० तक जिस बालकृष्ण की ओर से हम पत्रकारिता की दृष्टि से निराश थे, वही बालकृष्ण परम प्रसिद्ध पत्रकार हो गया। उसके लेखों की धाक थी। अँग्रेजी के अच्छे-अच्छे दैनिक पत्रों में भी बालकृष्ण के लेखों की चर्चा होती थी।[1]

'नवीन' जी ने निबन्धकार तथा अग्रलेख-लेखक—दोनों ही साहित्यिक विधाओं को सफलता पूर्वक निबाहा था। पत्रकार निबन्धकार से कहीं अधिक उत्तरदायी होता है। पत्रकार के समक्ष समष्टिगत भावनाओं तथा विचारों का प्रश्न मुख्यतया महत्त्वपूर्ण होता है। इसीलिए हम देखते हैं कि 'नवीन' के सम्पादकीय लेखों तथा टिप्पणियों में युग तथा समाज की तरंगों को आबद्ध किया गया है। 'नवीन' ने इस सुकृत्य में अद्भुत प्रावीण्य प्राप्त कर लिया था।

'नवीन' के लिए 'प्रताप' प्रेस आवास, उत्थान का सोपान, साधनागृह तथा प्रशिक्षण केन्द्र बन गया था। प्रथमतः 'प्रताप' के संपादक के रूप में, 'नवीन' का नाम दिनाँक १७ सितम्बर, १९२३ और दिनाँक २४ सितम्बर, १९२३ के अंकों में आया। इन अंकों में लिखित शर्माजी की संपादकीय टिप्पणियों, यथा 'माँ तेरे बच्चे,' 'नागपुर सत्याग्रह', 'जापान', 'घी के दिये', 'साम्राज्य परिषद् और भारत', 'हिन्दू संगठन या संगठन', 'जरायम पेशा जातियां'[2] और 'भारतीय आकाश की गूंज', 'कांग्रेस का विशेष अधिवेशन', 'सन् १९२२ में संयुक्त प्रान्त की पुलिस के कारनामे' तथा 'श्रीमान् राजा महेन्द्रप्रताप'[3] का अध्ययन करने पर विदित होता है कि उनकी दृष्टि व्यापक हो रही थी; वे अपने समाज, राष्ट्र, युग और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विषय में अपने विचारों को परिपक्व कर चुके थे। इन टिप्पणियों का क्षेत्र भी व्यापक है। राजनीति, संस्कृति, व्यक्ति, शासन, राष्ट्रभक्ति आदि को उनकी लेखनी ने अपने स्पर्श से सुवासित कर दिया था। 'नवीन' के महान् तथा तपोनिष्ठ पत्रकार के 'चीकने पात' इन टिप्पणियों में अपनी हरीतिमा, स्निग्धता तथा प्रकम्पन को विकीर्ण कर रहे हैं। ओज, उग्रता,

---

१—वही।

२—साप्ताहिक 'प्रताप', संपादकीय टिप्पणियाँ, सोमवार, भाद्रपद शुक्ल पक्ष ७, सं० १९८०, १७ सितम्बर, १९२३, भाग १०, संख्या ४५; पृ० ३-५।

३—वही, सोमवार, भाद्रपद शुक्ल पक्ष १४, सं० १९८०, १४ सितम्बर, १९२३, भाग १०, संख्या ४६; पृ० ३-५।

निर्भयता आदि की निर्मम नसें भी इन पल्लवों में अपना स्थान बना रही थीं।

'प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में, गणेशजी के पश्चात् शर्मा जी का ही क्रमांक आता था।[1] गणेशजी के अनुपस्थित होने अथवा अन्य कार्यों में व्यस्त होने पर, शर्मा जी से ही पूछकर सामग्री तैयार की जाती थी।[2] पिछले दिनों 'प्रताप' सम्पादन का भार गणेशजी ने प्राय: छोड़ दिया था और उसका संपादन-भार वस्तुतः बालकृष्ण जी पर ही था।[3] गणेशजी की मृत्यु के पश्चात् ५ अप्रैल, १६३१ ई० से शर्मा जी साप्ताहिक 'प्रताप' के मुद्रक और संपादक हो गए।[4] 'प्रताप' का संपादन पं० बालकृष्ण शर्मा ने कई वर्ष तक किया।[5] अपनी मृत्यु के समय, शर्मा जी 'प्रताप' के ट्रस्टी तथा सचिव थे।[6] शर्मा जी को 'प्रताप' परिवार से, पाँच सौ रुपये मिलते थे; परन्तु कुछ रकम वह किसी असहाय परिवार को दे देते थे।[7]

उस समय 'प्रताप' का अर्थ ही गणेशशंकर विद्यार्थी माना जाता था[8] और गणेश जी ने ही 'नवीन' की लेखनी को 'लौह लेखनी' के रूप में परिणत किया था। गणेशजी की पत्रकारिता के आदर्श तथा सिद्धान्त और संपादकीय लेखन की पद्धति को 'नवीन' जी ने अपने में उतार लिया था। सिर्फ भाषा के क्षेत्र में, दोनों में अन्तर दृष्टिगोचर होता था। गणेशजी जहाँ 'जनभाषा' का प्रयोग करते थे; वहाँ 'नवीन' जी 'संस्कृतनिष्ठ हिन्दी' का। गणेश जी विशुद्ध देशभक्त तथा निर्भीक पत्रकार थे परन्तु 'नवीन जी में इन गुणों के होते हुए भी, कवि हृदय का स्वामित्व था जो कि उनके गद्य पर भी आच्छादित है। दोनों की शैली में अन्तर निरूपित करते हुए श्री त्रिपाठी ने लिखा है कि गणेश जी अपने लेखन में विषय से अप्रभावित रह प्रभावोत्पा-

---

१—श्री विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर।

२—श्री सुरेन्द्र शर्मा—'नर्मदा', विद्यार्थी स्मृति अंक, विद्यार्थी और 'प्रताप', पृष्ठ ११२।

३—श्री विष्णुदत्त शुक्ल—'गणेश स्मारक ग्रन्थ', सम्पादक-पत्रकार-नेता, पृ० ६२।

४—श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, पृ० १२३।

५—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृ० १६३।

६—श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य की सूचना के आधार पर।

७—श्री कान्तिचन्द्र सोनरेक्सा—'दैनिक नवराष्ट्र', श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', १४ जुलाई, १६६०; पृ० ४४।

८—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'—'नवभारत टाइम्स', 'नवीन' जी फैजाबाद जेल में, २६ जून, १६६०; पृ० ५।

दिका-शक्ति-सृष्टि के विशेषज्ञ थे। प्रभाव में स्वतः आंदोलित न हो स्वतः सदैव शांत रूप से रह पाठक को आँदोलित करने में वह सिद्धहस्त थे। शर्मा जी स्वतः आन्दोलित हो आन्दोलित करते थे। किन्तु उन्हें शांतवृत्ति से आन्दोलित करना सिद्धान्त रूप से श्रेयकर प्रतीत होता था।[1] गणेश जी के अग्र लेखों में राजनैतिक प्रखरता मिलती थी जब कि 'नवीन' जी में साहित्यिक प्रशस्तता। 'नवीन' ने अपने पत्रकार पथ पर सदा-सर्वदा उसी प्रदीप को प्रज्वलित रखा जिसमें से गणेश जी द्वारा प्रवर्तित मानव-सेवा और तपश्चर्या की उज्ज्वल किरणें निसृत हो रही थीं। इसीलिए हम देखते हैं कि पत्रकार 'नवीन' की दृष्टि निर्मूल तथा उदार, हृदय संकल्पमय और लगन से परिपूरित, मस्तिष्क निर्विकार तथा दीप्तिमय और आत्मा में मानवता की आस्था अपने कंगन खोलती थी। अपने निर्माता, रहनुमा तथा आचार्य के चरणों से प्राप्त चिह्नों से, 'नवीन' ने बलिदानों की अग्निवेदियों से हुताशन स्फुरित की और अपनी लेखनी के सदुपयोग के समय, जन-जन के मन-मन का अधिनायकत्व उनमें मूर्तिमय हो जाया करता था। आत्मनिर्भरता, राष्ट्रोपासना तथा सत्यान्वेषण की फुलझड़ियाँ उनकी मसि से प्रस्फुटित हो पड़ती थी।

'नवीन' की पत्रकारिता का इतिहास और पत्रकार कला के मर्म का उद्घाटन वास्तव में उनके व्यक्तित्व के कतिपय विशिष्ट तथा आधारभूत उपादानों का भी अभिव्यंजन है। गुरु से प्राप्त ओजस्विता, प्रखरता तथा झाड़ फूँककर साफ करने वाली वृत्ति ही उनके लिए मूलभित्ति का कार्य करती रही। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को गणेश जी अपना गुरु मानते थे। सत्यवादिता तथा निडरता के गुणों के कारण, शर्मा जी ने द्विवेदी जी को भी आलोचना का पात्र बना दिया था। खड़ी बोली में लिखो जाने वाली कविताओं की समीक्षा करते हुए, द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में 'सत्य विकास' शीर्षक से एक कटाक्षपूर्ण लेख लिखा था। यद्यपि उपर्युक्त लेख में 'नवीन' की 'चलो वीर पटुआ खाली' की सराहना थी; परन्तु, फिर भी, 'नवीन' ने उसका प्रत्युत्तर 'प्रताप' में दिया। उसमें उन्होंने आचार्य द्विवेदी जी से सादर पूछा था :

'बिछाया अपना सिंहासन,
सुहावन दूर क्यों इतना।
लपट से डरते हो इससे,
यह लौ सी जो उठी है कुछ।'[2]

१—श्री पन्नालाल त्रिपाठी—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'नवीन' जी: एक विलक्षण व्यक्तित्व, १० जुलाई, १९६०; पृ० १९।

२—'नवीन' दर्शन, पृ० ११।

शर्मा जी के स्वभाव की उग्रता के कारण ही, गणेश जी उन्हें 'अड़म धड़म स्वामी' कहा करते थे।[1] वे गणेश जी से भी लड़ जाया करते थे।[2] श्री विष्णुदत्त शुक्ल ने भी बताया है कि उनकी गणेश जी के साथ भी कभी-कभी अनबन हो जाया करती थी और एक दो बार 'नवीन' ने 'प्रताप' से त्याग-पत्र भी देना चाहा; परन्तु जब गणेश जी बुलवाते थे; तो उनके सामने रो दिया करते थे। शर्मा जी पूर्णतः स्वच्छन्द तथा स्वतंत्र नीति के अनुयायी थे और वे किस समय किस दिशा में उन्मुख हो जावेंगे; इस विषय में स्वयं गणेश जी भी आश्वस्त नहीं रहते थे।[3] इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके जीवन में मूलभूत तत्त्व अथवा सिद्धान्त का अभाव था। मेरे विचार से, वे सदा सर्वदा सत्य और न्याय के पक्ष में हो रहे और इस कारण, उनके जीवन की घटनाएँ भी बतलाती हैं, वे अपने श्रद्धेय तथा मार्ग दर्शक व्यक्तियों से भी जूझ गए। गणेश जी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, सावरकर, लक्ष्मीधर वाजपेयी, सुभाष बाबू, महात्मा गाँधी, पुरुषोत्तमदास टण्डन, जवाहरलाल नेहरू आदि के भक्त होते हुए भी, उनसे अपना विरोध प्रकट करने में वे विचलित नहीं हुए। इन सब चीजों के होते हुए भी, उनकी आस्था, हार्दिक निर्मलता तथा पवित्र भावना में कभी भी कोई अन्तर नहीं आया। यही उनके पत्रकार-जीवन की सर्वाधिक महान् तथा वन्दनीय उपलब्धि तथा विशेषता है।

'प्रताप' पत्र के इतिहास में और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में स्फुल्लिंग की भांति उत्तेजना प्रदान करने वाले दो प्रसिद्ध मुकदमे-रायबरेली-मानहानि केस[4] और मैनपुरी अभियोग[5] के मूल स्त्रोत 'नवीन' जी के ही उत्तेजक तथा क्रान्तिकारी लेख थे। रायबरेली जिले के कृषकों पर किए जाने वाले अत्याचारों के प्रत्यक्ष अवलोकन एवं निरीक्षणार्थ, गणेश जी ने 'नवीन' जी तथा श्री उमाशंकर दीक्षित को भेजा था।[6] 'नवीन' जी द्वारा लिखित 'प्रताप' के १३ तथा १९ जनवरी, १९२१ के लेखों ने

१—श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।

२—श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल—दैनिक 'नवराष्ट्र', २४ जुलाई, १९६०; पृ० ५।

३—श्री विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर।

४—श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'-साप्ताहिक 'आज', पत्रकार 'नवीन' जी, २९ मई, १९६०; पृ० ९।

५—श्री पन्नालाल त्रिपाठी—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०; पृ० १७।

६—श्री उमाशंकर दीक्षित, नयी दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनाँक २२-५-१९६१) में ज्ञात।

ज्वालामुखी का 'लावा' उड़ेल दिया। कहना नहीं होगा कि इन्हीं लेखों से उत्पन्न उग्र तथा संक्रामक वातावरण ने ही गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के दीपक की वर्त्तिका को प्रज्वलित कर दिया। 'नवीन' जी ने स्वतः कारागृह जाने का हठ भी किया था; परन्तु त्यागी गणेश जी ने अपने पर सम्पूर्ण दायित्व ग्रहण कर, यातनाएँ सहन कर लीं। इसी प्रकार सन् १९२६ में, मैनपुरी के थानेदार के पाखण्ड के ढ़ेर में भी 'नवीन' की लेखनी रूपी मशाल ने आग लगायी थी।

ब्रिटिश शासन की आततायी नीति के विरुद्ध शर्मा जी के अग्नि वर्षक लेखों की प्रसिद्धि बड़े विशाल रूप से रही है।[1] सन् १९३७ में पुलिस की ज्यादती व घृणित कृत्यों का अनावरण 'नवीन' जी ने 'प्रताप' में किया था। इस पर से भी 'प्रताप' पर मुकदमा चला और निर्णय प्रतिकूल रहा।[2] सन् १९३१ में लिखित 'नवीन' की सम्पादकीय टिप्पणी 'क्या सूबे में आग लगाने का इरादा है ?' भी कोप-दृष्टि का भाजन बनी।[3] 'प्रताप पर किए जाने वाले अत्याचारों पर 'नवीन' जी की पत्रकारिता बौखला उठती थी! उनका कवि-मानस उद्वेलित हो पड़ता था। 'एक भारतीय आत्मा' ने बताया है कि 'प्रताप' पर होने वाले ब्रिटिश आक्रमणों की प्रतिक्रिया-स्वरूप एक बार मैंने लिखा था : 'क्या होने वाला है हे हरि! ऐसी नादिरशाही में, उज्ज्वल होने का प्रयत्न है कैसे काली स्याही से, रहते जो अधिकार जगत में, इस कमजोर तबाही से, तो बन्दों को गरज कहाँ थी ईसा और इलाही से, कहलाता साम्राज्य 'शिरोमणि' होते अहा एक सौ पाँच। आपस में कट मरें, खड़े हैं—उधर एक सौ! ये हैं पाँच'[4]

'प्रताप' (सन् १९१७-१८) में प्रकाशित इन पंक्तियों का उत्तर 'नवीन' ने इस प्रकार दिया था :

'मक्खन मिश्री तो मिल जाए, कैसे मिले दूध में काँच,
कैसे भला कहो रह पाए मिलकर सखे! एक सौ पाँच।'[5]

'नवीन' जी की सम्पादकीय टिप्पणियों में देश की जनता की हुँकार और ललकार प्रतिध्वनित होती थी। भावावेश में आकर वे, सीमाओं का भी अतिक्रमण कर दिया करते थे। 'अबू बेन अदम' के समान, वे मानव के सेवक तथा उपासक थे। दरिद्रों, श्रमिकों तथा कृषकों के आर्त्तनाद तथा पीड़ा को देखकर, उनका भाव-प्रवण

१—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०; पृ० १९।
२—वही, पृ० १७।
३—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पृ० १३६।
४—साप्ताहिक 'प्रताप', संघर्ष दृश्य, २३ जून, १९१९, पृ० ८।
५—श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।

हृदय अनीश्वरवादी बन जाता था। देश के 'हृदय' किसान और 'कर' श्रमजीवी पर अत्याचार करने वाले जमींदारों के प्रति उनकी लेखनी तिलमिला उठती है :

'तुम शहराती, तुम महलों में निवास करने वाले,
तुम ऊँचाई, नीचाई की गहराई को समझने वाले,

प्राणी, तुम संगमर्मर की फर्शों पर गलीचा बिछाकर उस पर चलने वाले जीव, तुम अश्लील और श्लील के पालने पर झूलने वाले रसिया, तुम क्या जानो कि तुम्हारे पतन की परिभाषा को हम जन साधारण उसी तरह ठुकरा चुके हैं जिस तरह क्रांति युग का जन-समूह सड़ी-गली परिपाटी को ठुकरा देता है।—भाई, तुम हमारे सहृदय हो, हमारे नजदीकी हो, तुम हमारे अपने हो। लेकिन क्या हम कहें कि दीन-दलित सेवा को करते हुए यदि जगदीश्वर भी तुम पर नाराज हो जाय तो हम परवाह न करेंगे। तुम भला किस खेत की मूली हो ? तुम्हारा नाक भौं सिकोड़ना हमें डरा नहीं सकता। हम जानते हैं कि तुम शक्तिशाली हो, तुम्हारी पूँछ बड़ी है। तुम हम गरीबों को अपनी महफिलों में नहीं बैठने दोगे, यह भी हम जानते हैं। लेकिन क्या तुमने कभी इस बात पर गौर किया है कि हम उस कुल के हैं जहाँ सैद्धान्तिक मान रक्षा के लिए न केवल धन-वैभव वरन् अमूल्य प्राण तक न्यौछावर कर दिए जाते हैं ?'[१] इसीलिए, निर्भीक विचारों के इस महाप्राण ने लोक सभा में, खुले स्वर में, कहा था कि 'मैंने किसी प्रलोभन के कारण अपने विचारों को दबाने में विश्वास नहीं किया है और इस कारण से उनको इस बात से आश्वस्त रहना चाहिये कि जो कुछ मेरी बुद्धि के अनुसार मुझको दिखायी देगा; उसी को मैं इस भवन के सामने रखने का प्रयत्न करूंगा।'[२] प्रलोभन विहीनता तथा विवेक जन्य निर्णय ही, ऐसे दो मूलमंत्र हैं जिनकी प्रेरणा से योद्धा 'नवीन' बड़े से बड़े व्यक्ति और संस्था से जूझने में नहीं हिचकते थे।

राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलन के झंझावात में, शर्मा जी की तपोनिष्ठ लेखनी ने सत्य का उद्घाटन करते हुए, लिखा था : "भारत राष्ट्र का भाग्य किसी अलख-झलक झाँकी की अदृष्ट तराजू के पलड़े में लय-क्षय कर रहा है। व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन में ऐसे नाजुक क्षण आ ही जाते हैं। दूर से दूर देख सकने वाली निर्मल दृष्टि भी भविष्य का अंधकार भेद करने में समर्थ नहीं हो सकती। पुरुषार्थ और विवेक, ज्ञान

१—साप्ताहिक 'प्रताप', पतन ???, ६ अगस्त, १६३१।

२—'Parliamentary Debates', House of the People, official Report, Vindya Pradesh Legislative Assembly (Prevention of Disqualification Bill), Monday, 11th May, 1953; p. 6357

ग्रौर बुद्धि वैभव ऐसे क्षणों में पथ-प्रदर्शन करने में हिचकते हैं। अपनी परिमित बुद्धि को लेकर कोई व्यक्ति कैसे कह सकता है कि यह करो, वह न करो। फिर भी राष्ट्र की आन्तरिक भावना का प्रदर्शन होना जरूरी ही है। वह कैसे हो? अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित मस्तिष्क इस भाव-प्रदर्शन के कार्य में भी गलती कर सकता है। किन्तु बुद्धि की विमलता और हृदय के भाव की शुद्धता में सोलह आने विश्वास न रहते हुए भी अपनी बात कहना लाजिमी है। हम वही काम आज कर रहे हैं।'

काव्य में क्रान्ति, अनल तथा विप्लव के सृष्टा 'नवीन' की अपने जीवन के यथार्थ तथा प्रत्यक्ष क्षणों में भी, देश के शहीदों तथा क्रान्तिकारियों के प्रति अपार श्रद्धा तथा गहरी समवेदना थी। काकोरी षड्यन्त्र के क्रान्तिकारियों के प्रति 'प्रताप' में उनकी प्रवीण लेखनी से जो सम्पादकीय अग्रलेख प्रसूत हुआ था; वह उनकी देशभक्ति, दीवानों की कद्रदानी, भाषा की मार्मिकता, शैली का प्रसन्न प्रवाह, अद्भुत प्रभावोत्पादकता, चित्रांकन शक्ति, सूझ-बूझ पूर्ण अभिव्यक्ति आदि के दृष्टिकोण से जहाँ एक ओर 'नवीन' की सम्पादकीय लेखन पद्धति का एक उत्कृष्ट दृष्टान्त और महती कला-सर्जना का केतन फहराता है; वहाँ हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में लिखे गए गिने-चुने अग्रलेखों के मध्य सहज ही अपना स्थान बना लेता है। श्री देवव्रत शास्त्री ने इस अग्रलेख को 'नवीन' की सर्वोत्कृष्ट टिप्पणी मानी थी।[1] राष्ट्रप्रीति तथा काव्य कमनीयता की गागर, इस लेख में, बरबस लुढ़क पड़ी है:

'वे'

अनुत्तरदायी? जल्द बाद? अधीर? आदर्शवादी? लुटेरे डाकू? हत्यारे?

अरे, ओ दुनियादार! तू इन्हें किस नाम से, किस गाली से विभूषित करना चाहता है?

वे मस्त हैं, वे दीवाने हैं, वे इस दुनिया के नहीं। वे स्वप्न लोक की वीथियों में विचरण करते हैं। उनकी दुनिया में, शासन की कटुता से, माँ धरित्री का दूध अपेय नहीं बनता। उनके कल्पना लोक में ऊँचे नीच का, धनी निर्धन का, हिन्दू मुसलमान का भेद-वेद नहीं है। इसी सम्भावना का प्रचार करने के लिये वे जीते हैं। इसी दुनिया में उसी आदर्श को स्थापित करने के लिये वे मरते हैं। दुनिया के पठित मूर्खों की मण्डली उनको गालियाँ देती है। लेकिन यदि सत्य के प्रचारक गालियाँ की परवाह करते तो शायद दुनिया में आज सत्य, न्याय, स्वातन्त्र्य और आदर्श के उपासकों के वंश में कोई नाम लेवा और पानी देवा भी न रह पाता। लोकरुचि अथवा लोकोक्तियों के

१—श्री देवव्रत शास्त्री द्वारा ज्ञात।

अनुसार जो अपना जीवन यापन करते हैं, वे अपने पड़ोसियों की प्रशंसा के पात्र भले ही बन जायें, पर उनका जीवन औरों के लिये नहीं होता। संसार को जिन्होंने ठोकर मार कर आगे बढ़ाया ; वे सभी अपने-अपने समय में लांछित हो चुके हैं। दुनिया खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने तथा उपयोग करने की वस्तुओं का व्यापार करती हैं। पर कुछ दीवाने चिल्लाते फिरते हैं—

'सर फिरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।' ऐसे कुशल किन्तु औघट व्यापारी भी कभी देखे हैं ? अगर, एक बार आप हम उन्हें देख लें तो कृत कृत्य हो जायँ।'[1]

भावमयी सरल-सहज भाषा और मर्मपूर्ण उद्गारों के आस्वादन के हेतु उनके 'पधारो देव' शीर्षक लेख का एक गद्य खण्ड दृष्टव्य है :—

'आओ, तीस करोड़ जनगणों के अधिनायक, पधारो ! इस अभागे प्रान्त को अपने अकम्पित चरणों की रज से पवित्र करके, यहाँ की जनता में आत्मविश्वास और स्वावलम्बन का भाव उत्पन्न करने के लिए, आओ ! अमृतवाणी से हमारे मृतप्राय हृदयों को 'नव जीवन' के स्पन्दन से कम्पित करने के लिए, आओ ! देव ! राम और कृष्ण का क्रीड़ा क्षेत्र—यह प्रान्त आज तुम्हारे स्वागत के लिए उत्सुक है। अपने देवता

१—(क) हिन्दी गद्य गाथा, पृ० १६९-१७० से उद्धृत।

(ख) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'अमर शहीद' रामप्रसाद बिस्मिल पुस्तक (प्रथम संस्करण, सन् १९५८) के आवरण पृ० के अन्त में, इस अग्रलेख के लेखक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी बताए गए हैं; वह उचित नहीं है।

(ग) 'एक दिन बातों-बातों में 'प्रताप' के अग्र लेखों की चर्चा चल पड़ी। मैंने कहा—मैं बता सकता हूँ कि आपने कौन-कौन से अग्र लेख लिखे और विद्यार्थी जी ने कौन कौन से।' 'प्रताप' में अग्र लेखों पर लेखक का नाम नहीं छपता था, इसलिए आश्चर्य से वे ('नवीन' जी) बोले—'यह कैसे ? मैंने कहा—'मैं अन्दाज बहादुर हूँ।' मैंने उनके १०-१५ अग्र लेखों का नाम बताया कि ये आपके लिखे हैं; काकोरी केस के शहीदों पर लिखा—'वे' और साइमन कमीशन की भारतीय सलाहकार समिति पर लिखा—'काला साइमन बनाम गोरा साइमन' मुझे आज भी याद है। सुनकर बोले—'तुम भयंकर पाठक हो।'' —श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', 'नवभारत टाइम्स', नवीन जी फैजाबाद जेल में, २६ जून, १९३०; पृ० ६, कालम २।

को रिझाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। हम निःसाधन हैं, निर्धन हैं, निस्तेज हैं। तुम्हारे तपः पूत हाथों में हम क्या भेंट धरें? हम तो इस योग्य भी नहीं हैं कि तुम्हारी चरण रज को अपने कलुषित माथे पर रख सकें। यह आत्मग्लानि की अनुचित भावना नहीं है, जो हमें ऐसा कहने को विवश कर रही है।'[1]

तीस करोड़ जनगणों के अधिनायक और अपने देवता विश्ववंद्य बापू के विरुद्ध जब वीर सावरकर ने लिखा तो 'नवीन' जी की लेखनी बौखला गयी। उन दिनों बम्बई से बैरिस्टर सावरकर जी का 'श्रद्धानन्द' शीर्षक दैनिक पत्र निकला करता था। उन्हें महात्मा गान्धी की नीति व सिद्धान्त पसन्द नहीं थे। अतएव, उन्होंने निम्न स्तर से गाँधी जी की आलोचना अपने लेखों में करनी प्रारम्भ की। पं० सूर्यनारायण व्यास ने ऐसे ही एक लेख की कतरन, 'प्रताप' कार्यालय में भेज दी।[2] गणेश जी की अनुपस्थिति में, 'नवीन' जी ने इस पर अपना उग्र प्रतिक्रिया प्रकट कर दी और उन्होंने 'मिर्ची की धुनी और तमाचा' नामक लेख 'श्रीमान तड़ातड़ ओझा' के छद्म नाम से 'प्रताप' में लिख डाला। वेग, तीक्ष्ण प्रहार तथा कटु भाषा के दृष्टिकोण से, यह लेख, 'नवीन' की शैली के दूसरे रूप को भी प्रस्तुत करता है:

'बम्बई से एक चिथड़ा अखबार निकलने लगा है। यह चिथड़ा मराठी में भी निकलता है और हिन्दी में भी इस पत्र का एक नियम है। वह यह है कि यह पत्र सदा-सर्वदा महात्मा गान्धी को गालियाँ दिया करता है। मैं इस पत्र को बेहूदगियों पर कभी ध्यान नहीं देता। कई बार इसके छिछोरेपन के ऊपर मैंने लिखने का विचार किया। मैंने कभी कुछ नहीं लिखा। अब देखता हूँ कि इस बार फिर इस सड़े-गले चिथड़े ने महात्मा जी पर आक्षेप किए हैं। वे नितान्त असभ्यता पूर्ण, गलतफहमी फैलाने वाले और अकारण हैं। इस पत्र के सर पर गाँधी विद्वेष का भूत सवार है। भूत के उतारने की दवा है 'मिरचे की धुनी और करारा तमाँचा।' सो भाई, आज मैं वही प्रयोग कर रहा हूँ। भूत व्याधि-ग्रस्त यह पत्र कल का लौंडा है। इसलिए जरा मैं सोच समझकर ही तमाचे जड़ूँगा,—मुझे वह भी तो ख्याल है न, कि कहीं लड़के के गाल बहुत अधिक सुर्ख न हो जायँ।'[3]

इसके परिणाम स्वरूपवीर सावरकर का क्रोध गणेश जी पर उतरा। गणेश जी

१—'हिन्दी गद्य गाथा', पृ० १६८-१६६ से उद्धृत।
२—श्री सूर्यनारायण व्यास—'वीणा', अगस्त–सितम्बर, १६६०; पृ० ४६२।
३—'हिन्दी-गद्य-गाथा', पृ० १७०-१७१ से उद्धृत।

ने सावरकर जी की लेखमाला का कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु 'नवीन' जी ने अपने स्वभावशात् उनकी खबर ले ली थी। उज्जैन आने पर गणेश जी ने व्यासजी से कहा—''नवीन' को आपने कटिंग भिजवाकर बन्दर को भाँग पिलवा दी। वह गाँधी जी के हमले को कैसे सह लेता? पर संयम नहीं रखा, सावरकर भी देश भक्त हैं; त्यागी हैं। मैं उनकी गालियों का उत्तर नहीं देना चाहता।'[1] सन् १९३६ के इंदौर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर महात्मा गान्धी ने कहा था कि एक लाख रुपये एकत्र करके दक्षिण भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन को दिए जायँ। परन्तु श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग को देने के बाबत कहा और गाँधी जी पर आक्षेप लगाए। 'नवीन' जी को यह बात सहन नहीं हुई और उन्होंने वाजपेयी जी के विरुद्ध 'प्रताप' में एक लेखमाला लिखी, जिसमें उन्होंने महात्मा गाँधी के पक्ष का समर्थन किया। साथ ही यह भी लिखा कि गाँधी जी के विरुद्ध कोई आक्षेप नहीं लग ए जायँ।[2]

इन सब तथ्यों के होते हुए भी, 'नवीन' ने महात्मा गाँधी को भी नहीं छोड़ा। वे अपनी मान्यताओं के पालन में अविचलित रहते थे और 'समझौता वाली वाणी' पसन्द नहीं करते थे। सन् १९४२ में जब वर्धा में कांग्रेस कार्य-समिति, युद्ध कार्यक्रम बना रही थी, तब समाचार आया कि तोड़-फोड़, तार काटना, रेल की पटरी उखाड़ना भी कार्यक्रम में शमिल हों; तो 'नवीन' जी को यह लगा कि यह सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के विपरीत है। इस अवसर पर उन्होंने 'प्रताप' में एक लेखमाला लिखी जिसमें उन्होंने अपने आन्तरिक विश्वास को अभिव्यक्ति प्रदान की[3]। 'नवीन' जी सन् १९४२ के आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे और गाँधी जी से उनका, इस सम्बन्ध में गंभीर मतभेद था। अपने इस मतभेद को उन्होंने आन्दोलन के पूर्व 'प्रताप' में लेख लिखकर तथा बम्बई अधिवेशन में भी भाषण करके प्रकट किया।[4] इस सम्बंध में, श्री श्रीराम शर्मा ने भी लिखा है कि '९ अगस्त, सन् १९४२ को जब सरदार गृह में अपनी मुलाकात भाई बालकृष्ण शर्मा से हुई, तब बालकृष्ण जी की भावभंगी कुछ दूसरी ही थी। ८ अगस्त को मूल प्रस्ताव का विरोध करने वाले बालकृष्ण शर्मा और ९ अगस्त के

१—'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०; पृ० ४९२।

२—डॉ० उदयनारायण तिवारी, जबलपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट—
दिनांक ७-१-१९६२ में, ज्ञात।

३—श्री अवनीन्द्रकुमार—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', वह अन्याय से लड़ते और प्रेम के आगे झुकते थे, १० जुलाई, १९६०; पृ० १९।

४—श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', त्यागी, देशभक्त और सहृदय, ३ जुलाई, १९६०; पृ० ४०।

बालकृष्ण शर्मा में आकाश-पाताल का अन्तर था। ८ अगस्त के प्रस्ताव से ९ तारीख को बालकृष्ण शर्मा उतने ही सहमत थे—बल्कि किन्हीं अंशों में कुछ आगे भी थे—जितना कि कोई कांग्रेसमैन हो सकता था। क्षोभ और वेदना, उत्साह और लगन की धूप छाँह बालकृष्ण जी के चेहरे मोहरे पर थीं। योजना सम्बन्धी हमारी बातें हुईं और दो हजार रुपये का प्रबंध बालकृष्ण जी ने वहीं कर दिया।'[1] 'हिन्दुस्तानी प्रकरण के सम्बन्ध में भी, 'नवीन' ने गाँधी जी से डटकर विरोध किया था और 'हिन्दुस्तानी' के विरोध में 'प्रताप' में एक लेख माला भी लिखी थी।[2] सन् १९३३ में जब महात्मा गाँधी यरवदा जेल से छूटकर आए तो कांग्रेस समिति की एक बैठक पूना में हुई। इसमें आचार्य नरेन्द्रदेव का बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ; किन्तु वह हिन्दुस्तानी-फारसी मिश्रित हिन्दी में हुआ था। 'नवीन' जी ने इसके उत्तर में, आवेश में, संस्कृत निष्ठ हिन्दी में भाषण दिया था। इस भाषण की सराहना मराठी-भाषी श्रोताओं ने की।[3] इस प्रकार 'नवीन' में जोश तथा संस्कृत-गर्भित हिन्दी के प्रति पूर्णास्था की भावना विद्यमान थी जो कि उनकी संपादकीय टिप्पणियों की भी नब्ज़ है।

सन् १९३४-३५ में श्री सत्यदेव परिव्राजक के विरुद्ध 'नवीन' ने लेखमाला लिखी थी। 'प्रताप' में लिखित इस लेखमाला में उनकी सान्यासिकवृत्ति की खिल्ली उड़ायी गयी थी।[4] इसी प्रकार उन्होंने सन् १९४५-४६ में 'प्रताप' में 'शंकर व्यामोह' तथा 'चक्रान्तर्गत चक्र' शीर्षक लेख लिखे थे। 'शंकर व्यामोह' शीर्षक लेख में राजर्षि टण्डन के विचारों से अपना मतभेद प्रकट किया था।[5] यह बात ध्यान देने की है कि 'नवीन' के टकराने में व्यक्तिगत स्वार्थ या निजी भूमिका को कभी स्थान प्राप्त नहीं हुआ। विश्वास, भावना, निष्ठा, मत, दृष्टिकोण और विवेक पर आघात पहुँचने पर ही, उन्होंने अपने मत की निर्भीक अभिव्यक्ति की है। इस सम्बन्ध में, श्री सद्गुरु शरण अवस्थी ने सर्वथा ठीक लिखा है कि इस अवतरण या ऊपर के अन्य अवतरणों से यह न समझना चाहिये कि बालकृष्ण प्रकृति से ही औघड़ बाबा की प्रसाद वृत्ति और दुर्वासा की कोपवृत्ति लेकर पैदा हुए हैं। उनमें वास्तव में औघड़ बाबापना और दुर्वासापन नहीं है। उनके रागद्वेष के आलम्बन खूब सोचे विचारे, समझे बूझे हैं। शैली में जो बहुत तीव्रगति है और जो अनुपम देश शक्ति है, उसका कारण है उनका

१—श्री श्रीराम शर्मा—'संघर्ष और समीक्षा', पृ० १००।

२—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा ज्ञात।

३—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान,' १० जुलाई, १९६०, पृ० १९।

४—श्री जयदेव गुप्त, कानपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट : दिनांक १६-५-१९६१ में ज्ञात।

५—वही।

औरों की अपेक्षा अधिक निर्मल और सहसा भँभना जानेवाला हृदय ! फिर भी, 'मिरचे की धूनी और तमाचा' वाली उनकी शैली उनके गौरव की वस्तु नहीं। है भी यह अपनी शैली का अकेला लेख। अतएव इसे अपवाद ही समझना चाहिए।[1] अपने लेखन की तीव्रता तथा तीक्ष्णता के कारण ही, सन् १९३१-३२ में 'प्रताप' में लिखे लेख के कारण ही उन्हें छः मास के कारावास का दण्ड हुआ था।[2] सन् १९३९ में उन्होंने, मुस्लिम लीग के प्रबल प्रभाव व आक्रमण पर, 'प्रताप' में 'गुंडागिरी रोकने में यह नपुंसकता कैसी ?' लिखित संपादकीय अग्रलेख से उत्तरप्रदेश में हड़कम्प मचा दिया था। इस लम्बे अग्रलेख का एक अंश विचारणीय है : 'हम वह ऊँट हैं जिसकी पीठ पर बेतहाशा वजनी लाद दी गयी है और हमने आज तक किसी प्रकार की चूँ-चा नहीं की। हम बलबलाए नहीं। नकेल नहीं तुड़ाई। दुम नहीं हिलायी। चुपचाप रहे। लेकिन अब ता० २४ अप्रैल के लखनऊ एसेम्बली भवन वाले वाकयात ने हमारे ऐसे एबदार की भी कमर तोड़ दी है और हम आज चीखने और चिल्लाने पर मजबूर हो गए हैं। आखिर कमजोरी और ढिल्लड़पने की कोई हद भी तो होती है ? शुरू से लेकर आज तक हम इस सूबे में फिरकेवाराना फसादात और पुलिस के सिर्फ एक तबके की खुल्लम-खुल्ला फिरका परस्ती और हाल ही के अँग्रेज हरकतों को रोकने या सम्हालने में हमारी काँग्रेस सरकार ने निहायत बुजदिली और बेबसी से काम लिया है। महीनों की ढील-ढाल और तूलतबील कार्य-शैली ने गुण्डापन को उभारा है। लोग शेर हो गए हैं। अब गुण्डे खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि कोई हमारा क्या कर लेगा ? और वे ठीक कहते हैं। किसी ने उनका क्या कर लिया ? उन्होंने जो मन में आया, किया। एक मर्तबा वे पहले, शायद गुजिश्ता मार्च में, एसेम्बली भवन में घुस गए, वहाँ उन्होंने मनमाने नारे लगाये और वे चलते बने। वे मूँछों पर ताव देते हैं कि किसी ने हमारा क्या कर लिया ? २४ ता० को वे फिर असेम्बली में घुस आए। सरकारी कागजात फाड़े, फाइलों पर हाथ साफ किए, असेम्बली सभा-भवन में प्रधान मन्त्री की लू-लू बोली, मेज कुर्सियाँ तोड़ी, और तब हटे जब कि नवाब इस्माइल ने उनसे चले जाने को कहा। हमारी सरकार बड़ी भली है, बड़ी उदार है। बड़ी दूरन्देश है। बहुत फूंक-फूंककर कदम उठाती है—क्या कहने हैं ? लानत है इस भलेपन और इस दूरन्देशी पर। क्या वे पचास-साठ या सौ सवा-सौ गुण्डे गिरफ्तार

१—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी—'हिन्दी' गद्य गाथा', बालकृष्ण शर्मा, पृ० १७१-७२।

४—श्री रामनाथ गुप्त, कानपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट: दिनांक १४-६-१९६१ में ज्ञात।

नहीं किए जा सकते थे ? सुना है कि जिस वक्त एसेम्बली भवन में यह उत्पात हो रहा था उस वक्त आला सरकारी अफसर ने कहा कि गुण्डों पर गोली चला देनी चाहिए। लेकिन नहीं। भलमसाहत का प्रदर्शन किया गया। नतीजा यह है कि उत्पाती लोग आज लखनऊ की गलियों और बाजारों में सीना उभारे घूम रहे हैं और अपने दिलेरी का परवान अकड़-अकड़ कर रहे हैं।[1]....

साहसिकता तथा बेधड़कता पूर्वक लिखना ही 'नवीन' का कला-कौशल था। उनकी पत्रकारिता में साहसिकता का यहाँ एक आख्यान देना, अप्रासंगिक प्रतीत नहीं होता। सन् १६३६ में कानपुर में 'अमीरदुला विमला-प्रणय अभियोग' काफी प्रख्यात रहा। यह अभियोग प्रयाग उच्च न्यायालय में न्यायाधीश इकबाल के अधीन चला। लड़की के पिता व्रज नारायण ने उच्चतम न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश टाम को यह आवेदन किया था कि यह अभियोग न्यायमूर्त्ति इकबाल के न्यायालय में नहीं चलाया जावे क्योंकि उनसे मुस्लिम लड़के के पक्षपात की सम्भावना है और उनका उससे पुराना सम्बन्ध भी रहा है। इस पर, पूर्ण अभियोग तथा आवेदन पत्र को 'नवीन' ने 'प्रताप' में प्रकाशित करना चाहा। उस युग के ख्यातिप्राप्त अधिवक्ता तथा नेता सर तेज बहादुर सप्रू से जब इसके सम्बन्ध में वैधानिक परामर्श लिया गया; तो उन्होंने कहा था कि विधि के दृष्टिकोण से इसे प्रकाशित नहीं किया जा सकता है और इसका प्रकाशन अपराध है। भावुक तथा सच्चे पत्रकार 'नवीन' ने इस वैधानिक आपत्ति तथा परामर्श को स्वीकार नहीं किया और यह कहा था : अभी 'नवीन' के कन्धे बड़े चौड़े है। मैं छः मास का दण्ड भुगतने के लिए तैयार हूँ। 'नवीन' ने अपने व्यक्तिगत साहस तथा दायित्व पर, उस अभियोग को 'प्रताप' में प्रकाशित कर दिया।[2] इसी प्रकार सन् १६३७ में पुलिस के आतंक तथा लोद जाति की स्त्रियों पर किये गए अमानुषिक अत्याचारों के विरुद्ध भी, 'नवीन' ने व्यथित होकर 'प्रताप' में छः पंक्तियों का मोटा शीर्षक देकर, इस समाचार को प्रकाशित किया था। यह संवाद अन्य पत्रों को भी भेजा गया था; परन्तु पुलिस से झझंट मोल न लेने के विचार से किसी ने नहीं छापा। 'प्रताप' पर मुकदमा चला। लम्बी लम्बी गवाहियाँ हुई किन्तु निर्णय 'प्रताप' के विरुद्ध रहा और सजा भुगतनी पड़ी।[3] श्री गुप्त ने लिखा है कि 'प्रताप के नाते 'नवीन' जी के साथ हम लोगों का सम्पर्क स्वतः सिद्ध और स्वाभाविक था। जेल के अन्दर अब भी राजनैतिक कैदियों पर

१—साप्ताहिक 'प्रताप', संपादकीय टिप्पणियाँ, सूबे में गुण्डागिरी रोकने में यह नपुंसकता कैसी ? रविवार, ३० अप्रैल, १६३६।

२—श्री जयदेव गुप्त द्वारा ज्ञात।

३—वही।

किसी प्रकार का कोई अत्याचार हुआ और उसकी खबर कानपुर में पहले श्री गणेशशंकर विद्यार्थी और उनकी शहादत के बाद श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को भेजी गयी तब वह बड़े आदर के साथ 'प्रताप' में छप गयी और उस पर टिप्पणी लिखी और योग्य कार्यवाही की गयी।[1] 'प्रताप' केवल क्रांतिकारी कैदियों का ही नहीं: सब राजनैतिक कैदियों के लिए बड़ा सहारा रहा। विद्यार्थी जी के बाद 'नवीन' जी का हमें भरोसा रहता था।[2] जबलपुर के हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'सारथी' के सम्पादक श्री द्वारका प्रसाद मिश्र, सन् १६४२ के आन्दोलन में गिरफ्तार हो जाने पर और उनके सहकारी श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव के अनुरोध करने पर 'नवीन' ने 'सारथी' में सुन्दर सम्पादकीय-लेख लिखा था।[3] इसमें उन्होंने निरूपित किया था कि भारत राष्ट्र केवल अपने ही कल्याण के लिए नहीं, निखिल मानवता के लिये एक अपूर्व निर्णय कर चुका है और गाँधी उस निर्णय की पूर्णाहुति के रूप में अपने प्रवचन कह रहा है। वह एक चिरस्मरणीय नितान्त अविस्मरणीय दृश्य था। भारत ने अपनापन प्राप्त करने के लिए एक विकट निश्चय किया है। उस निश्चय के पीछे 'कार्य साधयामि: देहं पात्यामिवा' का उद्दीप्त भाव है। यदि भारतवर्ष अपनी स्वतंत्रता पाता है, तो वह उसके लिए जूझेगा और किसी भी सत्ता को स्वीकृत करने से इंकार कर देगा।[4]

'नवीन' जी लम्बे-लम्बे सम्पादकीय अग्रलेख लिखा करते थे और एक ही बैठक में लिख लेते थे।[5] थोड़ी सी जगह में अधिक से अधिक लिखना, उनकी विशेषता थी। उनकी हस्तलिपि घुमावदार थी और शब्दों के मस्तक को रेखांकित नहीं करते थे।[6] भाव-प्रवणता तथा तीक्ष्णता ही, उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों की सर्वस्व थी। 'नवीन' के 'प्रताप' में लिखित लेखों ने भारत के कोटि-कोटि व्यक्तियों को आन्दोलित किया था। उनमें दबंगता तथा विरोध के स्वरों का आरोह प्राप्त होता है। लाखों कण्ठों ने अपनी वाणी को उनके अग्रलेखों में गतिशील पाया था। राष्ट्रीय संग्राम की अग्नि को अधिक उद्दीप्त करने में उनकी पत्रकारिता ने महान् कार्य सम्पन्न किया है। पत्रकार 'नवीन' की लेखनी से हमारे अन्नदाता कृषकों का स्वेद टपकता था। पीड़ितों

१—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'—१० जुलाई, १६६०; पृ० १७।

२—श्री मन्मथनाथ गुप्त—'कृति', मिला दो मृत्यु के गीत स्वर से, वैशाख, १८८६, मई, १६६०, वर्ष २ अंक ८, पृ० ६८।

३—'वीणा', अगस्त सितम्बर, १६६०, पृ० ४६८।

४—साप्ताहिक 'सारथी', सम्पादकीय टिप्पणी, लेखनी सन्यास, सोमवार,

५—श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य द्वारा ज्ञात।

६—श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी, नयी दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेट (दिनांक २३-५-१६६१) में ज्ञात।

की कराह चिल्ला पड़ती थी। श्रमजीवी का बलिदान भभक उठता था। युग की प्रवृत्तियाँ सौल्लास कूक पड़ती थी। विद्रोह तथा क्रान्ति की चिनगारियाँ अपना जौहर दिखाती थी। 'नवीन' की पत्रकार-कला का पवित्र लक्ष्य ही यह था कि पराधीनता की शृंखलाएँ टूटें, अत्याचार तथा अन्याय का तिमिर भाग उठे; हमारा जीवन प्रांजल तथा सांस्कृतिक हो और मातृभूमि की सर्वतोन्मुखी उन्नति हो। इसलिए ही, उनकी पत्रकार-कला में राष्ट्रीय जीवन का स्वच्छ तथा गतिशील चित्र मिलता है और स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए किए गए व झेले गए संघर्षों की अटूट कहानी। भारत में ये लेख, तत्कालीन परिस्थितियों में, बड़े समाहृत हुए। श्री सद्गुरु शरण अवस्थी ने लिखा है कि बालकृष्ण शर्मा के जितने अधिक लेख 'प्रताप' से अन्य पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत किये गए हैं; उतने कदाचित ही किसी हिन्दी सम्पादक के किए गए होंगे। 'प्रताप' इनसे गौरवान्वित है। बालकृष्ण में न तो भाषा सम्बन्धी हकलाहट है और न शैली का कनफुस्सीपना। वह प्रखर और वेग सम्पन्न है। उसका क्रान्तिकारी बिलोहन दूर से सुनायी देता है। इस युग के गद्यकारों में बहुत कम ऐसे लेखक हैं जो काव्यात्मक होते हुए भी स्पष्ट हों। बालकृष्ण ऐसे ही इने-गिने लेखकों में से हैं। इनके मोटे-मोटे शब्द और बड़े-बड़े वाक्य स्वयं फिसलते हैं। उन्हें धक्के लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।[१]

'नवीन' में शीर्षक देने की बड़ी सुन्दर कला थी। विषय-सामग्री, भाव, स्थिति आदि के आधार पर बड़े मार्मिक, संयत तथा उपयुक्त शीर्षक देना उनके ही वश की बात थी। 'दुर्गम पंथ', 'विषपान', 'आकाश मेघाच्छन्न' 'लँगोटी की धूम', 'शुभास्तु ते पंथानः', 'लेखनी सन्यास', 'दी ओल्ड मैन आफ दी सी', 'हैंग ओल्ड गांधी बाई दी नियरेस्ट एपिल ट्री', 'बाँध के बाँध के' 'हम घर साजन आए' 'काला साइमन बनाम गोरा साइमन' आदि शीर्षक, अपने आप ही अपने सृष्टा की कला-पच्चीकारी का निदर्शन करते हैं। कभी संस्कृत निष्ठ भाषा और कभी सामान्य भाषा का प्रवाह, उनके लेखों में लपकता-सा प्रतीत होता है। 'नवीन' जी का अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वे चाहते तो अँग्रेजी के श्रेष्ठ पत्रकार बन सकते थे। परन्तु हिन्दी के प्रति अगाध प्रेम और 'प्रताप' के प्रति ममता के कारण वे हिन्दी पत्रकारिता-क्षेत्र से विलग नहीं हो सके।[२] श्री 'सारथी' ने लिखा है कि 'नवीन' की पत्रकार-कला में समष्टि के जीवन का माधुर्य है, ओज है, वेगवती सरिता है, विचारों की निर्झरिणी है। सामाजिक

१—'हिन्दी गद्य गाथा', पृ० १६४।

२—श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'—साप्ताहिक 'आज', पत्रकार 'नवीन', २९ मई, १९६०; पृ० ९।

के मनोभाव विविध प्रकार के पुष्पों में विकसित हुए हैं। 'नवीन' का हृदय कवि है, इस कारण, उसके हृदय में भावुकता निरन्तर क्रीड़ा करती है और 'नवीन' का मस्तिष्क क्रांतिवादी प्राड़-निवाक: यानी क्रान्तिवादी विचारक है; इस कारण 'नवीन' की पत्रकार-कला में चेतना-मिश्रित भावुकतामयी क्रान्तिकारी भावना का ही बाहुल्या है।— 'नवीन' की पत्रकार-कला में विप्लव का शंखनाद है और कवि का मधुर संगीत भी है।[१] गुप्त जी ने 'नवीन' के सम्पादकीय लेखों का महत्त्वांकन करते हुए लिखा है कि 'उन्होंने जो कुछ कविता के रूप में लिखा उसमें से बहुत कुछ पाठकों के लिए उपलब्ध हैं, पर प्रताप के सम्पादकीय लेखक के नाते भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा; जो कहीं प्राप्त नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि उन्होंने 'प्रताप' के सम्पादक के रूप में, विशेष कर जेल से छूटने के बाद, स्वतन्त्रता के ऐन पहले जो कुछ लिखा; वह अब भी अच्छा-ही लगेगा, पर उसका ऐतिहासिक महत्त्व है और उनके लिखने का सबसे बड़ा गुण यह रहा कि चाहे उन्होंने कैसा भी लिखा पर उसमें यह गुण अवश्य होता कि वह, पाठक को उत्तेजित कर दे। पाठक उनकी लिखी हुई बातें पढ़कर उदासीन नहीं रह सकता था।[२]

महान् समीक्षक श्री बफन का यह कथन 'Style is the man itself' जितना 'नवीन' पर सटीक बैठता है; उतना बहुत कम लेखकों पर चरितार्थ किया जा सकता है। 'प्रताप' की सम्पादकीय टिप्पणियाँ तथा राष्ट्रीय परम्परा ही के कारण, उसकी प्रतियाँ विदेशों तक में जाती थीं। श्री पार्षद का यह मत है कि जितनी प्रखरता तथा तेजस्विता 'नवीन' की सम्पादकीय लेखों में मिलती है: उतनी उनकी कविताओं में नहीं।[३] सीमोल्लंघन तथा भावुकता के अतिरेक के कारण, श्री शुक्ल उन्हें सफल पत्र-कार नहीं मानते।[४] 'नवीन' जी स्वतः गद्य या निबन्ध-लेखन की अपेक्षा कविता लिखना अधिक पसन्द करते थे क्योंकि वे कहते थे कि गद्य में विचारों का द्रुत प्रवाह आगे बढ़ जाता है और लेखनी पीछे रह जाती है। उन्होंने इस सम्बन्ध में श्री युधि-

---

१—श्री रामवरणसिंह 'सारथी'—'साहित्य सन्देश', 'नवीन' की पत्रकारिता-कला, भाग १३, अंक १२, जून १९५२; पृ० ५११।

२—'कृति', मई १९६०; पृ० ७०।

३—श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद', नखल से हुई प्रत्यक्ष भेंट : दिनांक १७-६-६१ में ज्ञात।

४—श्री विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा ज्ञात।

ष्ठिर भार्गव से कहा था : "I lack the percievience and patience in prose-writing."[१]

गणेश जी की सृष्टि, सखा तथा पूरक 'नवीन' ने वस्तुत : उनके स्थान पूर्त्ति की की। एक प्रसंग उद्धरणीय है। सन् १९३० में 'प्रताप' की पृष्ठ संख्या ३६ से बढ़ाकर ४० कर दी गयी। उसके अनुसार विभिन्न पृष्ठों में पाठ्य सामग्री इस प्रकार समायोजित करनी थी कि अंतिम दिन तक अधिक से अधिक पाठ्य-सामग्री देने की सुविधा रहे। साथ ही फर्मों के मुद्रित होने में कोई कठिनाई भी न हो। 'नवीन' जी अपने सहयोगी श्री देवव्रत शास्त्री आदि के साथ बैठे कोई डेढ़ घण्टे माथा-पच्ची करते रहे परन्तु कोई ठीक हिसाब बैठता ही नहीं था। इसी बीच गणेश जी वहाँ आ पहुँचे। पूछने पर समस्या सामने प्रस्तुत की गयी। गणेश जी ने देखते ही मनचाही व्यवस्था कर डाली। 'नवीन' जी बोले—"वाह साहब, यह क्या हुआ ? सिर्फ डेढ़-डेढ़ कालम ही का तो बखेड़ा था, सो आपने उसे दो-दो में करके खत्म कर दिया।" वह हँसकर बोले—"तो तुम ही कर लेते भाई ! वह तो कोलम्बस के अण्डा बिठाने वाली बात थी।" शर्मा जी ने कहा—"चैखुश, क्या अण्डा बिठाया कि ससुरे को तोड़ डाला।" गणेश जी ठहाका मार कर बोले—"बालकृष्ण, अभी जाए उस्ताद खाली अस्त।" (उस्ताद की जगह खाली है)[२] परन्तु, वास्तव में शर्मा जी ने अपने उस्ताद की खाली जगह को, उनके पश्चात्, अपने कृतित्व से भर कर ही बतला दिया। गणेश जी की मृत्यु के पश्चात्, 'नवीन' ने जो सम्पादकीय 'प्रताप' में लिखी था, वह उनकी श्रेष्ठ कृति (क्लासिक) के रूप में ग्रहण की जा सकती है। श्री चतुर्वेदी जी ने बताया है कि गणेश जी के मरणोपरान्त 'नवीन' जी बहुत अधिक ठण्डे हो गए थे; स्वभाव का भड़कीलापन तथा उग्रता तिरोहित हो गयी थी।[३] 'नवीन' के गद्य पर, गणेश जी के अतिरिक्त, आचार्य द्विवेदी जी का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

'नवीन' जी पत्रकार तथा पत्रकार-संघों के प्रति भी सचेष्ट तथा हितकारी रहा करते थे। उनका मत था कि आज के पत्रकार सिद्धान्त पर अटल नहीं रहते। वे सरस्वती को वैश्या तक बनाकर धनार्जन करते हैं। यह बड़े दुख की बात है। पत्रकार परमुखा समाज अवश्य है परन्तु उसकी शान इसी में है कि वह फाकामस्ती में रहे

१—श्री युधिष्ठिर भार्गव, आयुक्त, इन्दौर से हुई भेंट (११-१२-१९६१) में ज्ञात।

२—'गणेशशंकर विद्यार्थी', पत्रकार विद्यार्थी जी, पृ० ५६-५७।

३—श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।

पर अपने सिद्धान्त से च्युत न होने पावे।[१] वे नवीन तथा उदीयमान पत्रों को प्रेरणा देते थे और मार्ग-दर्शन करते थे। 'आगामी कल' के सम्पादक श्री प्रभागचन्द्र शर्मा को उन्होंने लिखा था कि दिमाग की खिड़कियाँ सदा खुली रखना।[२] 'नवीन' जी प्रारम्भ में श्रमजीवी पत्रकारों का संघटन 'ट्रेड यूनियन' के ढंग पर नहीं पसन्द करते थे, परन्तु बाद में आप इस संघटन के पक्षपाती हो गए थे और उसका कारण सम्भवत: पत्रकारों को दीन और दयनीय दशा ही थी। पत्रकारों की सहायता और मार्ग-दर्शन के लिए 'नवीन' जी के द्वार सदा खुले रहते थे।[३] सन् १९५१ में, वे मध्यभारत पत्रकार परिषद् के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए थे।[४]

श्री गोपालप्रसाद व्यास ने लिखा है कि 'नवीन' जी की अंतिम इच्छा थी कि 'प्रताप' के लेख यदि और संगृहीत हो जाते तो अच्छा रहता।[५] आचार्य शिवपूजन सहाय ने 'नवीन' जी के सम्पादन-काल में, 'प्रताप' की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा था कि कानपुर का 'प्रताप' सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक है। वह साप्ताहिकों का सम्राट् है। उसका सम्पादन बड़ी सावधानी से होता है। उसमें एक वाक्य भी बेकार या फजूल नहीं छपता। दो-दो पंक्तियों के सम्वाद और सूचनाओं पर भी सम्पादकीय दृष्टि पड़े विना नहीं रहती। उसके कुशल सम्पादक पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अमरशहीद विद्यार्थी जी के शोचनीय अभाव में भी, उसका झण्डा पहले ही की तरह ऊँचा किए हुए हैं। उसके सम्पादकीय स्तम्भों में हृदय की ज्वाला, मस्तिष्क का तेज, आत्मा की हुँकार-ध्वनि, भाषा का चमत्कार और रणचण्डी की ललकार भरी होती है। वह संतप्तों का साथी और असहायों का आश्रय है। उसकी कविताओं, टिप्पणियों, लेखों और सम्वादों में देश की सच्ची आवाज़, पीड़ितों की करुण पुकार, सर्वतोममुखी क्रांति की फुफकार और नवयुग का शुभ सन्देश स्पष्ट सुन पड़ता है। अपने १८ वर्ष के आदर्श जीवन में, नवयुवकों को जगाकर, रियासती प्रजा को उठाकर, अहंकारियों

१—कारागृह-मुक्ति के पश्चात् कानपुर पत्रकार समाज द्वारा दिए गए प्रीति-भोज तथा सम्मान के अवसर पर 'नवीन' के भाषण से उद्धृत; मासिक 'आगामी कल', अप्रैल, १९४५; पृ० ५।

२—श्री प्रभागचन्द्र शर्मा को लिखित 'नवीन' जी का पत्र; 'आगामी कल', जनवरी, १९४२; पृ० १२।

३—साप्ताहिक 'आज', २९ मई, १९६०; पृ० ९।

४—'विक्रम', व्यास उवाच, फरवरी, १९५१; पृ० १२।

५—श्री गोपालप्रसाद व्यास—'दैनिक हिन्दुस्तान', तन-मन के संघर्ष में लीन-पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'; १८-७-१९५८।

को नीचा दिखाकर, पाखंडियों की पोल खोलकर और त्रस्तों को अभयदान देकर, उसने देश की जो सेवा की है; वह हिन्दी-पत्रों के इतिहास का गौरव है। उस पर हिन्दी को गर्व है।[1] 'प्रताप' तथा 'नवीन', की पत्रकार-कला का यही सर्वोत्कृष्ट मूल्यांकन है।

उपसंहार :

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, आधुनिक हिन्दी-काव्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में, 'प्रताप' ने अविस्मरणीय सेवाएँ की हैं। 'प्रताप' ने हिन्दी के नवीन कवियों को प्रोत्साहन दिया; हिन्दी साहित्य का दिशा-दर्शन किया और क्रान्तिकारियों की रक्षा की। 'प्रताप' ने ऐसे कार्य किए जिनसे हिन्दी पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण मानपदण्ड निर्मित हुआ और इसी के आधार पर हम अन्य पत्र-पत्रिकाओं तथा उनकी पत्रकार-कला का भलीभाँति मूल्यांकन कर सकते हैं। न्याय, जन-भाषा तथा ईमानदारी तीन शब्द, 'प्रताप' ने ही हमारी पत्रकारिता को प्रदान किए हैं। बलिदानी और निर्भीक व्यक्तित्व का उज्ज्वल आदर्श भी, 'प्रताप' के संस्थापक गणेश जी तथा उसके उन्नायक 'नवीन' जी के द्वारा, मांसल रूप प्राप्त करता है। पत्रकारों की सृष्टि में ये दो व्यक्तित्व, ध्रुव तारे के समान, सदा-सर्वदा, जाज्वल्यमान, बने रहेंगे। पत्रकारिता को राजनीति, देशभक्ति तथा प्रखरता के त्रिवेणी-संगम में निमज्जकर, उसे जनता-जनार्दन के हृदयों की धड़कन से सराबोर करने का सम्पूर्ण श्रेय 'प्रताप' को ही है। अन्य सम-सामयिक पत्रों ने इतनी स्तरीय, स्वस्थ तथा दीर्घकालिक परम्परा का निर्माण नहीं किया जितना 'प्रताप' ने। राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम की विशाल लपटों में ईंधन प्रदान करने का समग्र दायित्व 'प्रताप' ने ही लिया और उसका सफलता पूर्वक निर्वाह किया।

'प्रताप' की राष्ट्रीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा उन्मुक्त वातावरण ने ही राष्ट्रीय कवियों को आकृष्ट कर, लक्ष्योन्मुख किया। काव्य की वाणी भी 'प्रताप' के प्रबल तथा प्रभविष्णु कुम्भ से गर्जना करती कौंधने लगी। इस प्रकार 'प्रताप' आधुनिक हिन्दी-काव्य की इस विशिष्ट धारा का ममत्वमय मानसरोवर बन गया। फलतः राष्ट्रीय कविता की मन्दाकिनी से भारत की उर्वरा शक्ति तथा तारुण्य-फसल लहलहा उठी। पथ सूझा; चरण बढ़े और इतिहास दौड़ने लगा।

१—आचार्य शिवपूजन सहाय—'शिवपूजन रचनावली', तृतीय खण्ड, हिन्दी के साप्ताहिक पत्र; पृ० ३३३।

———

सप्तम अध्याय

'प्रताप' के कवि और उनका काव्य

'प्रताप' के कवि :

'प्रताप' का एक अपना विशिष्ट कवि-मण्डल बन गया था जिसमें राष्ट्रीय भावनाएँ अपने पूर्ण ज्वार पर थी। 'प्रताप' में तीन सौ से अधिक कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई थीं जिनमें प्रमुख तथा गौण-दोनों ही प्रकार के कवियों की गणना सम्मिलित है। द्विवेदी युगीन तथा छायावाद युगीन—दोनों ही प्रकार के कवियों को 'प्रताप' में स्थान प्राप्त हुआ; परन्तु सबकी मूलभित्ति राष्ट्रीयता थी। प्रधान कवियों में श्रीधर पाठक, सत्यनारायण 'कविरत्न', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रायकृष्णदास, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', लक्ष्मीधर वाजपेयी, 'राष्ट्रीय पथिक', 'हृदय', गयाप्रसाद शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बदरीनाथ भट्ट, ठाकुरप्रसाद शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', रामचरित उपाध्याय, लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय 'मयंक', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, शम्भुदयाल श्रीवास्तव, परशुराम चतुर्वेदी, रामचरित उपाध्याय, माधव शुक्ल, गुलाब रतन वाजपेयी 'गुलाब', शिवदास गुप्त 'कुसुम', स्वामीदयालु श्रीवास्तव 'मधुव्रत', जगन्नाथप्रसाद शर्मा 'रसिकेश', राजाराम शुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा', राधा वल्लभ पाण्डेय, पारसनाथ त्रिपाठी 'प्रेमी', 'अभिलाषी', हरिश्चन्द्र देव विद्यार्थी, जगन्नाथ जोशी, वीरेन्द्र विद्यार्थी, प्यारेलाल वृष्णि, सुरेन्द्र शर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', भगवत गणपति गोयलीय, भगवान्नारायण भार्गव, हेमचन्द्र जोशी, श्यामलाल गुप्त 'पार्षद', बलदेव प्रसाद मिश्र, गोकुलचन्द्र शर्मा, रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी', कन्हैयालाल जैन, भगवतीचरण वर्मा, 'नवीन', रूपनारायण, पाण्डेय, हरिभाऊ उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन 'विकसित', शम्भुदयालु शर्मा, दीना नाथ 'अशंक', श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, सियारामशरण गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, विनयमोहन शर्मा 'वीरात्मा', मोहनलाल महतो 'वियोगी', लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' आदि का नाम आता है।

प्रमुख कवियों के सदृश्य, गौण कवियों की भी लम्बी तालिका है। इनमें हाकिम सिंह 'कौशलेन्द्र' राठौर, गोविन्दसिंह भटनागर, शंकर बक्शसिंह वर्मा, महिपाल बहादुर सिंह, पण्डा शिवराजसिंह बिस्मिल, नानकसिंह 'हमदम', विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी, शिवकिशोर त्रिपाठी, बाबूराम मिश्र 'बन्धु', लक्ष्मीनारायण मिश्र 'सुधाकर', देवीदत्त मिश्र,

चम्पालाल शर्मा 'अवदीच्य', जगन्नाथ देवशर्मा, इकबाल वर्मा 'सेहर', झुन्नीलाल वर्मा, दशरथ, गौरीदत्त वाजपेयी, प्रभाकर श्रीखण्डे, छविनाथ पाण्डेय, गोविन्द वल्लभ पन्त, शालिग्राम द्विवेदी, रामचरित्र पाण्डेय 'पावन', गणेश बालकृष्ण सर्वटे, मातादीन शुक्ल, कालीप्रसाद त्रिवेदी, दशरथ प्रसाद द्विवेदी, केदारनाथ टण्डन, वेदनारायण वाजपेयी, नूर अहमद खाँ 'जार', फिराक', 'परन्तप', ब्रजनारायण 'चकबस्त' आदि के नामों की गणना की जा सकती है।

'प्रताप'-मण्डल में कवित्रियों को भी स्थान प्राप्त था। इनमें श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान,[१] श्रीमती प्रि० म० देवी 'भारती',[२] श्रीमती रा० र० कक्कड़,[३] कुन्दन देवी,[४] सुन्दरदेवी,[५] विद्यावती[६] प्रभृत्ति के नाम प्रधान हैं।

'प्रताप' के कवियों में, गयाप्रसाद शुक्ल, 'राष्ट्रीय पथिक', मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की रचनाएँ सबसे अधिक प्रकाशित हुईं। शुक्ल जी ने सनेही तथा 'त्रिशूल' के नाम से कविताएँ लिखी। 'प्रताप' में सर्वाधिक कविता-प्रकाशन के दृष्टिकोण से, 'सनेही' जी को ही प्रथम स्थान प्राप्त होता है। सनेही जी 'प्रताप' के, एक प्रकार से, कविता-विभाग के 'इंचार्ज' ही थे।[७] इनके विषय में डॉ० द्विवेदी ने लिखा है कि पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' देश-भक्तिपूर्ण कविताएँ लिखने में प्रसिद्ध हैं और उर्दू से प्रभावित इनकी पदावली प्रवाह-युक्त और व्यवस्थित है।[८] 'सनेही' जी की कविताओं में गाँधी जी के आन्दोलनों का बहुत प्रभाव

१—साप्ताहिक 'प्रताप' (क) हम क्या रहे क्या हो गये, ३ जुलाई, १६१६; (ख) स्मृति, १२ अगस्त, १६१७; (ग) मत जाओ, २३ अगस्त, १६२०, (घ) राखी, ६ सितम्बर १६२०, (ङ) गाँधी स्वागत गान, २६ सितम्बर, १६२१ आदि।

२—साप्ताहिक 'प्रताप', अबला विनय, 'राष्ट्रीय वीणा'।

३—साप्ताहिक 'प्रताप', जलियाँवाला बाग, २६ अप्रैल, १६२०।

४—साप्ताहिक 'प्रताप', जीवन पुष्प, २८ जनवरी, १६१८।

५—साप्ताहिक 'प्रताप', भारत रुदन, १६ अगस्त, १६२०।

६—साप्ताहिक 'प्रताप', सत श्री अकाल, १६ अक्टूबर, १६२२।

७—श्री दशरथ—'नर्मदा', उस समय के कानपुर की घटनाएँ, विद्यार्थी स्मृति अंक, पृ० १४२।

८—डॉ० रामअवध द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य के विकास की रूप रेखा', पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी और द्विवेदी युग, पृ० १८७।

पड़ा और राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाली अनेक कविताएँ प्रायः 'प्रताप' में छपीं।[१] गुप्त जी[२] की 'प्रताप' में प्रकाशित अनेक रचनाएँ 'स्वदेशसंगीत'[३] में संगृहीत हैं। डॉ० कमलाकान्त पाठक ने लिखा है कि गुप्त जी ने असहयोग आन्दोलन के समय सामयिक राष्ट्रीय गीत भी लिखे थे, जो अधिकांशतः 'प्रताप' में मुद्रित हुए थे। उन्हें 'फुल-झड़ियाँ' शीर्षक देकर संगृहीत किया गया था। यह कृति पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुई। इसमें उत्साह भरे गीत रक्खे गए थे।[४] चतुर्वेदी जी की लगभग तीस कविताएँ 'प्रताप' में प्रकाशित हुई थीं।[५] माखनलाल जी की 'प्रताप' में प्रकाशित अनेक रचनाएँ भी संगृहीत हो चुकी हैं। 'प्रताप' में मुद्रित 'हृदय'[६] (सन् १९१४ विजयादशमी विशेषांक), 'चेतावनी'[४] (सन् १९१४ विशेषांक), 'जलियाँ वाला की वेदी'[७] (सन् १९२०), 'जीवित जोश',[८] (सं० १९७३ विजयादशमी विशेषांक), 'मेरा उपास्य'[९] ('होली', सं० १९७५), 'राष्ट्रीय वीणा'[१०],: वीर पूजा[११] (२८ अप्रैल; १९१९), 'नवभारत'[१२] : (१२मई १९१९), 'श्रेयबन्धन'[१३] (२२सितम्बर १९१९,)'सत्याग्रही'[१४] (२जून १९१९, 'पुष्प की अभिलाषा' (१०अप्रैल १९२२), हठीले आँसू से[१५] (१अक्टूबर, १९२३) आदि

१—श्री उमाशंकर शुक्ल—'नई धारा', पुरानी पीढ़ी के सुकवि पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से एक भेंट, जुलाई, १९६२; पृ० २५।

२—श्री मैथिलीशरण गुप्त का मुझे लिखित दिनाँक ४-४-१९६१ का पत्र।

३—श्री मैथिलीशरण गुप्त—'स्वदेश संगीत', प्रकाशन-काल सन् १९२५।

४—'मैथिलीशरण गुप्तः व्यक्ति और काव्य', काव्य कृतियों का क्रमिक विकास, राष्ट्रवादी गीति काव्य, पृ० १८९।

५—श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।

६—'समर्पण', पृ० ५२-५२

७—'युगचरण', पृ० १९-२२।

८—समर्पण', पृ० ९१-९२।

९—'हिमकिरीटिनी' पृ० ८७-८९

१०—'माता' पृ० ४७-४९।

११—'हिमकिरीटिनी', पृ० ९१-९२

१२—'माता', ५०-५१

१३—वही, पृ० ८१

१३—'युगचरण', पृ० ४४।

१४—'समर्पण', पृ० २९।

कविताएँ, उनके विविध काव्य-संग्रहों में स्थान पा चुकी हैं। 'नवीन' जी का अधिकांश साहित्य 'प्रताप' में ही प्रकाशित हुआ है।[१]

'प्रताप' की कविताओं को संग्रहाकार भी प्रकाशित किया गया था। संग्रह का नाम 'राष्ट्रीय वीणा' रखा गया। 'यथानाम तथा गुण' के अनुसार इसमें राष्ट्रीय कविताओं को ही संगृहीत किया गया। संग्रह का नामकरण स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने किया था।[२] 'राष्ट्रीय वीणा' को तीन भागों में प्रकाशित किया गया था। प्रथम भाग में, 'प्रताप' के भाग १ तथा २ अर्थात् सन् १९१४-१५ की कविताओं को संकलित किया गया था। इसके संकलनकर्त्ता तथा प्रकाशक श्री शिवनारायण मिश्र थे और यह प्रताप पुस्तकालय, कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसका प्रथम संस्करण सन् १९१६ में और चतुर्थ संस्करण, सन् १९२१ ई० में छपा। प्रथम संस्करण में ९२ रचनाओं को स्थान प्राप्त हुआ और १०१ पृष्ठ पुस्तक में समाहित थे।[३] 'राष्ट्रीय वीणा' के द्वितीय भाग में, 'प्रताप' के तृतीय तथा चतुर्थ भाग अर्थात् सन् १९१६-१७ की कविताओं को स्थान दिया गया। इसका सम्पादन कविवर श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने किया और प्रकाशन स्थल पूर्ववत् ही रहा। प्रथम संस्करण सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ। १०४ पृष्ठों की इस पुस्तक में, ९१ कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ।[४] 'राष्ट्रीय वीणा' के तृतीय भाग का सम्पादन 'एक भारतीय आत्मा' ने किया।[५] उन्होंने 'राष्ट्रीय वीणा' शीर्षक कविता भी इसी हेतु लिखी।[६] इन संग्रहों में समग्र रचनाएँ 'प्रताप' से ही ली गयी थीं; सिर्फ दो कविताएँ 'प्रभा'[७] तथा 'सरस्वती'[८] से उद्धृत की गयी। 'राष्ट्रीय वीणा' के सम्बन्ध में डॉ० सुधीन्द्र ने लिखा है कि जब राष्ट्र के जन-जीवन में स्वराज्य की विराट हलचल हो रही हो तब जन के प्रतिनिधि कवियों की काव्य-वीणा पर

१—देखिए परिशिष्ट।
२—श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'माता', पृ० ४९।
३—'राष्ट्रीय वीणा', चतुर्थ संस्करण, सन् १९२१।
४—'राष्ट्रीय वीणा', द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, सन् १९२२; प्राप्ति स्थल : गयाप्रसाद पुस्तकालय, कानपुर।
५—श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।
६—'माता', पृ० ४९।
७—'राष्ट्रीय वीणा', प्रथम भाग, पृ० ६०।
८—वही, पृ० ७५।

राष्ट्रीय चेतना की झंकृतियाँ उठना सहज स्वाभाविक था। सन् '१४ से हिन्दी काव्याकाश इन गीतों और झंकृतियों से गुंजित हो उठा था। वस्तुतः समस्त राष्ट्र का दर्प और ओज इन कवियों के कण्ठ में मुखरित हो रहा था। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के राष्ट्रीय साप्ताहिक 'प्रताप' में इस काल में शत-शत राष्ट्रीय कविताएँ प्रकाशित हुईं। इन गीतों का कई खण्डों में प्रकाशन हुआ है। राष्ट्र में सर्वांगीण जागरण था। नैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सेवा, त्याग, देश-सेवा और कर्मयोग की भावना सर्वोपरि थी, सामाजिक क्षेत्र में रूढ़ि रीतियों के मूलोच्छेदन की तथा राजनीतिक क्षेत्र में स्वत्व और अपना जन्मसिद्ध अधिकार माँगने की चेतना इन सब की प्रतिध्वनि—'राष्ट्रीय वीणा' की झंकृतियों में हमें सुनायी देती है। मैथिलीशरण गुप्त, 'एक भारतीय आत्मा', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही',-'त्रिशूल', सत्यनारायण कविरत्न, बदरीनाथ, भट्ट, सियाराम शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय 'मयंक', भगवन्नारायण भार्गव आदि के अतिरिक्त ज्ञात-अज्ञात अनेक कवियों की राशि-राशि राष्ट्रीय गीतियों का संकलन इसमें है। इसके स्वर सप्तक में एक तन्मयता है, एक ऊर्जस्विता है, जिसमें कहीं समता और 'एकात्मकता' के दर्शन के लिए मनुष्यता की देवी का आह्वान है।[1] 'राष्ट्रीय वीणा' के अतिरिक्त, श्री ठाकुर मेहताबसिंह क्षत्रिय द्वारा सम्पादित 'स्वराज्य वीणा' में भी 'प्रताप' की उन कविताओं को स्थान दिया गया जो कि समय-समय पर देशहित की भावना को लिए हुए थी।[2] इस संग्रह की भी प्रशंसा हुई थी।[3] विशुद्धतया 'प्रताप' की कविताओं पर आधृत उपर्युक्त संकलन के अतिरिक्त, 'स्वराज्य दर्शन',[4] 'तिलक वियोग में शोकाश्रु',[5] 'स्वतंत्रता की 'झंकार[6] आदि काव्य-संग्रहों में, अन्य सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त, 'प्रताप' की कविताओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। ये संकलन भी संस्तुति के पात्र

१—डॉ० सुधीन्द्र 'हिन्दी कविता में युगांतर', पृ० १८१।

२—'स्वराज्य वीणा', संग्रहकर्त्ता ठाकुर मेहताबसिंह 'क्षत्रिय', प्रकाशक, देशभक्त कार्यालय, सिर्सागंज, मैनपुरी, सांची छोटो, पृ० ७९।

३—'प्रभा', नवम्बर, १९१८, पृ० २६३।

४—'स्वराज्य दर्शन', संग्रहकर्ता श्री बालेश्वरप्रसाद सिंह 'निर्भीक,' प्रकाशक, श्री स्वराज्य साहित्य माला, दिघारगढ़, मझौवाँ (बलिया), पृ० ५६।

५—'तिलक वियोग में शोकाश्रु', संग्रहकर्ता दौलतराम गुप्त ; प्रकाशक काशीदत्त शर्मा' देहली; पृष्ठ ८२।

५—'स्वतंत्रता की झंकार', हिन्दी नवयुग ग्रन्थमाला ; पृष्ठ ८८।

बने।[1] वस्तुतः ये संग्रह 'प्रताप' की कविताओं की लोकप्रियता तथा प्रभावोत्पादकता के सुन्दर परिचायक हैं।

'प्रताप' की कविताओं के कारण भी 'प्रताप' पर अभियोग चले और चेतावनियाँ दी गयी। परन्तु 'प्रताप' को गणेशजी कोई ऐसी मक्खन की गोली भी नहीं बनाना चाहते थे जिसे जो चाहे मुँह में रख ले।[2] श्री भगवन्नारायण भार्गव ने लिखा है कि सन् १९-१२ या १३ में जब दक्षिण अफ्रीका में गान्धी जी तथा भारतीयों पर गोरे लोग अत्याचार कर रहे थे, 'प्रताप' में 'भारतवासियों चेतो-चेतो' नामक मेरी कविता प्रकाशित हुई। 'प्रताप' को जिलाधीश कानपुर का नोटिस मिला कि इस कविता के लिखने वाले का पूरा पता दो, अन्यथा 'प्रताप' पर मुकद्दमा चलेगा। गणेश जी ने आदेश पालन से इनकार करते हुए लिख दिया कि 'प्रताप' पर मुकद्दमा चला दें। जिलाधीश चुप हो गए।[3] इसी प्रकार, श्रीनानकसिंह 'हमदम' की कविता 'सौदाये वतन'[4] को राजद्रोहात्मक, सरकार के प्रति घृणा और द्रोह-भाव फैलाने वाली-करार देकर प्रान्तीय सरकार ने, सन् १९१९ ई० में 'प्रताप' प्रेस से ली गयी एक सहस्त्र रुपये की जमानत जप्त कर ली। परिणाम स्वरूप, 'प्रताप' १० जून, १९१८ ई० से ८ जुलाई, १९१८ ई० तक बन्द रहा।[5] तात्पर्य यह है कि 'प्रताप' की कविताएँ, अनल-धारा के सदृश्य प्रवाहपूर्ण तथा प्रभाव पूर्ण रहा करतो थीं और उनमें देशभक्ति तथा आक्रोश की लपटें उठा करती थीं।

काव्य-धारा :

इटली के क्रांतिकारी मैजिनी ने कहा था :

'Ideas ripen quickly when nourished by the blood of martyrs'.

१—'प्रभा', नवम्बर, १९२२; पृष्ठ ३९३; जनवरी, १९२१; पृष्ठ ५२, नवम्बर, १९२१, पृष्ठ ३२१।

२—श्री सुन्दरलाल—'नर्मदा'; शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, स्मृति अंक, पृष्ठ ३०।

३—'नर्मदा' स्मृति अंक, पृष्ठ ४५।

४—साप्ताहिक 'प्रताप', २२ अप्रैल, १९१८।

५—'गणेशशंकर विद्यार्थी', प्रतापी 'प्रताप', पृष्ठ १२६।

अर्थात् 'शहीदों के रक्त से पुष्ट होकर ही विचार जल्दी परिपक्व होते हैं।'[1]

शहीदों के रक्त के द्वारा ही 'प्रताप' की भूमिका अभिसिंचन किया गया था। अतएव, उग्र एवं राष्ट्र-परक प्रवृत्तियों ने ही इस पत्र के साहित्यिक परिक्षेत्र को आकार प्रदान किया था।

'प्रताप' की पृष्ठभूमि में हण्टर कमेटी, साइमन आयोग, रौलेक्ट विधान, जलियाँ वाला बाग हत्याकाण्ड, तिलक की उग्रनीति, चम्पारन तथा खेड़ा सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, महात्मा गाँधी का नेतृत्व, क्रान्तिवादिता आदि विचारधाराएँ तथा घटनाएँ प्रबल रूप में रही हैं; इसलिए, उसकी काव्य-धारा में भी प्रबलता तथा राष्ट्रीयता के स्पष्ट तथा वरेण्य दर्शन प्राप्त होते हैं। 'प्रताप' में, गणेश जी की मृत्यु तक, मूलतः दो प्रकार के कार्य, काव्यधारा के क्षेत्र में क्रियाशील दृष्टिगोचर होते हैं:

(क) राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा।

(ख) अनुवाद-कार्य।

'प्रताप' ने द्विवेदी-युग। (सन् १९००-१९२०) में जन्म लिया था और उसके यौवन का सुवास छायावाद-युग (सन् १९२०-१९३७) में सर्वत्र विकीर्ण हुआ। 'प्रताप' के प्रतापी युग को भी गणेश जी की मृत्यु तक ही माना जा सकता है। 'नवीन' जी के युग में भी यद्यपि यह शौर्य बना रहा; परन्तु इसके बाद वह गरिमा नहीं रह पायी। एतदर्थ, द्विवेदी तथा छायावाद-युग की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा का समन्वित रूप में विश्लेषण करना ही, हमारा अभीष्ट है।

राष्ट्रीय साँस्कृतिक काव्य-धारा

मूलतः एवं प्रधानतः 'प्रताप' में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा का ही महत्त्व है। इस काव्यधारा का विवेचन करते हुए, डॉ० सुधीन्द्र ने इसे निम्न रूपों में विभाजित किया है:

१—देशभक्ति की धारा:

(क) वन्दना गीत;

(ख) प्रशस्ति गीत;

(ग) जागरण गीत;

(घ) अभियान गीत;

१—अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल', पृ० १५३ से उद्धृत।

२—राष्ट्रीयता की धारा :

(क) सांस्कृतिक पक्ष—

(i) अतीत का गौरव गान;

(ii) वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश;

(iii) वीरपूजा और प्रशस्ति;

(iv) भविष्य का इंगित ।

(ख) राजनीतिक पक्ष

(i) राष्ट्रीय जीवन का स्पंदत: जीवन और जागृति;

(ii) बल और बलि;

(iii) अहिंसक राष्ट्रीयता ।[1]

डॉ० सुधीन्द्र ने लिखा है कि देशभक्ति' 'राष्ट्रीयता' का सनातन स्वरूप है और 'राष्ट्रवाद' उसका प्रगतिशील (ऐतिहासिक) रूप है ।[2]

देशभक्ति की धारा

'प्रताप' के हृदय में देशभक्ति का भव्य वेग था । कवियों ने देश-स्तुति के साथ, हमारे विगत एवं वर्त्तमान पर भी अपने उद्बोधक विचार प्रकट किए हैं ।

वन्दना गीत :

भारत की महानता तथा भक्ति का सुरुचिपूर्ण वर्णन करके, हमारे कवियों ने अपनी वाणी को उपकृत किया है । मातृ-वन्दना के गीतों में उपासना तथा रागात्मकता का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है; वह काव्य तथा राष्ट्रीय जीवन, दोनों की ही अमूल्य निधियाँ हैं ।

श्री जगन्नाथ जोशी ने अपनी मातृभूमि को अप्रतिम निरुपित करते हुए, उसकी वन्दना की—

'करेगा कौन तुम्हारी होड़ !
जननि ! नहीं है जग-मण्डल में कहीं तुम्हारा जोड़ ।
तीस करोड़ पुत्र हैं जिसके कर हैं साठ करोड़ ।।
साहस, शौर्य्य, बुद्धि, विद्या बल आते हैं सब दौड़
कायरता की विकट बेड़ियाँ दी हैं हमने तोड़ ।।

१—डॉ० सुधीन्द्र—'हिन्दी कविता में युगान्तर', अन्तरंग दर्शन : राष्ट्रीय कविता-धारा, पृ० १७०-२०७ ।

२—वही, पृ० १७० ।

सब वर्णों के बन्धु-बन्धु अब वैर-भाव को छोड़।
माता के हित उतर पड़े हैं कार्य क्षेत्र में दौड़॥
आओ, आओ, डटे रहेंगे सबसे से नाता तोड़।
देशभक्त सन्यासी हो बस माता से मन जोड़॥'[1]

'एक भारतीय आत्मा' की वाणी भी भारतवर्ष की जय बोलने में अपने आपको गौरवान्वित प्रतीत करती है :—

'है दीन भारत को जगाने आ चुकी अब भारती,
बढ़कर किया ही चाहते हैं कार्य विद्यार्थी व्रती
ये ब्रह्मचारी, धीर-धारी आत्म-त्यागी देख लो,
ये वीर नेता, शीघ्र चेता, गुण विजेता देख लो।
रुद्ध उन्नति-मार्ग मिलकर शीघ्र अपना खोल दो।
होकर हमारे साथ 'भारतवर्ष की जय' बोल दो।'[2]

श्री रामनरेश त्रिपाठी की 'मातृवन्दना' नव प्रेरणास्पद् है :

'अयि मम मातृ-भारत धरणि,
मंगल करणि, संकट हरणि !
चरण रत्न निवास सेवित, शीश मुकुट हिमाद्रि शोभित
प्रकृति पौरुष से सुरक्षित, शत्रु सागर तरणि।
मंगल करणि, संकट करणि।'[3]

होलिकोत्सव के समय, 'राष्ट्रीय होली' खेलते हुए, श्री रामचरित्र पाण्डेय 'पावन' भी अपनी मातृभूमि का जय जयकार करते हैं :[4]

'हिन्दू मुसलमान इसाई, भेद भाव बिसरावें।
फूटि कूटि पग तलन जूटि जुटि, एक रूप ह्वै जावें॥
जाके गोद समोद विहरि नित, सुजल, सुफल बल पावैं।
'पावन' जन्म भूमि भारत की, सब मिलि जय जय गावैं॥

भारत के नाप-जाप को ही अपना सर्वस्व समझा गया था :—[5]

१—साप्ताहिक 'प्रताप', २४ सितम्बर, १९१७; पृ० ६।
२—'राष्ट्रीय वीणा' : १९१४—१५ ई०:; पृ० १६।
३—साप्ताहिक 'प्रताप' १२ फरवरी, १९१७; पृ०, ८।
४—वही, ५ मार्च १९१७; पृ० ६।
५—साप्ताहिक 'प्रताप' श्रीश्यामलाल गुप्त, प्रतिज्ञा, ५ फरवरी, १९१७; पृ० ८।

'तब मैं भारत-पुत्र कहाऊँ।
भारत का ही नाम जपूं नित भारत ध्यान लगाऊँ।
एक भाव भाषा भारत की हिन्दी को अपनाऊँ।'

श्री सियारामशरण गुप्त ने भी भारत को मनुष्यत्व के त्राता तथा विश्व के भ्राता के रूप में स्मरण किया है :

'वह मनुष्यत्व का त्राता है, वह अखिल विश्व का भ्राता है।
वह अन्नदान का दाता है, अति दिव्य ज्ञान का ज्ञाता है।
पृथ्वी का श्रेष्ठ सितारा है, भारत सर्वस्व हमारा है।'[1]

प्रशस्ति गीत :

वन्दना प्रत्यक्ष भी होती है और परोक्ष भी। प्रत्यक्ष वन्दना 'सम्बोध' (ओड) की शैली में परिगणित हो सकती है और परोक्ष वन्दना प्रशस्ति कही जा सकती है। प्रशस्ति में वन्दना के साथ गौरव वर्णन रहता है।[2] 'प्रताप' के कवियों ने भारत की प्राकृतिक विशिष्टता के अतिरिक्त, उसकी महानताओं का भी विभिन्न रूपों में अभिव्यंजन किया है।

श्री परशुराम चतुर्वेदी 'प्रभाती' में देश के गुणों का उद्घाटन करते हैं :—

'कहसि मन हिन्द जयति उठि भोर ।। टेक ।।
उज्ज्वल क्रीट मुकुट सम मोहत जासिर हिम गिरि छोर।
जागर-माल मुकुल-मनि पोहित मोहत गंग हिलोर।'[3]

होली के पुण्य तथा उल्लास भरे पर्व पर, श्री सिद्धिनाथ दीक्षित, देशभक्ति तथा देश प्रेम के गुलाल तथा रंग से अपना मन रंगना चाहते हैं।[4]

मातृभूमि की पावन मूर्त्ति ही लक्ष्य बन गयी। श्री जगन्नाथ जोशी ने अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है।[5]

मातृभूमि के रक्षार्थ कटिबद्ध रहने के लिए, कवियों का स्वर गुँजायमान हो पड़ा।। श्री हरिऔध ने लिखा है कि कवि की प्रौढ़ लेखनी का प्रौढ़त्व और कवि की मार्मिकता का महत्त्व इसी में है कि वह प्रसुप्त जाति को जगावे, उसके रोम-रोम में

१—वही, सर्वस्व भारत, होली सं० १९७५; राष्ट्रीय अंक, पृ० ३०।
२—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृ० १७५-१७६।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', १० अप्रैल, १९१९; पृ० ७।
४—साप्ताहिक 'प्रताप' २० मार्च, १९१९; पृ० ७।
५—वही, ५ मार्च, १९१७; पृ० ६।

वैधुतिक प्रवाह प्रवाहित करे और उसको उस महान् मन्त्र से दीक्षित करे, जो उसके सगौरव संसार में जीवित रहने का साधन हो।[१] श्री महिपाल बहादुरसिंह ने अपनी ज़ाति का उद्‌बोधन किया :—

'चुड़ियाँ पहन, निकाल के घूंघट न टर रहो।
मर्दानगी के साथ जियो या कि मर रहो।'[२]

भारत-माता तथा भारत-वीरों का प्रशस्ति गायन ही उस युग का कवि-धर्म बन गया था। श्री शम्भुदयाल श्रीवास्तव ने 'महाराणा प्रताप और स्वतन्त्रता' शीर्षक कविता में मातृभूमि के प्रति अपनी भावांजलि प्रस्तुत करते हुए लिखा है :

'धन्य धन्य हे पावन जननी धन्य धन्य भारतमाता,
मरणासन्न समय भी जिसका पुत्र यही जपता जाता।
'जब तक प्रिय स्वतन्त्रते ! तन में लगती है तब सुखद समीर
तब तक रण से तिल भर भी न हटेंगे हम हैं भारत वीर।'।[३]

शृँगार-गीतों का स्थान राष्ट्रीय गीतों ने ले लिया था। सर्वत्र देश-प्रेम तथा उत्साह का वातावरण था। श्री 'हरिऔध' ने भी कहा था कि सबसे विशेष हर्ष की बात यह है कि इन दिनों शृँगार रस का प्रवाह एक प्रकार से बन्द हो गया है, और सब ओर देशानुराग, जाति प्रेम, समाज-सुधार इत्यादि की तानें सुनायी दे रही हैं।[४] फलतः राष्ट्रगीतों की बाढ़ सी आ गयी। श्री माधव शुक्ल का 'जातीय गीत' वस्तुतः 'राष्ट्रीय गीत' की कोटि का किरीट है :—[५]

जयति महाराष्ट्र, बंग, सिन्धु, राज-थान संग,
भद्र, पंचनंद, सुशांत पुण्यभूमि युक्त प्रान्त।
जयति राष्ट्र गुरु उदार, पूज्य तिलक, कर्मधार,
'मोहन', जय कर्मवीर, नायक जन धीर वीर॥
जयति जयति हिन्द देश, जय स्वराज्य जय स्वदेश॥"

१—'सरस्वती', कवि कर्त्तव्य, फरवरी, १९२१; पृ० १०१।
२—साप्ताहिक 'प्रताप', १० दिसम्बर, १९१७; पृ० ६।
३—वही, १२ जून, १९१९, पृ० ६।
४—प्रथम भारतीय हिन्दी कवि सम्मेलन, कानपुर के खड़ी बोली-विभाग के अध्यक्ष पद से दिया गया श्री 'हरिऔध' का भाषण, 'माधुरी', फरवरी, १९२६; पृ० १५०।
५—साप्ताहिक 'प्रताप' २४ दिसम्बर, १९१७; पृ० ६।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में 'वन्दे मातरम' तथा 'भारत भाग्य विधाता' सदृश्य राष्ट्रीय गीतों के अतिरिक्त, अमेरिका, फ्रान्स, इटली तथा इंग्लैंड के राष्ट्रीय गीतों की ओर भी हमारे कवि आकृष्ट हुए। अमेरिका के 'राष्ट्रीय गीत' में स्वतन्त्रता की स्वर लहरी बहती है—

'स्वतन्त्रता के स्वर की लहरी, बहे वायु मण्डल में गहरी।
सब कण्ठों से निकले राग, गूँज उठे सहसा गिरि बाग।
ऊंची करे तथा यह तान, हे मेरे प्रिय देश, महान्॥'[1]

फ्रान्स के राष्ट्रीय गीत में अपने जन-वासियों को उद्बोधित किया गया है :

'जन्मभूमि के अटल प्रेम, तू निज रिपुनाशी भुज बल दे,
हममें प्रकटित हो स्वतन्त्रते, निज रिपु दल को प्रतिफल दे।
अये, हमारी जय ध्वजा की छाया तुझसे शोभित हो॥
तेरी घोर घोषणा ध्वनि को सुने बधिर भी चोभित हो॥'[2]

'इटली के राष्ट्रीय गीत' की कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

'इटली, इटली इतनी छवि क्यों धारण की तुमने हा हन्त!
लिखा निराशा की स्याही से तव ललाट में क्लेश अनन्त।
ऐसा भीषण भाग्य हुआ क्यों? किया कौन-सा पाप महान्
किया तुम्हारे इस अदृष्ट को किसने यह अभिशाप प्रदान।'[3]

'इंग्लैंड' के राष्ट्रीय गीत में अपने द्वीप की स्तुति गायी गयी है :

'हे वीर हृदयी द्वीप वर! स्वाधीन और सुमुक्त हे!
अबला जनों के त्राण कारक, दिव्य शोभा युक्त हे!
स्वातन्त्र्य सापेची कला की देवियां विधि रीति से,
तेरे किनारों पर बसेंगी प्राप्त होकर प्रीति से॥'[4]

देश-विदेश के अन्य कवियों के सदृश्य, स्वर्गीय पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' ने भी अपनी 'मातृभूमि' का प्रशस्ति गायन किया—

१—साप्ताहिक 'प्रताप', होली, सं० १९७५; राष्ट्रीय अंक, अमेरिका का राष्ट्रीय गीत, पृ० ७।

२—साप्ताहिक 'प्रताप', फ्रान्स का राष्ट्रीय गीत, होली, सं० १९७५; राष्ट्रीय अंक, पृ० १०।

३—वहीं, पृ० १३।

४—वही, पृ० १३।

'सर्वोपकार जिसके जीवन का व्रत रहा है,
प्रकृति पुनीत जिसकी निरभय मृदुल महा है।
जहाँ शान्ति अपना करतब करना न चूकती थी,
कोमल-कलाप-कोकिल कमनीय कूकती थी।
वह मातृभूमि मेरी, यह पितृभूमि मेरी॥'[1]

कवि 'त्रिशूल' ने भी 'वन्दे मातरम' शीर्षक गज़ल में, वन्दना के बोलों की माला गूँथी है :—

'पुत्र तेरे मत्त हैं स्वाधीनता के प्रेम में,
भर दिये तूने बड़े अरमान, वन्दे मातरम।
सत्य की तलवार तूने दी कसी शोधी हुई,
कर दिया निर्भीक रख दी सान, वन्दे मातरम।'[2]

जागरण-गीत

समूचे राष्ट्र, जाति तथा जन-जन को जागृत तथा स्पन्दित करने का कवियों ने बीड़ा उठा लिया। चेतना तथा नवो-उत्साह के निर्झर बह निकले। गान्धी जी ने असहयोग का शंख नाद-कर दिया। दिशा-दिशा गूंज उठी। ऐसे उद्दीप्त तथा संतप्त वातावरण में हमारा कवि निश्चेष्ट तथा अनुभूति-विहीन कैसे रह सकता था? एतदर्थ, वाणी विश्रुत हो गयी। मानवता की ममता महक उठी। द्विवेदी युगीन प्रमुख कवि श्री 'हरिऔध', ने लिखा है कि जिस रचना अथवा कविता कलाप में जितनी अधिक मात्रा से मानवता का प्रदर्शन होगा, वह कविता अथवा रचना उतनी ही अधिक मात्रा में महत्त्व की अधिकारिणी होगी।[3] 'प्रताप' के प्रमुख कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने जागृति के सन्देश को सर्वत्र बिखेर दिया :

'अरे भारत! उठ आँखें खोल!
उड़कर यन्त्रों से, खगोल में घूम रहा भूगोल!
अवसर तेरे लिए खड़ा है,
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है।
तेरा कर्मक्षेत्र बड़ा है,
पल पल है अनमोल!'[4]

१—वही, पृ० ४।
२—वही, ७ जून, १९२०; पृष्ठ ८।
३—श्री 'हरिऔध'—'सन्दर्भ सर्वस्व', पृ० १८७।
४—'स्वदेश संगीत'—चेतना, कविता।

श्री इलाचन्द्र जोशी भी हिन्द के नर-नारियों को जागरण-गीत सुनाते हैं :

'अब उठो हिन्द के नर-नारी ।।
हा ! यह भारत, है अति आरत, होकर गारत;
अब हुआ जान से है आरी ।
पाता यह दुःख, देते नहिं सुख, फेरा है रूख,
क्या गई तुम्हारी मति मारी ?
अब वीर बनो, अति धीर बनो, रणधीर बनो,
फिर दूर करो सब अँधियारी ।।'[१]

दासत्व की शृंखलाओं के तोड़ने के लिए, श्री जगमोहन 'विकसित' उद्बोधित करते हैं[२] :

'उत्तेजित होकर उठ बैठो तजो स्वप्न दासत्व,
करो यत्न जी तोड़ तुम्हें भी मिलें मानवी स्वत्व,
किसी क्षण होना नहीं अधीर ।।
'प्यारा भारतवर्ष हमारा' 'विकसित' कहो सगर्व,
भारत के हित अर्पण कर दो तन मन सम्पत्ति सर्व;
प्रवाहित कर दो सौख्य समीर ।'

श्रीकान्त कृष्ण त्रिपाठी एकता का सन्देश प्रदान करते हैं :—[३]

'इससे स्वदेश भक्तों ! अब द्वैष द्रोह छोड़ो ।
तब एकता प्रिया है नाता उसी से जोड़ो ।।
फिर भी जरा दिखा दो भारत की मेल गाथा ।
तब सानुकूल होगा जो कष्ट है विधाता ।।'

श्रीधर पाठक ने राष्ट्र-प्रीति को ही महान् सन्देश के रूप में ग्रहण किया :—[४]

'तुझको दिल से प्यार करें हम, तुझ पर जान निसार करे हम ।
तेरा दम हर बार भरें हम, तू दिलवर, तू यार हमारा ।।
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा ।।

१—साप्ताहिक 'प्रताप', विजयादशमी, सं० १९७३; राष्ट्रीय अंक, पृ० २४ ।
२—वही, १५ मई १९१६; पृ० ५ ।
३—वही, प्यारा हिन्दुस्तान हमारा, ११ अक्टूबर, १९२०; पृ० ८ ।
४—साप्ताहिक 'प्रताप', २ जुलाई, १९१७; पृ० ७ ।

अभियान गीत :—

'प्रताप' के कवियों ने स्वाभिमान, राष्ट्र प्रीति, आत्म गरिमा, उत्साह आदि भावनाओं के शत-शत गीतों की मनोरम सृष्टि की है। इन गीतों में सहज उद्गार और निर्मल कला के दर्शन होते हैं। 'प्रताप' का मूलमंत्र ही यह था :—

'वह है गुणी या निर्गुणी, वह रंक या श्रीमान् है,
वह है निरक्षर भट्ट या उद्भट महा विद्वान् है।
वह विप्र, क्षत्रिय, वैश्य है या शूद्र क्षुद्र अजान है,
वह शेख ही है या कि सयद, मुगल या कि पठान है,
जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।[1]

श्री जयन्त ने राष्ट्रीय वीर को सादर आमन्त्रित किया :—

'एक राष्ट्र, सम स्वत्व साम्यपद का उद्देश्य महान्।
इसीलिए सब कुछ उनका हो तन, मन, धन अरु प्राण।
उनकी हृदय-तन्त्रियों में से निकले ऐसा गान।
उस स्वर्गीय तान को सुन, भारत हो स्वर्ग समान॥'[2]

श्री सियारामशरण गुप्त ने, सफलता की सम्भावना को ही अभिव्यंजित किया :

''भारत भूमि ! हुई है तुमको आज प्रसव-पीड़ा कैसी,
कभी कंस-कारागृह में थी हुई देवकी की जैसी।
कुछ डर नहीं, प्रसन्न चित्त हो, मिटने ही वाला भय है।
सफल तपोनिष्ठा होगी यह, जय है सम्मुख ही जय है॥'[3]

राष्ट्रीयता की धारा

राष्ट्र-वाद की धारा में जन-जीवन की चेतना मुखरित हो पड़ी है। हमारे कवियों का ध्यान विविध दिशाओं की ओर उन्मुख हुआ। श्री 'रत्नाकर' ने भी कहा है कि ब्रजभाषा के कवियों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी कविता के रंग-ढंग तथा रचना-प्रणाली में समय की आवश्यकता तथा समाज की रुचि के अनुसार, कुछ परिवर्त्तन आरम्भ करें और केवल नायिका-भेद वर्णन तथा पुरानी बातों का पिष्टपेषण न करके, राष्ट्रीय एवं सामाजिक दृष्टिकोण के उपयोगी विषयों की ओर भी ध्यान दें,

१—'राष्ट्रीय वीणा' पृष्ठ ७।
२—साप्ताहिक 'प्रताप' २ जुलाई, १९१७; पृ० ७।
३—वही, २७ मार्च, १९२२; पृ० ८।

जिससे सर्व साधारण का मनोरंजन ही नहीं, प्रत्युत् उपकार भी हो[१]—यह कथन, उस युग की काव्यधारा पर सामान्य रूपेण चरितार्थ हो सकता है।

सांस्कृतिक पक्ष

सांस्कृतिक पक्ष के अन्तर्गत, हमारे कवियों ने भारत के विगत गौरव का महत् उद्घाटन और वर्तमान कालिक दुर्दशा की करुण अभिव्यंजना की है। जीवन के पक्षों को भी वाणी प्रदान की गयी है।

अतीत का गौरव गान :

प्रत्येक जाति तथा राष्ट्र के लिए उसका अतीत, प्रेरणाप्रद एवं आकर्षक होता है। वह अपने पूर्वजों से शिक्षा ग्रहण करता है और अपने सुषुप्त जीवन में नव स्फूर्त्ति का संचार करता है।

'प्रताप' के कवियों ने भारत के भूतकाल की विभिन्न घटनाओं तथा व्यक्तियों के प्रति अपनी अनन्य आस्था प्रकट करते हुए, उनके मूलभावों को अपने जीवन में उतारने का पूर्ण प्रयास किया है। कहीं 'श्रीकृष्णाह्वान'[२] किया गया है तो कहीं 'चित्तौरगढ़'[३] की वीरकथा गायी गयी हैं। 'महाराणाप्रताप और स्वतन्त्रता' की गाथा को प्रस्तुत किया गया।[४] श्री 'त्रिशूल' ने अपने पूर्वजों का स्मरण करके, नव सन्देश ग्रहण करने की वृत्ति प्रदर्शित की :—

'गाओ अकबर—आजम शासन;
और शिखा की शान,
गाओ शौर्य्य सहित संतत तुम,
शुभ स्वराज्य गुण खान।।
सुरक्षित हो भारत, भगवान।।'[५]

'गीता' ने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का काया-कल्प किया है। 'गीता' के उप-

---

१—भारतीय हिन्दी कवि-सम्मेलन, कानपुर के प्रधान सभापति पद से श्री 'रत्नाकर' का भाषण, 'माधुरी' जनवरी, १९२६ पृ० ८।

२—'राष्ट्रीय वीणा', द्वितीय भाग; श्री प्यारेलाल विष्णु, श्रीकृष्णाह्वान, पृ० ५८।

३—वही, प्रथम भाग, श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा, चित्तौरगढ़, पृ० ८९।

४—साप्ताहिक 'प्रताप', १२ जून, १९१६; पृ० ६।

५—वही, शुभचिन्तना, विजयादशमी, सं० १९७३, राष्ट्रीय अंक, पृ० १।

देश की पुनरावृत्ति हमें 'त्रिशूल' के द्वारा प्राप्त होती है :—

'आत्मा जब है अमर, नहीं मरने का डर है।
डर भी हो तो रहा जगत् में कौन अमर है ?
* * *
स्वत्व प्राण सम है सखे ! नहीं त्याज्य छोड़ो नहीं।
कातर होकर मोहवश यों स्वराज्य छोड़ो नहीं ॥'[1]

असहयोग के दिनों में 'राष्ट्रीय गीता' का प्रकाशन भी 'प्रताप' में धारावाहिक रूप में हुआ। संस्कृत भाषा में लिखित, इस अभिनव कृति की कतिपय पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

'हतो वा प्राप्स्वसि स्वर्ग कर्म्मणानेन मोहन !
निश्चयेन स्वराज्यस्य जित्वा वाप्तिर्भ विष्यति।
कर्म्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्म्म फल हेतुर्भूमहि संगस्त कर्मणि ॥'[2]

वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश :

अतीत की महानता तथा गरिमा के साथ, जब हमारे कवियों की दृष्टि वर्तमान भारत की ओर गयी; तो उनकी वाणीं क्षोभ तथा आक्रोश से परिपूरित हो गयी। इस आक्रोश की अभिव्यंजना राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में विशेषतः हुई है। महिमा मण्डित भारत की वर्तमान कालिक दुर्दशा को देखकर, प्रत्येक सहृदय व्यक्ति को पीड़ा पहुँचना स्वाभाविक ही है।

राजनैतिक क्षेत्र में, 'प्रताप' के कवियों को भारतीय पराधीनता तथा तज्जन्य दुःख ने सर्वप्रथम पीड़ित किया। देश की पतितावस्था को देखकर, मन ग्लानि से भरने लगा :—

'देखो हो युवक ! हुआ देश तेरा दुर देश ॥
हो सिर मौर जगत सारे का, पतित हुआ है स्वदेश।
जिस देश में थे बड़े बड़े पंडित, धार्मिक और नरेश ॥'[3]

श्री आर० डी शर्म्मा ने 'दासता' को ही मूल विकार माना है :—

१—'त्रिशूल तरंग', पृ० ३२।
२—साप्ताहिक 'प्रताप', ३० जनवरी, १९२२; पृ० ७।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री रामपदार्थ सिंह शर्मा, विचार, २४ अप्रैल, १९१६; पृ० ६।

'हा गुलामी हाथ धोकर, क्यों तू पीछे पड़ रही;
कुछ भी तो अब रहम खा जा, क्यों कलेजा धुन रही
धन लिया, गौरव लिया, आजादी हमसे छीन ली।
पास है अब क्या हमारे, जो है पापिन तक रही॥'[१]

परतन्त्रता के कारण, हमारी क्या स्थिति हो गयी है; उसका कारुणिक चित्रण श्री 'उग्र' ने इन पंक्तियों में किया है :

'जिसके घर में भीख माँगने देवराज आते,
दानवता के दास उसे टुकड़े हैं दिखलाते :—
परतन्त्रता ऐसी!'[२]

श्री मातादीन शुक्ल भारत माता को आश्वस्त करते हैं।

'माँ तू बिलख बिलख क्यों रोती?
उन्नति की गति ही है ऐसी, ठहर ठहर कर होती॥
अब तक रही जातियाँ तुझ पर, संकट अरु विष बोतीं।
देख समय वह भी आता है, जब न रहेगी रोती॥
तेरी विगत कान्ति-माला के, टूट गए गो मोती।
फिर बनते हैं प्रेम-स्वाति से, चमकेगी वह ज्योती॥
सारी जाति मोह-निद्रा में, पड़ी-पड़ी नहिं सोती।
तब सपूत सब पीर हरेंगे, नाहक धीरज खोती॥'[३]

श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने बन्धुओं का 'नैराश्य निवारण' करते हैं :

'क्यों तुम यों निराश होते हो?
भारत हुआ श्मशान हाय! यह कहकर क्यों रोते हो?
यदि वह महाश्मशान बना है, तो भी शिव का बना है श्मशान
शिव हैं वहाँ शक्ति भी होगी, क्यों धीरज खोते हो?'[४]

श्री रामचरित उपाध्याय भी अपना आक्रोश प्रकट करते हैं :—

'भीष्म, भीम थे यहीं हुए, वीर न वैसे कहीं हुए,

१—वही, १९ जून, १९१६; पृ० ६।
२—वही, श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', भारत भ्रमर गीत, २३ जुलाई, १९२३; पृ० ८।
३—'स्वराज्य वीणा', पृ० २।
४—'स्वदेश संगीत', पृ० ७२।

क्या हम उनकी हैं संतान ? हाय ! हमारे हिन्दुस्तान ।।'[1]

कविवर 'त्रिशूल' ने परन्त्रता पर अपना त्रिशूल चला दिया :

'क्रूरपना कर चुकी बहुत अब दूर निकल तू,
है त्रिशूल का वार अरी निश्चरी सँभल तू ।'[2]

पराधीनता को हटाने के साथ ही साथ, कवियों ने स्वतंत्रता तथा स्वराज्य के विषय में भी शत शत गीतों का निर्माण किया है। 'प्रताप' के समूचे काव्य-जगत में स्वराज्य का स्वर ही बुलन्द तथा हृदयस्पर्शी है। श्री रायकृष्णदास 'स्वतंत्रता' को सम्बोधित करते, कहते हैं :

'तेरा जन्म स्थान कहाँ स्वाधीनते !
बता हमें तू आज !
बता दूँ ? लो सुनो—
पर-वश, दीन, दरिद्र, जनों के चित्त में,
जो मेरे अनमोल मोल को जानते ।'[3]

हमारे कवियों की स्वराज्य के प्रति निश्चित धारणा तथा विचार धारा थी। 'स्वराज्य' की व्याख्या 'एक स्वराज्य प्रेमी' ने की :—[4]

'है स्वराज्य क्या ?—वह भी सुन लो, भूखो मरे न दीन किसान ।
है स्वराज्य क्या ? रोग शोक अत्यचारों का हो अवसान ।
हैं स्वराज्य क्या ? धनशाली हो देश हमारा हिन्दुस्थान ।
है स्वराज्य क्या ? हिन्द सुतों के कर भी धारण करें कृपाण ।।'

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी, पद्यात्मक रूप में, 'स्वराज्य परिभाषा' प्रदान की है :—

'जिसमें 'स्व' शब्द का योग नहीं,
हो सकता उसका भोग कहीं ?
इससे 'स्वराज्यवादी' होना !
अपना राजत्व न खुद खोना ।।'[5]

१—साप्ताहिक 'प्रताप', १५ अक्टूबर, १९१७; पृ० ६ ।
२—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृ० १८२ से उद्धृत ।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', विजयादशमी, सं० १९७४; राष्ट्रीय अंक, पृ० ७ ।
४—साप्ताहिक 'प्रताप' १८ दिसम्बर, १९१६ ।
५—वही, १६ जुलाई, १९१७; पृ० ७ ।

'स्वराज्य की योग्यता' का भी गुप्त जी ने सुन्दर प्रतिपादन किया :—[१]

'राजनीति अप्सरा रूपिणी हमें डिगाने को आवे,
तीक्ष्ण कटाक्ष बाण बरसा कर, भाव-भंगियाँ दिखलाये।
सावधान, हे देशबन्धुओं! आसन अपना हिले नहीं,
फिर ऐसा क्या है जो तुम को तप के बल से मिले नहीं?[१]

श्री माधव शुक्ल तो प्रार्थना करते हैं कि भारतवासी स्वराज्य के लिए पुकार उठे :

'जातिभेद और धर्म भेद का बन्धन काट कुठार,
'माधव' तैंतिस कोटि एक हो करैं स्वराज्य पुकार।
जगा दे भारत को करतार ॥'[२]

शुक्ल जी की प्रार्थना निष्फल नहीं थी। 'एक भारतीय आत्मा' की बलि-पंथी के गीत गाने वाली लेखनी से, भारत के कोटि-कोटि व्यक्तियों का 'स्वराज्य लेंगे', उद्-घोष मानो फूट पड़ता है :

'नहीं सुनेंगे किसी की अब हम, स्वराज्य लेंगे, स्वराज्य लेंगे।
किसी से क्या हम हैं विश्व में कम, स्वराज्य लेंगे, स्वराज्य लेंगे।
गुलाम बनकर न अब यहाँ पर किसी तरह भी दबे रहेंगे,
बहुत दिनों तक रहे रुके हम, स्वराज्य लेंगे स्वराज्य लेंगे।[३]

इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में, वर्तमान भारत का पराभव, पराधीनता, स्वाधीनता प्राप्ति की अभिलाषा तथा उमंगें आदि के रूप में कवियों ने अपनी नैसर्गिक भावनाओं को सुष्ठु रूप में अभिव्यक्त किया है।

सामाजिक क्षेत्र में, हमारे कवियों ने समाज के पीड़ित तथा त्रस्त व्यक्तियों के प्रति अपनी समवेदना प्रगट की है और समाज में व्याप्त विषमता तथा विडम्बनाओं के आवरण को खोलने का भी प्रयास किया है। कृषकों के आर्त्तनाद को कवि ने अपनी काव्यवाणी प्रदान की :—

'सता लो जितना जी चाहे।
करते हो नित मौज चूसते जाते फिर भी रक्त,
चाहे कुछ भी करो, पर हैं हम सब आसक्त।

१—वही, ५ नवम्बर, १९१७; पृ० ६।
२—वही।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', ८ जनवरी, १९१७; पृ० ५।

रुला लो जितनी इच्छा हो, घुला लो जितनी इच्छा हो ।।[१]

श्री जानकी वल्लभसिंह ने 'कृषक' प्रार्थना में किसानों की यथार्थ स्थिति का अंकन किया है :—

'लखत उपज नहिं और अन उपज जमींदार सर्दार,
भू कर लेत दया नहिं आनत कर गाली बौछार ।
चपरासी अरु पटवारिन की सहत ठोकरन मार,
जर्जर तन पंजर है जैसे बल्ली हनी तुषार ।
सभ्य समूह नैन निज मूंदे, करतन नेक विचार,
दीन दयाल दया कर वेगिहिं मेटहु कष्ट अपार ।।'[२]

'विधवा' की दयार्द्र स्थिति की ओर से भी हमारे कविगण अछूते नहीं थे । श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' ने 'विधवा' की सामाजिक स्थिति का सुन्दर आकलन किया :—

'असहाय विधवायें करती विलाप जब,
वज्र सी कठोर छाती द्रवित हो जाती है ।
आर्त्तनाद सुन-सुन दुखी होती दशों दिशा
छूटता है धैर्य 'रमा' धरनी थर्राती है ।
खींचने को चित्र तात ! इनकी व्यथा का आज,
लेखकों सुकवियों की लेखनी सकाती है ।
और की तो बात कहा इनका बिलोक हाल,
रोता है काल और करुणा पछताती है ।'[३]

भारत की धार्मिक स्थिति का यह चित्र दृष्टव्य है :—

'कहो किमि होली में मोद मनावे ?
हिन्दू मुसलिम, आर्य जैन सब स्वर से स्वर न मिलावे,
अपने-अपने राग अलग तिमि डफली अलग बजावे ।
उन्नति गीत भड़ावे ।।'[४]

१—वही, श्री अनिरुद्धलाल, सता लो जितना जी चाहे (किसानों की अन्यायी जमीदारों से फरियाद), ८ अक्टूबर, १९१७; पृ० ६ ।

२—वही, २० नवम्बर, १९१६; पृ० ८ ।

३—साप्ताहिक 'प्रताप' १४ अप्रैल, १९२९ ।

४—वही, श्रीराधावल्लभ, अपनी होली, २० मार्च, १९१६; पृ० ७ ।

श्री वसन्तलाल चौबे द्वारा चित्रित 'वर्तमान भारत' के चित्र में भी हमारी आर्थिक दुरावस्था का फीका रंग दृष्टिगोचर होता है।

'देशोन्नति विद्या उन्नति का तो सब ख्याल बिसारा।
फैशन में फँस हमने अपना धर्म्म गँवाया सारा।
यों ही क्या हो निस्तारा ?
निर्धन हा ! भारत बिचारा, मरा भूखों का मारा ॥'[1]

श्री जगमोहन 'विकसित' ने होली की हुड़दंग में 'कबीर' गाते हुए, समाज की आन्तरिक स्थिति को प्रकट कर दिया है :

'लड़भिड़ सारी सम्पत्ति खोली, भरे अदालत जाय।
पंचायत की प्रथा न खोली रही दीनता छाय ॥
भला यों फूट घरों में क्यों बोली ?
अ र र र – कबीर सुन लो भाई मोर कबीर ॥'[2]

वीर पूजा और प्रशस्ति:

वीर-पूजा की परम्परा हमारे यहाँ पुरातन-काल से रही है। पराक्रमी तथा महापुरुष लोग ही अतीत के दीप स्तम्भ होते हैं और वर्तमान में भी उनकी ओर ही आशा भरी दृष्टि से देखा जाता है। वे वर्तमान दुर्दशा तथा निराशा को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील रहते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में हमारे देश के अनेक शहीदों, भक्तों तथा नेताओं का हार्दिक रूप से अभिनन्दन एवं स्तवन किया गया। हमारे देश के उद्धार तथा उन्नयन में इन महापुरुषों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में हमारे वन्दनीय नेताओं ने अपने प्राणों की आहुति प्रदान कर, देश को स्वतन्त्र बनाने की चेष्टा की थी।

भारत के ज्योतिर्मान दीपको के बुझने पर, श्री शम्भुदयाल श्रीवास्तव का हृदय क्रन्दन कर उठता है :

'एक कर बुझे जा रहे भारत दीपक;
'गोखले' कल 'मेहता' से नीति-प्रकाशक।
भारत माता क्यों न दुखित रोये इस दुख से;
क्या दशरथ ने प्राण न थे खोये इस दुख से ॥'[3]

महापुरुषों का जीवन सदा-सर्वदा अनुकरणीय होता है :—

१—वही, ७ फरवरी, १९१६; पृ० १०।
२—वही, ५ मार्च, १९१७; पृ० ७।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', करुणा क्रन्दन, २१ फरवरी, १९१६; पृ० ७।

'कला कुशलता सीख, प्रथम निज मान सुधारो।
स्वावलम्ब पाठ, भली विधि आप विचारो।
करि अनुकरण तिलक, गोखले, का तुम प्यारो,
करें देश कल्याण, सभी मिलि यह प्रण धारो।'[1]

देशरत्न 'दादाभाई नौरोजी' के देहावसान पर शोकगीति लिखी गयी :

'हन्त, आज क्या हुआ ! देश का मुकुट उठ गया।
सब रत्नों की खानि-खजाना हाय लुट गया।
देश प्रेम का सौम्य चन्द्र, प्राणों से प्यारा।
ध्रुव सा शुभ आदर्श हमारा कहाँ सिधारा ?
हा, दादाभाई ! विलख रोता भारत आज है ?
तुम बिन देखे कौन विधि मिलता हमें स्वराज है।'[2]

लाजपतराय[3] के स्वदेश आगमन पर कविताएँ लिखी गयी। कानपुर में लोकमान्य तिलक का स्वागत कविता से किया गया :—[4]

'नेता का स्वागत है आहा ! माता का स्वागत है आज,
जगती तल का गौरव गढ़ यह भारत पावेगा उत्थान।
राष्ट्र मूर्तियों का हम करने लगे वीर बनकर सम्मान।
बाल सूर्य्य के दर्शन पर लो गंगाधर को करो प्रणाम।'

लोकमान्य के आगरा पहुँचने पर, श्रीसत्यनारायण 'कविरत्न' ने 'तिलक वन्दना' की :—

'कर्मयोग आचार्य आर्य आदर्श उजागर,
निर्मल न्याय निकुंज पुंज करुणा के सागर।
सुदृढ़ सिंहगढ़ के सजीव ध्वज धर्म धुरन्धर।
अद्भुत, अनुकरणीय प्रेम के प्रकृत पुरन्दर॥'[5]

राष्ट्र-केसरी तिलक की मृत्यु ने समग्र भारत को प्रकम्पित कर दिया था। श्री रूपनारायण पाण्डेय, 'सनेही', श्री वीरेन्द्र विद्यार्थी, कालिकाप्रसाद, 'नवीन', 'त्रिशूल',

---

१—वही, श्री सिद्धिनाथ मिश्र, पुरुषार्थ, २८ अगस्त, १९१६; पृ० ७।

२—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री रमेश, हाँ हन्त, २ जुलाई, १९१७; पृ० ५।

३—वही, श्री 'कुसुम', लाजपति आये आज स्वदेश, १५ मार्च, १९२०; पृ० ८।

४—वही, ८ जनवरी, १९१७; पृ० ५।

५—वही, १७ दिसम्बर, १९१७; पृ० ६।

सुन्दरदेवी आदि व्यक्तियों ने तिलक को अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि प्रदान की। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने जलांजलि अर्पित की :—

'सरल, साहसी, ऊधमी, श्रम सहिष्णु, प्रणपाल।
हाय ! वृद्ध भी बाल था वह माई का लाल।
देशहित व्रतरत रहा राजकृपा को छोड़,
न्यायप्रिय निर्लोभ था वह ब्राह्मण बेजोड़।।

श्री गोखले जयन्ती[1] पर रचनाएँ लिखी गयी और 'सरोज पंचक' में श्रीमती सरोजिनी नायडू का गुण गान किया गया। कानपुर पधारने पर, सरोजिनी का भव्य स्वागत किया गया :

'राष्ट्रीय सन्देश-कोकिला-कण्ठ-नादिनी,
जनता-जागृति-अर्थ-सचेतन-वाक्य वादिनी।
शक्ति-सलिल सौदार्य-दायिनी शुभ मृणालिनी।
मातृभूमि पद सेव्य मालिका-मंजु मालिनी।
जय अतीत गौरमयी, जय माता-मुख ओजिनी।
प्रबल सिन्धु बल बोधिनी, विमल प्रकाश सरोजिनी।'[2]

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गाँधी का प्रवेश एक महान् तथा युगान्तकारी घटना है। नेहरू जी ने लिखा है कि उसकी आवाज औरों की आवाज से जुदा थी। वह एक शान्त और धीमी आवाज थी, लेकिन जन-समुदाय की चीख से ऊपर सुनायी देती थी। वह आवाज कोमल और मधुर थी, किन्तु उसमें कहीं न कहीं फौलादी स्वर छिपा दिखायी देता था। उस आवाज में शील था और वह हृदय को छू जाती थी, फिर भी उसमें कोई ऐसा तत्त्व था जो कठोर भय उत्पन्न करने वाला था। उस आवाज का एक-एक शब्द अर्थपूर्ण था और उसमें एक तीव्र आत्मीयता का अनुभव होता था। शान्ति और मित्रता की उस भाषा में शक्ति और कर्म की काँपती हुई छाया थी और था अन्याय के सामने सिर न झुकाने का संकल्प।[3]

महात्मा गाँधी के दिव्य व्यक्तित्व ने हमारे कवियों को प्रारम्भ से ही आकृष्ट

१—वही, २६ फरवरी, १९१७; अध्यापक रामरत्न, श्री गोखले जयन्ती, पृ० ६।

२—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री रमेश, सरोज पंचक, २२ जनवरी, १९१७; पृ० ७।

३—पंडित जवाहलाल नेहरू—'राष्ट्रपिता'।

कर लिया था। गाँधी जी के दक्षिण आफ्रिका में सत्याग्रह संग्राम चलाते समय, 'एक भारतीय आत्मा' ने उनका स्तवन किया था :

'वीर-सा, गम्भीर-सा यह है खड़ा,
धीर होकर यों अड़ा मैदान में,
देखता हूँ मैं जिसे तन-दान में,
जन-दान में, सानन्द जीवन-दान में।।'[1]

श्री 'अष्टावक्र' ने महात्मा गाँधी का 'कीर्त्ति गान' गाया :—

चरण कमल चूमै गाँधी के, हुआ नहीं भयभीत।
ट्रेंसवाल में जिस योधा की, बिना शस्त्र की जीत।
जै जननी जै देश हमारा, मिलकर देवें तान।
देश का कर लें हम गुण गान, देश पर मन धन कुर्बान।।[2]

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने गान्धी जी के हेतु, स्वागत-गान की रचना की :

'पधारो गाँधी जी महाराज !
मोहनदास आस जननी के, जनता के सिरताज।
मातृ हृदय की मधुर मृदुलता, बालक पन की विमल सरसता।
आत्मा की प्रत्यक्ष प्रबलता, हमने देखी आज।।'[3]

भारतीय कर्मवीरों के अतिरिक्त, पाश्चात्य वीरों का भी स्मरण किया गया। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'स्वदेश प्रेमी' में मैजिनी का आदर्श भी उपस्थित किया :—

'हर दिल में देश का है वह भक्ति बीज बोता,
बतलाता मैजिनी सा वह कर्मयोग बल है।
ले धूलि शिर चढ़ाना केवल है मूर्तिपूजा,
ले भाव पर चढ़ाता अपना वह शीश फल है'।[4]

राष्ट्रीय योद्धाओं के अतिरिक्त, सामाजिक एवं साहित्यिक व्यक्तियों की भी प्रशस्ति गायी गयी। श्री 'सनेही' ने रायबहादुर पं० वेणीमाधव द्विवेदी, वकील, उन्नाव

१—साप्ताहिक 'प्रताप', विजयादशमी विशेषांक, सन् १९१४; 'हृदय'।
२—वही, १३ मार्च, १९१६; पृष्ठ ७।
३—वही, २६ सितम्बर, १९२१; पृ० ८।
४—वही, १९ जून, १९१६; पृ० ६।

की मृत्यु पर शाकोद्गार प्रकट किए।[1] 'एक भारतीय आत्मा' ने 'स्वर्गीय पं० सत्य-नारायण कविरत्न' का काव्यात्मक स्मरण किया :

'वह कोमल काकली कलित सी सीखी वृन्दा विपिन निवेश,
मस्त कान्ह को कर देती हर हर लेती हृदय प्रदेश ।।
राष्ट्र भारती के उपवन में होती रहती थी वह कूक,
कर कर दिये क्रूरताओं के उसने सदा करोड़ों टूक ।
वह कोकिल उड़ गया-गया—वह गया-कृष्ण दौड़ो, लाओ,
वन देवी का धन लौटा दो सच्चे नारायण आओ ।।'[2]

सुकवि ठाकुर लक्ष्मणसिंह 'मयंक' के असह्य वियोग के उपलक्ष में, श्री 'रसि-केन्द्र' ने शोकगीति लिखी थी :

'कहाँ मिलेगी, ओजमयी अब कविता प्यारी ?
कहाँ मिलेगी हाय ! मधुर वाणी सुखकारी ?
प्रेम, सु-रस सौजन्य पूर्ण मन, कहाँ मिलेगा ?
हिन्दी माँ का श्रेष्ठ रत्न धन कहाँ मिलेगा ?
प्रभा गई वर रत्न की हा ! मयंक के संग में,
आत्मा जिनकी रंग गई स्वच्छ स्वर्ग के रंग में ।'[3]

हमारे प्राचीन तथा अर्वाचीन महापुरुषों तथा कर्णधारों की स्मृति में, 'प्रताप' के कवियों ने अनेकानेक रचनाओं का सृजन किया था । ये कविताएँ जीवन-वाटिका में उत्साह तथा प्रेरणा रूपी प्रसूनों को जन्म देने में पूर्ण समर्थ एवं सक्षम हैं ।

भविष्य का इंगित :

'प्रताप' के कवि पूर्ण आशावादी थे और भविष्य के प्रति आस्थावान । अत-एव, कविगण स्वाधीनता-प्राप्ति तक राष्ट्रीय सैनिकों को 'पैर पीछे न उठाने' का ढ़ाढ़स प्रदान करते हैं :

'जितना हमारा मार्ग वे अवरुद्ध करते जायेंगे,
मानो घृताहुति डालकर ज्वलिताग्नि-वेग बढ़ायेंगे ।
हम कठिन कारागार को भी स्वर्ग सम अपनायेंगे,
अपने अभीष्ट-स्थान से पीछे न पैर हटायेंगे ।'[4]

१—साप्ताहिक 'प्रताप', ३ जुलाई, १९१९; पृ० ८ ।

२—वही; १९ जुलाई, १९२०; पृ० ७ ।

३—वही ।

४—'राष्ट्रीय वीणा', श्री जगन्नाथ जोशी, इष्टपथ, सन् १९१६–१७; पृ० २३ ।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'स्वराज्य' के प्रति यह कामना की है :—

'परमात्मन् ! ऐसा कब होगा ?
जब होगा बस तब सब होगा ?
ब्रिटिश जाति का गौरव होगा उच्च हमारा सिर होगा।
वह इंग्लैण्ड और यह भारत,
होंगे एक भाव में परिणत,
दोनों के यश का दिगन्त में पुण्य पाठ फिर-फिर होगा।'[1]

बलिपंथी 'एक भारतीय आत्मा' भावी बालकों से यह आशा करते हैं :

'सादर सदुद्देश पर देखो, कर देंगे अपना बलिदान,
नेत्र-कटोरों से धोवेंगे, माँ के पद पंकज वलवान।
देखेंगे हम लोग, प्रणों के पूर पक्के पावेंगे,
वे जीवन के धन, मन मोहन, प्यारे बालक आवेंगे।'[2]

आत्म-सम्मान प्राप्त करने के लिए, श्रीमाधव शुक्ल भी सदुपदेश देते हैं :[3]

'धरें हाथ पर हाथ आलसी बनो न निन्दा खान,
छोड़ो दोष चरित्र सुधार लो जग उच्च स्थान।
चाहते जो तुम अपना मान॥'

दीप-मालिका के मंगलावसर पर, श्री 'रमेश' शुभाकांक्षा करते हैं :

'दीपक-देश प्रज्वलित कर दो,
हृदयों में प्रकाश नव भर दो,
तव स्वदेश की दीपमालिका का हो जावे नाम।
'भारत भाग्य ! विमुख मत होना,
कसें कसौटी पर जब सोना,
तेजवान उज्ज्वल तू होना, रखना रंग ललाम।'[4]

'एक प्रेमी' की 'अभिलाषा' है कि हृदयों पर देश प्रेम की मुहर अंकित हो जाय[5]:

'दो दिन दूनी प्रभा दिखा दो शुभ आशा सुर-चाप'

१—साप्ताहिक 'प्रताप'' विजयादशमी, सं० १९७३, राष्ट्रीय अंक, पृ० १०।
२—वही, १७ जुलाई, १९१६; पृ० ७।
३—वही, १८ सितम्बर, १९१६; पृ० ८।
४—साप्ताहिक 'प्रताप'' ३० अक्टूबर, १९१६; पृ० १०।
५—वही, २० नवम्बर, १९१६; पृ० ८।

हृदय-हृदय में लगा दो देश-प्रेम की छाप।
उदित नित रहे दिनेश-प्रताप ।।'

श्री मैथिलीशरण गुप्त महाशक्ति का आह्वान करते हैं :—

'अंधेरे में निज ज्योति जगा जा, आ जा,
भूले भटकों को पार लगा जा, आ जा।
तू प्रेम पुण्य में हमें पगा जा, आ जा,
मरने तक भय को दूर भगा जा, आ जा।
सब साम्य भाव से रहें, रंक क्या राजा,
आ जा आ जा, ओ महाशक्ति, माँ आ जा।[1]

श्री 'अकड़वेग' पूर्ण आशा के साथ यह उद्घोष करते हैं :

'अब दुख के दिन यह जायेंगे, दिन रात और ही आयेंगे।
फल साहस का हम पायेंगे, भारत को स्वर्ग बनायेंगे,
आयी फिर यारो होली है।'[2]

भविष्य के सम्बन्ध में, 'प्रताप' के कवियों की यही सुरीली तान थी :

'प्रिय स्वदेश सेवा हित अगनित दुख पर दुःख सहेंगे,
प्राण जायँ कर्त्तव्य हेत वरू, अनभल फिर न चहेंगे।
हम भी ऐसे ही न रहेंगे ।।'[3]

राजनीतिक पक्ष

'प्रताप' राजनीति प्रधान पत्र था ; अतएव, सम सामयिक राजनीतिक तथा राष्ट्रीय घटनाओं की प्रतिक्रियाएँ उस पर स्पष्ट प्रभाव डालती थी। वास्तव मे वह तात्कालिक वस्तुस्थितियों का मुकुट था। राष्ट्रीय जीवन के स्पन्दन, जागृत्ति, बलि-पंथ, अहिंसा, साहसिकता आदि के पक्ष, राजनैतिक क्षेत्र में 'प्रताप' के काव्य में उभर-कर आए हैं।

राष्ट्रीय जीवन का स्पन्दन : जीवन और जागृत्ति :

राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में हमारा जन-जीवन अत्यन्त संतप्त तथा गतिशील था। इस जीवन के स्पन्दन को 'प्रताप' के काव्य ने अपने में समेट लिया है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति हमारा कवि अत्यन्त सजग था। सन्

१—वही, होली सं० १९७५, राष्ट्रीय अंक, पृ० १।
२—वही, ५ मार्च, १९१७; पृ० ७।
३—वही, श्री ब्रह्मानन्द वर्मा, सच्चा सन्देश, २७ नवम्बर, १९१६; पृ० ८।

१९१४ ई० में तिलक जी का उग्र नेतृत्व प्राप्त हो रहा था। श्रीमती ऐनी बेसेण्ट भी सक्रिय हो गयी थी। प्रथम विश्व-युद्ध की काली घटाएँ गगन-मण्डल पर आच्छादित हो गयी। क्रान्ति, विप्लव तथा विद्रोह की भावनाएँ प्रबल हो पड़ीं। गाँधी जी ने अपना सत्याग्रह आन्दोलन दक्षिण आफ्रिका में प्रारम्भ कर दिया। सन् १९१६ का युग था। दण्ड तथा अत्याचारों की वृद्धि होते देख 'एक भारतीय आत्मा' की विह्वल वाणी फूट पड़ी :

'सृष्टि पर अति कष्ट जब होते रहे,
विश्व में फैली भयानक भ्रान्तियाँ'
दण्ड, अत्याचार, बढ़ते ही गये,
कट गये लाखों मिटी विश्रान्तियाँ,
गद्दियाँ टूटी, असुर मारे गये,
किस तरह ? होकर करोड़ों क्रान्तियाँ,
तब कहीं हैं पा सकीं मातामही,
मृदुल-जीवन में मनोहर शान्तियाँ॥'[1]

विश्व-युद्ध का प्रभाव इन पंक्तियों में अंकित है :

'घन गर्जन कर धाँय-धाँय गोले चलते हैं।
होता उल्कापात कि भीषण बम गिरते हैं'
डर के मारे भगे चील कौवे फिरते हैं।'[2]

रूस की राज्य क्रान्ति का गहन प्रभाव भी हमारे कवियों पर पड़ा। श्री 'त्रिशूल' ने साम्यवाद की विचारधारा का एक रूप प्रस्तुत किया :

'समदर्शी फिर साम्यरूप धर जग में आया,
सकता का सन्देश गया घर-घर पहुँचाया।
जनी रंक का ऊँच-नीच का भेद मिटाया,
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया चिल्लाया।
काँटे बोये राह में फूल वही बनते गये,
साम्यवाद के स्नेह में सुजन सुधी सनते गये।'[3]

सन् १९१६ से १९१८ ई० तक काव्य-जगत में 'होमरूल आन्दोलन' की भारी धूम रही। कवि-जगत ने पूर्ण समर्थन के साथ इस आन्दोलन की पुष्टि की। श्रीमती

१—'समर्पण', पृ० ५२।
२—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री 'त्रिशूल', भयंकर युद्ध, १ मई, १९१६; पृ० ८।
३—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृ० १९३ से उद्धृत।

ऐनी बेसेण्ट की स्तुति गाई गयी। उनकी वन्दना श्री बेनीमाधव तिवारी ने की :—

'उत्साहित क्या करूँ कि जब उत्साह स्वयं है,
क्या धीरज को कहूँ कि जब उर धैर्य अगम है।
त्यों साहस की बात कि जिसमें रेखा प्रथम है,
जय ऐनी बीसेण्ट ! तुम्हारी दम से दम है॥
मत समझो हम हैं पृथक्-देश आपके साथ है,
काजी जी के पुत्र का यह तो पहिला हाथ है।'[1]

श्री 'हृदय' ने भी 'पंचरत्न' शीर्षक कविता में श्रीमती बेसेण्ट का गुण-गान किया :—

'परदेसिनी ह्वै न्याय हेतु जिहि यह पथ धारयो
भारत-कष्ट विलोकि जौन निज तन, मन वार दो।
आपु विपति बहु भोगि देस जन सावधान करि,
सत्स्वराज्य आदेस भारतनि कर्णरन्ध्र भरि।
अब जूझि रही जो स्वत्व हित, न्याय अस्त्र लै अग्रसर,
धनि सरल 'हृदय' निर्भय प्रकृति, श्री 'बिसेन्ट' देवी प्रवर'

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने तत्कालीन स्थिति का चित्रण किया :—[2]

"अधिकारी कहते हैं हम से—'तुम स्वराज्य के योग्य नहीं,
बिना योग्यता के शासन क्या मिल सकता है कभी कहीं?
बन्द करो इस आन्दोलन को, वृथा न हमसे बैर करो,
प्रथम तैरना सीखो बावा, फिर पानी में पैर धरो।'
किन्तु, बिना पानी में पैठे कैसे तैरा जाय भला?
अधिकारी हा रखते होंगे ऐसी कोई सिद्धि कला!
और नहीं तो-भव सागर भी हमें तैरना आता है,
'होमरूल' तो तुच्छ चीटियों तक में पाया जाता है।"[3]

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने भी भारत को ही सुख स्वर्ग माना :

'करेंगे क्या लेकर अपवर्ग, हमारा भारत ही सुख-स्वर्ग,
नहीं है किसी लक्ष्य पर ध्यान, चाहिए केवल स्वत्व समान।
इसे तजकर क्या तरु निर्मूल, करेंगे लेकर किंशुक फूल,

१—साप्ताहिक 'प्रताप', वीर वन्दना, २ जुलाई, १९१७; पृ० ५।
२—वही, होली, सं० १९७५, राष्ट्रीय अंक, पृ० १९।
३—वही, स्वराज्य की योग्यता, ५ नवम्बर, १९१७; पृ० ६।

प्रकृत पुरुषों का जीवन-मूल, चाहिए केवल घर का रूल।"[1]

कांग्रेस अधिवेशन में भी, पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की कविता 'न ले बहिस्त भी हम 'होमरूल' के बदले' गूंज उठी थी :

'यह जोश पाक जमाना दबा नहीं सकता,
रगों में खूँ की हरारत मिटा नहीं सकता,
यह आग वह है जो पानी बुझा नहीं सकता,
दिलों में आके यह अरमां जा नहीं सकता,
तलब फिजूल है कांटे की फूल के बदले,
न लें बहिश्त भी हम 'होमरूल' के बदले॥'[2]

श्री जगन्नाथ जोशी ने भारतीयों की योग्यता को प्रमाणित करते हुए, नौकरशाही को उत्तर दिया था :

'सम्प्रति हमने किया कमिश्नर तक के पद का काम,
स्थानापन्न चीफ जस्टिस तक रहा हमारा नाम।
सर सत्येन्द्र, शंकरन नैयर, मिस्टर अली इमाम,
किया इन्होंने कौंसिल तक में अपना कार्य ललाम।
बड़े-बड़े अँगरेजों तक ने गाया इनका गान,
फिर भी हमको योग्य न कहना, है अवश्य अज्ञान।'[3]

सन् १९१६ में गाँधी जी के भारत आगमन के पश्चात्, देश में 'जीवित जोश'[4] आ गया। उनके स्वागत में अनेक गीत लिखे गए।[5] सन् १९१७ में, बादशाह सलामत ने इस आशय की बात कही कि हमारे हाथ में भारत का भाग्य सुरक्षित है। हम उसे अपने पर ले जाने के लिए सहयोग कर रहे हैं।[6] उसकी प्रतिक्रिया 'एक

१—'स्वराज्य वीणा' प्रतिज्ञा, पृ० १५।

२—साप्ताहिक 'प्रताप', १५ जनवरी, १९१७; पृ० ६।

३—वही, उच्चपदों पर भारतवासी, ११ मार्च, १९१८; पृ० ६।

४—वही, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, जीवित जोश, विजया दशमी, सं० १९७३; पृ० ४।

५—'राष्ट्रीय वीणा': प्रथम भाग—(क) श्री सत्यनारायण कविरत्न, श्री गाँधी स्तवन; (ख) श्री 'सनेही', महात्मा गाँधी का स्वागत, पृ० ९७ (ग) श्री 'चक्र सुदर्शन'—महात्मा गाँधी के छुटकारे पर, पृ० ९९ आदि।

६—'माता', पृ० ८१।

भारतीय आत्मा' की 'श्रेय बन्धन' शीर्षक कविता में दिखायी दी :—

'हाँ वे हमारे साथ हैं, पकड़े जकड़कर हाथ हैं,
हम दीन हीन अनाथ हैं, वे आप अपने नाथ हैं।
हम बन्धु ऐसे पा रहे, 'भागो' पुकार डरा रहे,
हम धीरता से जा रहे, वे हैं हमें ले जा रहे।
उनके हृदय में चाह है; अपने हृदय में आह है;
कुछ भी करें तो शेष बस, यह बेड़ियों की राह है[1]।'

'रौलेट बिल'[2] तथा 'जलियाँवाला बाग हत्या काण्ड'[3] ने देश भर में हलचल मचा दी :—

'नहीं लिया हथियार हाथ में, नहीं किया कोई प्रतिकार,
'अत्याचार न होने देंगे' बस इतनी ही थी मनुहार।
सत्याग्रह के सैनिक थे ये, सब सहकर रहकर उपवास,
वास बन्दियों में स्वीकृत था, हृदय-देश पर था विश्वास।'[4]

'डायर की होली' पर श्री छुन्नीलाल मेहरोत्र का आक्रोश फूट पड़ा :

'डायर कैसी होली मचाई,
अमृतसर जलियान बाग में गोली खूब चलाई।
बाल वृद्ध कोउ वचन न पायो शोणित धार बहाई,
झूम गई डायर शाही।'[5]

सन् १९२० में लोकमान्य की मृत्यु तथा गाँधी जी के असहयोग शंखनाद ने काव्य में अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त की। 'श्री राष्ट्रीय पथिक' ने 'सत्याग्रह' की प्रतिज्ञा की—

'करने दे, हे हृदय ! देशहित मुझे आत्मबलि करने दे।
मरने दे, प्रिय जन्म भूमि के अर्थ, मुदित हो भरने दे।'[6]

१—साप्ताहिक 'प्रताप', २२ सितम्बर, १९१९; पृ० ८।
२—वही, श्री 'त्रिशूल', रौलट बिल का शिकंजा, १० मार्च, १९१९; पृ० ७।
३—वही, श्री 'कुसुम', जलियाँवाला बाग, १२ जनवरी, १९२०; पृ० ८।
४—वही, जलियाँवाला की वेदी, सन् १९२०।
५—वही, ९ फरवरी, १९२०; पृ० ८।
६—साप्ताहिक 'प्रताप', १० मार्च, १९१९; पृ० १७।

असहयोग का जय जयकार व्योम में गुंजायमान हो पड़ा :

'सत्य स्वदेशी व्रत हो प्यारा, हिन्दू हिन्दी हिन्द दुलारा,
गूंजे असहयोग जयकारा, सुख स्वराज्य सत्वर दरशाम्रो।
दीपावलि ! दुख दूर भगाम्रो ।।'[१]

मातृभूमि पर पार्थिव गात न्यौछावर करने की प्रबल भावना ही 'उज्ज्वल अन्त' की संज्ञा से विभूषित होती है :

'राम नाम' की जगह रथी पर होगा, जब 'स्वराज्य' का नाद,
शव भी मेरा पुलकित होकर, भूलेगा सब पूर्ण विषाद।
भारत की त्रिकोण आकृति की चिता सेज जब होवेगी,
मेरा 'उज्ज्वल अन्त' देख यह माँ भी सुधि बुधि खोवेगी।'[२]

सत्याग्रह का सार कविता में आया :—

'न मारो किसी को मरो सत्य पर तुम,
सभी कुछ निछावर करो सत्य पर तुम।
अमर है वही नाम जिसका बना है,
कलेवर भला नित्य किसका बना है ?
उठो भारतीयों मनुजता सिखादो।
सुखद सत्य आग्रह सभी को सिखा दो ।।'[३]

कवि-गण 'सत्य के समर में' आ डटे :—[४]

'साध नहीं मेरी यह रहूँ राज महलों में,
बनी हो हमारो पर्णकुटी ही डगर में।
भोजनों के लिये कच्चे चने ही चबाने को हों,
खादी के पवित्र वस्त्र होवें देह भर में।
विचरता रहूँ सदा टोह में स्वतन्त्रता की,
अकर्मण्य होके कभी बैठूं नहीं घर में।

१—वही, श्री हरिश्चन्द्र देव विद्यार्थी, दीपमालिका, १५ नवम्बर, १९२०; पृ० ८।

२—वही, श्री 'भारत भक्त', उज्ज्वल अन्त, १० सितम्बर, १९१७; पृ० ६।

३—श्री रामचरित उपाध्याय, 'जागृति', राष्ट्रभारती, पृ० २२।

४—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा', सत्य के समर में, ४ जून १९३३।

कामना यही है बस, 'लछ्मीप्रसाद' अब,
बाधा नहीं पड़े मेरे 'सत्य के समर में ।।''

सरकारी भक्तों की भी खबर ली गयी :

'मेम्बरी कौंसिल की मुझको नाथ अब दे दीजिये,
रायसाहब, खाँ बहादुर आदि भी कुछ कीजिये ।
हाँ में हाँ सर्कार की मैं ही मिलाऊँगा अहो,
देश का घुट जाय दम भी तो जरा परवा न हो ।'[1]

'मत के भिक्षुक' की भी भर्त्सना की गयी :—[2]

'न हो ग्रेजुएट अक्ल तो है नहीं कम,
गलत है कि हममें नहीं है जरा दम ।
महाजन हैं हम एक ही सेठ हैं हम,
हमारा अदब मानता एक आलम ।
मुझे वोट देना, मुझे वोट देना ।।'

सन्देह होने पर ही व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया जाता था । इस विचित्र न्याय की स्थिति का उद्घाटन श्री मैथिलीशरण गुप्त ने किया है :—

'हथकड़ी भर दी पुलिस ने एक मेरे मित्र को;
किन्तु छोड़ दिया पकड़ कर उस उदार चरित्र को ।
दोष पूँछा तो कहा—'कुछ भी नहीं, सन्देह था ।'
खूब ! देखो न्याय में सन्देह के इस चित्र को ।।'[3]

महायुद्ध की समाप्ति पर, अमेरिका में हुई सन्धि परिषद् में भारत के भाग्य-निर्णय की प्रतिक्रिया को गुप्त जी ने व्यक्त किया है :

'उस सन्धि परिषद् के नियम हैं ज्ञात भारतवर्ष में,
पर भाग्य निर्णय पर लगी है घात भारतवर्ष में ।
होगी कभी न अमेरिका की बात भारतवर्ष में
जब दिन वहाँ होगा, रहेगी रात भारतवर्ष में ।।'[4]

१—वही, उम्मेदवार, कौंसिल की मेम्बरी, ९ अप्रैल, १९१७; पृ० ५ ।
२—वही, श्री 'त्रिशूल', वोट का भिखारी, १३ मार्च, १९१६; पृ० ७ ।
३—वही, न्याय में सन्देह, १९ मई, १९१९; पृ० ८ ।
४—वही, भारत का भाग्य निर्णय, १२ मई, १९१९; पृ० ६ ।

इस प्रकार, राष्ट्रीय तथा वैदेशिक घटनाओं की समग्र प्रतिच्छायाएँ, 'प्रताप' की कृतियों पर आद्यन्त विद्यमान बनी रही। जीवन का स्पन्दन, काव्य को व्यावहारिक भूमि प्रदान करता रहा।

बल और बलि :

'प्रताप' ने बलि-पंथियों के दल के निर्माण में प्रधान भाग लिया। बलिदान से ही स्वाधीनता को सन्निकट लाने का मूलमंत्र माना गया। लोकमान्य तथा क्रांतिकारियों के प्रभाव के कारण, उग्रता तथा विप्लव की भावनाओं को भी प्रधान स्थान प्राप्त हुआ। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा है कि बलि और गीत, ये, युग की बीहड़ भूमि पर, एक दूसरे के पूरक पंथी हैं।[1]

'प्रताप' के कवियों ने बलि को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया। राष्ट्र-वीरों का हृदय गाया करता था :

'मातृभूमि के हित जो आवे मोददायिनी कजा वहीं।
उसी मृत्यु में मिलता है क्या जीने का समजा नहीं ?'[2]

राष्ट्र का मानस इन पंक्तियों में उबलकर उफना पड़ा है। सत्याग्रह के शंख-नाद के समय, मातृभूमि के बलिवेदी पर, चढ़ जाने के लिए अनेक व्यक्ति गतिशील हो गए :—[3]

'कोने-कोने में सत्याग्रह का जय-शंख बजाने दो,
विपदाओं के गिरिश्रृंखों को ठोकर से ठुकराने दो।
स्वतन्त्रता के युद्ध-स्थल में मरते हैं, मर जाने दो,
जन्म-भूमि के श्री चरणों में जीवन-पुष्प चढ़ाने दो।
देवों को हर्षाकर नभ से फूलों को बरसाने दो,
मातृभूमि की बलिवेदी पर मुझको बलि चढ़ जाने दो।'

'एक भारतीय आत्मा' के 'पुष्प की अभिलाषा' का भी आख्यान है। चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि 'एक बार स्वर्गीय सुभद्राकुमारी चौहान के पति स्वर्गीय ठाकुर लक्ष्मण सिंह जब मुझसे मिलने बिलासपुर—जेल आए ; तब उन्होंने यह संदेशा दिया कि जिस दिन मैं जेल से निकलूँ, उसी दिन भाई गणेशशंकर जी विद्यार्थी चाहते हैं कि मैं 'प्रताप'

१—'माता', भूमिका, पृ० ३।
२—साप्ताहिक 'प्रताप', एक भक्त, २५ फरवरी, १९१८; पृ० ६।
३—वही, श्री सत्यनारायण पाण्डेय 'सत्येन्द्र', बलिदान, ५ नवम्बर, १९२३; पृ० ८।

के लिए अपना सन्देशा भिजवाऊँ। 'प्रताप' सदैव मेरे स्नेह, प्यार और अभिमान की वस्तु रहा है।'[1] बलि-पथ के महान् गायक ने, बलि-देवी की उपासना में १८ फरवरी, १९२२ ई० को अपना पुष्प समर्पित किया था :

'चाह नहीं मैं सुर बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी की माला छिंद प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस-पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाए वीर अनेक।'[2]

मातृभूमि के चरणों में अपना जीवन-फूल समर्पित करके, कवियों ने अपने को धन्य माना :—

'आने दे, दुख के मेघों की घटा घिर आने दे,
जल ही नहीं, उपल भी उसको लगातार बरसाने दे,
कर कर के गम्भीर गर्जना, भारी शोर मचाने दे;
उससे कह दे,—गहरे झोंक, तू जितने मनमाने दे,
किन्तु, कहे देता हूँ तुझसे—सब जायेंगे भूल,
तेरे चरणों पर ही अर्पित होगा—'जीवन फूल'।।'[3]

बलि-पथ के गीतों में राष्ट्र की आत्मा की पुकार थी। देश के हेतु, यातनाएँ, सहन करना और कारागृह जाना, श्रेयस्कर प्रतीत होता था। फलतः बन्दियों तथा कारागृहों के विषय में भी अनेक रचनाओं का निर्माण हुआ। श्री रामानुज ने 'स्वाधीन कैदी' में एक चित्र प्रस्तुत किया है :—

'हथकड़ी, बेड़ी, दिवालें जेल की,
दीर्घ पिंजरे, कठघरे भी हैं खड़े।
और जितनी रोक सम्भव थी हुई,
फाटकों पर शस्त्र धर रक्षक अड़े।

१—श्री माखनलाल चतुर्वेदी——साप्ताहिक 'ग्राम्या', बन्दी जीवन और मेरी रचनाएँ; १५ अगस्त, १९६०; स्वतन्त्रता विशेषांक, पृ० ५।
२—साप्ताहिक 'प्रताप', १० अप्रैल, १९२२; पृ० ८।
३—वही, 'एक भारतीय आत्मा', जीवन फूल, विजयादशमी, सं० १९७३; राष्ट्रीय अंक, पृ० ४।

अंग काटे औ' जलाये भी गये,
अन्न खाने को नहीं, हाँ, मार है।
रात को सोने कभी देते नहीं,
जर्जित स्वर से पड़ा बीमार है।'[1]

दक्षिण आफ्रिका प्रवासी श्री भवानीदयाल ने भी कारागृह के मर्म का उद्‌घाटन किया है :

'तब ही से मैंने मर्म कैद का जाना।
फिर कभी न मन में सोच क्लेश का माना॥
वह जेल द्वार फिर मुझे स्वर्ग सम भाया।
जिसने दुख बेड़ी काट सुदिन दिखलाया॥'[2]

बलि-पंथियों ने बेड़ियों को बजा-बजाकर, नूतन राष्ट्रीय राग की सृष्टि की :—

'हमारे खूँ से जो हाथ रंग कर थे अब तलक होलियाँ मनाते।
बुला के उनको मुँह लाल करके, गुलाल से, यो मनायें होली।
ये तुफ है होली मनाना घर पर अजीज जब जेल में हैं अपने।
चलो जी साथ उनके बेड़ियों को बजा-बजा करके गायें होली॥'[3]

बलि वेदी तथा कारागृह के गीतों ने हिन्दी-काव्य जगत् को नवीन आयाम प्रदान किए हैं।

अहिंसक राष्ट्रीयता :

महात्मा गाँधी ने असहयोग-आन्दोलन को हमारे राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुकूल संजोया तथा बनाया। उसे आध्यात्मिक तथा स्तरीय रूप प्रदान किया गया। गान्धी जी की आत्मिक शक्ति, नेतृत्व और जनता के पूर्ण सहयोग ने हमें निश्चित मार्ग का सात्त्विक पथिक बना दिया। गुप्त जी ने इस आन्दोलन को 'विचित्र संग्राम'[4] की संज्ञा से विभूषित किया है। सत्याग्रही तथा देशभक्त को देवता से भी अधिक पूज्य माना गया।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने 'सत्याग्रही' के मूल तत्त्व पर निम्न रूप में प्रकाश डाला है :

१—साप्ताहिक 'प्रताप', विजया दशमी, सं० १९७३, राष्ट्रीय अंक; पृ० २८।
२—वही, नैटाल का कारखाना, ३ नवम्बर, १९१९; पृ० ८।
३—वही, बहादुर, होली, १३ मार्च, १९२२; पृ० १।
४—साप्ताहिक 'प्रताप', ९ जनवरी, १९२२; पृ० ८।

'हाथ पाँव जोड़े, समझाया, रह-रह उन्हें चिताया खूब,
'अन्ध कूप में गिरूँ-गिराऊँ-झुंझलाया, धमकाया खूब,'
माना नहीं लगाया तन भी,——शक्तिवान हैं हटा दिया,
रहा रोकता,-हृदयों में से, कितनों ही को कटा दिया।
अब भी शस्त्र रहित प्रस्तुत हूँ,——रोकूँगा, मारे-स्वच्छंद,
मेरे रक्त, स्वेद, आँसू से—उन्हें, विश्व को हो आनन्द।'[1]

श्री लक्ष्मणसिंह ने 'मातृ-सेवा' कविता में देश-भक्त को देव-भक्त से अधिक श्रेय प्रदान किया है :

'देवभक्तों से बड़ा है देशभक्त,
जो कि करता है करोड़ों को विमुक्त।
अतएव, घंटा मातृ मंदिर का अभी,
देवो बजा जिससे कि जग जाये सभी॥
इस जन्म भू की भक्ति का फिर नाद हो,
स्वातन्त्र्य सुख का फिर यहाँ आल्हाद हो।
हर्ष की जिसके मनोहर माधुरी।
निज वंशजों में भी रहे संतत भरी॥'[2]

अहिंसक राष्ट्रवाद की धारा ने आपत्तियों को सहन करने तथा बलिदान की भावना को पुष्ट किया :—

'दूर उसे भी देंगे हम यदि बाधक बने समुद्र,
बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत भी समझेंगे हम क्षुद्र,
उद्देशों को पूर्ण करेंगे, यही रहेगा ध्यान,
करना पड़े भले ही हमको प्राणों का बलिदान।
जो कुछ भी करणीय हमें है उसे करेंगे पूर्ण,
मार्ग कण्टकों को पैरों से कर देंगे हम चूर्ण,
जीवन-भर हम किया करेंगे ऐसे यत्न अशेष,
जिन से फिर सगर्व ऊँचा सिर करे हमारा देश॥'[3]

(सियारामशरण गुप्त : 'वांछा')

१—वही, २ जून, १९१९; पृ० ८।

२—वही, ३१ जनवरी, १९१९; पृ० ७।

३—साप्ताहिक 'प्रताप', विजयादशमी, सं० १९७३, राष्ट्रीय अंक, पृ० १४।

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय 'राष्ट्रीय झण्डे का महत्त्व' भी आँका गया। तिरंगे झण्डे पर बीसियों कविताओं का सृजन किया गया। लक्ष्मी प्रसाद 'रमा' के शब्दों में :—

'तीन रंग त्रैगुण के इसमें; गाँधी इसे सम्हारा है,
धर्म-अर्थ अरू मोक्ष प्रदाता, झंडा विमल हमारा है,
इसे विलोक देश भक्तों का, खून उबलने लगता है।
आत्म-शक्ति जागृत होती है, कायरपन सब भगता है।
स्वाभिमान-स्वातन्त्र्य भाव का, इस पर रंग झलकता है,
तन-मन-धन अर्पण करने को, जोश हृदय मे जगता है,[1]

झण्डा-गीतों के इतिहास में, 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' का स्थान सर्वोपरि है। गणेश जी की प्रेरणा से, इसके रचयिता श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने मार्च, १९२४ ई० को इसको जन्म दिया। भारत में इतना लोकप्रिय गीत आज तक कोई भी नहीं हुआ। बम्बई में आयोजित झण्डा गीत-प्रतियोगिता में इसे प्रथम पुरस्कार मिला और इसे राष्ट्र-गीत घोषित किया गया था।[2] इसकी प्रथम पंक्ति--उस युग के बच्चे-बच्चे को कण्ठस्थ थी :

'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।'[3]

स्वदेशी आन्दोलन ने भी हमारे कवियों को काव्य-रचना की विपुल तथा समृद्ध सामग्री प्रदान की। आत्मावलम्बन तथा स्वाभिमान की पावन भावनाओं को इसी आन्दोलन से बल प्राप्त हुआ। विदेशी वस्त्रों तथा वस्तुओं का नितान्त बहिष्कार किया गया। स्वदेशी का गुण-गान किया गया :—

'हरएक के दिल में हो प्रभो प्यार स्वदेशी,
सरकार स्वदेशी हो, हो दरबार स्वदेशी।
हर शहर गली कस्बा हो बाजार स्वदेशी,
आवाज दें अब हर दरो-दीवार स्वदेशी।
करतार हो, संसार में विस्तार स्वदेशी।'[4]

१—वही, १५ अक्टूबर. १९२३।

२—लक्ष्मीनारायण दूबे--'ज्योत्स्ना', 'झंडा ऊँचा रहे हमारा : विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' के अमर स्रष्टा : श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'; कांग्रेस अंक, जनवरी, १९६२; पृ० ५३-५४।

३—साप्ताहिक 'प्रताप', फरवरी; १९२५।

४—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री महिपाल बहादुरसिंह (मेसोपोटामिया), स्वदेशी, २९ दिसम्बर, १९१९; पृ० ८।

श्री राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' ने 'स्वदेशी कुण्डल' की रचना की।[१] श्री गंगा प्रसाद विशारद ने 'चर्खा' की महिमा बखानी :—

'चर्खा न्यारा है, सबका प्यारा है।
चक्र सुदर्शन है यही, रक्षक भारत-लाज,
गाँधी के कौशल्य से प्रकटित घर-घर आज।।'[२]

'गाँधी टोपी' की भी महिमा गायी गयी :—

'किश्ती नुमां, वजन में हलकी, सिर पर शोभा देती है।
आनन पर प्रदीप्ति लाती है, सबका मन हर लेती है।
इसे लगाते ही सिर ऊपर, उर पवित्र हो जाता है।
स्वाभिमान का रंग झलकता, कायरपन खो जाता है।'[३]

'खादी की महिमा' भी अंकित की गयी :—

'महिमा तेरी अपार, खादी सुखकारी।
सुन्दर तव शुद्ध रूप, मोहित लख रंक-भूप,
सितता तेरी अनूप, फैली उजयारी।।'[४]

'प्रताप' की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा ही उसका प्राण है।

अनुवाद-कार्य

श्री रायकृष्णदास के शब्दों में साहित्य में सन् १९१२ से १९१६ तक को हम 'गीतांजलि' की धूम का युग कह सकते हैं।[५] 'प्रताप' के कवि भी रवीन्द्र से काफी प्रभावित हुए। श्री सत्यनारायण 'कविरत्न' ने रवीन्द्र की वन्दना भी की।[६] सन् १९१५ में 'गीतांजलि' (अंग्रेजी) के गीतों का अनुवाद (गद्य) हुआ और 'प्रताप' प्रेस से 'हिन्दी गीतांजलि' के रूप में वह प्रकाशित हुआ।[७] 'सनेही' जी ने 'गीतंजलि' के अनेक

१—वही, २ अगस्त, १९१५, पृ० ६।
२—वही, ३० जुलाई, १९२३; पृ० ८।
३—वही, श्री 'रमा', ३० जून; १९२९।
४—वही, १६ जून, १९२९।
५—आस्वाद' (संचयन), मैथिलीशरण गुप्त की भूमिका।
६—'राष्ट्रीय वीणा', प्रथम भाग, पृ० १०१।
७—'हिन्दी कविता में युगान्तर', अन्तरंग दर्शन, रवीन्द्र की छाया में, पृ० २४६।

गीतों का अनुवाद किया जो कि 'प्रताप' में यथा-समय प्रकाशित हुए। कतिपय गीतों के शीर्षक 'मंगलकामना',[१], 'याचना'[२] 'अन्य प्रेम',[३] ईश्वरावाहन[४], 'देवालय'[५] आदि हैं।

'गीतांजलि' के एक गीत में स्वतंत्रता के जागरण की पुनीत प्रार्थना की गयी है :

"Where the mind is without fear and the head is held high; where knowledge is free, where the world is not broken into Fragments by narrow domestic walls; where words come out from the depth of truth;

Where tireless striving stretches its arm towards perfection; where the clear stream of reason has not lost its way into the dreary desert sand of dead habit; where the mind is led forward by thee into ever widening thorght and action—Into that heaven of freedom my father let my country awake."[६]

'सनेही' जी ने इसका हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत रूप में किया है :

'जहाँ निडर मन शिर ऊँचा हो, बिना बन्ध मिलता हो ज्ञान।
जहाँ तंग दीवारें टुकड़े-टुकड़े, करें न विश्व महान्।
जहाँ सत्य की गहराई से, शब्द निकलते प्यारे हों।
जहाँ अथक उद्योग पूर्णता की दिशि बाहु प्रसारे हों,
जहाँ विवेक विमल का सुन्दर, बहता स्रोत सुहाया हो।
रूढ़ि रूप मरुभूमि भयानक में जाके न समाया हो।
जहाँ सदा विस्तीर्ण विचारों और कर्म में मन रत हो।
हे पितु ! उसी स्वतन्त्र स्वर्ग में, जगता प्यारा भारत हो।'[७]

कवीन्द्र रवीन्द्र ने भारत-भक्ति की प्रेरणा दी थी :

'रुद्धद्वारे देवालयेर कोने केन आछिस ओरे !

१—'राष्ट्रीय वाणी,' प्रथम भाग, पृ० ४२।
२—वही।
३—वही, पृ० ४३।
४—वही, पृ० ४४।
५—वही।
६—'गीतांजलि', ३५।
७—'राष्ट्रीय वीणा', प्रथम भाग।

नयन मेले देख, देखि तुइ चेये देवता नाइ धरे !
तिनि गेछेन जेथाय भाटि भेङ करचे चाषाचाष ।।'[१]

उपर्युक्त पद्यांश को 'सनेही' जी ने हिन्दी का प्रस्तुत स्वर प्रदान किया :

'करते हो किस इष्टदेव का, आँख मूँन्दकर ध्यान ?
तीस कोटि लोगों में देखो, तीस कोटि भगवान ।
मुक्ति होगी इस साधन से, भजो भारत को तन, मन से ।।'[२]

'सनेही' जी ने 'शब्दानुवाद' की अपेक्षा 'भावानुवाद' को अधिक प्रश्रय प्रदान किया है जो कि अनुवाद-कार्य के लिए श्रेयस्कर भी है। कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रसिद्ध राष्ट्रगीत 'विजयी भाग्य विधाता'[३] के हिन्दी-रूपान्तर में भी 'सनेही' जी ने मूल भावों को सुन्दर तथा सुरक्षित रूप में प्रस्तुत किया है। 'सनेही' जी के अतिरिक्त श्री रामानुज दास ने भी श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक पद्य के आधार पर 'स्वर्ग स्वातन्त्र्य' की रचना की।[४]

बंगभाषा के अतिरिक्त, हमारे कवियों की दृष्टि मराठी तथा अँग्रेजी भाषा की ओर भी गयी। एक मराठी कविता के आधार पर 'बायें हाथ की अपील' रचना लिखी गयी।[५] इसी प्रकार, रूस की नयी जागृत्ति पर, एक अँग्रेजी कविता के आधार पर, 'प्रकृति-सन्देश' शीर्षक कविता लिखी गयी :

'स्वतन्त्रते ! तुम आओ, आओ, शक्ति खड्ग परसान धरो ।
हो सगर्व तव योग्य गीत हो बैठ कण्ठ में गान करो ।
आओ, आओ, जन सुख दायिनी देवी स्वतंत्रते आओ,
तनी हुई मेरी भौंहों के ये बल 'विकट' मिटा जाओ ।'[६]

कला-पक्ष

'प्रताप' के कवि मूलतः अनुभूतिशील कवि थे। भावनाओं तथा उसकी अभिव्यंजना को ही उन्होंने प्रमुख महत्त्व प्रदान किया। कला-कौशल की ओर उनका विशेष ध्यान नहीं था।

१—'गीतांजलि।'
२—'राष्ट्रीय वीणा', प्रथम भाग।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', ११ फरवरी, १९१८; पृ० ६।
४—वही, ३० जून, १९१९; पृ० ८।
५—वही, २१ फरवरी, १९१६; पृ० ७।
६—साप्ताहिक 'प्रताप', ५ नवम्बर; १९१७, पृ० ६।

प्रकृति-चित्रण :

देशभक्ति तथा राष्ट्रोपासना के रहते हुए भी, कवियों की दृष्टि प्रकृति की ओर गयी। प्रकृति का उन्होंने आलम्बन तथा उद्दीपन के रूप में चित्रण किया है। द्विवेदी-युग में प्रकृति के माध्यम से उपदेशात्मक वृत्ति को प्रश्रय प्रदान किया गया था। श्री चन्द्रबली मिश्र की 'ऊषा' शीर्षक कविता में, उपदेश की वाणी फूट पड़ी है :

'देखो, सज्जन ! ऊषा सुन्दरि, मूर्त्ति मोहिनी दिखा रही है,
'परोपकार नित रहना' यह हम सब को सिखा रही है।'[१]

श्री जगन्नाथ जोशी की 'सभ्य होली' में प्रकृति का सीधा-सादा वर्णन प्रस्तुत किया गया :—

'मृदुल रसाल पर नवल मंजरी अनुपम छटा दिखाती है।
उसके ऊपर कोकिल बैठी श्रवणामृत बरसाती है।
पलाश-पुष्प भी कैसा भीषण दृश्य दिखाते हैं,
धधक रहा दावानल वन में ऐसा भ्रम उपजाते हैं।।'[२]

'प्रताप' के कवियों का, मूलतः राष्ट्रीय रूप होने के कारण उनका प्रकृति-चित्रण भी राष्ट्र-परक हो गया है :

'गुलाब, चम्पा, चमेली, जूही सबों का जोबन निखार आया,
वसन्त बागों में वृक्षगन को सँवार आया सिंगार आया।
गले मिले हिन्द के निवासी निकालें गर हो गुबार आया,
पियें पिलायें शराबे उल्फत कि वक्ते फस्ले बहार आया।
स्वजाति सेवी स्वदेश प्रेमी स्वधर्म्म पै जिनको प्यार आया,
चल बढ़े कि वे वसंत खेले यही प्रकृति का है तार आया।।'[३]

'मालव मयूर' ने 'वसन्त का स्वागत' भी राष्ट्रोत्थान के रूप में किया है :

'बस वसन्त अब भारत-तरु पर विकसा दो नव जीवन-फूल
स्फूर्त्ति, शक्ति, आशा की त्रिविधा वायु बहा दो तुम अनुकूल।
प्रबल पराक्रम रवि की किरणें फिर उसको फलवान् करे,
जिससे हो अभीष्ट भारत का सिद्ध, जगत गुणगान करे।'[४]

१—वही, ६ अप्रैल, १६१७; पृ० ५।
२—वही, २० मार्च, १६१६; पृ० ७।
३—साप्ताहिक 'प्रताप' रायबहादुर चौधरी महेन्द्रसिंह, वसंतागम, ७ फरवरी, १६१६; पृ० १०।
४—वही, २६ जनवरी, १६१७; पृ० ८।

'प्रताप' के प्रकृति-चित्रण में द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियाँ एवं राष्ट्र-परक रूप दृष्टिगोचर होता है।

व्यंग्य-काव्य :

'प्रताप' के काव्य में व्यंग्य-विद्रूप, अन्योक्तियाँ, उपालम्भ आदि के दृष्टान्त यत्र-तत्र-सर्वत्र फैले हुए हैं। कवियों ने अपने आक्रोश को व्यंग्य के माध्यम से तीक्ष्ण रूप में प्रकट किया है। कहीं नौकरशाही की भर्त्सना की है और कहीं पराधीन भारत तथा पराधीनता के विषय में अपने उद्गार प्रकट किए गए हैं। आधुनिक युग पर भी वाक्य-बाण कसे गए हैं।

कवियों को अन्योक्ति-लेखन की शैली विशेष प्रिय रही। श्री 'सनेही' ने चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, पलंग, दुष्ट, श्वान तथा अग्नि पर अन्योक्तियाँ लिखीं।[१] पराधीन भारत पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की गयी। 'परवश भ्रमर',[२] 'पराधीन श्वान',[३] 'संकट पथ'[४] आदि के रूप में अन्योक्तियाँ लिखी गयी। 'कीर' के रूप में दास भारत का चित्र खींचा गया।[५] 'बुलबुल' के रूप में, श्री बलदेव प्रसाद मिश्र का, पराधीन भारत का रूपक द्रष्टव्य है :

'फूल गये सब भूल रहा उपवन का केवल अब सपना,
तुझ स्वच्छन्द जीव का जग में बाकी रहा न कुछ अपना
जब देखो तब लकड़ी का घर नियमित है चारा दाना,
क्यों कर अब हो सकता तेरा इधर उधर आना जाना।'[६]

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' का रूप भी दृष्टव्य है :

'सुधारक बनो सिर्फ मुँह से भले,
मगर कर्म करते रहो मन चले।
तभी देश सारा सुधर जायगा,
तुम्हारा सुयश भी चमक जायगा॥'[७]

१—वही, २२ जनवरी; १९१७; पृ० ७।
२—वही, २२ दिसम्बर, १९१९; पृ० ८।
३—वही, २६ जनवरी, १९२०; पृ० ८।
४—वही, १६ फरवरी, १९२०; पृ० ८।
५—वही, २ अप्रैल, १९१७; पृ० ६।
६—साप्ताहिक 'प्रताप', ९ अप्रैल, १९१७; पृ० ५।
७—वही, २० मार्च, १९१६; पृ० ११।

श्री सत्यनारायण 'कविरत्न' के 'उपालम्भ' में श्रीकृष्ण की स्थिति दर्शनीय है :—

'माधव ! तुमहुँ भये बेसाख !
वही ढ़ाक के तीन पात हैं करो न क्यों कोउ लाख ।।
भक्त अभक्त एक से निरखत कहा होत गुत गाये ।
जैसो खीर खवाये तुमको वैसोहि सींग दिखाये ।।'[१]

श्री रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी' की व्यंक्तोक्ति में 'बीसवीं सदी के श्रीकृष्ण' की वेश-भूषा उल्लासप्रद है :

'सांवरे, पुन: तुम्हें यदि पाऊँ ।
पूरा जैन्टिलमैन बनाकर सारी कसक मिटाऊँ ।
प्यारी वंसी छीन अधर पर चुरूट सिगार जलाऊँ ।
कलगी मुकुट गोपिका-मोहन फेंक, हैट पहनाऊँ ।।'[२]

'प्रताप' के व्यंग्य-काव्य में राष्ट्रीयता का पुट और आधुनिक युग का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है ।

राष्ट्रीय प्रतीकवाद :

राष्ट्रीय प्रतीकवाद के प्रवर्त्तन, उन्नयन तथा संवर्द्धन का प्रधान श्रेय 'प्रताप' को है । डॉ० शुक्ल ने लिखा है कि वर्तमान कविता में प्रतीकों की प्रधानता है । कवि भावाभिव्यंजन के क्षेत्र में इनकी महत्ता को अच्छी तरह समझते हैं । वे जानते हैं कि साधारण वक्तव्य की अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक और संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है । ये जानते हैं कि प्रतीकों का प्रयोजन उपादेयात्मक नहीं है । इनका उद्देश्य सत्य को सौन्दर्य से समन्वित करना है । वे यह भी जानते है कि काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं हैं, प्रत्युत ये काव्य के आधारभूत अंग हैं । केवल कवि के भावावेश में उद्भूत प्रतीक ही पाठकों में वैसी भावना जगाने में समर्थ होते हैं । ऊपरी बुद्धिवश सजावट के लिए गढ़े हुए प्रतीकों का विश्लेषण करने पर उनमें सच्ची सौन्दर्य भावना का अभाव तथा शिथिलता लक्षित होती है । सुन्दर लय के समान सौन्दर्य पूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक होते हैं ।[३]

१—वही, २२ मई, १६१६; पृ० ६ ।
२—वही, १० नवम्बर, १६१६; पृ० ८ ।
३—डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्यधारा', वर्तमान काव्य की प्रक्रिया, वर्तमान-युग, पृष्ठ २१७ ।

'प्रताप' के प्रधान कवि 'एक भारतीय आत्मा' के काव्य में राष्ट्रीय प्रतीकों का प्राचुर्य प्राप्त होता है। प्रतीकों के दृष्टिकोण से, 'प्रताप' में प्रकाशित उनकी कविता 'जीवित जोश' की निम्न पंक्तियाँ, दृष्टव्य हैं :

"देश के वन्दनीय वसुदेव, कष्ट में ले न किसी की ओट
देवकी माताएँ हों साथ-पदों पर जाऊँगा मैं लोट !
'जहाँ तुम, मेरे हित तैयार, सहोगे कर्कश कारागार—
वहाँ बस मेरा होगा वास, गर्भ का प्रियतर कारागार !
वर्ष टल गये महीने शेष ! साधना साधो रक्खो होश।
उन्हीं हृदयों में लूंगा जन्म जहाँ हो निर्मल 'जीवित जोश'।"[१]

इस राष्ट्रीय प्रतीकवाद के लाक्षणिक उपादान निम्न रूप में हैं :

(१) आततायी शासन और शासक—'दु:शासन और कंस।'
(२) नि:शस्त्र सेनानी गाँधी इत्यादि—'कृष्ण'।
(३) कारागार—'कंस का कारागार' और 'कृष्ण का जन्म-स्थल'।
(४) भारत-माता—'देवकी : द्रौपदी'।
(५) सत्याग्रह-संग्राम—'महाभारत'।
(६) भारत—'भारत'। (अर्जुन)
(७) सत्याग्रही—'प्रह्लाद'।
(८) सूली पर चढ़ने वाले—'ईसा'।
(९) शहीद (बलिदानी)—'सुकरात और मन्सूर'।
(१०) कैदी—'वसुदेव, देवकी' कृष्ण'।
(११) पुष्प—'एक भारतीय आत्मा' : (हृदय)।[२]

गीति-काव्य :

'प्रताप' ने गीतिकाव्य को पूर्ण प्रश्रय प्रदान किया। शोक, सम्बोधि आदि विविध प्रकार के गीत लिखे गए। प्रगीतों के साथ ही साथ, शास्त्रीय राग-रागिनियों पर आधारित गीतों तथा पदों की भी रचना की गयी। आसावरी'[३] रागिनी देश,[४] धुन

१—साप्ताहिक 'प्रताप', विजयादशमी, सं० १९७३; पृष्ठ ४।
२—डॉ० सुधीन्द्र—'हिन्दी कविता में युगान्तर', अन्तरंग दर्शन : राष्ट्रीय कविता-धारा, पृ० २११।
३—साप्ताहिक 'प्रताप', श्री भगवन्नारायण भार्गव, परमोत्सव, ७ फरवरी, १९१६; पृ० १०।
४—वही, 'मयंक', भ्रमरोक्ति, २८ फरवरी, १९१६; पृ० १०।

खिमटा,[१] कान्हरा चौताला,[२] रागविहाग,[३] धुन सोहनीराग[४], भैरवी[५], बिलावल[६], सिन्ध भैरवी,[७] तिताला राग केदारा,[८] देश[९] आदि रागों में लिखित कई कविताएँ उपलब्ध होती हैं। राग विहाग में लिखित एक गीत विचारणीय है :

'मीन ! तू काहे होत हताश।
अंतर लोक आई तम घेरत, निश्चय तेहि कर ह्रास।
प्रातः सायं सुख दुख ये सब प्रकृति नियम कृत पाश।
जो सुख विभव राज सम भोगत, तेहि दूसर कर आश।'[१०]

'प्रताप' में प्रार्थनाओं की भी संख्या प्रचुर मात्रा में मिलती है। गुप्त जी की अनेक प्रार्थनाएँ 'प्रताप' में ही प्रकाशित हुई हैं। इन प्रार्थनाओं में वर्त्तमान भारत की दशा, भविष्य की ओर संकेत, पराधीनता के प्रति उद्गार, सामाजिक विषमता, ईश्वर से उद्धार की विजय, आत्मसमर्पण, कल्याण-कामना आदि की भावनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रार्थना के ढंग तथा प्रथा में, भारतेन्दु-युग के कवियों का ही अनुसरण किया गया। श्री श्यामलाल गुप्त की कातर प्रार्थना दृष्टव्य है :

'हरो दुख नटवर कृष्ण मुरारी।
दुख-समुद्र में डूब रही है, भारत मातु हमारी॥'[११]

श्री लल्लन प्रसाद शर्मा भी विनय करते हैं :

'नाथ तुम काहे लगायो एती बार।
अरत दीन पुकारत भारत अबकी लेहु उबार॥'[१२]

१—वही, श्री रामपदार्थसिंह शर्मा, विचार, २४ अप्रैल, १९१६; पृ० ६।
२—वही, 'इन्द्र', भारतीय वीणा—१७ जुलाई, १९१६; पृ० ७।
३—वही, 'एक भारतीय', सान्त्वना, १३ नवम्बर, १९१६; पृ० ८।
४—वही, ब्रह्मानन्द वर्मा, सच्चा संदेश, २७ नवम्बर, १९१६; पृ० ८।
५—वही, पूर्णचन्द्र शर्मा, वीरत्व।
६—वही, 'इन्द्र', मातृयश गान, २६ फरवरी, १९१७, पृ० ९।
७—वही, ९ जुलाई, १९१७।
८—वही, 'गाण्डीव', उड़ू राज, २९ जुलाई, १९१८; पृ० ९।
९—(क) वही, 'राष्ट्रीय पथिक', वंशी की तान, २ दिसम्बर, १९१८; पृ० ८।
(ख) श्री चतुरसेन शास्त्री, वह और यह, १७ दिसम्बर, १९२३; पृ० ८।
१०—वही, १३ नवम्बर, १९१६; पृ० ८।
११—'स्वराज्य वीणा'', पृ० ७।
१२—'राष्ट्रीय वीणा'—पृ० ९१।

श्री शिवदास गुप्त भी कृपाकांक्षी है ।[1]

'प्रताप' के गीतिकाव्य में भावों के उद्गारों की स्पष्टता तथा मर्मस्पर्शिता अवलोकनीय है। संगीत तथा अनुभूति ने समन्वित होकर हृदय स्पर्शी काव्य का सृजन किया है ।

काव्य-शिल्प :

गणेशजी तथा 'प्रताप' की पत्रकारिता नीति के सदृश्य, काव्य की भाषा भ सरल, सुगम्य एवं जन-प्रिय थी । 'प्रताप' के काव्य की भाषा के विविध रूप देखने में आते हैं। कहीं संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग किया गया है आर कहीं शुद्ध उर्दू मिश्रित भाषा का । अवधी भाषा का भी प्रयोग मिलता है । 'विपुतुआ' द्वारा लिखित सरवरिया भाषा की कविता 'गँवार की गौ' का एक अंश विचारणीय है :

'कहा हम काहे ना चाहीं सोराज ।
सोराजे से त उ हुद्दा पिली ना,
जवन नइखे मिलत बाय आज,
जन्डैल लाट कलट्टर हाइ के,
हमहूँ हो तब भोगवे राज ।।'[2]

सामान्यतया तथा प्रधानतया 'प्रताप' की काव्यभाषा 'आम फहम' थी ।

'प्रताप' में हिन्दी तथा उर्दू—दोनों भाषाओं के छन्दों का प्रयोग मिलता है। दिकपाल छन्द,[3] षट्पदी छन्द[4], अतुकान्त चतुर्दशपदी,[5] मल्लिकाष्टक[6], घनाक्षरी कवित्त[7] आदि छन्दों का प्रयोग किया गया। 'त्रिशूल' जी ने उर्दू के कई छन्दों में कविताएँ लिखी यथा गज़ल, बहरे तवीज़[8] आदि। आलोच्य काव्य में उपमा, अन्योक्ति, रूपक,

१—वही, पृ० ६६ ।
२—साप्ताहिक 'प्रताप', १३ नवम्बर, १९१६; पृ० ८ ।
३—वही, श्री परशुराम चतुर्वेदी, स्वदेशी प्रेमी, १९ जून, १९१६; पृष्ठ ६ ।
४—वही, श्री परशुराम चतुर्वेदी, शुभ तम अवसर, ३ जुलाई, १९१६; पृष्ठ ८ ।
५—वही, श्री हनुमत प्रसाद जोशी, दुश्मन है आवश्यक चीज, १८ सितम्बर, १९१६; पृष्ठ ८ ।
६—वही, श्री टीकाराम भट्ट, पीड़ित पुकार, २० दिसम्बर, १९२०; पृष्ठ ८ ।
७—वही, श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्वदेशी, १८ सितम्बर, १९२२; पृ० ८ ।
८—वही, २१ मई, १९१७; पृष्ठ ६ ।

अनुप्रास आदि के दृष्टान्त ढूंढ़े जा सकते हैं ; परन्तु अलंकारादि के सहज तथा नैसर्गिक प्रयोग ही प्राप्त होते हैं। समग्र काव्य में वीर रस की प्रधानता रही।

शिल्प-पक्ष की अपेक्षा 'प्रताप' के काव्य का भाव-पक्ष अधिक प्रखर तथा समृद्ध है। हमारे राष्ट्रीय कवियों का लक्ष्य, कला की पच्चीकारी, कभी नहीं रहा। राष्ट्र के चरणों में अपने भाव-प्रसूनों को समर्पित करने में ही, उन्होंने अपने को कृतकृत्य समझा।

मूल्यांकन :

'प्रताप' में द्विवेदी तथा छायावाद-युग की राष्ट्र-परक कविताओं तथा प्रक्रियाओं को स्थान प्राप्त हुआ। इन दोनों युगों को देशभक्ति की धारा में हमें अन्तर दृष्टिगोचर होता है। द्विवेदी-युग की काव्यधारा, भारतेन्दुयुग के सदृश, विगत भारत की गरिमा तथा वर्तमान दुर्दशा के कारण अश्रुपात तक हो संकीर्ण नहा रह गयो थी अपितु उसमें अधिक सक्रियता, अभ्युत्थान की चेष्टा और जन-जीवन का स्पन्दन सुनायी पड़ता है। सेवा, कर्मण्यता, बलिदान, राष्ट्रोपासना आदि के भावों ने द्विवेदी युगीन काव्य-प्रवृत्तियों के मध्य जन्म लिया था। गणेशजी के देहावसान के समय तक, उसमें छायावाद-युग की राजनैतिक तथा साहित्यिक गतिविधियाँ, अपना अवगुण्ठन खोलने लगो थीं। गौरांग महाप्रभुओं के विरुद्ध, संघर्ष की स्थिति ने भी अपना उन्मेष प्राप्त कर लिया था। 'प्रताप' के कवियों ने एकता, आशापूर्ण उत्साह तथा बलिवेदी के गीतों का, सर्वोत्कृष्ट प्रदेय द्विवेदी-युग को प्रदान किया। क्रान्तिवाद भी बल पकड़ने लगा था जो कि काव्य की महत्त्वपूर्ण तथा पृथक् प्रवृत्ति के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुआ। शासन, सत्ता तथा अत्याचारों के विरोध में उठी 'प्रताप' के राष्ट्रीय काव्य की आवाज ने लोकतंत्रात्मक भावना को आकार प्रदान किया। 'प्रताप' ने द्विवेदी-युग की सीमाओं का अतिक्रमण करके, नूतन भाव-धारा की सृष्टि की। छायावाद-युग के साथ ही साथ, 'प्रताप' की कविताएँ भी अधिक सूक्ष्म तथा तलस्पर्शी हो गयी। जाति तथा देश सेऊपर उठकर, हमारे कवि मानवता तथा विश्व-भावना की ओर भी उन्मुख होने लगे। 'प्रताप' ने अनाचारों तथा पराधीनता का आजीवन विरोध किया। आज भी 'प्रताप' जीवित है और अपने आपको स्वतन्त्र एवं गणतन्त्र भारत के स्वच्छ तथा निर्मल वातावरण में पाकर, फूला नहीं समा रहा है। 'प्रताप' के लक्ष्य की पूर्ति हो गयी। 'प्रताप' आज भी गणेश जी तथा' नवीन' जी के पुण्य प्रताप का प्रतीक बना, अपनी ऐतिहासिक गाथा गा रहा है।

उपसंहार

वर्त्तमान हिन्दी-काव्य के निर्माण तथा उन्नयन में तीन व्यक्तियों तथा उनके

पत्रों का विशिष्ट महत्त्व है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्री जयशंकर प्रसाद और अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी ने क्रमशः 'सरस्वती', 'इन्दु' और 'प्रभा'—'प्रताप' के माध्यम से आधुनिक काव्य की नूतन शैलियों को जन्म दिया। आचार्य द्विवेदी जी ने भूमि बनायी और उसे सब भाँति समर्थ कर दिया। प्रसाद जी ने उस पर फसल लहलहा दी और गणेश जी ने उसे प्रखर ताप से परिपक्वावस्था में पहुँचा दिया।

वास्तव में गणेश जी ने नए 'सम्प्रदाय' को स्थापना की थी जिसमें राष्ट्रीय तथा क्रान्तिवादी विचारधारा का पालन-पोषण हुआ। छायावादी युग में जहाँ एक धारा का प्रवर्त्तन तथा संवर्द्धन प्रसाद, निराला, 'पन्त की 'वृहत्त्रयी' द्वारा सम्पन्न हुआ; वहाँ दूसर धारा का श्रीगणेश गणेशजी ने ही किया। द्वितीय धारा के अन्तर्गत' एक भारतीय आत्मा', 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा आदि आते हैं जो कि 'प्रताप' के मूर्धन्य कवि रहे।

उस युग (सन् १९१०-१९३५ ई०) में अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने राष्ट्रप्रीति की धारा को अपनत्व प्रदान किया परन्तु उसका केन्द्रीय पीठ 'प्रताप' ही बना रहा। 'प्रताप' ने हमारी राष्ट्रीयतथा सांस्कृतिक परम्परा, स्वाभिमान, सत्याग्रह-संग्राम, जनता का यथार्थ प्रतिनिधित्व, ईमानदारी, निर्भीकता आदि के क्षेत्रों में अनुपमेय कृत्य सम्पन्न किए। काव्य को भारतीय हृदय की धड़कनों का आगार बनाने का सम्पूर्ण श्रेय भी उसी को ही है। भले ही 'प्रताप' के राष्ट्रीय गीत तथा रचनाएँ कवित्व के क्षेत्र में अधिक उच्च न हों; परन्तु संगीत, प्रभविष्णुता तथा व्यापकता के दृष्टिकोण से उनका महत्त्व तथा लालित्य, अपनी सानी नहीं रखता। 'प्रताप' के कवियों ने राष्ट्रीय संग्राम में जूझकर प्रत्यक्ष अनुभूति तथा प्रतीति के आधार पर काव्य को जन्म दिया। उनके 'पास कागद की लेखी' न थी, अपितु 'आँखिन की देखी' थी। वीरगाथा काल के कवि एक हाथ में लेखनी रखते थे, दूसरी में तलवार। 'प्रताप' के कवियों ने भी मसि तथा असि क अपने गले लगाया। बलि पथ के गीत गाए। भारत-माता तथा हिन्दी-भारती के चरण में समर्पित उनकी कृतियों का मूल्यांकन जीवन-साधना तथा निष्कपट आत्माभिव्यक्ति की तुला पर होता रहेगा और हिमगिरि तथा भागीरथी के समान, उनकी चिरन्तन गरिमा व स्वारस्य बना रहेगा।

———

चतुर्थ खण्ड

परिशिष्ट

(१) प्रथम परिशिष्ट

मासिक 'प्रभा' की विषय-सूची

(क) खण्डवा की 'प्रभा'

'प्रभा' रजि० नं० एन० १४७.

प्रथम वर्ष, चैत्र १९७० विक्रमीय, प्रथम संख्या आवरण पृष्ठ—

उठो भाइयों ! नींद को छोड़ दो।
जगो, जाल आलस्य का तोड़ दो॥
मिटे सर्वदा को अविद्या-निशा
प्रभा-पूर्ण हो जाय प्राची-दिशा।
या निशा सर्व भूतानां जागर्ति संयमी।
भ० गीता।

वार्षिक मूल्य ३)। प्रति संख्या ३१ पै०

सम्पादक—कालूराम गंगराड़े, बी० ए०, एल् एल्० बी०,
खण्डवा (मध्य प्रदेश)।

'प्रभा'—

भाग १—चैत्र शुक्ल १, १९७०—७ अप्रैल, १९१३—संख्या १।

विषय- सूची पृष्ठ

इस मासिक पत्रिका को श्रीयुत शंकर नरहर जोशी ने चित्रकला स्टीम प्रेस, (८१८, सदाशिव पेठ) पूना में मुद्रित किया और श्रीयुत कालूराम गंगराडे, प्लीडर, ने 'प्रभा'-आफिस, खण्डवा (म० प्र०) से प्रकाशित किया।

कुल पृष्ठ संख्या—५९।

— —

(ख) कानपुर की 'प्रभा'

विविध विषय सम्पन्न सचित्र राजनैतिक मासिक पत्रिका
वर्ष ६, संख्या २—फरवरी, १९२५—पूर्ण संख्या
६२—माघ—१९८१
सम्पादक—बालकृष्ण शर्मा।
संचालक—शिवनारायण मिश्र वैद्य, प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर।

लेख सूची

चित्र-सूची

कमर्शल प्रेस—कानपुर में छापकर बालकृष्ण शर्मा ने प्रभा आफ़िस—कानपुर से प्रकाशित किया ।

कुल पृष्ठ—१६० ।

———

(२) द्वितीय परिशिष्ट

'प्रभा' तथा प्रताप पर विशिष्ट सम्मतियाँ

(क) 'प्रभा'

(१) 'कर्मवीर'—

'प्रभा' का चेत्र ऊँचा, कार्य्य दृढ़ और पद्धति देश के अपनाने और आदर करने की वस्तु है।

(२) 'विद्यार्थी'—

'प्रभा' का सम्पादन उत्तम हुआ है।

(३) 'इण्डिपेण्डेण्ट'—

हम 'प्रभा' का स्वागत करते हैं।

(४) 'भारत बन्धु'—

इस पत्रिका ने निकलकर हिन्दी के एक बड़े अभाव की पूर्त्ति कर दी।

(५) 'विजय'—

उसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

—'प्रताप', १६ फरवरी, १९२०।

(६) 'सरस्वती'—

हिन्दी भाषा का सौभाग्य।

(७) 'स्वार्थ'—

हिन्दी संसार का गौरव।

(८) 'चित्रमय जगत्'—

हिन्दी जगत् को प्रकाशमान बना दिया है।

(९) 'शिक्षा'—

हिन्दी प्रेमियों के लिए अपूर्व वस्तु।

(१०) 'वन्देमातरम्'—

आला दरजे का रिसाला।

(११) 'शक्ति'—

उच्चकोटि की पत्रिका।

(१२) 'अभ्युदय'—

अनोखी और अच्छी।

(१३) 'कान्यकुब्ज नायक'—

होनहार और उन्नतिशील।

(१४) 'श्रद्धा'—

हिन्दी में सबसे अधिक उच्चकोटि की पत्रिका।

(१५) 'राजस्थान केसरी'—

अँग्रेजी मासिकों की तुलना के योग्य मसाला रहता है।

(१६) 'साहस'—

हिन्दी के सभी मासिक पत्रों की शिरोमणि।

(१७) 'विज्ञान'—

राजनैतिक क्षेत्र में अद्वितीय: हिन्दी की सर्वोत्तम पत्रिकाओं में से।

(१८) 'आज़ाद'—

क़ाबिलाद्दर रिसाला।

—'प्रताप', २३ जनवरी, १९२२।

(ख) 'प्रताप'

(१) दैनिक 'भारत मित्र'—

आशा है, प्रताप' अपने नाम को सार्थक करेगा।

(२) दैनिक 'कानपुर गज़ट'—

"बाढ़ै 'प्रताप' भैया तेरो 'प्रताप' नित्य,
मोकों तोरी नीति नवनीति सी सुहानी है।
देशोचित, कालोचित, राजनीति भावोचित,
सब विधि प्रतीत योग्य जिय में समानी है।
राना 'प्रताप' से प्रतापी बनो प्यारे पत्र,
मानकी न मान्यो नीति नर्क की निसानी है।
मार्तण्ड भारत प्रताप बढ़ै तेरे मिस,
तेरा यश थापै जिमि राम की कहानी है।।

(३) 'आर्य मित्र'—

हमारी सम्मति में यह 'प्रताप' हिन्दी के वर्त्तमान समाचार पत्रों में सबसे आगे निकल जायगा।

(४) 'आनन्द'—

इसमें लेख बहुत ही गम्भीर और पढ़ने योग्य हैं।

—'प्रताप', ३० नवम्बर, १९१३ ई०।

(५) 'सरस्वती'—

इसके पहले नम्बर में कितने ही सामयिक और महत्त्वपूर्ण नोट्स और लेख हैं। इसकी भाषा सजीव है, विचार उत्तम हैं और उनको प्रकट करने का ढंग तेजस्विता-पूर्ण हैं।

(६) 'सद्धर्म प्रचारक'—

आज हम निर्भीकता पूर्वक स्वतंत्र सम्मति प्रकाशित करने वाले एक और साथी का हृदय से स्वागत करते हैं।

(७) 'स्वदेश-बान्धव'—

बहुत अच्छा साप्ताहिक पत्र।

(८) 'ब्राह्मण सर्वस्व'—

पत्र के लक्षण होनहार हैं।

—'प्रताप', ७ दिसम्बर, १९१३ ई०।

(९) 'चित्रमय जगत्'—

इसका सम्पादन भी योग्य रीति से हो रहा है।

(१०) 'प्रकाश'—

परचा होनहार है।

—'प्रताप', २१ दिसम्बर, १९१३ ई०।

(१०) 'जासूस'—

इसके लेख उत्तम, शैली ओजस्विनी और विचार उच्च हैं।

(११) 'सुधानिधि'—

हमें आशा है कि प्रताप का 'प्रताप' बहुत शीघ्र केवल हिन्दी-संसार में ही नहीं, भारत भर में व्याप्त हो जायगा।

—'प्रताप', २८ दिसम्बर, १९१३ ई०।

(१२) 'मारवाड़ी'—

इस पत्र की लेख शैली पाठकों को अलाहाबाद के मृत हिन्दी 'कर्मयोगी' का आनन्द देगी ऐसा ज्ञात होता है।

(१३) 'इन्दु'—
राजनैतिक विषय की आलोचना इसकी बड़े मार्के की होती है। भाषा में जीवनी शक्ति है।

—'प्रताप', ११ जनवरी, १९१४ ई०।

(१४) 'नागरी-प्रचारक'—
इस प्रकार के समाचार पत्रों से देश का उपकार सम्भव है।

(१५) 'आर्य्य गज़ट'—
हिन्दी का यह हफ्तावारी अखबार हर एक पहलू से बहुत ही खूबसूरत है।

—'प्रताप,' २५ जनवरी, १९१४ ई०।

(१६) एक 'प्रताप'-प्रेमी—
वीरों को देता तू चानक, भीरुजनों को बन ! भयानक, तुझे चाटुकारी नहिं आती, खरी-खरी तुझको है भाती।

—'प्रताप,' १५ नवम्बर, १९१४ ई०।

(१७) 'अभ्युदय,' प्रयाग—
'प्रताप' और प्रताप प्रेस दोनों ही देशभक्त हैं और राष्ट्रीयता के अमर मंत्र की अपार महिमा के गायक हैं।

(१८) 'आज़ाद', कानपुर—
'प्रताप' हिन्दी में एक आज़ाद ख्याल (स्वतंत्र विचार) और हरदिल अज़ीज़ (सर्वप्रिय) परचा है।

—'प्रताप', १३ नवम्बर, १९१६ ई०।

(१९) 'पाटलिपुत्र'—
'प्रताप' जैसे अखबारों की इस समय देश को जरूरत है।

(२०) 'आनन्द'—
इस पत्र में कुछ टर्रेपन के साथ देशभक्ति के भाव जरूर प्रकाशित होते थे।

—'प्रताप', २७ नवम्बर, १९१६।

(२१) 'मर्यादा,' प्रयाग—
'प्रताप' उनके (हिन्दी पाठकों) के स्वत्वों की रक्षा करने के लिए उनकी आँखें खोलने के लिए अपने को बलि कर रहा है।

—'प्रताप', ११ दिसम्बर, १९१६।

(२२) गयाप्रसाद शुक्ल:'त्रिशूल'—
निश्चित पथ से पैर नहीं हमने विचलाए ;
जन्म-भूमि को भक्ति-भाव तज भाव न भाए।

डिगा न अपना चित्त विघ्न कितने ही आए ;
निज प्यारा उद्देश रहे हम हृदय लगाए।

—'प्रताप', १० जून, १९१८ ई०।

(२३) 'भारतीय हृदय'—

हैं प्रताप उसका शुभ नाम, जो सब छोड़ धरा-धन-धाम,
रखने को निज व्रत-विश्वास, करता रहा वनों में वास ।।
हम भी यह कहते हैं स्पष्ट, सह सहकर भी सौ-सौ कष्ट।
पालेंगे अपने सिद्धांत, हरि न हमें होने दें भ्रांत ।।

—'प्रताप,' ८ जुलाई, १९१८ ई०।

(२४) 'एडवोकेट'—

यह एक स्वराज्यवादी पत्र है जो अनेक बाधाओं के रहते हुए भी देश और प्रान्त की स्वतंत्रता तथा निर्भीकता के साथ सेवा करता रहा है।

(२५) 'कलकत्ता समाचार'—

कानपुर के सहयोगी 'प्रताप' द्वारा हमारे राजनीतिक क्षेत्र में देश की अच्छी सेवा हो रही है।

—'प्रताप', ८ जुलाई, १९१८ ई०।

(२६) 'रमेश'—

जगे ज्योति की शिखा और जग जाय भारती,
राष्ट्र उतारे प्रिय स्वदेश की भव्य आरती।
नस नस में गँस जाय देश-अभिमान हमारे,
पग पीछे मत हटे, किसी सत्ता के मारे
तो त्रिशूल की शूल से मिट जायें त्रयताप ये।
कर्ममार्ग में ध्रुव रहे प्यारा अमर 'प्रताप' ये।

(२७) 'धनुर्धर'—

हम जीवन-स्वत्व न छोड़ेंगे,
पीछे मुँह कभी न मोड़ेंगे।
हम प्रेम भाव ही जोड़ेंगे,
सब कलह-जाल हम तोड़ेंगे।
हम सत्यसुधा सरसाते हैं,
लो, फिर निज नियम निभाते हैं।

—'प्रताप', १५ जुलाई, १९१८।

तृतीय परिशिष्ट

'प्रभा' और 'प्रताप' के कवियों की विस्तृत सूची (अकारादि क्रम से)

(क) 'प्रभा' के कवि

(१) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।
(२) अनूप शर्म्मा।
(३) अखौरी गंगाप्रसाद सिंह।
(४) अचलेश्वर नाथ व्यास।
(५) 'अज्ञात' कवि।
(६) अम्बिका प्रसाद गुप्त।
(७) इन्दुबाला देवी बी० ए०।
(८) इकबाल वर्मा 'सेहर'।
(९) 'एक राष्ट्रीय पथिक'।
(१०) 'एक राष्ट्रीय हृदय'।
(११) 'एक तटस्थ'।
(१२) 'क० ख० ग०'।
(१३) कन्हैयालाल जैन।
(१४) कमला कुमारी।
(१५) 'कर्मशील'।
(१६) कामताप्रसाद गुरु।
(१७) 'किंजल्क'।
(१८) कालीप्रसाद त्रिपाठी 'श्रीकर'।
(१९) कृष्णबिहारी मिश्र।
(२०) कृष्ण चैतन्य गोस्वामी।

(२१) गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' एवं 'त्रिशूल'
(२२) गणपति जानकीराम दुबे ।
(२३) गुरुप्रसाद टण्डन ।
(२४) गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाव' ।
(२५) गोकुलचन्द्र शर्म्मा ।
(२६) गिरिधर शर्मा ।
(२७) चतुरसेन वैद्य शास्त्री ।
(२८) चण्डिका प्रसाद शर्म्मा ।
(२९) चन्द्रनाथ वाजपेयी ।
(३०) चन्द्रभान सिंह ।
(३१) चमूपति, एम० ए० ।
(३२) 'चक्र सुदर्शन' ।
(३३) जगन्नाथ शर्मा 'रसिकेश' ।
(३४) जगन्नाथ देव शर्मा ।
(३५) जगमोहन 'विकसित' ।
(३६) जगदीश झा 'विमल' ।
(३७) ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ।
(३८) ठाकुर प्रसाद शर्मा ।
(३९) दशरथ बलवन्त जाधव ।
(४०) दराब खाँ 'अभिलाषी' ।
(४१) दिवाकर प्रसाद वर्मा ।
(४२) दीनानाथ 'अशंक' ।
(४३) देवीदत्त मिश्र ।
(४४) दुर्गादत्त त्रिपाठी ।
(४५) 'नयन' ।
(४६) 'परन्तप' ।
(४७) पदुमलाल बक्षी ।
(४८) पाण्डेय बेचन शर्म्मा 'उग्र' ।
(४९) प्रयाग नारायण 'संगम' ।
(५०) प्रताप नारायण श्रीवास्तव ।
(५१) प्रेमदास वैष्णव ।
(५२) फजलुल हसन हसरत मोहानी ।

(५३) बदरीनाथ भट्ट ।
(५४) 'बी० ए०' ।
(५५) 'बाल' ।
(५६) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ।
(५७) बैनलाल बक्षी ।
(५८) ब्रह्मेश्वर शर्मा ।
(५९) भगवती प्रसाद वाजपेयी ।
(६०) भगवती चरण वर्मा ।
(६१) भगवान्नारायण भार्गव ।
(६२) भगवन्त गणपति गोइलीय ।
(६३) भगवानदास पाठक ।
(६४) भवानीशंकर याज्ञिक ।
(६५) 'भारतीय' ।
(६६) भीकाजी बिल्लौरे ।
(६७) 'भ्रमर' ।
(६८) मदनमोहन मेहरोत्रा ।
(६९) मदनमोहन मिहिर ।
(७०) 'मधुर' ।
(७१) मणिराम गुप्त ।
(७२) मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' ।
(७३) महेश्वर प्रसाद मिश्र ।
(७४) मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव ।
(७५) 'मुछन्दरनाथ' ।
(७६) 'मुमुक्षु' ।
(७७) मुकुटधर पाण्डेय ।
(७८) मुंशीराम शर्मा 'सोम' ।
(७९) मोहनलाल महतो 'वियोगी' ।
(८०) मैथिलीशरण गुप्त ।
(८१) माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ।
(८२) 'रमेश' ।
(८३) रघुवंशलाल गुप्त ।
(८४) रामचरित उपाध्याय ।

(८५) रामनरेश त्रिपाठी ।
(८६) रामदहिन मिश्र ।
(८७) रामनाथलाल 'सुमन' ।
(८८) रामचरण लाल द्विवेदी ।
(८९) रामस्वरूप गुप्त ।
(९०) रामप्रसाद दुबे ।
(९१) राज बहादुर ।
(९२) राजवल्लभ सहाय ।
(९३) राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' ।
(९४) रूपनारायण पाण्डेय ।
(९५) लक्ष्मीधर वाजपेयी ।
(९६) लक्ष्मी नारायण मिश्र 'श्याम' ।
(९७) लक्ष्मणसिंह ।
(९८) लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय 'मयंक' ।
(९९) लतीफ हुसैन ।
(१००) लोचन प्रसाद पाण्डेय ।
(१०१) द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' ।
(१०२) 'वनवासी' ।
(१०३) वसन्तलाल ।
(१०४) वंशीधर विद्यालंकार ।
(१०५) 'विष्णु' ।
(१०६) विद्याभूषण 'विभु' ।
(१०७) 'विदग्ध' ।
(१०८) वीरेन्द्र विद्यार्थी ।
(१०९) वैद्य भूषण उदयशंकर भट्ट शास्त्री 'हृदय' ।
(११०) शम्भु दयालु श्रीवास्तव ।
(१११) शान्तिप्रिय द्विवेदी ।
(११२) श्यामलाल पाठक ।
(११३) श्याम सुन्दर खत्री ।
(११४) शिवदास गुप्त 'कुसुम' ।
(११५) शुकलाल प्रसाद पाण्डेय ।
(११६) श्रीकृष्णदास ।

(११७) श्रीकृष्ण निगुड़कर ।
(११८) श्रीधर पाठक ।
(११९) श्रीरत्न शुल्क ।
(१२०) श्रीनाथ सिंह ।
(१२१) 'संयुक्त कवि' ।
(१२२) संपूर्णानन्द ।
(१२३) सियारामशरण गुप्त ।
(१२४) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ।
(१२५) सुभद्रा कुमारी चौहान ।
(१२६) सैयद अमीर अली 'मीर' ।
(१२७) हरिभाऊ उपाध्याय ।
(१२८) हरिपाल सिंह 'क्षत्रिय' ।
(१२९) हरिश्चन्द्रदेव 'विद्यार्थी' ।
(१३०) 'हृदय' ।
(१३१) हृदयनाथ सप्रू ।
(१३२) हेमचन्द्र जोशी ।

(ख) 'प्रताप' के कवि

(१) 'अज्ञात' ।
(२) 'अज्ञात कवि गण' ।
(३) 'अमर' ।
(४) 'अजेय' ।
(५) 'अनुज' ।
(६) 'अलख' ।
(७) 'अष्टावक्र' ।
(८) 'अकड़बेग' ।
(९) अनिरुद्धलाल ।
(१०) अध्यापक रामरत्न ।
(११) अर्जुनलाल सेठी ।
(१२) अशर्फीलाल वर्मा ।

(१३) अयोध्या प्रसाद वाजपेयी 'सेवक'।
(१४) 'आनन्द'।
(१५) आर० डी० शर्मा।
(१६) इलाचन्द्र जोशी।
(१७) इकबाल वर्मा 'सेहर'।
(१८) 'उठल्लू'।
(१९) 'उपासक'।
(२०) 'उम्मेदवार'।
(२१) 'उच्च जीवन'।
(२२) उमाशंकर कुलश्रेष्ठ।
(२३) 'एक कवि'।
(२४) 'एक प्रेमी'।
(२५) 'एक भक्त'।
(२६) 'एक देश-प्रेमी'।
(२७) 'एक युवक विद्यार्थी'।
(२८) 'एक भारतीय'।
(२९) 'एक भारतवासी'।
(३०) 'एक सभासद'।
(३१) 'एक स्वयंसेवक'।
(३२) 'एक स्वराज्य प्रेमी'।
(३३) 'एक सनातनीय'।
(३४) 'एक भारतीय युवक'।
(३५) 'कर्ण'।
(३६) 'कबिरहा'।
(३७) 'कवि-मण्डल'।
(३८) 'कण्टक'।
(३९) कन्हैयालाल जैन।
(४०) कपिलदेव नारायण 'देहाती'
(४१) कालीप्रसाद त्रिवेदी।
(४२) कालिकाप्रसाद कमल।
(४३) 'किंकर'।
(४४) किरनबिहारीलाल 'दिनेश'।

(४५) 'किशोर'।
(४६) कुन्दन देवी।
(४७) 'कुमार'।
(४८) 'कुशल'।
(४९) 'कुली'।
(५०) केदारनाथ टण्डन।
(५१) कृष्णानन्द गुप्त।
(५२) कृष्णदास।
(५३) 'खारा'।
(५४) खेदूराम जायसवाल।
(५५) गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' एवं 'त्रिशूल'।
(५६) गयाप्रसाद त्रिपाठी।
(५७) गणेश बालकृष्ण सर्वटे।
(५८) गंगाप्रसाद विशारद।
(५९) 'गाण्डीव'।
(६०) गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'।
(६१) गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब'।
(६२) गुरुसहाय।
(६३) गोविन्दसिंह भटनागर।
(६४) गोविन्द वल्लभ पन्त।
(६५) 'गों-यार'।
(६६) 'गोलमालानन्द'।
(६७) गोकुलचन्द्र शर्म्मा।
(६८) गौरीदत्त वाजपेयी।
(६९) 'घर्मन हाथरस'।
(७०) चतुर सेन शास्त्री।
(७१) चन्द्रिकासिंह।
(७२) चन्द्र बलीसिंह।
(७३) चम्पालाल शर्मा 'अवदीच्य'।
(७४) 'चातक'
(७५) चिरंजीव झा।
(७६) चौधरी रामभक्तदत्त जी।

(७७) 'चौहान'।
(७८) छविनाथ पाण्डेय।
(७९) छुन्नीलाल मेहरोत्रा।
(८०) 'जयन्त'।
(८१) 'जमींदार'।
(८२) जगन्नाथदेव शर्मा कवि पुष्कर।
(८३) जगन्नाथ प्रसाद शर्मा 'रसिकेश'।
(८४) जगन्नाथ प्रसाद मिश्र 'विद्यार्थी',।
(८५) जगन्नाथ जोशी।
(८६) जगजोहन 'विकसित'।
(८७) जनार्दन मिश्र 'परमेश'।
(८८) जलेश्वर प्रसाद सिंह।
(८९) जानकीवल्लभ सिंह।
(९०) जैन कवि ज्योति प्रसाद।
(९१) ज्वालाप्रसाद मिश्र।
(९२) ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'।
(९३) झुन्नीलाल वर्मा।
(९४) टीकाराम भट्ट।
(९५) ठाकुर प्रसाद शर्मा।
(९६) 'दशरथ'।
(९७) दशरथ प्रसाद द्विवेदी।
(९८) दरियाबखाँ 'अभिलाषी'।
(९९) 'दिवाकर'।
(१००) दीनानाथ 'अशंक'।
(१०१) दुर्गादत्त त्रिपाठी।
(१०२) दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी।
(१०३) देवीदत्त मिश्र।
(१०४) देवीराम शर्मा।
(१०५) 'नयन'।
(१०६) नवलकिशोर झा।
(१०७) नानकसिंह 'हमदम'।
(१०८) 'निरंकुश'।

(१०६) 'निरस्त्र'।
(११०) नूर अहमद खाँ 'जार'।
(१११) न्यायतीर्थ दरबारी जैन।
(११२) 'परन्तप'।
(११३) परशुराम चतुर्वेदी।
(११४) पण्डा शिवराजसिंह 'विस्मिल'।
(११५) पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'।
(११६) पारसनाथ त्रिपाठी 'प्रेमी'।
(११७) पाटेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी।
(११८) पूर्णचन्द्र शर्मा।
(११६) प्यारेलाल गुप्त।
(१२०) प्यारेलाल वृष्णिः।
(१२१) 'प्रज्ञा चक्षु'।
(१२२) प्रभाकर श्रीखण्डे।
(१२३) प्रि० म० देवी 'भारती'।
(१२४) 'प्रेमी'।
(१२५) 'फ़िराक'।
(१२६) 'बन्धु'।
(१२७) 'बहादुर'।
(१२८) बदरीनाथ भट्ट।
(१२६) बलदेव प्रसाद मिश्र।
(१३०) बदरीविशाल शुक्ल 'किंकर'।
(१३१) बाबूराम मिश्र 'बन्धु'।
(१३२) बाबूराम बित्थरिया।
(१३३) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।
(१३४) बांकेबिहारीलाल वाजपेयी।
(१३५) 'बेकस'।
(१३६) बेनीमाधव तिवारी।
(१३७) ब्रजेश त्रिपाठी।
(१३८) ब्रह्मानन्द वर्मा।
(१३६) ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम'।
(१४०) ब्रजनारायण चकबस्त।

(१४१) वृजभूषणलाल त्रिपाठी ।
(१४२) भगवतीप्रसाद वाजपेयी ।
(१४३) भगवतीचरण वर्मा ।
(१४४) भगवतीलाल पुष्प ।
(१४५) भगवन्त गणपति गोइलीय ।
(१४६) भगवान्नारायण भार्गव ।
(१४७) भवानीदयाल ।
(१४८) 'भंगड़ सुलतान' ।
(१४९) 'भानु' ।
(१५०) 'भारतीय किसान' ।
(१५१) 'भारत भक्त' ।
(१५२) 'भारत सन्तान' ।
(१५३) 'भीष्म' ।
(१५४) 'मनोरंजन' ।
(१५५) मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' ।
(१५६) महेन्द्रसिंह चौधरी ।
(१५७) महिपालसिंह ।
(१५८) महिपाल बहादुर सिंह ।
(१५९) मथुरालाल मिश्र ।
(१६०) मनोहर प्रसाद मिश्र ।
(१६१) मनीराम शुक्ल ।
(१६२) मधुसूदन ओझा ।
(१६३) माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ।
(१६४) माधव शुक्ल ।
(१६५) मातादीन शुक्ल ।
(१६६) 'मालव मयूर' ।
(१६७) मुरारीलाल शर्मा ।
(१६८) मुकुन्दराम जाट ।
(१६९) मुन्नीलाल विद्यार्थी ।
(१७०) मुनितिलक विजय पंजाबी ।
(१७१) मुनीश्वर प्रसाद अवस्थी ।
(१७२) मोहनलाल महतो 'बियोगी' ।

(१७३) 'मोहन'।
(१७४) मैथिलीशरण गुप्त।
(१७५) 'मिश्र'।
(१७६) युगेश्वरप्रसाद त्रिपाठी।
(१७७) यज्ञनारायण मिश्र 'आरत'।
(१७८) 'रत्न'।
(१७९) 'रमेश'।
(१८०) रघुराजसिंह क्षत्रिय।
(१८१) रविशरण वर्म्मा।
(१८२) रघुवंशलाल गुप्त।
(१८३) रघुवरदयालु विद्यार्थी।
(१८४) राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।
(१८५) रायकृष्णदास।
(१८६) 'राष्ट्रीय पथिक'।
(१८७) रामचरित उपाध्याय।
(१८८) राजाराम शुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा'।
(१८९) राधावल्लभ पाण्डेय।
(१९०) रामानुजदास।
(१९१) रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी'।
(१९२) रामनरेश त्रिपाठी।
(१९३) रा० र० कक्कड़।
(१९४) रामपलट सिंह।
(१९५) रामरूद्रपाल सिंह।
(१९६) रामबाबूसिंह परिहार।
(१९७) राजेन्द्रसिंह।
(१९८) रामनारायण मिश्र।
(१९९) रामचरण शर्म्मा 'राम'।
(२००) रामनाथ शर्मा 'कमलेश'।
(२०१) रामसहाय शर्म्मा।
(२०२) रामपदार्थ सिंह शर्मा।
(२०३) रामानन्द प्रसाद।
(२०४) रामचरण गुप्त।

(२०५) रामकिशोरी लाल।
(२०६) रामस्वरूप वार्ष्णेय।
(२०७) रामचरित्र पाण्डेय 'पावन'।
(२०८) रामलाल अग्निहोत्री।
(२०९) रामेश्वर भारती।
(२१०) रामश्याम किंकर।
(२११) राधाकृष्ण झिंगरन।
(२१२) रामप्रसाद सारस्वत।
(२१३) रामनारायण रावत।
(२१४) रामेश्वरी प्रसाद 'राम'।
(२१५) राजनाथ पाण्डेय।
(२१६) 'राउ'।
(२१७) 'राहत'।
(२१८) 'राम'।
(२१९) रूप नारायण पाण्डेय।
(२२०) रूपनारायण शर्मा।
(२२१) रूद्रनाथ सिंह।
(२२२) 'लश्करी'।
(२२३) लक्ष्मीधर वाजपेयी।
(२२४) लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा'।
(२२५) लक्ष्मी नारायण मिश्र 'सुधाकर'।
(२२६) लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी।
(२२७) लक्ष्मी नारायण पाण्डेय।
(२२८) लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय 'मयंक'।
(२२९) लक्ष्मणसिंह।
(२३०) लक्ष्मणदत्त भट्ट।
(२३१) लल्लन प्रसाद शर्मा।
(२३२) लाल महीबलीसिंह।
(२३३) 'वज्र'।
(२३४) वसन्तलाल चौबे।
(२३५) 'वर्मन'।
(२३६) 'वल्लभ'।

(२३७) 'वन्देमातरम्' ।
(२३८) 'वसन्तुआ' ।
(२३९) 'वनवासी' ।
(२४०) विनयमोहन शर्मा 'वीरात्मा' ।
(२४१) विद्यावती ।
(२४२) विश्वभर दयालु त्रिपाठी ।
(२४३) विपिन बिहारी मिश्र ।
(२४४) विपिन बिहारी लाल ।
(२४५) विशारद चतुर्भुज पाराशर ।
(२४६) विद्याधर द्विवेदी ।
(२४७) 'विभूति' ।
(२४८) 'विमल' ।
(२४९) 'विपुतुआ' ।
(२५०) 'विदग्ध' ।
(२५१) वीरेन्द्र विद्यार्थी ।
(२५२) 'वीर' कवि ।
(२५३) वेदनारायण वाजपेयी ।
(२५४) 'वागीश्वर' ।
(२५५) वृन्दावनलाल वर्मा ।
(२५६) 'व्यक्ति विशेष' ।
(२५७) 'शरण' ।
(२५८) शम्भुदयाल शर्मा ।
(२५९) शम्भूदयालु श्रीवास्तव ।
(२६०) शम्भुदयाल अग्निहोत्री ।
(२६१) शंकर बख्शसिंह वर्मा ।
(२६२) शालग्राम द्विवेदी ।
(२६३) 'शिव' ।
(२६४) शिवदास गुप्त 'कुसुम' ।
(२६५) शिवदुलारे त्रिपाठी ।
(२६६) शिवकिशोर त्रिपाठी ।
(२६७) शिवराम (रमेश) शर्मा ।
(२६८) शिवराम शुक्ल ।

(२६९) शिव बालक द्विवेदी ।
(२७०) श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ।
(२७१) श्यामारूण वंशी ।
(२७२) श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ।
(२७३) श्रीधर पाठक ।
(२७४) श्रीनाथसिंह ।
(२७५) श्रीकान्तकृष्ण त्रिपाठी ।
(२७६) श्रीधर पन्त ।
(२७७) 'श्री नवनीत चोर चरण रत' ।
(२७८) सत्यनारायण कविरत्न ।
(२७९) सत्यनारायण त्रिपाठी ।
(२८०) सरयूशरण शर्मा विद्यार्थी ।
(२८१) सर्वेश्वरनाथ वर्मा 'विन्दु' ।
(२८२) सतगुरु प्रसाद ।
(२८३) सत्यनारायण पाण्डेय 'सत्येन्द्र' ।
(२८४) सालिग्राम वर्मा ।
(२८५) सिद्धिनाथ मिश्र ।
(२८६) सिद्धिनाथ दीक्षित ।
(२८७) सियारामशरण गुप्त ।
(२८८) सीताराम ।
(२८९) सीताराम वर्मा ।
(२९०) सुरेन्द्र शर्म्मा ।
(२९१) सुभद्राकुमारी चौहान ।
(२९२) सुन्दरदेवी ।
(२९३) सुखलाल शर्मा ।
(२९४) 'स्वराज्य वादी' ।
(२९५) 'स्वाधीन भारत' ।
(२९६) स्वामी मुरलीधर ।
(२९७) स्वामीदयालु श्रीवास्तव 'मधुव्रत' ।
(२९८) हरिभाऊ उपाध्याय ।
(२९९) हरिश्चन्द्र देव 'विद्यार्थी' ।
(३००) हरिदत्त मिश्र ।

(३०१) हरिकृष्ण 'कमलेश'।
(३०२) हरलाल अग्रवाल।
(३०३) हनुमत प्रसाद जोशी।
(३०४) हाकिमसिंह 'कौशलेन्द्र' राठौर।
(३०५) 'हिन्दू'।
(३०६) हीरालाल।
(३०७) 'हून्दराज'।
(३०८) हेमचन्द्र जोशी।
(३०९) 'होरिहार'।
(३१०) 'हृदय'।
(३११) 'क्षुब्ध'।
(३१२) 'क्षेत्रपति'।
(३१३) त्रिपाठी सहज्योरा।

टिप्पणी—राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में अनेक कवियों ने 'छद्म' अथवा 'कल्पित' या 'उप' नाम से अपनी कविताएँ लिखी और प्रकाशित करायी हैं जिनमें से कतिपय नाम, प्रस्तुत सूची में अवतरण चिह्न (' ') में दे दिए गए हैं। जो सज्जन इनके वास्तविक नाम और परिचय ग्रन्थकार को भेजने की कृपा करेंगे—उनका लेखक आभारी रहेगा। इस दिशा में तत्कालीन युग के साहित्यकारों और सम्पादकों का ध्याना-कर्षण प्रार्थित है।

---

(४) चतुर्थ परिशिष्ट

'प्रताप' के राष्ट्रीय अग्रलेख

(क)---अमानुषिक बर्बरता

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं :—

"अणु विस्फोटक बम की शोध हो गई है और उनका प्रयोग जापान के हिरोशिमा नामक नगर पर किया भी गया है। जापान के समाचारों से विदित हुआ है कि हिरोशिमा नगर विध्वंस्त हो गया है। हिरोशिमा के मनुष्य और पशु-पक्षी भस्मीभूत हो गये हैं। अभी तक जो समाचार आए हैं उनसे ज्ञात होता है कि हिरोशिमा पर केवल एक ही अणु विस्फोटक बम गिराया गया था। इस एक बम का विनाशकारी प्रभाव इतना भयानक हुआ कि समूचा हिरोशिमा नगर भूमिसात् हो गया। रायटर समाचार समिति का कहना है कि यह एक बम एक ही बार में इतना विनाश कर सकने की क्षमता रखता है जितना विनाश गत पाँच वर्षों के योरोपीय युद्ध में तमाम बम मार हवाई जहाजों के आक्रमण ने जर्मनी के हाम्बुर्ग नामक नगर का किया था। इस वीभत्सता पर पाठक किंचित विचार करें। गत पाँच वर्षों तक हाम्बुर्ग नगर पर सहस्त्रों बम बरसते रहे!! उन सब ने मिल कर जितना सर्वनाश किया उस सब के बराबर यह एक अणु विस्फोटक बम एक बार में करता है!!!! इस बर्बरता और अमानुषिकता का भी कोई ठिकाना है? मानव आज इस अणु विस्फोटक शस्त्र को प्राप्त करके मानो अपनी सज्ञान बर्बरता की चरमसीमा पर पहुँच गया। जापान पर यह बम प्रथम बार बरसाया गया है। हिरोशिमा नगर का साठ प्रतिशत भाग भूमिसात हो गया है। वहाँ एक भी मनुष्य या पशु जीवित नहीं बचा है। जो व्यक्ति बम फटने के समय घर से बाहर थे वे इतने अधिक भस्म हो गये कि वे पहचाने नहीं जाते। जो घरों के अन्दर थे वे अनिर्वचनीय उष्णता तथा वायु के दबाव से मौत के घाट उतर गए। घर मिट्टी में मिल गए। हिरोशिमा का नगर रजकणों में,—राख की एक ढेरी में परिणत हो गया। यह सब पढ़ने के अनन्तर मन में प्रश्न उठा कि वास्तव में मित्र राष्ट्रों को इस अणु विस्फोटक बम की शोध करनी चाहिए थी? फिर प्रश्न उठा कि क्या इस शोध से मानवता का कल्याण हो सकेगा? यह रौद्र शैतानी क्या मानव को सर्वनाश आत्म विनाश की खाई में नहीं धकेल देगी?

जहाँ हम एक ओर मानव के उस महत् बुद्धि पराक्रम की प्रशंसा करते हैं जिसके बल पर वह ऐसे-ऐसे, भयंकर विनाशकारी शस्त्रों का आविष्कार कर सका है, वहीं दूसरी ओर हम उसकी इस शैतानियत की निन्दा किये बिना नहीं रह सकते जिसकी प्रेरणा सेवह इन शस्त्रों के आविष्कार एवं उपयोग की ओर झुकता है। हम इस बम के आविष्कार को प्रचण्ड राक्षसीपन का प्रतीक समझते हैं। यह एक भयंकर प्रचण्ड अमानुषिक बर्बरता है। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के जिन विज्ञान वेत्ताओं ने इस बम का दानवीय आविष्कार किया है, उनको हम प्रशंसा नहीं कर सकते। जिस समय अमेरिकन राष्ट्र ने विज्ञान वेत्ताओं को इस ओर प्रवृत्त किया था, उस समय युद्ध की परिस्थिति को देखते हुए वे चाहे उस ओर लगे भले ही रहते, पर यूरोपीय युद्ध की समाप्ति के अनन्तर उन्हें इस राक्षसी शास्त्रों के उपयोग की योजना में कदापि कोई भाग नहीं लेना चाहिए था। प्राचीन भारत में शोधकों तथा आविष्कारकों को यह शिक्षा दी जाती थी कि वे कभी भी किसी ऐसे विनाशकारी द्रव्य की विधि का प्रकटीकरण न करें जिसके प्रतिकार की विधि को न बतला सकें। यह बहुत ही मानवीय भावना थी। आज के इस लौहयुग में इस प्रकार मानवीय भावना के अनुरूप कार्य कर सकना कठिन अवश्य है परन्तु सती दृष्टा वैज्ञानिकों के लिए यह असम्भव नहीं है। फिर भी अब तो यह अणु विस्फोटक बम आविष्कृत हो ही गया है। अता अब आवश्यकता इस बात की है कि ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका का जागृत जनमत इस प्रलयंकर बम के उपयोग के विरूद्ध अपना स्वर उठावें।

हम इस बम के उपयोग के विरुद्ध अपनी दुर्बल आवाज उठाते हैं। हम कहते हैं कि राक्षसी लीला है, यह मानव को भयंकर हिंसक पशु बनाने की अन्तिम क्रिया है। इसका उपयोग तुरन्त बन्द होना चाहिए। जापान के विरुद्ध आज जो वस्तु प्रयोग में लाई जा रही है वह कल ग्रेट ब्रिटेन परसों सोवियट रूस नरसों संयुक्त अमेरिकीन राष्ट्र के विरुद्ध भी प्रयुक्त हो सकती है। इस बम के आविष्कार ने समूचे मानव समाज को, समूचे मानव बुद्धि वैभव को, समूची विज्ञान सम्पदा को, महा प्रलय की घटिका के सन्निकट लाकर खड़ा कर दिया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि मानव अपने तुरंगम की वल्गा, अपने घोड़े की लगाम, सम्पूर्ण बल लगा कर खींचे। अन्यथा मानव का कल्पना तुरंग सर्वनाश की गहरी चौड़ी खाई में कूद जायगा।

कोई यह न समझे कि हम इस बम के उपयोग और प्रयोग के विरुद्ध इसलिए अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं कि जापान (एक एशियाई देश जापान) इसका शिकार बनाया जा रहा है। हम जापान की बर्बरताओं को भूल नहीं सकते। हम उन सब पशुताओं से परिचित हैं जो इस एशियाई शक्ति ने दूसरी एशियाई शक्ति के प्रति (चीन

के प्रति) की है। निरीह, निःशस्त्र चीनी जनता पर आक्रमण करके उसके विरुद्ध बीसवीं सदी के भयानक से भयानक शस्त्रों का प्रयोग करके और उसके साथ जघन्य अनाचार करके जापान ने एशियाई देश के नाते सहानुभूति की अपनी पात्रता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। आज हम इस अणु विस्फोटक बम के प्रयोग के विरुद्ध जो अपना स्वर ऊँचा कर रहे हैं, वह एक एशियाई देश के निवासी होने के नाते नहीं। एक मानव होने के नाते, इस संसार का एक क्षुद्र नागरिक होने के नाते कर रहे हैं। हम अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और सोवियट रूस के शासकों से कहते हैं इस भयानकता को बन्द कीजिये; आप के पास यों ही जन बल एवं साधन बल पर्याप्त से भी अधिक मात्रा में हैं। तब यह अणु विस्फोटक बम क्यों? हम इन देशों की जनता से कहते हैं, भाई आप भी किंचित विचार कीजिये, क्या आप अपने शासकों को इस अनिर्बन्ध नर संहार लीला करने की इजाजत देते रहेंगे? क्या आप नहीं समझते कि एक दिन आप पर भी वे बम बरस सकते हैं? क्या इससे संसार के सर्व प्रकारेण विध्वस्त हो जाने की संभावना नहीं है? क्या अब अवसर नहीं आ गया है कि आप अपनी विध्वंसकारिणी क्रियाओं को संयत करें। स्मरण रखिये, आज मानवता का भाग्य सूर्य राहुग्रस्त हो रहा है। धरम करो, धरम करो, धरम की बिरियाँ धरम करो। ऊँचा करो अपना स्वर, निर्बन्ध करो अपनी वाणी, कह दो अपने शासकों से कि अब इस नाशक बम का प्रयोग नहीं होने दिया जायगा। हम अमेरिका के उन मजदूर भाइयों तक अपना स्वर पहुँचाना चाहेंगे जो इस बम के बनाने के कार्य में दत्तचित्त हैं। हम उनसे कहते हैं इस घातक शस्त्र को निर्मित करना आप अस्वीकृत कर दीजिये, क्या आपका मानवता का यह निमंत्रण है कि आप ऐसा करें!

अणु विस्फोटक बम क्या निकला कि अखिल विश्व की राजनीति का संतुलन डांवाडोल हो गया। अब कोई भी देश अपनी कुशल नहीं मना सकता। कोई भी राष्ट्रीय सीमाएँ अब इस बम के आगे, देश रक्षा में सहायक नहीं हो सकती। आज न रूस की कुशलता है न ग्रेट ब्रिटेन की, न अमेरिकन की ही! शान्ति और सुरक्षा की सब धारणाएँ इस एक महान् प्रलयंकर वैज्ञानिक आविष्कार के कारण आमूल रूपेण परिवर्तित हो गई है। आज मानव ने प्रकृति की अन्तर्हित अणु शक्ति का केवल मात्र आंशिक उपयोग, सो भी विनाशक उपयोग करने की क्षमता, प्राप्त की है। परन्तु इस अणु में महती निर्माण शक्ति अन्तर्हित है। वैज्ञानिकों का कहना है कि एक गिलास भर पानी के अणुओं में इतनी विशाल शक्ति निहित है कि वह विनिर्मुक्त की जा सके तो समूचे ब्रिटिश साम्राज्य के नौसैनिक जहाजों को समुद्र के गहन तल से उठा कर ऊँचे से ऊँचे शिखर गौरीशंकर पर स्थापित करने में समर्थ हो सकती है। अणु विस्फोटक बमों का आविष्कार इस बात की साक्षी दे रहा है कि विज्ञान वेत्ता अणु शक्ति को प्राप्त

और नियंत्रित करने के निकट पहुँच रहे हैं। हमारा यह विश्वास है कि जिस दिन मानव समाज के हाथ में यह महती शक्ति आ जायगी उस दिन मानवता के सभी अधिभौतिक कष्ट दूर हो जायँगे। इस समय अपने आप ही, बिना समाजवाद के मानव शोषण की समस्या का, अन्त हो जायगा। कारण यह है कि भौतिक शक्ति इतनी अधिक मात्रा में और इतनी सरलतापूर्वक मानव-समाज की सेवा के लिये प्राप्त हो सकेगी कि मानव शोषण की लाभ लोभमयी प्रेरणा स्वयं मुर्झा जायगी। पर, आज हम देख रहे हैं कि उस शक्ति को प्राप्त करने के पूर्व विनाशक शक्ति का आविर्भाव हो गया है। क्या हम यह समझें कि मानव ज्ञान महार्णव के मन्थन के फल स्वरूप अमृत निकलने के पूर्व यह हलाहल निकला है?

हाँ निकला यह गरज हलाहल,
पर तुम मत भागो। मत भागो॥
निज उद्बोधन करो, कहो, हे
नीलकण्ठ, जागो, अब जागो!!!
अरे निहारो, समाधिस्थ हैं—
विषपायी शंकर अन्तर में,
बम्भोले, बम्भोले, बोलो!
जाग उठेंगे वे क्षण भर में!
सुनो, तुम्हीं को पीना होगा
अपनी कृति का विषम हलाहल,
आज स्वबश करनी ही होगी
भीति भावना की यह हलचल।

हमारा यह विश्वास है कि यदि मानवता ने अपने अन्तःशायी शंकर का आह्वान करके इस गरल को कण्ठस्थ कर लिया, तो वह दिन दूर नहीं है जब कि अणु विस्फोट उपलब्धा महाशक्ति नियन्त्रित की जा सकेगी और इस प्रकार वह मानव मुक्तिदात्री बन कर जन सेवा के कार्यों में प्रयुक्त हो सकेगी।"

(साप्ताहिक 'प्रताप' : ११ अगस्त, १९४५ ई०)

———

(ख)--डाढ़ी-मूछें ! हाँ, महाशय, डाढ़ी-मूछें !!

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं :—

"भगवान ने, या वैज्ञानिक भाषा में यों कहें कि जीव-रसायन-नियम ने, मूछें भी क्या उगाई कि वाह ! वाह !! मानव सृष्टि के आधे भाग को तो भगवान् ने सफाचट पैदा किया, न डाढ़ी, न मूछें, पर बिचारे अन्य अवशिष्ट अब आधे भाग ने न जाने कौन सा पाप किया था कि उसे डाढ़ी और मूछों के उगने का अभिशाप मिला। हम पूछते हैं, भाई साहब, भगवान् का क्या जाता अगर पुरुष कहलाने वाला जन समूह भी स्त्री कहलाने वाले समूह के सदृश, बिना डाढ़ी मूँछ के होता ? कुछ ऐसा भी नहीं हैं कि बिचारे पुरुष सौन्दर्य्य में इस बाल-विकास से कुछ वृद्धि हो जाती हो। यदि आप किसी डढ़ियल मुँछियल जवान को देखें तो आपको ऐसा लगेगा जैसे कोई अपसरानन्द सरस्वती चले जा रहे हैं। यह कहना कि आप की रुचि कुछ विकृत, कुछ अस्वाभाविक हो गई है, तो यह भी ठीक नहीं, मानव की कल्याणात्मक भावना ने डाढ़ी मूछों को कोई स्थान नहीं दिया। आज से लेकर पुरातन से पुरातन कलात्मक अभिव्यंजनों-तूलिका अथवा छैनी की कृतियों-को देख जाइए डाढ़ी मूछें न सन्ति। इसलिए वर्तमान रुचि की विकृतता की बात कुछ जँचती नहीं। वास्तव में मुख के केसों को मानव ने सदा ही एक जंजाल समझा है। हाँ प्रथाएँ समय-समय पर अवश्य प्रचलित होती रही हैं कि डाढ़ी मूछों का रखना न्यूनाधिक होता रहा है। एक समय था कि हर जवान डाढ़ी मूछों से लैस रहता था। आज कुछ ऐसा काल आया है कि डाढ़ी मूछों पर साढ़े-साती लगे जान पड़ते हैं। मनुष्य ने डाढ़ी मूछों को धार्मिक प्रथाओं की शृङ्खला में भी बहुत आबद्ध करने का प्रयत्न किया। अगर आप मुसलमान हैं तो शरीयत के अनुसार डाढ़ी रखिये। अगर आप हिन्दू हैं तो कम से कम जब तक आपके बाप न मर जायँ तब तक मूछें न मुंड़ाइए। अब प्रश्न यह है कि आप से और हमारी मूछों से क्या सम्बन्ध ? मूछें हमें उगती हैं बाप जान की तो ये हैं नहीं; तो साहब अधिकार हमें होना चाहिए कि हम मूछें रखें या न रखें। यह क्या कि आप एक धार्मिक विधान लेकर हमारे नाई के सिर हुए जा रहे हैं ? या, हमारा निशित क्षेम शल्य (यानी सेफ्टी रेज़र) छीने ले रहे हैं ? और डाढ़ी साहब, अगर अल्लाह के रसूल ने रखी थी तो रखी थी। ठीक है। हम यदि उनके मतानुयायी हैं तो आप हमसे डाढ़ी रखाने को क्यों कहते हैं ? अजी महाशय, उस युग में, जब डाढ़ियाँ चलती थीं, अकबर के शब्दों में डासन का बूट-जूता कब चलता था ? जमाने ने बड़ी करवटें ली हैं बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है ! लिल्लाह, अब तो बख्शिये।

लेकिन साहब बड़ा हठ है, बड़ा दुराग्रह है। हम देख रहे हैं कि लोग सिद्धांततः डाढ़ी मूंछों को छोड़ने को तैयार नहीं हैं। यों मुड़वा लेंगे। पर सिद्धांत वही रहेगा कि मुख मण्डल के बाल विकास में किसी उस्तरे को दखल न देने दिया जाय। हाँ, यों, काल की रुचि बड़ी बलवती होती है। लोग नां-नूं करते हुए भी व्यवहारों में डाढ़ी मूंछें विहीन होते जा रहे हैं। हम स्वयं बरसों पहले अपनी मुंडवा चुके हैं। इसलिए, हमें तो 'बढ़त आपनों गौत लखि' वैसा ही सुख होता है 'ज्यों बड़री अंखियां निरखि, आंखन को सुख होत, हमें डाढ़ी मूंछों का तिरोहित होते देख कर बड़ा आनन्द आता है। इस डाढ़ी मूंछ तिरोधान में हमें एक मनोवैज्ञानिक विशिष्ट वृत्ति के दर्शन होते हैं। धार्मिकता की प्रथा कुछ कहती है, समय की रुचि कुछ और बात कहती है ! मन में कुछ संदेह भी है। साहस भी इतना नहीं है कि डाढ़ी—मूंछों के विरुद्ध शस्त्र लेकर उठ खड़े हों और धार्मिक रूढ़िवाद से जूझें। पर, चुपके-चुपके अपनी कटाए ले रहे हैं ! मन में कहते हैं—होगी धार्मिक प्रथा, लेकिन यार, आजकल के समाज में कलन्दर बना कौन घूमे ? हमारे सम्मान्य मित्र श्रीयुत चौधरी खली कुज्जमां का एक किस्सा हमें याद आता है। पाठक यह तो जानते ही है कि चौधरी खली कुज्जमां साहब किसी समय कांग्रेसजन थे। वे हमारे साथ ही सन १९२२ में लखनऊ जेल में थे। वे दिन असहयोग और खिलाफत आन्दोलन के थे। खलीक साहब के डाढ़ी नहीं है और उन दिनों बड़े-बड़े मौलाना लोग जेल आये थे। अतः एक साहब खलीक भाई से पूछ ही तो बैठे कि जनाब, आप मुसलमान हैं तो, फिर, आप के डाढ़ी क्यों नहीं है ? खलीक भाई न चट से जवाब दिया, भाईजान बाहरी डाढ़ी तो नहीं है पर मेरे पेट में विदेशी शासन के खिलाफ सवा हाथ की डाढ़ी लहरा रही है। हम लोग खलीक भाई की यह बात सुन कर खूब हँसे थे। कई दिनों तक इसकी अच्छी चर्चा रही। आज कभी-कभी मन में यह प्रश्न उठता है कि हमारे खलीक भाई के पेट में क्या अब भी वह सवा हाथ की डाढ़ी विदेशी शासन के विरुद्ध लहरा रही है ? खलीक भाई आज मुस्लिम लीग के बड़े नेताओं में हैं। क्या कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस बडप्पन और इस नेतृत्व को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने पेट की सवा हाथ की विद्रोहिनी डाढ़ी को सफा कर दिया हो ?

हाँ, तो हम कह यह रहे थे कि डाढ़ी मूंछे भी भगवान की अजब देन हैं। डाढ़ियाँ जब होती थीं, तब कई प्रकार की होती थीं। पाठक वह लोकोक्ति भूले न होंगे कि—

पहली डाढ़ी मानमनोहर
दू जी डाढ़ी भम्मो
तीजी डाढ़ी खलक फ़जीहत

चौथी डाढ़ी ठुड्ढो !

मानमनोहर डाढ़ियों में स्वर्गीय रवीन्द्र ठाकुर तथा पूजार्ह आर्य्य भगवानदास जी (बनारस वाले) की डाढ़ियाँ परिगणित की जा सकती हैं। बावजूद इसके कि डाढ़ियाँ और मूंछें एक उपहास हैं, फिर भी कुछ मूर्त्तियाँ हैं जिन पर वे बहुत फबती है। भम्मो डाढ़ी स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा स्वर्गीय चितरंजनदास की थीं। दास बाबू जब जेल में थे तो उन्होंने डाढ़ी रखा ली। फिर वे छूट कर आ गये। पण्डित मोतीलाल जी भी छूट कर बाहर चले गए थे। यह सन् १९२२ के अन्त के महीनों की बात है। हम जवाहरलाल भाई के साथ उन दिनों लखनऊ जेल में थे। वहीं जवाहर भाई के पास पंडित मोतीलाल जी का एक पत्र आया। जवाहरलाल जी ने हम लोगों को पढ़ कर सुनाया। स्वर्गीय पंडित जी ने दास बाबू के एक पत्र का उल्लेख करते हुए लिखा था कि दास जेल से डाढ़ी लेकर आये। दास बाबू ने पंडित जी को लिखा था कि जब मैं जेल से सडाढ़ी आया तो मेरी एक लड़की, जो बहुत चंचल है ! मुझसे बोली, बाबा तुम तो नाटक-रंग मंच के बनावटी ऋषि की तरह लगते हो। दास बाबू ने लिखा था कि भाई मोतीलाल ! यह व्यंग सुनते ही मैंने डाढ़ी को पूर्ण प्रणाम कर लेने का निश्चय कर लिया। हम लोग इस पत्र को सुनकर खूब हँसे। बिचारी डाढ़ी की भी क्या दुर्गति होती है। खलक फ़जीहत डाढ़ी वह होती है जो निहायत छितरी-छितरी, दो बाल यहाँ दो-चार वहाँ, ऐसी होती है। और ठुड्ढी डाढ़ी सिर्फ ठुड्ढी पर ही उगती है, बाकी गाल-बाल साफ।

और मूंछों का क्या कहना है ? मूंछें भी कई प्रकार की हुआ करती थीं। पर, हम समझते हैं, पाठक इस प्रकरण को पढ़ते-पढ़ते ऊब गए होंगे। अतः इस सम्बन्ध में फिर कभी लिखेंगे।"

(साप्ताहिक 'प्रताप', १६ अगस्त, १९४५ ई०)

(ग)—के बोले मां ! तुमि अबले ???

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं :—

"बंग भंग हो गया। अबकी बार वंग भंग कर्जन ने नहीं किया। उसके अपराधी इस बार हम हैं। निःसंदेश इस बंग विभाजन के मूल में साम्राज्यशाही की वह भेद करी कर्जनीय नीति ही है जिसने हमें आज ये दिन दिखलाएं। पर, विभाजन का यह अपराध हमारे माथे है। ऐतिहासिक कारणों का कहाँ तक विवेचन किया जाय ? जिनके शिर पर इस देश में मुसलमानों का इतना बलशाली बहुमत उत्पन्न करने का भार है, जिनकी सामाजिक रूढ़ियाँ और परम्पराएँ इस गुत्थी को सुलझाने की उत्तर-दायिनी हैं, वे इतिहास के पन्ने उल्टे भी तो उन्हें क्या संतोष प्राप्त हो सकता है ? आज तो यथार्थता यह है कि बंकिम, रवि ठाकुर, खुदीराम, कन्हाईलाल, चित्तरंजन, सुभाष और नजरुलइस्लाम की बंग माता विक्षतअंगा हो गई। वह कटी पड़ी है । बाहु से तुमि, मां, शक्ति हृदये तुमि, मां भक्ति, तोमार प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे !! आज हृदय हाहाकार करके पूछ उठता है: बंकिम का वह स्वप्न क्या हुआ ? के बोले मां, तुमि अबले ? गर्व एवं विश्वास का द्योतक यह प्रश्नवाचक सिद्धांत वाक्य, आज, जैसे इतिहास के पृष्ठों के भीतर से चीत्कार करता हुआ, हमारी विवशता पर आँसू बहाने को हमसे कह रहा है। बंगाल ही क्यों आज समूचा भारतवर्ष छिन्न विच्छिन्न हो रहा है—हो गया है। रवीन्द्र ठाकुर की वह सील सिन्धु जल धौल चरण तल, अनिल विकम्पित श्यामल अंचल, अम्बर चुंबिन भाल हिमाचल, शुभ्र तुषार किरीटिनी भुवन मनोमोहिनी आज कहाँ है ? भारत का इतिहास सहस्रों वर्षों का इतिहास, यदि अनृत होता भासित हो तो क्या आश्चर्य ? आज यदि सम्राट् चन्द्रगुप्त और उनके पौत्रदेवा-नाम् प्रिय पियदस्सी अशोक हमसे पूछ उठें कि तुमने यह क्या किया, तो हमारे पास इसके अतिरिक्त और क्या चारा है कि हम लज्जा से अपना मस्तक झुका लें ? मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के भग्नावशेष यदि हमसे हिसाब मांग उठे तो हम क्या उत्तर देंगे ? सिन्ध, वितस्ता (झेलम) रावी, चिनाब के तरंगमय गहर गभीर प्रवाह से क्या आज हम यह कह दें : तुझसे हमसे अब कोई वास्ता नहीं रहा ? पुरातन न्याय एवं तर्क के केन्द्र नवद्वीप (नदिया) से क्या कह दें कि तू हमसे विलग है ?

हाँ बंग-भंग हो गया। भारत विभाजन भी हो ही गया। आज हृदय में ग्लानि है। अपनी षंढ़ता, अपनी विवशता ! अपनी परिस्थिति के प्रति आज हृदय में झुंझलाहट है। यह स्पष्ट दिखलाई दे रहा है कि यह जो कुछ हो रहा है और हो चुका है वह इतना अनैसर्गिक, इतना अभौगोलिक, इतना असांस्कृतिक, इतना अनैतिहा-

सिक एवं इतना अराजनैतिक है कि यह कदापि काम न होना चाहिए था। पर यह हो रहा है। इसे रोकने में हम जैसे विवश थे—विवश हैं परन्तु मन में यह भाव भी उठता है कि भविष्य में यह ऐसा ही नहीं रहेगा जैसा आज हैं। राजनैतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भाषा विषयक घटनाचक्र, इस वर्तमान विभाजन को चूर-चूर करके एक बार पुनः अखण्ड अविभाज्य, आसमुद्रहिमाचल एक भारवर्ष की सृष्टि करेगा? पर हमें केवल ऐतिहासिक घटना चक्र पर ही अवलंबित नहीं रहना है। अन्ततः उस घटना चक्र को प्रवर्तित एवं परिचालित करने का दायित्व एवं कृतित्व हमारे आपके कन्धों पर है। मन में आज ग्लानि तो है, पर हम निराश क्यों हों? बात चाहे किसी को बुरी लगे, पर वास्तविकता यह है कि भारतवर्ष एक इकाई है और वह फिर इकाई होकर रहेगा। इतिहास, अर्थनीति, राजनीति, संस्कृति, सब का प्रवाह इसी इकाई की दिशा में है। भविष्य में हम जो कुछ देख रहे हैं वह यह है कि एक बार पूर्ण स्वतंत्र पाकिस्तान का नशा उतर जाने के बाद, सिंध, पूर्व बंगाल, सीमांत प्रदेश एवं बिलोचिस्तान के मुसलमानों में अपने-अपने प्रांतीय एवं केन्द्रीय शासकों के प्रति एक भयंकर असन्तोष तथा विद्रोह उत्पन्न होगा। धार्मिक कठमुल्लापन सदा काल के लिए मुसलमानों को निरा काठ का उल्लू बनाए रख सकने में समर्थ बना रहेगा, इसमें हमें बहुत संदेह है। हमें यह बात भी सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि भारतीय इस्लाम का धार्मिक एवं सैद्धांतिक प्रचार तथा नेतृत्व करने वाला समूह भारतीय उलेमाओं का मण्डल इस विषाक्त विभाजन का, इस घातक पाकिस्तानी राज्य के सदा विरुद्ध रहा है, और है। यदि यह बात सत्य है कि भविष्य का युग विज्ञान का युग है, यदि इस बात में कुछ तत्त्व है कि भावी भारतवर्ष में तथा पाकिस्तान राज्य में भी वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार होगा और यदि यह बात युक्तिसंगत है कि वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार धार्मिक जड़ता एवं धार्मिक संकोच, धार्मिक कट्टरता एवं धार्मिक अनुदारता का शत्रु है तो हम बिना किसी विरोध के, भय के, यह कह सकते हैं कि पाकिस्तान का भावी नागरिक इतनी सहज रीति से बहकावे में आ जाने वाला व्यक्ति न होगा, जैसा कि वह आज है। और, तब वह अपने शासकों से प्रश्न पूछेगा तथा पाकिस्तानी खयाली पुलावमात्र से उसकी भूख बुझने से इन्कार कर देगी। ऐसी अवस्था में वह अपने शासकों के प्रति विद्रोही हो जायगा और अपनी मुक्ति के लिए वह स्वभावतः भारतवर्ष के उपक्रांतिमूलक सामाजिक तत्त्वों की ओर आशा से देखेगा जो बिना धार्मिक भेदभाव के इस देश में किसान-मजदूर-पूजा-राज की स्थापना के लिए अहर्निशि प्रयत्नशील हैं और रहेंगे। वह समय होगा आज के इस विभाजित भारत को फिर से अखंड भारत में परिणत करने का; और उस दिन की तैयारी का श्रीगणेश हमें आज से, इसी क्षण से, करना है।

उस तैयारी के कुछ मूलभूत सिद्धांत हैं, जिन्हें हमें अपने हृदयों में बिठा लेना है। बिना उन सिद्धांतों को हृदयंगम किए हम उस भावी अखंड भारत स्थापना दिवस के लिए समुद्यत एवं सुसज्जित नहीं हो सकते। प्रथम सिद्धांत यह है कि हम—अर्थात् अखण्ड भारत में आस्था रखने वाले लोग सुसंगठित हों। हम संगठन सूत्र में बधें। हमारे हृदयों में अनुशासन एवं आज्ञापालन की भावना अवतीर्ण हो। वह सनातन, परम पुरातन, किन्तु नित नव संगठन मन्त्र हमारा प्रेरणा दायक बने जिसमें यह कामना की गई है कि संगच्छध्वं, संवदध्वं सम्वोमनांसि जानताम्, समानी आकूतिः समानानि-हृदयानिवः, हम साथ चले, साथ-साथ समवाक्य, बोले हमारे हृदय और मन सम हों। हमारे हृदय बलयुक्त हों, हमारी भुजाएं सशक्त हों। हमारे जीवन में सन्तुलन एवं अनुशासन हो। तभी हम इस महायज्ञ को—पूर्ण कर सकेंगे। द्वितीय सिद्धांत यह है कि हमारे हृदयों में संकुचित धार्मिकता एवं साम्प्रदायिक अनुदारता कदापि घर न कर पाए क्योंकि स्मरण रखिए, अखण्ड भारत की पुनः स्थापना बिना पाकिस्तान निवासी मुसलमान जनता सक्रिय सहयोग के सम्भव नहीं और वहाँ की मुस्लिम जनता का सहयोग आपको तभी प्राप्त हो सकता है जब कि आपका यहाँ का, संगठन छद्मी संकुचित एवं अनुदार साम्प्रदायिकता से परे हो। लोग कह सकते हैं कि हम अपने बल बूते पर अखण्ड भारत बना लेंगे। हम कहते हैं : इस भ्रमजाल में न फंसिये। आप यदि कभी इतने बलिष्ट भी हो जायं कि आप पाकिस्तान—राज्य को मेटने की सोचें, तब भी आपको ऐसा कदापि कार्य करने नहीं दिया जायगा। आप और पाकिस्तान, दोनों संयुक्त राष्ट्र मंडल के सदस्य तो होंगे ही। और आपने यदि कभी पाकिस्तान पर आक्रमण की दृष्टि से आंखें उठाई तो संयुक्त राष्ट्र संघ की सम्मिलित शक्ति आप की आंखें निकाल लेगी। इसलिए इस आक्रमण नीति की बात तो सोचिये ही मत। आपको तो स्थानीय मुस्लिम निवासियों के सहयोग से ही अपनी इष्ट सिद्धि में सफलता मिल सकती है, और आखिर आप अपने संगठन को साम्प्रदायिकता की श्रृंखला से क्यों जकड़े जब कि आप यह जानते हैं कि भारतवर्ष में रहने वाला राष्ट्रवादी मुस्लिम वर्ग अखण्ड हिन्दोस्तान का उतना ही कट्टर उपासक है जितने कि आप हैं। तीसरा सिद्धान्त यह है कि हम अपने हिन्दू बहुमत प्रान्तों में अपने मुसलमान भाइयों के साथ जनसंपर्क स्थापित करें और उन्हें यह बतलाने का प्रयत्न करें कि जिस धार्मिक अन्धेपन को वे इस्लाम भक्ति मानते आए हैं, वह वास्तव में एक नीचे गिरानेवाली भावना है और वास्तविक इस्लाम से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। साथ ही अपने पढ़े-लिखे मुसलमान भाइयों को हमें यह भी समझाना है कि आप जो अभी तक इस भ्रान्ति में रहते आए हैं कि भारतीयता विरोध ही इस्लाम है, सो बात ऐसी नहीं है। इस भारतीयता विरोध और अरबी फारसी के मोह ने उन्हें अभी तक सच्चा मुसलमान नहीं बनने

दिया है। अतः उन्हें अब यह समझ लेना चाहिए कि वे भारतीय मुसलमान हैं, वे अरबी, ईरानी, तूरानी, मोरक्की, तुर्की या फिलस्तीनो मुसलमान नहीं हैं। अतः पढ़े लिखे मुसलमानों के बीच हमें इस प्रकार के प्रचार कार्य को सांस्कृतिक समितियों द्वारा बराबर करते रहना है।

यदि हमने अपने भावी संगठनात्मक कार्यक्रम को इन सिद्धांतों के आधार पर संचालित किया तो वह दिन दूर नहीं जब कि हम एक बार फिर गर्व से गा उठेंगे:

के बोले, मां तुमि अबले ?
बहु बल धारिणीम् नमामि तारिणाम्
रिपु दल कारिणीम्
मातरम्
वन्दे मातरम् !"
(साप्ताहिक 'प्रताप', २३ जून, १९४७ ई०)

———

(५) पंचम परिशिष्ट

'प्रभा' की संक्षिप्त टिप्पणियाँ:

१ मई, सन् १९२४:—

(क) गनीमी युद्ध (Guerilla War) के नियम : (लेखक श्री अज्ञात)—पृष्ठ ३३८—३४५—

'नवीन' जी की प्रारम्भिक टिप्पणी—

इस लेख में लेखक ने गनीमी युद्ध । (Guerilla War) के नियमों का दिग्दर्शन कराया है । महाराज शिवाजी और सिक्खों ने इस प्रकार की युद्ध-कला को पूर्णता तक पहुँचाया था । गनीमी युद्ध या (Guerilla war) उस युद्ध प्रणाली का नाम है जिसमें सिपाही राष्ट्र की सुगठित नामधारी फौज के रूप में युद्ध नहीं करते परन्तु अनियमित रूप से लुक छिप कर छापा मारते हैं । १८९९ ई० की हेग कानफरेन्स में यूरोपीय राष्ट्रों ने इस प्रकार की युद्धेच्छुक टुकड़ियों के कुछ नियम बताए थे । अन्तरराष्ट्रीय कानून के अनुसार केवल वे ही टुकड़ियाँ युद्ध प्रवृत्त बैरी का सम्मान प्राप्त कर सकती हैं जिनका (१) कोई नायक हो (२) जो वर्दी या अन्य विशेष चिह्न पहने हो (३) जो खुल्लम-खुल्ला शस्त्र धारण करती हों । (Guerilla) शब्द स्पेनी भाषा का शब्द है । स्पेनी भाषा में (Guerilla) के अर्थ हैं 'युद्ध' और (Guerilla) उसका लघुतावाचक रूप है—जिसका अर्थ है, छोटा युद्ध ।

—पृष्ठ ३३८ ।

(ख) वायु मण्डल पर विजय (लेखक : प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा, एम० एस-सी० एम० सी० एस०)—पृष्ठ ३४६-३५० :— + + "वायुयान विषयक साहित्य की वृद्धि इसी युग में हुई है । ऐतिहासिक दृष्ट्या देखने से पता चलता है कि सबसे पहले बिशप विल्ककिन्स ने इस विषय को लेखबद्ध किया था । उन्होंने १६७२ ईस्वी में वायुयान के विषय में एक ग्रंथ लिखा था । वायुयान—साहित्य में यही ग्रन्थ सबसे प्राचीन और विधिवार लिखा हुआ ग्रन्थ है—।"—(पृ० ३४६)—

'नवीन' जी की प्रतिक्रियात्मक पाद—

टिप्पणी—

लेखक महाशय विशप विल्ककिन्स (Blshop wilkins) के ग्रंथ का निर्माण काल १६७२ ईस्वी बतलाते हैं । हम समझते हैं कि लेखक ने ग्रन्थ निर्माण काल को बहुत आगे बढ़ा दिया है । सन् १६३८ ईस्वी में विशप ने 'The discovery of a world in

the moon' नामक एक ग्रन्थ लिखा था; इसी ग्रंथ के तृतीय संस्करण में उन्होंने The Possibility of a passage thither शीर्षक अनुवचन लिखकर वायुमार्ग गमन की सम्भावना का जिक्र किया था। पुस्तक का तृतीय संस्करण सन् १६४० ई० में हुआ था। अतः लेखक महाशय द्वारा कल्पित ग्रन्थ निर्माण काल (सन् १६७२ ई०) असंगत प्रतीत होता है। अस्तु। इसके अलावा एक बात और है : लेखक ने वायुयान विषय पर इसी ग्रन्थ को प्राचीनतम ग्रंथ क्यों मान लिया? भारतवर्ष में इससे भी प्राचीन ग्रन्थ मौजूद हैं। हाल में राय साहब के० बी० वजे ने भारतीय इंजीनिरिंग कला के विषय में कुछ नूतन शोध किए हैं, उनके देखने से ज्ञात होता है कि वायुयान विद्या का वैज्ञानिक उद्भव पहले पहल भारतवर्ष में हुआ।—(पृष्ठ ३४६-३४७)।

[ग] दूत प्रणिधि :—दूत का प्रयोग तथा प्रबंध लेखक : श्रीयुत ठाकुर कृष्णदेव सिंह राजनीति विशारद (पृष्ठ ३५८-३६०)—

"× × राष्ट्रभक्त—दूत वही हो सकता है जो अपने राष्ट्र को हृदय से चाहता हो। केवल रुपया कमाना ही उसका उद्देश्य न होना चाहिए। वेतन कम मिलता है या ज्यादा—इसका विचार न करके राष्ट्र के हित में ही जिसकी वृत्ति हो—वही पुरुष राष्ट्र हितकारी दूत है × ×।—"

'नवीन' जी की प्रतिक्रियात्मक पाद—
टिप्पणी :

ऐसा न हो कि गेडीज ब्रदर्स की तरह स्वर्ण मुद्रा की लोलुपता के कारण राष्ट्र का दूतत्व स्वीकार कर ले। (पृष्ठ ३५६)।

जुलाई, १९२४

(क) प्राचीन नगर-राष्ट्रों के राजनैतिक परिवर्त्तन
(पृष्ठ ३-११) ; लेखक: गोवर्द्धन लाल, एम० ए०, बी० एल०—

"राजनैतिक अस्त-व्यस्तता तथा प्रचलित असन्तोष से तो निस्सन्देह दोनों तरह के तानाशाहों (Tyrants) ने—किसी उपयुक्त शब्द के न मिलने के कारण हम इन शासकों को 'तानाशाह' कहकर पुकारते हैं—लाभ उठाया था, परन्तु इन दो समयों में उत्पन्न होने वाले शासनों में यह भेद है कि पूर्व कालीन शासन प्रजा की सहायता से हुआ था परन्तु उत्तरकालीन तानाशाही शासन की स्थापना वैतनिक सिपाहियों की सहायता से हुई थी।" (पृष्ठ ४-५)।

'नवीन' जी की पाद-टिप्पणी :—

ऊपर लेखक महाशय ने जो कुछ लिखा है उससे यह प्रतीत होता है कि ग्रीस में Oligarchy (अल्पसत्तात्मक शासन) के उपरान्त Tyranny (तानाशाही शासन)

का जन्म हुआ। हम नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि यह धारणा भ्रमपूर्ण है। ग्रीस के इतिहास के कुछ प्राचीन लेखकों की यह धारणा हो गई थी कि कि तानाशाही शासन का काल (Age of the Tyrants) अल्प सत्तात्मक शासन काल (Oligarchy) और जन-सत्तात्मक शासन काल के बीच अवश्यमेव प्रक्षिप्त है। वर्त्तमान काल के इतिहासज्ञों ने गम्भीर अध्ययन तथा बारीक खोज के उपरान्त इस सिद्धान्त को असत्य ठहराया है। उदाहरण लीजिये। कोरिन्थ नामक जनपद में तानाशाही शासन के बाद जनसत्ताक शासन का कदम—जैसा कि उक्त सिद्धान्त के रूप से होना आवश्यक है—नहीं हुआ। कोरिन्थ में Tyranny के बाद Oligarchy आई और यह अल्पसत्ताक शासन तानाशाही शासन के बाद कोरिन्थ में २५० वर्षों तक रहा। इसी प्रकार एथेन्स का शासन-इतिहास उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रतिवाद स्वरूप है। नियमतः एथेन्स में Tyranny (तानाशाही शासन) के शुरू होने के पहले Oligarchy (अल्प सत्तात्मक शासन) होना चाहिये था—पर बात ऐसी नहीं है। एथेन्स में Timocrcy (धन शासन) के बाद Tyranny (तानाशाही शासन) का प्रारम्भ होता है। ग्रीस के इतिहास में ये दो अपवाद ऐसे हैं जो लेखक महाशय के सिद्धान्त को सन्देहमूलक ठहराते हैं। (पृष्ठ ५)।

(ख) सिसली और दक्खिन इटली के नये उपनिवेशों में इस शासन का जन्म सातवीं शताब्दी के अन्त तक नहीं हुआ और पाँचवी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में सिसली में यह शासन अपनी चरम सीमा और बल पर पहुँचा था। तो भी अधिकांश स्थानों में यह परिवर्त्तन ऊपर बताये हुए काल में ही हुआ। (पृष्ठ ५) :—

'नवीन' जी की पाद-टिप्पणी :—

इस स्थान पर भी लेखक को भ्रम हो गया है। यह कहना ठीक नहीं कि ग्रीस में तानाशाही शासन काल सातवीं शताब्दी से लगाकर छठी शताब्दी तक ही है। पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम ६० वर्षों को छोड़कर प्राचीन ग्रीक इतिहास में ऐसा कोई भी समय नहीं मिलता जब कि खास ग्रीस के एक न एक प्रदेश में तानाशाही शासन (Toranny) विद्यमान न रहा हो। (पृष्ठ ५)।

जुलाई, १९२४

(क) डायरी के कुछ पृष्ठ : दिल्ली के सत्याग्रह की कहानी : लेखक इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृष्ठ २४-२६:-'नवीन' जी की दायित्वपूर्ण परिचयात्मक प्रारम्भिक टिप्पणी :—

इस लेखमाला में श्रीयुत इन्द्र वेदालंकार विद्यावाचस्पति दिल्ली के सत्याग्रह की कुछ वे बातें दिखलायेंगे जो अभी तक अन्यत्र कहीं प्रकट नहीं हुई है। सन् १९२१ ईस्वी में एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज कानपुर पधारे थे। उस समय स्वामी

जी ने हमें दिल्ली के सत्याग्रह के सम्बन्ध में कुछ बातें बताने की कृपा की थी। हमने स्वामी जी से प्रार्थना की थी कि ये बातें यदि लेखबद्ध हो जायँ तो भारतीय इतिहास लिखने वाले किसी भावी इतिहासज्ञ का बड़ा कल्याण हो। स्वामी जी ने कहा था: इन्द्र लिख रहे हैं। अब इन्द्र जी ने उस विवरण को 'प्रभा' में लिखने का वचन दिया है। आशा है 'प्रभा' के पाठक इस लेखमाला को पढ़कर प्रथम जीवन-ज्योति की एक शानदार झलक के पुनर्दर्शन कर सकेंगे। (पृष्ठ २४)।

(ख) **इंगलैण्ड के प्रसिद्ध बैंक की दो चार विचित्र बातें—लेखक**—रामनाथ लाल **'सुमन'**, पृष्ठ ५३-५७—

'नवीन' जी की परिचयात्मक प्रारम्भिक टिप्पणी :—

पाठकों में से बहुतों ने 'बैंक आफ इंगलैण्ड' का नाम सुना होगा। वर्त्तमान आर्थिक जगत में इस बैंक का बड़ा महत्त्व और उत्तरदायित्व पूर्ण स्थान है। यूरोपीय बैंकों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि ज्यों-ज्यों व्यापार की उन्नति होती गई त्यों-त्यों बैंक की स्थापना और उत्क्रान्ति भी होती गई। यूरोपीय देशों में वेनिस और जिनोआ नामक नगर प्रसिद्ध व्यापारिक नगर थे। पहले पहल उन्हीं नगरों में सार्वजनिक बैंकों की स्थापना हुई। सन् १५८४ ईस्वी में वेनिस नगर की व्यवस्थापिका जनसभा (सीनेट) ने बैंक स्थापित करने की आवश्यकता को अनुभव करके एक कानून पास किया। इसी कानून के बल पर वीनस नगर में 'बैंको द रायल्ता' (Banco De Raitto) नामक बैंक की स्थापना हुई। इसके बाद सन् १६६४ ईस्वी में 'बैंक आफ इंगलैण्ड' स्थापित हुआ। इस लेख में इसी बैंक की कुछ विचित्र बातें दिखलाई हैं। इस बैंक के स्थापित होने का मुख्य कारण यह था कि उस समय सरकार को कुछ रुपए उधार लेने की जरूरत पड़ी। इसी के कारण यह बैंक खुला। सन् १६६४ ई० की २१ जून से लगाकर दूसरी जुलाई तक केवल दस-बारह दिनों में सरकार को उधार देने के लिये १२,००,००० पाउण्ड इकट्ठे कर लिये गए। यही इस बैंक के स्थापन काल का इतिहास है। धीरे-धीरे इस बैंक का व्यवसाय बढ़ने लगा। एक जमाना था जबकि बैंक में केवल ५४ कर्म्मचारी काम करते थे और उनकी तनख्वाह पर केवल ४३५० पाउण्ड वार्षिक खर्च होता था।

इससे प्रकट होता है कि उस वक्त में काम बहुत कम था। सन् १८४७ ईस्वी में बैंक कर्मचारियों की संख्या ६०० से भी अधिक हो गई और उस समय वेतन खर्च २,१०,००० पाउण्ड से भी अधिक कूता गया था, बैंक को उत्तरोत्तर उन्नति का यह अच्छा नमूना है, ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह बैंक उन्नति करता गया, सन् १८६७ ईस्वी में बैंक कर्मचारियों की संख्या १,००० से भी अधिक हो गई। उस समय वेतन खर्च तथा पेंशन खर्च मिला कर कुल २८,००० पाउण्ड बढ़ गया था, सन् १६०६

ईस्वी में कार्यकर्त्ताओं की संख्या १४०० तक पहुँच गई थी, यदि पाठक इस बैंक के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में कुछ विशेष जानना चाहें तो वे मिस्टर थोरोल्ड राजर्स नामक लेखक प्रणीत History of the First Nine Years of the Bank of England नामक ग्रन्थ तथा मिस्टर एफ० जी० हिल्टन प्राइस की 'Hand Book of London Bankers' नामक पुस्तिका देख सकते हैं। (पृष्ठ ५३)।

अगस्त, १९२४ :—

[क] **पाटलिपुत्र—लेखक** : देवव्रत, **पृष्ठ** ८२—९३—: इसे देखकर डॉ० स्पूनर ने बतलाया कि यह फारस देश के ढंग की कारीगरी है और वहीं के कारीगरों ने इस नगर का निर्माण किया है। [पृष्ठ ८४]—

'नवीन' जी की पाद-टिप्पणी :

'प्रभा' के इतिहास प्रेमी पाठक शायद यह न भूले होंगे कि डॉक्टर स्पूनर महाशय ने पाटलिपुत्र को फारसी नगर सिद्ध करने का दुस्साहस किया था; इतना ही नहीं उन्होंने चन्द्रगुप्त को 'सेण्ड्रा कोटस' का जामा पहिनाने का भी उपहासास्पद् प्रयास किया था। उनकी राय में चन्द्रगुप्त एक ईरानी राजा था। श्री काशी प्रसाद जायसवाल ने स्पूनर के इस सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। अब इस मत का कोई मूल्य नहीं है। [पृष्ठ ८४]।

[ख] **जनसत्ता—लेखक** रघुकुल तिलक, एम० ए०, **पृष्ठ** ९९-१०५ :—

इसके अतिरिक्त जो धन नगर की उन्नति और प्रजा के सुख के निमित्त खर्च होता था वह या तो दासों के परिश्रम का फल होता था या अधीन प्रदेशों (Dependencies) से जबरस्ती वसूल किया जाता था। [पृष्ठ १००]—

'नवीन' जी की पाद—टिप्पणी :

डेलियन संघ [Confederacy of Delos] के सदस्यों का एथेन्स के प्रति असन्तोष दिन पर दिन इसीलिए बढ़ता गया कि एथेन्स का नगर राष्ट्रसंघ की सम्पत्ति को अपने कला कौशल की वृद्धि के लिए खर्च कर डालता था। [पृष्ठ १००]।

(ग) एक-राजतन्त्र, कुलीन राजतन्त्र और अराजकता, यदि इन सबके दोषों का हम विचार करें तो हमें जनसत्ता में गुण ही गुण दिखाई पड़ेंगे। (पृष्ठ१०५) —

'नवीन' जी की पाद-टिप्पणी :

डीन इन्ज (Dean Inge) ने जनसत्ता की निन्दात्मक स्तुति करते हुए कहा था कि हम यह जानते हैं कि जनसत्ता एक वहशियाना चीज है पर और और शासन प्रणालियाँ तो इससे भी गई गुजरी हैं। (पृष्ठ १०५)।

जनवरी, १९२५—(बेलगाँव कांग्रेस अंक) :—

(क) **ब्रिटिश साम्राज्य के विनाश के लक्षण—लेखक**—कन्हैयालाल वर्म्मा

बी० ए०, पृष्ठ २२-२८:— × × उपनिवेश किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का सर्वमान्य उत्तर देना दुष्कर कार्य्य है। यूनानियों के समय से आज तक इसकी अनेकों भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की गईं और सम्भवतः भविष्य में भी होती रहेंगी। (पृष्ठ २२)—

'नवीन' जी की पाद-टिप्पणी :

यूनानी लोगों से भी पहले फ़ीनोशियन जाति भूमध्यसागर में अपने उपनिवेश—मुख्यतः व्यापारिक केन्द्र—स्थापित कर चुकी थी। इससे भी पहले भारतवर्ष ने लंका, सुमात्रा, जावा, सियाम, ब्रह्मदेश और ईजिप्ट में उपनिवेश स्थापित किये थे। (पृष्ठ २२)।

(ख) रोमन लोगों का भी प्रायः यही आदर्श था, किन्तु उन्होंने संसार में रोमन-शान्ति-स्थापना का भी प्रण किया था। अतएव, उनके उपनिवेश इतने स्वतंत्र न थे। (पृष्ठ २३)—

'नवान' जी की पाद-टिप्पणी—

रोमन उपनिवेश दो श्रेणी में विभक्त किये जाते हैं (१) रोमन उपनिवेश (Colonia Romana) और [२] लैटिन उपनिवेश (Colonia Latina) रोमन उपनिवेश के वासी रोमन राजनैतिक स्वत्त्व से वंचित नहीं किए जाते। हर हालत में उपनिवेश रोमन साम्राज्य का अभिन्न अंग माना जाता था।

(ग) अमेरिका की सुवर्ण की खाने उसके राजनीतिज्ञों के सम्मुख नाच रही थीं, El-darado का स्वप्न उसे भी व्यथित कर रहा था। (पृष्ठ २५)—

'नवीन' जी की पाद-टिप्पणी :

El-darado (एल-डराडो) स्पेनिश भाषा का शब्द है। इसके अर्थ है "अलंकृत।" हिन्दी में इसका अर्थ हम स्वर्ण भूमि कर सकते हैं। सदियों तक स्पेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में यह खयाल प्रचलित था कि दक्षिण अमेरिका में एक ऐसी जाति निवास करती है जिसका धर्माचार्य्य वार्षिक उत्सवों के अवसर पर स्वर्ण-रज से अलंकृत होकर सिंहासनासीन होता है। इसी खामखयाली के प्रभाव से अनेकों धन-लोलुप, स्वर्ण भूमि की खोज में गए। परन्तु वह स्वर्णभूमि जो कही जाती थीः ओमाओ नामक स्थान के करीब है, उन्हें न मिली। यूरोपीय साहित्य में 'एलडराडो' या 'स्वर्ण भूमि' का अलंकारिकरीत्या प्रयोग किया जाता है। वह देश जहाँ धन की बहुलता तथा सुलभता हो—एलडराडो कहलाता है। लेखक ने ऊपर इसी अर्थ में उसे प्रयुक्त किया है। [पृष्ठ २५]।

(ङ) **एथेन्स का शासन-विधान** (उत्तरार्द्ध : प्रजातंत्रात्मक ऐथेन्स)—**लेखक : गोवर्द्धनलाल** एम० ए०, बी० एल०, पृष्ठ ५९-६९ :—

अनुपस्थिति में इस प्रकार लेखमाला के शीर्षक में परिवर्तन किया गया—विशेषतः यह **जानकर कि इस परिवर्त्तन का कारण भय था।** अब यह लेख माला 'ब्रिटिश साम्राज्य के विनाश के लक्षण'—इस शीर्षक के साथ निकला करेगी। पाठक जनवरी के लेख के शीर्षक को भी शुद्ध कर लेने की कृपा करें। (पृष्ठ ६५)।

(ग) यह बात प्रायः सभी जानते हैं, कि १५ वीं शताब्दी के अन्त पर्य्यन्त अमेरिका का महाद्वीप पूर्ण तथा अज्ञात अवस्था में था। वहाँ पर कुछ रेड इन्डियन्स (Red Indians) पशुओं की भाँति जंगलों में रहा करते थे। (पृष्ठ ६५) :

'नवीन' जी की पाद–टिप्पणी :

लेखक ने रेड इन्डियन्स को निरी जंगली जाति माना है—यह ठीक नहीं। कोई ६ वर्ष पहले अमेरिका प्रवासी महाराष्ट्र सज्जन ने 'लोक शिक्षण' नामक पत्र में रेड इन्डियन्स की प्राचीन सभ्यता का परिचय देते हुए एक लेख माला लिखी थी। उसमें उन्होंने रेड इन्डियन्स समाज की सभ्यता का काफी परिचय दिया था। वर्त्तमान इतिहास तथा Anthropology के विद्यार्थी रेड इन्डियन्स समाज को सभ्य समाज कहने में नहीं हिचकते। (पृष्ठ ६५)।

——

षष्ठ परिशिष्ट

'प्रभा' की राष्ट्रीय सम्पादकीय

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं :—

बंगाल में काले कानून का दौर-दौरा

"बंगाल सरकार के अनुरोध करने पर भारत के वायसराय और गर्वनर जनरल विलियम सफुस अर्ल आफ रेडिंग ने देश की छाती पर एक विषैला बम गिराया है। इस बम का काम है "१६२४ का क्रिमिनल ऐमेण्डमेण्ट आर्डिनेन्स नम्बर १।" वायसराय ने भारत शासन कानून की ७२ वीं धारा के अनुसार दिये गये अधिकारों के बल पर इस नये कानून को प्रचलित किया है। बंगाल के शासक लार्ड लिंटन और भारतवर्ष के शासक लार्ड रेडिंग के इस कृष्ण कृत्य से सारे भारतवर्ष में सनसनी फैल गयी है। ब्रिटिश न्याय प्रियता के प्रेमियों के लिये यह अच्छा अवसर है। वे आँखें खोलें और देखे कि जिस जाति की न्याय-परता की वे दुहाई दिया करते हैं उसी जाति के सबसे श्रेष्ठ नर व्याघ्रो के दाँत कितने पैने, कितने निर्मम, कितने खौफनाक हैं। गवर्नर जनरल द्वारा छोड़े गये इस नये बम के धड़ाके से मिलटन, शैली, बाइरन और कीट्स की आत्मा संत्रस्त हो उठी हैं। इस बम के धुयें से बंगाल की किंचितमात्र स्वतन्त्रता का दम घुट रहा है। भारत के सार्वजनिक जीवन की मरण की घड़ियाँ आन पहुँची हैं। फलत: जनता के हृदय में विरोध की भावना जोर मार रही है। अपने मन को जिस जाति ने नष्ट कर दिया; उससे प्रतिकार की आशा करना व्यर्थ है। पर इस तानाशाही हुक्म के बाद प्रतीत हुआ कि भारत अभी पूर्ण रूप से नपुंसक नहीं हुआ। देश की आत्मा तड़प उठी है। प्रतीत होता है कि प्राण अभी शेष हैं। अपने भाइयों की गर्दनों पर जो जाति छुरी फेर सकती है वही जाति इस सरकारी बम के धड़ाके से विचलित हुई सी दिखायी पड़ती है।

अन्यायी कानून की आँत

इस अन्यायी कानून की आँत शैतान की आँत की तरह पसरी हुई है। संक्षेप में इस नये काले कानून का मंशा यह है कि हिन्दुस्तानी लोग बिना वारण्ट के गिरफ्तार किये जा सकते हैं। उनका मुकदमा तीन आदमी एक कमरे में बैठ कर गुप-चुप तय करेंगे। जनता को उसकी कोई सूचना न दी जायेगी। कुछ खास-खास मौकों पर ही वकील मुकदमे की पैरवी कर सकेंगे। ये तीन आदमी मुकदमे का फैसला करके अभियुक्तों को सजा दे सकते हैं। सजा ऐसी-वैसी नहीं फाँसी तक की। हाँ, फाँसी की सजा वाला मुकदमा हाईकोर्ट की मंजूरी के लिये भेजा जायगा। लेकिन

जिस अदालत में एक पक्षीय कार्यवाही हुई हो उस अदालत के फैसले को हाईकोर्ट कैसे बदल सकने में समर्थ होगी। इतना ही नहीं इस कानून के मुताबिक एक टुच्चे पुलिस इन्सपेक्टर को यह अधिकार होगा कि वह जिसको चाहे गिरफ्तार कर ले और उसे एक महीने तक हिरासत में रख छोड़े। यहीं पर बस नहीं है। सूबे की सरकार को किसी पर शक भर हो जाय फिर उसकी खैर नहीं। फिर तो उसे हुक्म दिया जायगा कि वह आधी रात को पुलिस स्टेशन पर जाकर अपनी हाजिरी लिखावे। सरकार को यह भी अधिकार होगा कि वह उसे किसी निश्चित स्थान पर रक्खे। उसे जिन कामों के न करने की आज्ञा दी जाय उन्हें हर्गिज न करे और अगर रात को पुलिस का गश्ती गश्त लगाने आवे और उसे बुलावे तो वह उसको जवाब दे। अगर कभी इन आज्ञाओं का उल्लंघन हो जाय तो उल्लंघन करने वाले को तीन वर्ष तक की सजा दी जा सकती है।

दमन का नतीजा

यह कानून क्यों गढ़ा गया इस भयावह नादिरशाही निन्दनीय कानून के प्रचलित करने का कारण यह बताया जाता है कि बंगाल में वीभत्स क्रान्तिकारी आन्दोलन की लहर बढ़ रही है। उस लहर को रोकना शासक मण्डल अपना कर्त्तव्य समझते हैं। शासकों का यह भी कहना है कि वह लहर साधारण प्रचलित कानूनों की बाढ़ से नहीं रोकी जा सकती। अतः असाधारण कानून की शरण लेना आवश्यक हो गया। भारत सरकार और बंगाल सरकार के मुख्याधिष्ठाताओं के कथन से ज्ञात होता है कि षड्यन्त्रकारी आन्दोलनों की प्रगति रोकने के लिये ही भारत सरकार ने इस नवीन विधान की शरण ली हैं। तब क्या भारतवर्ष में सचमुच कोई इस प्रकार का दल मौजूद है? शासक वर्ग कहते हैं कि हमें इस बात का विश्वास नहीं। हम कतई इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं कि भारतवर्ष में इस समय कोई सुसंगठित क्रान्तिकारी षड्यन्त्रोपासक दल है। परन्तु अगर थोड़ी देर के लिये हम यह भी मान लें कि इस प्रकार का दल भारतवर्ष में मौजूद है तो सवाल यह है कि क्या वह दल इस तरह दबायें दब जायगा। अच्छा हो अगर ब्रिटिश साम्राज्य के सूत्रधार एक बार अपने ही देश का इतिहास उलट-पुलट कर देखें। आज से चार-पाँच वर्ष पहले १६१६-१६२० ईसवी में क्या सर हेयर ग्रीन बुड और मिस्टर लायड जार्ज आयरलैण्ड के प्रति ठीक यही व्यवहार नहीं कर रहे थे जो आज भारत के शासक इस अभागे देश के प्रति कर रहे हैं? क्या आयरलैण्ड में दमन नीति सफल हुई? क्या उन्हीं मिस्टर लायड जार्ज को इस बात की जरूरत महसूस न हुई कि वे कुछ ही दिनों बाद मिस्टर डी वेलरा जैसे खूनी परलोकवासी, मिस्टर ग्रिफिथ और मिस्टर

माइकेल कालिन्स आदि कैदियों को बुला कर उनसे सलाह मशविरा करे ? क्या ईजिप्ट में दमन सफल हुआ । वहाँ तो ६ वर्ष पर्यन्त फौजी कानून मिलिट्री लॉ का राज्य रहा था । क्या उस कानून के राज्य ने मिस्री लोगों को साम्राज्य का भक्त बना दिया ? आखिर किया वही जो फौजी कानून लगाने के पहले ही किया जाना चाहिये था । आयरलैण्ड ईजिप्ट और साउथ आफ्रिका में ग्रेटब्रिटेन ने व्यर्थ के लिये गोली-बारूद नष्ट की । वृथा हजारों प्राणियों का रक्त बहाया । आखिर घूम-घाम कर उसी जगह आना पड़ा जहाँ उन्हें बहुत पहले आ जाना चाहिये था । वर्नार्डशा ने 'जानबुल' वाले नाटक में ठीक ही कहा है कि अंग्रेज हद दरजे का डरपोक और असभ्य प्राणी है । वह शिक्षा, सदाचार और आध्यात्मिकता की ऊँची बातें कम समझता है । वह तो सिर्फ पिस्तौल और बम का तर्क समझता है । भारतवर्ष में इस नंगे दमन के वेलगाम छोड़ देने के क्या यही मानी है कि भारत के शासक शा महाशय के अनुसार सिर्फ पिस्तौल ही में विश्वास करते हैं ? यह जानकर भी वे इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि दमन से किसी देश की स्वातंत्र्य-भावना का गला नहीं घोटा जा सकता । जिस समय लार्ड मिण्टो ने भारतवर्ष में सन् १८१८ का कानून जारी किया था उस समय परलोकवासी लार्ड मारले ने इस कानून को १८१८ की जंग चढ़ी हुई तलवार के नाम से पुकारा था । आज भारतवासियों के सिर पर १८१८ की जंग चढ़ी हुई तलवार ही नहीं परन्तु १९२४ की चमचमाती वाइसराई तलवार लटक रही है । आज केवल १८१८ ईस्वी का तीसरा रेग्यूलेशन ही नहीं परन्तु उसका भी लकड़दादा यह नया कानून, जिसमें २४ धारायें और अनेकों उपधाराये हैं; बंगाल में प्रचलित कर दिया गया है । जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आज एक टुच्चे पुलिस इन्सपेक्टर को यह अधिकार प्राप्त है कि वह जिसको चाहे गिरफ्तार कर ले । यह शासन है या अन्धापन ।

पाखण्ड का पाप :—

सरकार कहती है कि देश में अपनी अमन कायम रखना समाज संगठन का सर्वोच्च ध्येय है । हम भी कहते हैं कि तुम सुख से शाँति रक्षा के उपाय काम में लाओ । परन्तु यदि शान्ति रक्षा अन्याय के उपायों और गैर कानूनी नियमों-उपनियमों के बल पर होती है तो ऐसी शान्ति रक्षा को दूर से ही नमस्कार । पाखण्ड से काम मत लो । तुम शान्ति रक्षा कर रहे हो या स्वतन्त्रता का अपहरण । देश के बड़े से बड़े आदमी की आजादी को शासन-विभाग के अदना से अदना अधिकारी के हाथ में सौंप देना कौन-सा न्याय है । वह कौन-सा अमनो अमान है जिसकी रक्षा तुम इन घृणित निन्दनीय अन्यायपूर्ण और कुत्सित विधानों की सहायता से करना चाहते हो । तुम्हारी अमनो अमान की चिन्ता उस वक्त कहाँ चली जाती है जब देश के नादान लोग देहली, नागपुर, कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, कोहाट आदि स्थानों में शान्ति और

कानून की छाती पर पाशविक नाच नाचते हैं। लार्ड लिटन, लार्ड रेडिंग और लार्ड आलिवियर ने अपनी विज्ञप्तियों में भारत की जनता को इस बात का विश्वास दिलाया है कि ये विशेष कानून केवल उन्हीं गुप्त षड्यन्त्रकारी लोगों के दमन के लिये प्रयुक्त किये जायेंगे; जिनका उद्देश्य खूँरेजी और खौफ फैलाना होगा। शासक मण्डल इस बात को बार-बार दुहराता है कि शान्ति और विधानात्मक आन्दोलनों और आन्दोलनकारियों के खिलाफ इन कानूनों का प्रयोग नहीं किया जायगा। जो शासन महान् शान्ति के उपासक देव पुरुष महात्मा गान्धी को जिन्दा कब्र में गाड़ देने को तत्पर हो गया था उसी शासन के विधाताओं के मुख से इस समय शान्तिमय आन्दोलन की विरुदावली सुन कर घृणा होती है। हम समझते हैं कि वर्त्तमान शासन-प्रणाली बिल्कुल दिवालिया हो गयी है। वह शान्त या अशान्त किसी भी प्रकार के आन्दोलन की तीव्रता को सह ही नहीं सकती। क्या शासक मण्डल से हम यह पूछें कि तुमने शान्त आन्दोलन के साथ क्या सुलूक किया। तुम वही हो न जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के शान्त वीरों से छेड़-छाड़ करनी या दिखाने में कोई कसर बाकी न उठा रक्खी। वही तुम्हारी पुलिस है न जिसने अवध के निःशस्त्र एवं शान्त किसानों को फुरसतगंज मुंशीगंज कढ़ैया बाजार में भून डाला। हमारे शासक इस समय शान्तिमय विधानात्मक आन्दोलन का जो पक्ष ले रहे हैं उसमें क्या तनिक भी सच्चाई है? स्वराज्य दल सदा वैध आन्दोलन के पक्ष में रहा है। हम लोग जो अपने आप को स्वराज्य दल का नहीं मानते इस बात से मन ही मन कुढ़ा करते थे कि स्वराज्य दल विधानात्मकता के दल-दल में बुरी तरह फँसता चला आ रहा है और तो और भूतपूर्व भारत मन्त्री लार्ड आलिवियर ने भूतपूर्व पार्लियामेण्ट में भाषण देते हुए स्वराज्य दल को इस बात का सार्टिफिकेट दिलाया कि स्वराज्य दल विधानात्मक आन्दोलन कर रहा है। परन्तु आज बंगाल में यह क्या नजारा पेश है। जिधर देखो उधर स्वराजी नेताओं की गिरफ्तारी का दृश्य दिखाई देता है। दास बाबू और पण्डित मोतीलाल जी का कथन है कि सरकार का हमला स्वराज्यदल पर है। शासक दल के हाव-भाव से भी ऐसा ही प्रगट होता है कि मुंह से हमारे शासक चाहे जो कहे पर बात यह है कि उन्हें विधान या व्यवस्था किसी की भी परवाह नहीं। उनकी निरंकुशता और उनकी अहम्मन्यता में जो बाधक बनता है उसे वे भले या बुरे हर तरीके से अपने मार्ग से उखाड़ फेंकना आवश्यक समझते हैं।

लार्ड रेडिंग की बातें :—

भारत में सम्राट् के प्रतिनिधि और भारत के गवर्नर जनरल लार्ड रेडिंग ने बंगाल में इस नवीन विधान को जारी करते हुये एक घोषणा प्रकाशित की है। उसके आरम्भ में कहा गया है कि सन् १९१२ ई० से सन् १९१७ ई० तक भारत में क्रान्ति-

कारी षड्यन्त्रों की धूम थी। षड्यन्त्र किसी प्रकार दबाये न दबे। सन् १८१८ के तीसरे कानून और भारत रक्षा कानून की सहायता लेनी पड़ी। इससे देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रगति शिथिल हो गयी। इसके कहने की जरूरत नहीं कि लाट साहब की इस तरह की बातें लचर और एकांगी हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन को कम कर देने वाला जो सार्वजनिक आन्दोलन (होमरूल आन्दोलन) उस बीच में देश में हुआ और नवीन सुधार योजना से देश से जिस नवीन आशा का प्रादुर्भाव हुआ; उसका इस विज्ञप्ति में कहीं उल्लेख तक नहीं। इन बातों का नाम लाट महोदय क्यों लेने लगे? उन्हें तो दमनकारी कानून की उपयोगिता सिद्ध करने से मतलब। प्रोफेसर एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स ने १९२२-२३ ईस्वी में भारत नामक पुस्तक में क्रान्तिकारियों की निष्क्रियता पर आश्चर्य प्रकट करते हुये लिखा है कि मिस्टर गान्धी के असहयोग ने उनकी वृत्तियों को निवीन दिशा सुझा दी है। लार्ड रेडिंग स्पष्ट रूप से यह बात मानने को तैयार नहीं है। वे कहते हैं कि सन् १९२०-१९२२ ई० में क्रान्तिकारी आन्दोलन तत्कालीन प्रचलित असहयोग आन्दोलन की आड़ में अपना काम कर रहा था। अब प्रश्न यह है कि कौन व्यक्ति ठीक बात कहता है कि प्रोफेसर विलियम्स या लार्ड रेडिंग? दोनों में से एक अवश्य गलती पर है। हम समझते हैं कि प्रोफेसर विलियम्स ठीक कहते हैं। मनुष्य की मानसिक क्रिया के अनुरूप बात प्रोफेसर विलियम्स कहते हैं और आज यदि भारत में लाल बंगाल का भूत शासकों को दिखाई दे रहा है तो इसका कारण केवल शासकों की मूर्खतापूर्ण नीति है। शान्तिमय असहयोग का दमन हुआ: उसका फल लाल बंगाल है। अब लाल बंगाल का इस तरह मूर्खता से दमन किया जायगा: उसका फल कौन कह सकता है; लाल भारत न हो जाय।

पतन :—

एक शख्स थे जिनका नाम सर इस्क डेनियल रूफ्स था। वह लार्ड एलवर स्टोन के अवकाश ग्रहण करने पर सन् १९१३ ईस्वी में ग्रेट ब्रिटेन के लार्ड चीफ जस्टिस बनाये गये थे। सन् १९१६ ईस्वी के २६ जून को आयरलैण्ड के वीर सेवक सर राजर डेविड केसमेन्ट का मुकदमा ग्रेट ब्रिटेन के लार्ड चीफ जस्टिस के सामने पेश हुआ था— सर राजर का अपराध बड़ा भयानक था। उन्होंने युद्ध के दिनों में आयरलैण्ड में इंगलैण्ड के विरुद्ध बलवा करने का प्रयत्न किया और जर्मनी से शस्त्रास्त्र लेकर आयरलैण्ड भिजाये। इंगलैण्ड के प्रति घोर विश्वासघात करने का जुर्म सर राजर पर लगाया गया पर न सर राजर कैसमैन्ट को पूरी स्वतन्त्रता दी गयी कि वे अपनी पैरवी करे। मुकदमा गुपचुप नहीं हुआ। अलानिया तौर पर उन पर अपराध (अभियोग) चलाया गया। उस समय ग्रेटब्रिटेन के लार्ड चीफ जस्टिस सरइस्क रुफ्त डेनियल ने ये शब्द कहे थे :—

It is the proud privilege of the bar of England that it is ready to come into Court and to defend a person accused, however grave the charge may be. In the case speaking for my learned brothers and myself, we are indebted to counsel for the defence, for the assistance they have given us in the trial of this case and I have no doubt you must feel equally indebted. It is a great benefit in the trial of a case more particularly of this importance, that you should feel, as we felt, that every thing possible that could be urged on behalf of the defence has been said.

अर्थात् इंगलैण्ड की वकील पेशा समाज को यह गौरवपूर्ण स्वत्त्व प्राप्त है कि वह न्यायालय में आकर घोर से घोर अपराध के करने वाले अभियोग की पैरवी करने को उद्यत रहती है। मैं अपने विद्वान् भाइयों की (अन्य दो जजों को ओर इशारा करते हुये प्र० सं०) और अपनी ओर से यह कह सकता हूँ कि इस मुकदमें की पैरवी में अभियुक्त के वकील समुदाय ने हम लोगों की जो सहायता की है उसके लिये हम कृतज्ञ हैं। आपको भी इनका कृतज्ञ होना चाहिये। मुकदमों की ओर खास कर इस तरह के मुकदमों की पैरवी के लिये यह जरूरी है कि आप यह अनुभव कर लें। जैसा कि हम अनुभव करते हैं कि प्रतिवादी की ओर से जो कुछ कहा जाना चाहिये था कह दिया गया।

सर इस्क ने इन शब्दों में इणगलैन्ड की बार की तारीफ की थी और इस बात की आवश्यकता को अनुभव किया था कि अभियुक्त की ओर से जितनी बातें कही जा सकें अवश्य कही जायँ।

समय की अँगुली इतिहास का वरक उलट देती है। सर इस्क अर्लआफ रेडिंग हो जाते हैं। लार्ड चीफ जस्टिस भारतवर्ष के गवर्नर जनरल और वायसराय में परिणत हो जाते हैं। उस समय सन् १६२४ ई० में वे भारत में एक अन्धा-धुन्धी कानून को प्रचलित करते हैं। अपनी नीति का समर्थन करते हुये वे कहते हैं।

I have therefore come to the conclusion, after the fullest consultation wiith Local Government that it is necessary to arm the Government of Bengal with special powers (Italics are ours : Ed. Prabha) to deal with prepartions for crime.

अर्थात् प्रान्तीय सरकार से अच्छी तरह बात-चीत करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि प्रान्तीय सरकार को विशेष अधिकार इसलिये दिये जाने चाहिये कि वह अपराधी की तैयारियों को रोक सके।

ग्रेटब्रिटेन के लार्ड चीफ जस्टिस और भारत के वायसराय की मानसिक प्रक्रिया में कितना अन्तर है। कम से कम देखने में वह कितना अधिक मालूम पड़ता है। क्या हम इसे पतन के नाम से पुकार सकते हैं। नैपोलियन कहा करते थे :—There is only one step from the sublime to the rediculous उच्चता और उपहास पूर्णता में केवल एक पग का अन्तर है।

मिलाप की ओर :—

सरकार के दमन से देश को एक फायदा हुआ। वह यह कि देश के अन्दर प्रतिकार भाव जग उठा। विरोध प्रदर्शन को तीव्र करने के लिये स्वराज्य दल के नेताओं ने महात्मा गान्धी को अपनी ओर मिला लेना उचित समझा। देश के राजनैतिक प्रांगण में त्याग मूर्त्तियों की कमी नहीं है फिर भी महात्मा जी का स्थान अपना उन्हीं का है। बिना उनकी सहायता के उनकी उपस्थिति में किसी अन्य नेता के लिये यह सम्भव नहीं कि वह देश में अनुभूत स्पन्दन उत्पन्न कर दे। इधर महात्मा जी देश की विशृंखल अवस्था को देख कर पहले ही कह चुके थे कि मुझ में युद्ध की भावना अब रह ही नहीं गयी। देयर इस नो फाइट लेफ्ट इनमी। वायसराय की घोषणा के बाद कलकत्ते में स्वराज्य वादियों और महात्मा गान्धी के बीच सलाह मशविरा हुआ। इस मन्त्रणा के फलस्वरूप गान्धी जी, पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दास ने निम्निलिखित संयुक्त घोषणा अखबारों में प्रकाशित कराई :—

'यद्यपि भारत के तमाम दलों का ध्येय स्वराज्य प्राप्त करना है तो भी देश इन दिनों ऐसे भिन्न भिन्न जत्थों में बंट गया है जो एक दूसरे के खिलाफ काम करते दिखाई देते हैं। ऐसी परस्पर विरुद्ध हलचलें स्वराज्य की ओर से देश को एकदम पीछे हटाती है। इसलिये यह वांछनीय है कि जहाँ तक मुमकिन हो ऐसे तमाम दल महासभा के अन्दर एक मंच पर लाये जायें। फिर खुद महासभा में भी दो परस्पर विरोधी दल हो गये हैं जिससे देश कार्य को नुकसान पहुँच रहा है। इसलिये यह वांछनीय है कि सब लोगों के सामान्य ध्येय की सिद्धि के हेतु दल फिर से एक किये जाय। इसके अलावा बंगाल में स्थानिक सरकार ने बड़े लाट साहब की मन्जूरी से दमन नीति अख्तियार की है और हम नीचे सही करने वाले लोगों की राय में उसका उद्देश्य किसी हिंसाकारी दल को दबाना नहीं। बंगाल के स्वराज्य दल को और इसलिये राजमान्य और व्यवस्थित हलचल को दबाना है। अतएव यह परम आवश्यक बात हो गयी है कि देश के तमाम दल परस्पर सहयोग के लिये निमन्त्रित किये जायँ और उनका सहयोग प्राप्त किया जाय जिससे कि सरकार की दमन नीति के मुकाबले में देश की सारी शक्ति लगाई जा सके। इसलिये हम नीचे हस्ताक्षर करने वाले जोर के साथ इस बात की सिफारिश

करते हैं कि देश के तमाम दल तथा बेलगाँव की अगली महासभा नीचे लिखी को मंजूर करे :

महासभा को चाहिये कि वह असहयोग को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में स्थगित कर दे। सिवा उस भाग के कि जिसका सम्बन्ध भारत से बाहर के बने कपड़े न पहनने और न इस्तेमाल करने से है। महासभा यह भी निश्चय करे कि महासभा के भिन्न-भिन्न कार्य आवश्यकता के अनुसार महासभा के अन्दर भिन्न-भिन्न जत्थे के लोग करें और यह निश्चय करे कि हाथ कताई और बुनाई तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली तमाम क्रियाओं का तथा हाथ कती और हाथ बुनी खादी का और देश की विविध जातियों में तथा खास कर हिन्दू और मुसलमानों में एकता का प्रचार एवं हिन्दुओं के द्वारा अस्पृश्यता का दूर करना—ये काम तमाम जत्थों के लोग मिल कर करें और प्रान्तीय तथा बड़ी धारा सभाओं का कार्य महासभा के अभिन्न अंग के रूप में महासभा की तरफ से स्वराज्यदल के द्वारा संचालित हो और ऐसे काम के लिये स्वराज्यदल खुद अपने लिये नियमादि बनाने और अपना कोष एकत्र करके उसकी व्यवस्था करे। अब तक के अनुभव से यह मालूम हुआ कि बिना कताई के सार्वत्रिक हुये भारत अपनी वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओं से स्वावलम्बी नहीं हो सकता और हाथ कताई जनता और महासभावादियों के बीच दृश्य और दृढ़ ममत्व स्थापित करने की सर्वोत्तम और अत्यन्त प्रत्यक्ष विधि है। इस लिए हाथ कताई तथा उसकी बनी खादी को लोकप्रिय बनाने के हेतु महासभा अपने संगठन विधान की धारा ७ को निकाल कर उसकी जगह नीचे लिखी धारा कायम करे :

ऐसा कोई शख्स किसी महासभा समिति या संस्था का सदस्य न हो पायेगा जो १८ साल से कम उम्र का होगा और जो राजनैतिक और महासभा के जल्सों में तथा महासभा के कामों को करते समय हाथ कती बुनी खादी न पहनेगा और जो हर महीने २००० गज खुद अपना काता एक सा सूत न देगा। बीमारी, अनिच्छा अथवा ऐसा ही कोई कारण हो तो उतना ही दूसरे का काता एक-सा सूत दे सकता है।

कलकत्ता ७ नवम्बर १९२४ ई०
मोहनदास करमचन्द गान्धी।
चितरंजन दास।
मोतीलाल नेहरू।,

महात्मा जी ने उक्त समझौते के पत्रक पर हस्ताक्षर करने के पहिले देश की राजनैतिक परिस्थिति पर खूब विचार कर लिया था। हस्ताक्षर करने में उन्होंने कितने गहन विचार से काम लिया है इसका हृदयग्राही करुण वर्णन भी महादेव भाई ने 'नवजीवन' में किया है। वे कहते हैं :—

'स्वराज्यवादियों के लिये काम को बिगाड़ने के लिये सरकार ने उन पर बम गिराया है उसके सिलसिले में क्या गान्धी जी उन्हें कुछ भी मदद न दे। इस आन-बान के अवसर पर गान्धी के नेतृत्व में का कुछ भी लाभ उन्हें न मिलना चाहिये। इस समस्या पर विचार करते गान्धी सोये। निर्बल के बल राम के स्वर हृदय में गूंज रहे थे। सोये रात को इस ख्याल को लेकर कि कर्तव्या-कर्तव्य की इस उलझन को भगवान् ही सुलझावेगा। प्रातः काल यह निश्चय करके उठे कि जितना त्याग किया जा सके करना चाहिये। महात्मा जी कहने लगे : अपने प्रति मनुष्य वज्र से भी कठोर हो सकता है पर औरों के प्रति भी क्या वह इतना कठोर हो सकता है? जब कि लोग यह कहते हों कि मेरे नेतृत्व के बगैर काम नहीं चल सकता। तब क्या मुझे उचित है कि अपना नेतृत्व महँगा कर डालूँ? अपने सिद्धान्त से उतरे बिना यदि मैं आदर्श से जरा उतर सकता हूँ तो क्या मुझे अपना आग्रह न छोड़ना चाहिये। इस भाव से (इस) कुसुम से भी कोमल भाव से गान्धी जी ने उस संयुक्त घोषणा पर अपनी सही की।—' महात्मा जी की मानसिक अवस्था का इससे अच्छा चित्रण अन्यत्र नहीं मिल सकता।

मेल के लिये एक उद्योग तो यह हुआ। अब दूसरा उद्योग सन् १९२३-२४ ई० के भारत-राष्ट्रपति मौलाना मोहम्मद अली का है। उन्होंने तारीख ९ नवम्बर को एक घोषणा प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने देश को सूचना दी है कि अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक शुक्रवार तारीख २१ और शनिवार तारीख २२ नवम्बर को बम्बई में होगी। इस मीटिंग में महात्मा गान्धी, देशबन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू की संयुक्त घोषणा पर विचार किया जायगा। इसके साथ-साथ ही मौलाना ने प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों और हिन्दू सभा, मुस्लिम लीग, सिक्ख लीग, इण्डियन क्रिश्चियन एसोसियेशन, जमैतुल उलमा, लिबरबल फ्रेडरेशन, नेशनल कन्वेन्शन, आर्य-सार्वदेशिक सभा, आर्य प्रादेशिक सभा, यूरोपियन एसोसियेशन, पारसी पंचायत, एंग्लो इन्डियन एसोसियेशन, सिक्ख सुधार सभा, पारसी राजकीय सभा आदि सभाओं के प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया है। राष्ट्रपति मौलाना मोहम्मद अली इन सब सदस्यों को बम्बई में एकत्रित करके सरकार के दमन के संयुक्त विरोध करने का नुस्खा बताना चाहते हैं। हमें दुःख है कि हम इस साधु प्रयत्न की सफलता के लिये आमीन नहीं कह सकते।"

———

'नवीन' जी आगे लिखते हैं:—

राजनैतिक मिलाप किस लिये

"हमें यह कहते दुखः होता है कि देश में जिस तरह नौकरशाही जीवन का नाश करके अमन-अमन चीखा करती है। ठीक उसी तरह हमारे नेतागण राजनैतिक मिलाप, संयुक्त कांग्रेस सम्मिलित सामना करने का गीत अलापने लगे हैं। हमने गत अक्टूबर मास की 'प्रभा' में मिलाप के विषय में कुछ लिखा था। उस समय हमने ये शब्द कहे थे :—

यह तो हम भी समझते हैं कि सब दलों की सम्मिलित कांग्रेस यानी खिचड़ी कांग्रेस किसी प्रभावोत्पादक राजनैतिक कार्यक्रम को देश के सामने नहीं रख सकती क्योंकि यदि कांग्रेस को सम्मिलित दलों की संस्था बनाये रखना अभीष्ट है तो यह आवश्यक होगा कि राजनीति में कोई ऐसा कार्यक्रम न रक्खा जाय जिससे मतभेद होने की सम्भावना हो और मतैक्य को नष्ट न करने की दृष्टि से जो राजनैतिक कार्यक्रम तैयार किया जायगा वह जियादा पुरअसर साबित नहीं हो सकता। लेकिन देश की वर्तमान अवस्था ऐसी है कि राजनैतिक आन्दोलनों में शिथिलता आ गयी है। इस अवस्था में कोई प्रभावोत्पादक बात निश्चित नहीं की जा सकती। इस समय यह आवश्यक हो गया कि राष्ट्र की वितरित शक्ति को एकत्रित किया जाय। आशा है कि देश का हर शख्स महात्मा जी के एकता के प्रस्ताव का समर्थन करेगा। (—'प्रभा', अक्टूबर, सन् १६२४; पृष्ठ ३१५-१६)

पाठक इस टिप्पणी में और हम जब जो लिखने जा रहे हैं उस टिप्पणी में महदन्तर पायेंगे। उन्हें स्मरण रहे कि उपर्युक्त वाक्य महात्मा गान्धी द्वारा पेश किये गये कार्य क्रम के विवाद में लिखे गये थे। हम आज भी उस कार्यक्रम के पक्ष में हैं। गान्धी स्वराज्य दल घोषणा के अनन्तर जो कार्यक्रम निश्चित हुआ है वह महात्मा जी के पूर्व निश्चित कार्यक्रम से कुछ भिन्न यानी कमजोर अवश्य है। पर हम उस कार्यक्रम का भी समर्थन उपरिउल्लिखित शब्दों द्वारा कर सकते हैं। इससे और पीछे हटने को हम कदापि तैयार नहीं।

मौलाना मोहम्मद अली ने देश भर की ऐरी-गैरी पंच-कल्याणी संस्थाओं को निमन्त्रित कर दिया। इसके क्या अर्थ हैं? हमारा मुल्क अपनी तंगिली और मजहबी अन्धेपन के लिये काफी बदनाम है। जरूरत इस समय यह है कि जहाँ तक हो सके इस तरह की खसलतों को दबाया जाय। देश को राष्ट्रीयता के पाठ पढ़ाने की जरूरत है। तब फिर क्या जरूरत थी कि जमैतुल उलमा हिन्दू महासभा, आर्य सार्वदेशिक सभा

और सिक्ख सुधार सभा के सदस्यों को निमन्त्रित किया गया। राजनैतिक कार्यक्रम को निश्चित करने के लिये जो कान्फरेन्स हो उसमें इन जाति विशेष की प्रतिनिधि जातीय संस्थाओं को निमन्त्रित करने की क्या आवश्यकता थी? कहा जा सकता है कि इन संस्थाओं के प्रतिनिधि यदि राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं के संघर्ष और संसर्ग में आएँगे तो उनकी परस्पर कलहकारिणी भावना में सुधार होगा। पर इसी के साथ यह भी सम्भव है कि ये संस्थायें इतना विषाक्त वायुमंडल उत्पन्न कर दें जिससे राजनैतिक प्रगति में बाधा पड़े। हम जातिगत सभा सोसाइटियों को राष्ट्र की उन्नति के लिये हानिकर समझते हैं। इसके अलावा एक बात और है: जातीय संस्थाओं में बहुत राजा महाराजा लोग और नव्वाब साहबान और गवर्नमेण्ट के महामहोपाध्याय और शमसुउलमा विद्यमान हैं। ऐसे आदमियों से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे राजनैतिक लड़ाई में देश का साथ देंगे अगर मौलाना मोहम्मद अली ने इन संस्थाओं को निमन्त्रण देने के समय यह सोचा था कि ये सब कन्धे से कन्धा लगाकर देश को राजनैतिक पथ की ओर अग्रसर करेंगी तो हम अत्यन्त विनय के साथ कह देना चाहते हैं कि यह उनका भोलापन था।

इसी तरह की बातें लिबरल फ़ेडरेशन, नेशनल कन्वेन्शन, स्वतन्त्र दल संघ आदि राजनैतिक संस्थाओं के विषय में कही जा सकती है। इन संस्थाओं के सदस्यों और कांग्रेसवादियों के दृष्टिकोण में जमीन आसमान का अन्तर है। नरम दल, बेसेन्ट दल, स्वतंत्र दल आदि दलों के नेतागण (क्योंकि उनके अनुयायी कोई हैं ही नहीं; उनमें सभी नेता हैं) यह सोचते हैं कि भारत का कल्याण ब्रिटेन की दया और उदारता से ही हो सकता है। हम लोग समझते है कि भारत का कल्याण भारतवासियों द्वारा ही होगा। किसी पराये देश की कृपा का भिखारी बने रहना अपने आत्म-सम्मान को अपने हृदय को और अपनी स्वतन्त्र विचार प्रगति को झूठ और पाखण्ड के पत्थर से कुचलना है। आज माडरेट या लिबरल दल के लोग मेल मिलाप की बातें सुन कर और देश की इस गई गुजरी हालत से फायदा उठाने की इच्छा से प्रेरित होकर अपने दकियानूसी और छिन्न-भिन्न कर दिये गये सिद्धान्तों को कांग्रेस से मनवा लेने पर उतावले हो गये हैं। वे कहते हैं कि जब तक, कांग्रेस स्वराज्य शब्द का अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक शासन नहीं कर देती; जब तक सीधे वार (डाइरेक्ट एक्शन) की नीति को सदा के लिये तिलांजलि नहीं दे दी जाती; जब तक चरखे की कताई पर मताधिकार स्थित रखने की शर्त्त कतई तौर पर उड़ा नहीं दी जाती और जब तक खद्दर पर जोर देना बिल्कुल बन्द नहीं कर दिया जाता; तब तक माडरेट लोगों से यह आशा करना कि वे कांग्रेस में सम्मिलित होंगे—दुराशामात्र है। क्या कांग्रेस और महात्मा गान्धी इन शर्त्तों को या इसी प्रकार की पतनकारिणी अन्य शर्त्तों को स्वीकार करेंगे। हम

नहीं जानते देश किधर जा रहा है ? हम अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी से सीधे वार के पक्षपातियों से और जिनके दिलों में देशोद्धार की तथा पूर्ण स्वाधीनता की लगन लगी है उनसे यह निवेदन करना चाहते हैं कि राजनैतिक दल बन्दियों के अन्तर्गत मेल स्थापित करने की भावना वह जादूगरनी है जो देश की राजनीति को मन्त्र मुग्धा बना कर गहरी नींद में सुला देगी। याद रहे कि इस तरह का अस्वाभाविक मेल इन शर्त्तों पर कभी स्थित नहीं रह सकता। सन् १९१६ ई० की संयुक्त कांग्रेस और उसके बाद उत्पन्न होने वाली दल बन्दियाँ इस बात का उदाहरण हैं। राजनीति का ककहरा जानने वाला बच्चा भी यह जानता है कि दलबन्दियों के साथ समझौता कर बैठना अपने सिद्धान्त को छोड़ देना तथा अपने हृदय की पुण्यमयी भावना को मेल मिलाप की तड़क-भड़क के हाथ बेच देना—देश की भावी सेना के प्रति विश्वासघात करना है। जिस प्रकार संयुक्त पार्लमिण्ट का शासन क्लीव होता है उसी प्रकार खिचड़ी कांग्रेस की राजनीति भी निर्जीव, प्रगति शून्य, शिथिल और नपुंसक होगी। हम प्रसन्न होंगे यदि लिबरल और बेसण्ट दल वाले सीधे वार के विश्वासियों से मिल जाय। हमारी आन्तरिक अभिलाषा है कि भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा उसे स्वतन्त्र करने के लिये आगे बढ़े। पर साथ ही भारतीयों को कृतज्ञ होना चाहिये। सीनियर रेंग्लर (महा-महा गणितज्ञ) डाक्टर परांजपे का जिन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि लिबरल और असहयोगियों में मेल होना असम्भव है। बात बिल्कुल ठीक है। जहाँ आदर्श की विभिन्नता है; वहाँ मेल नहीं हो सकता। यदि अपनी इच्छाओं को दबा कर मेल कर भी लिया जाय तो वह मेल चिरस्थायी नहीं रह सकता। इस पर भी यदि वह चिरस्थायी रहा तो देश का राजनैतिक जीवन निर्जीव और क्लीव हो जाता है। हम अपने हाथों अपनी माँ के पैर पर कुल्हाड़ी नहीं मार सकते। हम मेल के खिलाफ नहीं; हम तो प्रसन्न होंगे। यदि हमारे आन्दोलन के आवश्यक अथवा इस समय सामयिक प्रतिकूलता के खयाल से अकरणीय अंश के छोड़ देने से हमारे दल में कुछ वृद्धि हो। परन्तु मेल के लिये आदर्शों को छोड़ देना हम घातक समझते हैं। लार्ड मारले ने समझौते को जीवन का चिह्न माना है। ठीक है परन्तु जीवन का मृत्यु के साथ समझौता नहीं हो सकता। जहाँ समझौते के अर्थ हो सर्वनाश; वहाँ समझौता समझौता नहीं रह जाता। वह पतन का रूप धर आता है।

महात्मा जी आज सब दलों के एकीकरण के पीछे पड़ गये है। देश की फूट ने उन्हें चिन्तित और विचलित कर दिया है। उनका कथन है कि आज ऐसा प्रतीत होता है मानो हम प्रस्ताव पास करने के अलावा और सब शक्ति खो बैठे हैं। अवस्था ऐसी ही है। पर ध्यान रहे कि यह अवस्था वृहत्सम्मिलन से दूर नहीं हो सकती। हमारी निर्बलता और हमारा हतोत्साह इस प्रकार के सर्वतोमुखी मेल से, उस मेल से, जिसके

स्थापन के लिये हम अपना सब कुछ छोड़ देने को उद्यत दिखायी पड़ रहे हैं; दूर नहीं हो सकता। शिथिलता और अव्यवस्था वैमनस्य और सामूहिक कलह को दूर करने के लिये उस आग की जरूरत है जिससे विदग्ध होकर जनरल क्रूगर ने कहा था : इन मुट्ठी भर आदमियों को लेकर मैं मनुष्यता को चकित स्तम्भित कर दूँगा।

जिस समय हम यह शब्द लिख रहे हैं उस समय देश के नेतागण बम्बई में बैठे विचार कर रहे हैं कि मेल कैसे हो और किन शर्तों पर हो। देखें क्या फल होता है ?

वाल्डविन नीति :

पाठक संसार-प्रगति में ग्रेट ब्रिटेन के नये चुनाव के विषय में पढ़ चुके हैं। वर्त्तमान प्रधान मन्त्री मिस्टर वाल्डविन ने प्रधान मन्त्रित्व के पद को सुशोभित करने के पूर्व एक व्याख्यान दिया था। उस व्याख्यान में भारतवर्ष का जिक्र करते हुये उन्होंने वही सुर ऊँचा किया था जिसे हर साम्राज्यवाद का उपासक अलापा करता है। ग्रेटेस्ट एन्ड मोस्ट सेक्रेड ट्रस्ट : पवित्रता और विशालतम धरोहर वाली बात कहना मिस्टर वाल्डविन नहीं भूले। वे फूले नहीं समाते हैं। यह देख कर कि भारत के राजेरजवाड़े और धनीमानी तथा फौज के सिपाही साम्राज्य के भक्त हैं। वाल्डविन साहब को याद रखना चाहिये कि भारतवर्ष फौज के सिपाहियों और राजे रजवाड़ों से बहुत बड़ा है। मिस्टर शास्त्री और सर सुरेन्द्रनाथ जैसे नरम दल के नेताओं की राय में आज कल लोगों की निगाह में सरकार के न्याय की कोई बहुत जियादा वक्त नहीं रह गयी है और रही यह धरोहर वाली बात सो यह तो मिस्टर वाल्डविन भी जानते हैं कि यह सब पाखण्ड पूर्ण मिथ्याचार है। इंग्लैण्ड धनलोलुप है। वह भारत को गुलामी में रखना चाहता है। इसलिये वह यह भी नहीं चाहेगा कि भारतवर्ष स्वतन्त्र हो। सेक्रेड धरोहर (पवित्र धरोहर) की बात तो वह धूल है जिसे इंग्लैण्ड के साम्राज्य लोलुप पाखण्डी दुनिया की आँखों में झोंका करते है।

दल बहादुर :

बंगाल प्रान्त के सुप्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्ता श्री दलबहादुर गिरि स्वर्गवासी हो गये। दलबहादुर जी जाति के गुर्खा थे। पहले आप सरकारी नौकर थे। परन्तु सन् १९१९ ईस्वी के पंजाब हत्या काण्ड के बाद आपने नौकरी छोड़ दी और देशसेवा के कंटकाकीर्ण मार्ग पर अग्रसर हुये। जिस समय दलबहादुर ने देश सेवा का व्रत लिया उसी समय से उनका और उनके परिवार का जीवन संकट में पड़ गया। परिवार बड़ा था। दलबहादुर गरीब थे। देश सेवा का व्रत उनके जीवन का लक्ष्य बन चुका था। ऐसी अवस्था में इस वीर नर को जिन-जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनका स्मरण

मात्र हम लोगों को अपनी अकर्मण्यता पर लज्जित कर देता है। भूख प्यास, जेल के अमानुषिक कष्ट और पारिवारिक कठिनताओं का हलबहादुर ने जिस वीरता से सामना किया वह प्रत्येक राष्ट्र सेवक के लिये आदर्श स्वरूप है। हम स्वर्गीय दलबहादुर गिरि के दुखी परिवार के साथ आदरपूर्ण समवेदना प्रकट करते हैं। दलबहादुर गुर्खा जाति के भूषण थे। वे भावी गुर्खा जाति के पथ प्रदर्शक थे। उन्होंने नेपाल, भूटान और सिक्किम के निवासियों को भारतीय स्वतन्त्रता के लिये मर मिटने का पाठ पढ़ाया है। गुर्खा जाति की हृदय तन्त्री की यह गौरवमयी तान आज आकाश में विलीयमान हो गयी है। जिस समय दलबहादुर का अन्त समय आया तो उन्होंने बंगाल के निस्पृही कार्यकर्त्ता और अपने मित्र श्री विजयलाल चट्टोपाध्याय को बुला भेजा। विजय बाबू गये। वीरात्मा दलबहादुर ने विजय बाबू से अपनी अन्तिम इच्छा प्रदर्शित की। वे बोले: मेरे शव को राष्ट्रीय मेडिकल कालेज के अस्पताल में भिजवा देना ताकि मेरा राष्ट्र शव का उपयोग कर सके। मेरे बच्चों को साबरमती भेज देना'। पाठक! दलबहादुर की अन्तिम अभिलाषा यह थी।

आज दलबहादुर इस संसार में नहीं हैं। उनका दुखी गरीब परिवार असहाय है। श्री विजयलाल चट्टोपाध्याय ने स्वर्गीय दलबहादुर गिरि के परिवार की सहायतार्थ देश के सामने झोली फैलाई है। आशा है देश का दुखित गरीब अंश विजय बाबू की झोली में कुछ न कुछ अवश्य डालेगा।

पूजनीया श्री अम्मा :

हम जब कभी अली भाइयों की उस तसवीर को देखते हैं जिसमें बी अम्मा बीचमें बैठी हैं और दोनों भाई इधर-उधर तो हमारे मुँह से सहसा निकल पड़ता है : शेरनी और उसके दो बच्चे। आज पूजनीया बी अम्मा इस संसार में नहीं हैं। जगज्जननी के रूप में अवतरित होकर जिस देवी ने हमारे राष्ट्र को शौकत और मोहम्मद 'ऐसी निधि दी; उसके नश्वर शरीर त्यागने पर दुख होना स्वाभाविक है परन्तु दोनों भाइयों ने अपनी अम्मा के वियोग को जिस धीरता से सहा वह आश्चर्यजनक है। बी अम्मा शौकत मोहम्मद की जननी थी। वे उनकी गुर्वाणी थी। वे उनके चरित्र की विधायिका थी। हमारे राष्ट्र के राजनैतिक आकाश की वे प्रबुद्ध नक्षत्र थी जिसकी सौम्य छटा हिन्दू मुस्लिम ऐक्य और स्वराज्य प्राप्ति तथा इस्लाम की स्वतन्त्रता के लिये लोगों को उत्साहित किया करती था। शौकत के शब्दों में हमारा एक बहादुर सिपाही चल बसा। इस लोक में लोगों के हृदयों में उनका स्थान है। उस लोक में अल्लाह के सिंहासन के निकट उनका रक्खा गया रिक्त स्थान भर गया। महात्मा जी ने इस अवसर पर कहा है : जन्म और मृत्यु दो विभिन्न अवस्थायें हैं। मृत्यु से दुखी होना उतना ही अकारण है

जितना कि जन्म से प्रसन्नहोना। पूजनीयाबी अम्मा की आत्मा शान्ति लाभ करे यही प्रार्थना है।

मिस्टर मांटेग्यू :—

मिस्टर एडविन सेम्युएल मांटेग्यू का देहान्त लण्डन के एक अस्पताल में हो गया। वे कुछ दिनों से बीमार थे। ब्रेजिल यात्रा के बाद ही से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। फिर एकाएक खबर आई कि उनकी बीमारी बहुत बढ़ गयी है। अन्ततोगत्वा उस बीमारी ने उनका प्राण तक ले लिया। मिस्टर मांटेग्यू भारत हितैषी थे। उन्हीं के परिश्रम से भारतवर्ष को सुधार मिले। उन्होंने साम्राज्य परिषद् के समय डाक्टर सप्रू की बहुत सहायता की थी। निस्सन्देह जलियावाला बाग और रौलेट एक्ट उन्ही के समय में पास हुआ था। परन्तु फिर भी उनका हृदय भारत हित:चिन्ता में लगा रहता था। उनके निधन से इंग्लैण्ड को क्षति हुई है। वे साम्राज्य के सच्चे सेवक थे। भारतवासी उनकी मृत्यु से दुखी है। उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

बम्बई कान्फ्रेंस :—

बम्बई में होने वाली सब दलों की कान्फरेन्स पर हम अन्यत्र लिख चुके हैं। उस कान्फरेन्स मे लगभग ६०० प्रतिनिधि एकत्रित हुये। पहले दिन सर दिनशापेटिट ने सभापति का आसन ग्रहण किया। दूसरे दिन श्रीयुत पण्डित श्रीनिवास शास्त्री महोदय सभापति बनाये गये। दोनों दिनों की कार्यवाही शान्तिपूर्वक हुई। बंगाल के काले कानून का विरोध किया गया। साथ ही एक ऐसी कमेटी बनाई गयी है जिसमे सब दलों के लोग सम्मिलित हैं। यह कमेटी देश के राजनैतिक दलों में ऐक्य स्थापन के सम्बन्ध में विचार करेगी और ३१ मार्च सन् १९२५ ई० के पहिले अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर देगी। इस कमेटी का यह काम होगा कि वह स्वराज्य का मसौदा तैयार करे और हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के स्थापन के तरीकों पर भी विचार करे। रिपोर्ट प्रकाशित होने के १५ दिन बाद १३ वी अप्रैल सन् १९२५ को उसकी संयुक्त बैठक होगी।

कान्फरेन्स के अन्त में मौलना मोहम्मद अली ने सब दलों को बेलगाँव कांग्रेस में प्रवेश निमन्त्रण दिया। मौलाना का निमन्त्रण सब दलों ने स्वीकार करलिया है। देश की भावना ऐक्य स्थापन की ओर झुक रही है। इस कान्फरेन्स का नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस हो चुकने के बाद भी निश्चित नहीं हो सका। देश का भाग्य विधाता क्या सोच रहा है सो कौन जाने ?

गौड़ जी की पोथियाँ :

हमारे शासक राज विद्रोह का जू-जू हर जगह देखते हैं। युक्त प्रान्त की सरकार ने अध्यापक रामदास गौड़ द्वारा रचित हिन्दी पाठ्य पुस्तकों को राजविद्रोहात्मक

समझ कर जब्त कर लिया था। कलकत्ते की हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने पोथियों की हाईकोर्ट में पेश किया था। चीफ़जस्टिस साहब ने फैसला किया है कि पुस्तके राज विद्रोहात्मक है। उनका जब्त किया जाना उचित है। और प्रकाशक सरकार को खरचे के रूप में ३०० रु० दे। अपने फैसले मे चीफ जस्टिस साहब ने पुस्तको को राजविद्रोहात्मक अंश को उदधृत किया है। उन उद्धरणो को पढ़ कर हम अवाक् रह गये।

शिक्षा पर रुपया क्यों नहीं खर्च होता इसलिये कि ताकत हमारे हाथो मे नही हैं।

भगवान हमारा अपमान दूर करे। राउलेट प्रकट देश में राजनैतिक आन्दोलन को दबाने और निरदोष नागरिको को सताने के लिये बना था पश्चात्य सम्यता अनीश्वरवादिनी और भारतीय सभ्यता आचरण को सुधारने वाली है। आदि निरदोष वाक्य जीफ जस्टिस की राय मे राजविद्रोहात्मक है। क्या चीफ जस्टिस उस झूठे इतिहास वेत्ता को जिसने सिवा जी को पहाड़ का चूहा कहा घोरतम विश्वासघात : High Treason : के अपराध के लिये दन्डित करने को तैयार है। चीफ जस्टिम महाशय कानून के प्रकाँड पन्डित है। उनकी दृष्टि मे उपरिउल्लिखित वाक्यावलिया राज विद्रोहात्मक है। परन्तु यदि वे वाक्यावलिया रजाविद्रोहात्मक है तो प्रत्येक भारतवासी राजद्रोही है। यदि राजविद्रोह के अर्थ सदाचार सत्य भाषण सत्शिक्षा है तो फिर ऐसा कौन अभागा है जो राजद्रोहीन कहलायेगा हमे दुख है कि हार्ट कोटि ने गौड़ महोदय की पोथियो पर संकीर्ण दृष्टि के कोण से दृष्टिपात किया। ऐसे मामले से तो न्याय का अत्यन्त विशालता और व्यापकता से प्रयोग्र होना चाहिये था।

पन्डित नाथूराम शंकर शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र पन्डित उमाशंकर शर्मा की मृत्यु का समाचार सुन कर हमे हार्दिक दुख हुआ। पन्डित नाथूराम जी को चौथपन मे इस चिरवियोग से जितना कष्ट जितनी व्यथा हुयी होगी उसका अनुमान करना कठिन है। पन्डित उमाशंकर जी अन्ध पिता की सजग लकुटिया थे। हमारे पास इतने शब्द नही कि हम शंकर जी को सान्त्वना दे सके। वे स्वयं विज्ञ है वे तत्व दर्शी है

सब कही कुछ में समाया कुछ नही
कुछ न कुछ का भेद पाया कुछ नही

....इन अवलियो के गायक हैं। हमारे सदृश अनुभव सून्य जन उन्हें क्या कह कर समझावे। मौन कष्ट सहन में हृदय की विभूति प्रकट होती है। शंकर जीकों सौम्य दुखी मूर्ति उस मूक व्वथा का प्रतिरपर है। हम अत्यन्त आदर और भक्ति से उनके दुखी हृदय के स्पन्दन को अनुभव करते है। उनके कुछ नही से प्रार्थना करते है कि वे पन्डित उमाशंकर जी की आत्मा को शान्ति प्रदान करे। ओ३म शम्।

ईजिप्ट पर फौलादी पञ्जा :

हम मिस्त्र के विषय मे संसार प्रगति के स्तम्भों में लिख चुके हैं। पाठक पढ़ चुके हैं कि ईजिप्ट में सुडान के गवर्नर जनरल सर ली स्टेक मार डाले गये। उस स्थान पर हमने यह भी लिखा है कि ईजिप्ट और ग्रेट ब्रिटेन के सम्बन्धों में इस हत्या के फल स्वरूप कुछ नये परिवर्तन होंगे। उसके बाद जो समाचार आये हैं के उनसे प्रकट होता है कि ग्रेट ब्रिटेन ने ईजिप्ट की गर्दन पर अपना फौलादी पन्जा जमा दिया है। इंग्लैण्ड ने दकियानूसी दल (कन्जरवेटिव पार्टी) ने शासन की बागडोर जब से अपने हाथ में ली तब से इस थोड़े ही अवसर में उन्होंने दो बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें तै कर डाली। प्रथम तो उन्होंने रूस सरकार के साथ की गयी सन्धि के मसविदे को फाड़ फेका। दूसरे उसने ईजिप्ट को धमकी दी है कि वह निम्नलिखित शर्त्तों की पूर्ति करे ये शर्त्तें इस प्रकार हैं :—

१. ईजिप्ट सरकार ग्रेट ब्रिटेन से सर ली स्टेक की हत्या के लिये खुल कर क्षमा मांगे।

२. गुनहगारों का पता लगाने मे ईजिप्ट भरपूर कोशिश करे और उन्हें उचित दण्ड दे।

३. तमाम राजनीतिक आन्दोलनों को ईजिप्ट दबाये और उन्हें न होने दे।

४. ग्रेट ब्रिटेन को ईजिप्ट ५००,०० पाउण्ड का जुर्माना अदा करे।

५. चौबीस घण्टे के अन्दर ईजिप्ट की सरकार सुडान से तमाम मिस्त्री अफसरों और मिस्त्री फौज के दस्ताने को हटा ले।

६. ईजिप्ट की सरकार अपने महकमों को इस बात की सूचना दे दे कि सुडान की सरकार नाइल के पानी से जितना पानी चाहेगी लेगी और जितनी खेती चाहेगी करेगी।

७. ईजिप्ट में बसने वाले विदशियों की रक्षा का पूर्ण भार ईजिप्ट के हाथ में नहीं है। वह भार ग्रेट ब्रिटेन के ऊपर है। इसलिये ईजिप्ट को चाहिये कि वह जिस तरह ग्रेट ब्रिटेन कहे उस तरह करे। विदेशियों के मामलो मे दस्तन्दाजी न करे। अगर ये शर्त्तें न मानी जायँगी तो ग्रेट बिटेन आगे मनचाही कार्यवाही करेगा।

पाठक ! सामाज्य के अन्दर स्वतन्त्रता प्राप्ति का यह एक नमूना है। ग्रेट ब्रिटेन के शासक कहते हैं कि ईजिप्ट पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र हो गया है। क्या स्वतन्त्र देशों के साथ इस तरह गुण्डेपन का व्यवहार किया जाता है। हमारे सामने वह दृश्य उपस्थिति हो जाता है जब इटली के निरंकुश शासक सिन्यो बेनितो मुसोलिनी ने ग्रीस को भी इसी तरह की धमकी दी थी और कारफू बन्दरगाह पर कब्जाकर लिया था। आज ग्रेट ब्रिटेन भी किट किटा कर ईजिप्ट के पीछे पड़ गया है। मालूम पड़ता है कि वह

इस तरह के अवसर की ताक में था। अब उसे मौका मिल गया। अब ईजिप्ट में मार्शल लाँ (फौजी कानून) का दौर दौरा जारी हो गया है। जागलूल पासा इन शर्तों को मानने को तैयार नहीं थे। इस कारण उन्होंने ईजिप्ट के प्रधान मन्त्रित्वपद से स्तीफा दे दिया है। लार्ड एलन बी लेपैाली युद्ध के तीरन्दाज आज ईजिप्ट के सुडान प्रान्त पर फौजी कानून के बल पर शासन कर रहे हैं। हत्यायें करना बहुत बुरी बात है। परन्तु राजनैतिक जगत में इस तरह की हत्याओं के ऊपर किसी देश की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं किया जाता। इंग्लैण्ड जानता है कि सुडान प्रान्त का मामला अगर किसी निष्पक्ष न्यायालय में विचारार्थ पेश हुआ तो उसका निर्णय ईजिप्ट के पक्ष में होगा। इसी लिये उसने मौका पाकर सुडान को हड़प लेने का यह कुप्रयत्न किया है। भारतवर्ष के राजनीतिज्ञों को इससे कुछ सबक सीखना चाहिये। दकियानूसी दल फौलादी पंजे को मखमली दस्ताने मे छुपाये रखने के पक्ष में नहीं है। हमें किसी दल की उदारता पर निर्भर न रहना चाहिये।

एक आत्म हत्या :

'अर्जुन' के सम्वाददाता ने मुजफ्फर नगर के मुहम्मदतालिब नामक लड़के के आत्म हत्या कर लेने का संवाद प्रकाशित कराया है। मोहम्मद तालिब एक डिप्टी कलेक्टर का पुत्र था। वह इनायत खाँ नामक किसी राज के लड़के को प्यार करता, था। एक दिन इनायत खाँ ने मोहम्मद तालिब से मिलने से इंकार किया। इससे तालिब बहुत दुःखी हुआ। शाम के पाँच बजे उसने कपड़े बदले, नमाज़ पढ़ी और दो चिट्ठियाँ लिखी। एक चिट्ठी उसने इनायत की मां के पास भेज दी और दूसरी अपने नौकर को दे गया। नौकर से कह गया कि रात के आठ बजे के पहिले यह चिट्ठी घर पर न देना। नौकर ने आठ बजे चिट्ठी दी। तालिब की मां और बहन ने चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा था : मैं जुदा होता हूँ मेरा रंज न करना। मैं इनायत खाँ के लिये जान देता हूँ। मेरी लाश को स्टेशन के पास लाइन पर ढूंढ़ लेना। घर के लोग वहा गये। मोहम्मद तालिब रेल की पटरी के पास मरा हुआ पड़ा था। मालूम हुआ कि वह शाम की साढ़े छै बजे की गाड़ी से कट कर मर गया है।

पढ़ने से यह सीधे-साधे वर्णन में कोई महत्व की बात मालूम नहीं पड़ती परन्तु इस प्रकार की घटनायें मानव उत्क्रान्ति का परिचय देती हैं। अग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक तत्त्वज्ञ मिस्टर एडवर्ड कारपेण्टर ने The Intermediate Sex नामक ग्रन्थ में इसी प्रकार की एक और घटना का वर्णन किया है। उन्होंने एक बालक का दूसरे बालक से पृथक होने पर रेल द्वारा आत्म-हत्या कर लेने की एक घटना का उल्लेख किया है। वह घटना भी भारतवर्ष में घटी थी। ये घटनायें मानवी वृत्ति के एक विशेष झुकाव

की परिचायिका हैं। कारपेण्टर महाशय ने इस विषय में काफी खोज की है। आपका कथन है कि मनुष्य के विकास में एक ऐसी अवस्था आती है (यह आवश्यक नहीं कि वह प्रत्येक मनुष्य में प्रस्फुटित हो) जब एक मनुष्य दूसरे को प्यार करने को आतुर हो जाता है। सजातीय प्यार की भावना मनुष्य के हृदय की विशेषता की द्योतक है। वाल्टह्विटमैन, गान्धी और टैगोर के विश्व प्रेम के भाव का उद्गम इसी मनोवृत्ति से होता है। पण्डितवर कारपेण्टर, इटेलियन रिनायेसास के गहन विद्वान् साइमाड्स और विद्वद्वर हेवलाक हेलिस इसी मत के प्रचारक हैं। बालकों और शिक्षकों की यह वृत्ति कभी-कभी उन्हें जनता के अनादर का पात्र बना देती है। सुकुमारता के रक्षक एवं पौनित्य के उपासक माता पिता तथा शिक्षकों से हमारी प्रार्थना है कि वे बच्चों की इस वृत्ति की ओर ध्यान रक्खे और उनके साथ औदार्य, सहानुभूति, वात्सल्य एवं दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार करें।''

(१ दिसम्बर, सन् १९२४ ई०)

———

षष्ठम परिशिष्ट

'प्रभा' का सामयिक साहित्यावलोकन

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' समीक्षा करते हैं :—

"अनामिका :—लेखक श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी; पता : सुलभ ग्रन्थ प्रचारक मण्डल, २३, शंकर घोष लेन, कलकत्ता। मूल्य नहीं न्यौछावर ६ आना।

इस पुस्तक में त्रिपाठी जी की पंचवटी प्रसंग, अधिवास, अध्यात्म फल आदि कवितायें संगृहीत हैं। लोग यानी हिन्दी भाषा के कुछ काव्य कोविद त्रिपाठी जी से नाराज है। इसलिये कि वे उनकी कविता ठीक तरह पढ़ नहीं सकते। हमें इस बार साहित्य सम्मेलन में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। पर हमने सुना है कि उक्त अवसर पर एक दिग्गज विद्वान ने त्रिपाठी जी की कविता के विषय में राय देते हुये कहा था कि तो फिर मैं जो चिट्ठी लिखता हूँ वह भी कविता है। क्यों न हो महाराज आपके सदृश सहृदयों की चिट्ठी कविता क्यों न हो? दिल की व्यग्रता जो उसमें भरी पड़ी होगी।

लकीर पीटने वालों से हम लड़ना नहीं चाहते। हम तो त्रिपाठी जी के सदृश मस्तानों की कविता को इस युग की वस्तु समझते हैं। आज-कल की कविता—

शायरी नहीं है गुफ्तगू दिल की।

जिसे मजा आये वह पढ़े जिसे मजा न आवे वह न पढ़े और अगर कोई बिगड़े दिल दो-चार सुनाना चाहे तो सुना ले।

'अनामिका' बहुत कोमल है। सुन्दर है। गुदगुदी पैदा करती है और प्राणन हू की कहा कहू पीर होत पासुरी की सी हालत कर देती है। हम त्रिपाठी जी की इस निराली कृति का हृदय से स्वागत करते हैं। प्रत्येक सहृदय पाठक से प्रार्थना है कि वह एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़े।

१ मई, सन् १९२४ ई०)

अजात शत्रु :—

लेखक श्रीयुक्त बाबू जयशंकर प्रसाद; प्रकाशक; हिन्दी ग्रन्थ भण्डार, कार्यालय, बनारस सिटी। मूल्य १ रुपया दो आना।

बाबू जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ, कवितायें और निबन्ध कितने सुन्दर होते हैं; इसके कहने की आवश्यकता नहीं। प्रसाद जी हिन्दी के उन थोड़े से प्रतिभावान् कवियों में हैं; जिनकी कृतियां बरस दो बरस तक नहीं पर भविष्य के अकथित काल तक जीवित रहेंगी। उनकी लेखनी से प्रवाहित यह अजातशत्रु नाटक हिन्दी संसार की एक चीज है। हिन्दी में प्रसाद जी के सदृश उठने वाले लेखक यदि दस बीस भी हो जायँ तो हम बँगला के गीत गाना छोड़ दें। प्राक्कथन में रायकृष्ण दास जी ने इस नाटक के विषय में लिखा है: उनके (प्रसाद जी के) नाटक तो हिन्दी संसार में एक दम नई चीज हैं। ये आज की नहीं आगामी कल की चीज हैं। वे हिन्दी-साहित्य में एक नये युग के विधायक हैं। न विचारों के खयाल से, न कथानक के खयाल से, न लक्ष्य के खयाल से आज तक हिन्दी में इस प्रकार की रचना हुई है। न अभी होती ही दीख पड़ती है, हम कृष्णदास जी की सम्मति से पूर्ण रूप से सहमत हैं।

नाटक के प्रकाशक ने इस नाटक को बेपर्वाही से छापा है। ऐसी सुन्दर और स्थायी चीज का ऐसे भद्दे ढंग से प्रकाशित करना सत् साहित्य के प्रति अपराध करना है। आशा है आगामी संस्करण सुन्दर निकलेगा।

(१ जून, सन् १६२४ ई०)

१. चोखे चौपदे २. चुभते चौपदे :—

लेखक पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय; प्रकाशक खंग विलास प्रेस, बाकरगंज, पटना। मूल्य दोनों का १ रुपया ५० पैसा।

पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय हिन्दी के वयोवृद्ध सेवी हैं। उनकी प्रिय प्रवास सी अनूठी भावमयी अमर कृति हिन्दी को विभूषित कर चुकी है। आज हमारे सामने उनके चोखे चौपदे और चुभते चौपदे यह दोनों ग्रन्थ रक्खे हैं। हम चौपदे पढ़ते-पढ़ते मन हीं मन विचार करने लगे कि क्या प्रिय प्रवास और इन चौपदों के रचयिता एक ही है? भाषा पर कैसा अपूर्व प्रभुत्व है? मुहाविरों पर आपने कैसा अटल साम्राज्य स्थापित कर रक्खा है? भाषा की जिम्नाष्टिक की दृष्टि से यह दोनों ग्रन्थ हिन्दी में अपना सानी नहीं रखते। शुद्ध मुहावरों का प्रयोग इतनी अधिक संख्या में आज तक हिन्दी के किसी भी कवि ने नहीं किया है। हमें अंग्रेजी साहित्य का भी थोड़ा बहुत ज्ञान है। हमें विश्वास है कि किसी भी अंग्रेज कवि ने केवल चाल के मुहावरों में काव्य रचना नहीं की। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसिद्ध प्रकृति पूजक कवि वर्ड्स वर्थ

का आदर्श यह था कि पद्य की भाषा (Poetic Diction) बोल चाल की भाषा होनी चाहिये। वर्ड्स वर्थ ने स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं किया होगा कि वह मुहाविरों (Idioms) में काव्य-रचना करे। पण्डित अयोध्या सिंह जी ने यह दुस्तर कार्य किया है। सफलता के साथ परन्तु क्या यह कविता है ? क्या वर्ड्स वर्थ की I measured it from side to side it was four feet long and threefeet wide ये पक्तियाँ कविता है ? क्या वर्ड्स वर्थ का एक्स कर्शन्स भी कविता है। जैसा कि हमने पहले ही कह दिया कि सरल भाषा विषयक नट विद्या है। हमें इसमें स्थायी साहित्य की रंच मात्र भी झलक दिखलाई नहीं देती।

हम शब्दों के संकेत (Suggestion) में क्रिया मुहाविरों की अर्थ प्रेरणा से अन्तरतल की निगुण वीणा के झंकरित हो उठने की बात समझ सकते हैं। परन्तु बिल्कुल गद्यमय (Prosaic) भावों को लगातार छन्दोबद्ध करते जाने की बात हमारी समझ में नहीं आती। किसी शब्द या मुहावरे की प्रथम संकेतमय ध्वनि में जो कविता (यदि वह शब्द या मुहावरा इस प्रकार के काव्यमय चणों में हृदयंगम किया गया हो) रहती है वह मुहाविरों को शिकार करने की तलाश में सतत रहने से नष्ट भ्रष्ट हो जाती है फिर तो यह कविता नहीं एक खासी अच्छी वस्तु प्रपाद्य और प्रमयोपपाद्य साध्य हो जाती है। इस प्रकार का शब्द संकलन स्वान्तः सुखाय ही यदि कोई करे तो सुखेन करे। परन्तु यह आशा करना कि इस प्रकार की पुस्तकें साहित्य में वहुत काल तक जीवित रहेंगी अथवा वे भविष्य के लिये सन्देश वाहक होगी; बिल्कुल दुराशा मात्र है। काव्य साहित्य में तो इन पुस्तकों का कोई स्थान नहीं है। हाँ, कोष साहित्य (Lescicography) में इनका आदरणीय स्थान जरूर रहेगा। भविष्य में यदि कोई कोषकार हिन्दी मुहाविरों का कोष बनाना चाहेगा तो उसे इन चुभते और चोखे चौपदों से बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

हमें भय है कि हमने छोटे मुँह बड़ी बात कही है। आदरास्पद् उपाध्याय जी को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमने जो कुछ लिखा है वह उनके प्रति असम्मान भाव से प्रेरित होकर नहीं लिखा। हम समझते हैं कि साहित्य में स्पष्टवादिता और तथ्य कथन की आवश्यकता है। हाँ, ऐसा करने में वैयक्तिक आक्षेपो की बौछार करना कुरुचि पूर्ण अवश्य है यदि हमने अन्जान में ऐसा किया हो तो अभी से क्षमा प्रार्थी हूँ। हम क्या करें बार-बार हम अनुभव करते हैं कि प्रिय प्रवास के करुणाविगलित गायक ने इन पुस्तिकाओं को लिखकर अपना समय नष्ट किया है; इसी लिये हमने उपर्युक्त बातें, लिख दी हैं। आशा और विश्वास है उपाध्याय जी हमसे रुष्ट न होंगे।

(१ जुलाई, सन् १९२४ ई०)

गोस्वामी तुलसीदास जी :—लेखक श्रीयुत् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने इस ग्रन्थ को लिख कर हिन्दी भाषा-भाषियों का बड़ा उपकार किया है। गोस्वामी जी के ग्रन्थों का गहन पर्यालोचन अभी तक हुआ ही नहीं। पण्डित रामचन्द्र जी का यह ग्रन्थ उसका प्रारम्भ करता है। हमें इसके पढ़ने से जो सुख मिला उसे हम व्यक्त नहीं कर सकते। विद्वान् लेखक महाशय ने जान पड़ता है, एक-एक शब्द तौल-तौल कर लिखा है। भाषा का सौष्ठव, विचार शृंखला का सुगठन, गम्भीर चिन्तन, शब्द का क्रम विकास—लेखक महोदय की एक-एक वाक्यावली में मिलता है। लोक धर्म के ऐतिहासिक अधःपात का जो चित्र शुक्ल जी ने खीचा है वह देखते ही बनता है। गोस्वामी जी के समय में भारतवर्ष मतमतान्तरों के झगड़ों का केन्द्र हो गया था। हिन्दू समाज की जन्जीर वह लोह-सोने की बेड़ी टूट चली थी। इसका मर्मस्पर्शी वर्णन लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से किया है। गोस्वामी जी की लोकनीति, मर्यादा, भक्ति, भावुकता, चरित्र-चित्रण शक्ति, उनका भाषा अधिकार आदि बातें लेखक महाशय ने अत्यन्त उत्तमता के साथ चित्रित की है।

इतने बड़े ग्रन्थ में मतभेद का स्थान रह सकता है पर इसका यह मतलब नहीं कि शुक्ल जी ने कोई बात ऐसी लिखी है कि जिस पर उन्होंने पूर्णतया विचार न कर लिया हो। ग्रन्थावलोकन के समय हमें जो बातें खटकीं उनका संक्षेप में यहाँ वर्णन कर देना अच्छा होगा। आलोचना खण्ड के प्रारम्भ में लोक धर्म पर जो कुछ लिखा गया है वह अधिकांश में ठीक होते हुये भी एक बड़ी कमी को लिये हुये है। उसमें तत्कालीन भारत की राजनैतिक परिस्थिति का चित्र होना आवश्यक था। राजनैतिक विशृंखलता और सामाजिक शृंखलता का एकीकरण करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विद्वान् लेखक भारत के तत्कालीन इतिहास लेखकों के आधार पर अपने विचार व्यक्त करते। अभी जो कुछ लिखा गया है वह एक त्वरित दृष्टिपात (Rapid survey) मात्र है। अस्तु।

लोक धर्म की समीक्षा करते हुये गुसाईं जी के :

सगुन छीर अवगुन जल ताता,
मिलई रचई परपंच विधाता।

इन वाक्यों का उद्धरण देकर लेखक ने इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। आपके मतानुसार पापी पुण्यात्मा संसार में सदा रहेंगे। धर्म, कर्त्तव्य और नैतिक प्रयत्न को

अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये विषमताओं का रहना आवश्यक है। अतः लेखक के मतानुसार संसार में दुष्टता रहेगी। वह सज्जनता के द्वारा नहीं दबाई जा सकती। इस लिये लोक धर्म वही है जो लोगों की तमाम कमजोरियों को ख्याल में रख कर उसी के अनुसार उन्हें सत्पथ दिखलावे। जनता की प्रकृतियों का औसत निकालने पर धर्म का जो मान निर्धारित होता है वही लोक धर्म है। आपका कथन है कि गोस्वामी जी ने इसी लोकसाधना का शुद्ध स्वरूप जनता के सम्मुख रक्खा है। हम समझते हैं कि लेखक का यह विचार लोक धर्म को जन समाज की औसत प्रवृत्ति पर निर्धारित करने की भावना खतरनाक हो सकती है। धर्म को लोक और व्यक्ति इन दो मञ्जूषाओं में बन्द कर देना ठीक नहीं मालूम पड़ता। लोक प्रवृत्ति सतत परिवर्तनशील होती है। अतः यदि धर्म को अर्थात् लोक धर्म को उसी के ऊपर छोड़ दिया जाय तो परिवर्त्तित मनोवृत्ति धर्म के पूर्व रूप को निकम्मा समझ कर उसे परित्यक्त कर देगी अथवा परिवर्तन काल में वह धर्म प्रगति के मार्ग में बाधा स्वरूप हो जायगा। यदि लोक धर्म का मापदण्ड लोक प्रवृत्ति ही है तो वह धर्म समाज की उन्नति कैसे कर सकेगा। एक काल में संस्थापक लोक धर्म को परिवर्तनशील बनाये रखने के लिये या तो उसे अत्यन्त व्यापक रूप दीजिये और या उसे अत्यन्त उच्छृङ्खल रूप४दीजिये। नान्यो पन्था विद्यते। यदि व्यक्तिगत साधना के लिये पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्यावलम्बन, पूर्ण प्रेम भावना उच्चतम एवं ग्राह्य अथच पालनीय आदर्श है तो उसी प्रकार वे समाज के लिये भी वैसे ही उच्चतम ग्राह्य और पालनीय हैं। इसके अर्थ यह नहीं कि हम व्यक्तिगत रुचि विभिन्नता को तथा वैयक्तिक उन्नति (Individual Development) के अन्तर को अनुभव नहीं करते। सारा भारत महात्मा गान्धी नहीं हो सकता। परन्तु (यदि महात्मा का सिद्धान्त सुन्दरतम कल्याणकर तथा पूर्ण सत्य है तो) वह आदर्श सामने होना चाहिये। चाहें फिर आचरण में विपरीत भाव आ जाय। जब वह आदर्श सामने रहेगा तो विपरीताचरण करते समय आत्मा विद्रोह करेगी। विश्वामित्र और मेनका का, पेपनूशियस और थामस का, पाराशर और मत्स्यगन्धा का युद्ध होगा। पतन होगा। पर उत्थान्-पर्वत की अगम्य शिखर तिल भर पास खिसक आयेगी। लेखक महाशय ने गिडिंग का अवतरण देकर मनुष्यों को सामाजिक असामाजिक, अकर्म्मण्य और समाज बैरी इन चार श्रेणियों में विभक्त किया है तथा उसके मत की पुष्टि की है। वर्तमान समाज शास्त्रियों ने इस भेद को सदोष ठहराया है। ये विभेद मानव समाज की उस अवस्था के हैं जब समाज पूर्ण रूपेण पूँजीवाद को नींव पर खड़ा था। हम समझते हैं कि समाज के वे प्राणी जो आज समाज बैरी कहे जाते हैं इन मानवों से अच्छे हैं जो गिडिंग की सोसल (सामाजिक) श्रेणी में प्रवेश पा चुके हैं। बर्टान्डरसेल, एडवर्डकार पेन्टर, जैम्स आदि मनोविज्ञ एवं तत्ववेत्ता इस कथन की पुष्टि में बहुत

कुछ लिख चुके हैं इसलिये दम्भी और पाखंडी लोगों को नापने के लिये जो गज बनावे देख लेना चाहिये कि वह किस धातु का है। अर्ध शताब्दी या दो दशाब्दियों के भीतर ही उसमें जंग लग सकता है। लेखक ने बाहि शूद्रन द्विजन सम आँख दिखावहि डाट की भी पुष्टि की है तथा "शूद्र" शब्द पर एक निघन्टु लिखा है। हमारी समझ में तुलसीदास जी बड़े जबरदस्त परिपाटी के भक्त थे। वहाँ पर उनका अर्थ शूद्र से मतलब शूद्र जाति से ही है। शूद्र शब्द के अर्थ लगाना केवल भक्ति अतिरेक का परिचय देना है।

लेखक ने आगे चलकर भक्ति के विकास पर जो कुछ लिखा है उसका विकास क्रम जिस सुन्दरता और गूढ़ता, स्पष्टता और सरलता से प्रतिलक्षित कराया है; वह पढ़ते ही बनता है।

एक स्थान पर लेखक कहते हैं : 'व्यक्तिगत सफलता के लिये लोग जिसे नीति कहते हैं सामाजिक आदर्श की सफलता का साधक होकर वही धर्म हो जाता है' यह एक भयंकर दिसान्त है। देखिये इसके अर्थ यह हैं—

चूंकि नीति बराबर धर्म
चूंकि डाकू बराबर सिकन्दर

शुद्ध सदाचार शास्त्र की दृष्टि से ऐसी नीति और ऐसा धर्म तथा ऐसा डाकू और ऐसा सिकन्दर निंद्य, अधर्म प्रिय एवं अग्राह्य है। खैर।

इस तरह की बातें तो निकल ही आएगी और हम यह भी समझते हैं कि ग्रन्थ प्रणयन और ग्रन्थालोचन की कोई बराबरी नहीं। ग्रन्थ प्रणयन जितना कठिन काम है उसके आगे ग्रन्थालोचन का काम कुछ भी नहीं। इसलिये हमारे उपरोक्त वाक्यों का अर्थ यह हर्गिज नहीं है कि हम ग्रन्थ को रन्चमात्र अनादर की दृष्टि से देखते हैं। हमारे हृदय में इस ग्रन्थ के लिये आदर है। हम प्रत्येक तुलसी भक्त और राष्ट्र भाषा प्रेमी से प्रार्थना करेंगे कि वह इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें। आशा हैं हिन्दी संसार इसका समुचित आदर करेगा।"

(१ नवम्बर, सम् १९२४ ई०)

अष्टम परिशिष्ट

'प्रभा' का 'विचार-पवाह'

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं :—

"गोपी मोहन—

खून का बीज बोकर स्वतन्त्रता के फल को तोड़ने के इच्छुक तेरी लगन के चरणों में शतशः प्रणाम। तूने क्या देखा? माँ की भैरवी मूर्त्ति के तूने दर्शन किये क्यों? और तू चल पड़ा रक्त रञ्जित पद की ओर। तेरी ममता और तेरी भक्ति रक्त अर्पण से अपने भावों को सन्तुष्ट करने को तत्पर हो गयी। हत्यारे की पदवी से विभूषित बालक! तेरे सौंदर्य को कौन देख सकता है। हम लोग नपुन्सक हैं। तेरे दिल में आग जल रही थी। हमारे दिल में अकर्मण्यता की प्राणांशक लहर आ गयी थी। तुझे वही मार्ग दिखाई दिया जिससे होकर खुदी और कन्हाई गये थे। बालक तेरे कृत्यों का उत्तर-दायित्व हम पर है। हम तुझे फाँसी चढ़ा देने के लिये मानों तैयार ही बैठे थे। तूने हत्या का या मार-काट का मार्ग पकड़ा, कारण यह था कि हमारी शाब्दिक अहिंसा इतनी कमजोर थी कि वह तुझे घने अंक में न खींच सकी। एक-एक बात से हम रो उठते थे। तेरी सीधी-सीधी बातों ने मानो हमारी अकर्मण्यता को दूर फेंक देने का सन्देश दिया। पर तेरी मधुर मूर्त्ति और तेरा विशाल हृदय हमारी क्षुद्रता को धोने के लिये काफी नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है। तूने खून बहाया है। गलती से एक निरपराध अंग्रेज मारा गया। तुझे दुख हुआ। यहाँ तो बात को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देने की आदत पड़ी हुई है। तेरी फांसी ने भी हममे जागृत्ति का बीजारोपण नहीं किया। हम आज भी वैसे ही हैं। बालक यह अनुमान करते हुये भी कि तेरी हत्या का अपराध सरकार के सिर नहीं केवल हमारे सिर पर है; हम प्रयत्नशील नहीं होते। देश की आत्माओं के अधिष्ठाता देव! कोई ऐसी युक्ति बतला दो कि अब और गोपी मोहनों का वध न हो। हम उस बालक के खून के बीज से अपने ऊसर खेत को ऐसा सींचें कि भविष्य में मार-काट की नौबत ही न आवे!

दर्शनोत्सुक—

एक बार मूरत देखने को मिल जाय तो निहाल हो जाऊँ। इस भावना को लेकर न जाने कितने चक्कर काटे उस गली के। लेकिन सफल न हुआ। दर्शन न हुये। उन्हें क्या पता कि मैं बार-बार चक्कर इसलिये काट रहा हूँ कि मैं उनकी झांकी देखने

को लालायित हूँ। मुझे संकोच होता था बार-बार उधर से निकलूँगा लोग क्या कहेंगे। लेकिन लोकलाज की परवाह न कर मैं चला जाया करता था। मेरी वह आदरणीय और प्यारी वस्तु बड़ी दयालु है। यदि वह जाँच पाती कि मैं दर्शनोत्सुक हूँ तो वह किसी बहाने से मुझे जरूर दर्शन दे जाती। मेरी आराधना के आधार को मेरी लालसा का पता नहीं था। मुझे आशा है कि कभी न कभी उन्हें मेरी इच्छा का पता लगेगा। अभी शायद वे यह नहीं जान पाते कि मेरे भाव क्या हैं ? शायद उनके हृदय में अभी तक अंतर्यामित्व का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। विपञ्ची के तारों में अभी तक शायद एक स्वर उभार नहीं आया। खूटियों के खिचने पर इस स्वरावली का गुंजार होगा। इसकी मुझे पूर्ण आशा है। जब मेरे नेत्रों की आतुरता उनको दृष्टिगोचर होगी तब उन्हें मेरी आन्तरिक वेदना के दर्शन होंगे। इसी आशा में मैं सांसारिक बाधाओं की पर्वाह न करके अपने आराध्यदेव को अपने सूखे से फूल चढ़ाता हूँ। कहोगे स्वार्थी हूँ : जो कुछ समझो मैं तो बिक चुका हूँ।

(१ अप्रैल, सन् १९२४ ई०)

पाँच फूल—

हे कोमल निर्मल पवित्रते
हे भोले पन की प्रतिमे
पाँच फूल देकर क्यों बाँधा प्यारी सुस्मृत में,
कब से।
तुम क्या जानो कब से,
धारा ने इन आँखों की
लुटा चुका हूँ देवी
आज तक हृदय सम्पदा लाखों की।
दबा हुआ संकोच भाव से
कहो,
कहूँ क्या मैं अब और।
इस चितवन में,
आकुल प्राणों की यह डोर ॥
मेरे जीवन की उमंग
है मेरी आकुलता की भ्रान्ति
सुमनों की आराध्य देवि
है मेरे प्राणों की लघु क्रान्ति

चढ़ा चुका हूँ
अपने प्राणों का कुम्हलाया-सा यह फूल
फूल कहूँ
हिय भूल कहूँ ।
या इसको कहूँ हृदय का शूल ।

गृहिणी—

न जाने किस वैयाकरिणी ने तुम्हारा यह नाम रखा स्त्री ! जंगलों और पार्वत्य प्रदेशों में मनुष्य घूमा करता था। अपने तीर कमान लिये वह शिकार खेला करता था। तुम भी उसके पीछे-पीछे फिरती थी। इस तरह मानो मूर्त्तिमान उदण्ड चञ्चल स्वभाव के पीछे शृङ्खला दौड़ी फिरती हो। वह वनमानुस विद्रोह करता था। वह तुम्हारे बन्धन में फँसने से हिचकता था। पर तुम एक ठगनी ठहरी। तुमने उससे कहा, शायद रो कर कहा : देखो न मेरे बच्चों को तकलीफ होती है। तुम ऐसे पर्यटन प्रेमी इधर-उधर भागे फिरते हो; देखो तो जरा मेरे छोटे-छोटे बच्चों को देखो; जंगल-जंगल मारे-मारे फिरने में इन कोमल बच्चों को तकलीफ होती है। तुम एक जगह क्यों नहीं रहते। वह मूर्ख वह चौपदे का भाई दोपदा मनुष्य तुम्हारी बातों में आ गया। उसने तुम्हारे मुख की ओर देखा तुम्हारी आँखों में फुसलाहट की जंजीर थी। उस मूर्ख की समझ में यह न आया कि वह क्या कर रहा है। उसने तुम्हारी धरोहर को देखा; छोटे-छोटे हाथ उसे बुलाने लगे। तोतली बातें, तुम्हारे बच्चों की अर्धस्फुटित वाणी, उसे जकड़ने लगीं। वह तुम्हारे बन्धन मे फँस गया। मायाविनी! उसके पैर बंध गये। पर्यटन प्रेम गृहनिर्माण कला में परिणत हो गया। झोपड़ियाँ, गृह प्रसाद, नगर, विशाल साम्राज्य धीरे-धीरे सब कुछ बन गया। तुम्हें उसने गृह में बिठलाया। तुम उस दिन से गृहिणी हो गयी। संसार की सभ्यता की जन्मदात्री देवि! तुम अद्भुत हो; तुम्हारी लीलाएँ बुद्धि के परे हैं।

असम्भव और अस्वाभाविक—

कौन कहता है कि तुम बलिदान की आचार्य हो। अपना सर्वस्व जहाँ तक केवल तुम्हारे व्यक्तित्व का सम्बन्ध है दे देना, तुम्हारे लिये कोई बड़ी बात नहीं। स्त्री तुम चाहे अपना सब कुछ दे दो पर तुम अपनों को सब कुछ दे डालने के लिये उत्तेजित नहीं कर सकती। यों तो तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण आत्म निवेदन में बीतता है। अपनी छाती के खून को अपनी अत्यन्त स्वाभाविक परन्तु अत्यन्त तपस्या के बल से तुम दुग्ध बना डालती हो। क्यों ! सिर्फ इसलिये कि तुम्हारा अनादिकालीन आत्मार्पण कुण्ड हव्य सामग्री से पूरित रहे। इसलिये कि संसार में अनन्त बलिदान का तांता न टूटे पर गृहिणी ! सच कहो उस वक्त जब पुरुष अनुराग और विराग से युद्ध करता है तब क्या तुम अनुराग का पक्ष नहीं लेती। अवश्य लेती हो और यदि यह

पक्षपात तुममें न रहे तो घर के घर उजड़ जाय। तुम गृहिणी हो। सिद्धार्थ ने अनुराग और विराग को आमन्त्रित किया था। उसने कहा था : आओ मैं तुमसे लड़ना चाहता हूँ। उस समय हे गृहिणी ! तुम यशोधरा के रूप में आकर अनुराग को बढ़ावा देने लगी। कैसा जटिल बन्धन ! इतना जटिल कि करुणा विगलित सिद्धान्त की हिम्मत न पड़ी कि वह विदाई के वक्त तुम्हें जगाता। वह जानता था कि यशोधरा का प्रत्येक अश्रुविन्दु वह कड़ी लड़ी है जिससे उसका वैराग्य शायद न तोड़ सकता। गृहिणी ! तुम स्वयं परमेश के वक्षस्थल में प्रकृति माया के रूप में उनके गले का हार बनी रहती हो ऐसा तत्ववित्त कहते हैं। जब तक आदि पुरुषत्वम् रूप प्रालम्ब हार के मन से खेला करता है तब तक सृष्टिक्रम चलता रहता है। पर जिस दिन उस अनादि को अनुराग पर विजय मिलती है ! उसी दिन अणु परिमाणु में विस्फोट हो जाता है। महा प्रलय का आरम्भ होता है। विद्वान ये बातें कहते हैं कि प्रकृति रूपा नारी ! मालूम नहीं तुम जगदीश की गृहिणी हो या नहीं पर हम द्विजों के समाज में तो तुम मूर्त्तिमती शृंखला हो।

चपलते—

इधर-उधर से झाँको मत तूफान आ जायगा। योगी नहीं हूँ। एक अशक्त मनुष्य हूँ। मुश्किलों से अपने इस छोटे से हृदय के आवेश को सम्हाल सकता हूँ। आत्मकथा कहने का आदी नहीं हूँ। दिल पर जो बीतती है उसे दिल ही जानता है। पर चपलता की रानी ! तुमसे एक यही प्रार्थना करता हूँ कि इस कोमल सी दृष्टि-शृंखला में न बाँधो। इस दीन के हृदय ने एक बार अनधिकार चेष्टा की थी। यह पागल दिल हवाई किले बनाने लगा था। सोचता था कि अपने कण्टकपूर्ण प्रसून तुम्हारे चरणों में चढ़ाऊँगा। पर प्रथम प्रवाह के बाद विचार शक्ति जागृत हुई। अपनी हीनावस्था का ज्ञान हुआ। तुम्हारे अस्पष्ट पौनीत्य, तुम्हारी निष्प्रपंच सरलता और तुम्हारे अपल शुभ्र निष्कलंक जीवन पट के दर्शन कर मैं अपनी तुच्छता को अनुभव करने लगा। मैंने यह समझ लिया है कि मुझ जैसे प्राणी को तुम्हारी पूजा का अधिकार नहीं। इतना समझ लेने पर भी यदि कभी-कभी पूजा की भावना जागृत हो उठती है तो सच मानो यह मेरे मस्तिष्क का कसूर नहीं। मेरे हृदय चापल्य का दोष है। मैं सदा यह प्रयत्न करता रहूँगा कि तुम्हें आराध्य मानता रहूँ; पर आराधना के लिये कभी हाथ न बढ़ाऊँ।

आँखों का काजल—

हे मेरी आँखों का काजल !
आज एक आता है
वह निज भिक्षा की झोली लटकाये,
कहता है तुम इसे आज दो मेरी आँखों के तारों में।
नेत्र द्वारा पर नेत्र पसारे

मेरे आगे खड़ा
भिखारी आज आँख की उन्नत भाषा में यों बातें कहता है।
सूरदास के हैं अञ्जन गुण।
आँसू मैं न बहाऊँगा।
हे आर्द्र भवन के अधिवासी
यदि कोई बड़ा भाग्यशाली
अपनी राज की ठसक दिखा कर
तेरी माता दीप शिखा से तुझे छीन ले जावेगा।
तो मैं चुप-चुप खड़ा रहूँगा।

हँसी—

यों नक्शा न खींचो अपने भोलेपन का स्वामी सदा खिलखिलाया करते हो। यह कहाँ की हँसी है? तुम खिलखिलाते हो यहाँ पानी बहाते ये दो झरने थक जाते हैं। शब्द चातुरी मैं नहीं समझ पाती पर तुम्हारी मुस्कराहट समझ लेती हूँ। चुपके न जाने क्या कहते हो। समझ में चाहे कुछ न आवे पर जी मचल जाता है। ऐसी विचित्रता भी तुमने कहीं देखी है। जब तक मेरी झोपड़ी के तरफ से गुजरते हों तो मैं यह थोड़े ही चाहती हूँ कि तुम्हें एक बार देख लूँ। पर न जाने क्यों द्वार की ओर आँखें उठ जाती हैं। मेरी अनियन्त्रित आँखों की चपलता का मजाक न उड़ाओ।"

(१ मई, सन् १९२४ ई०)

नवम परिशिष्ट

'प्रभा' का 'विविध विषय'

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं :—

"अनातले फ्रांस ।

गत अक्टूबर मास में यूरोपीय साहित्य क्षेत्र के दिग्गज विद्वान् मौसिये अनातोले फ्रॉस का देहान्त हो गया । हिन्दी पाठकों को श्रीयुत् प्रेमचन्द जी की कृपा से अनातोले फ्रान्स का परिचय 'अहंकार' के द्वारा मिल चुका है । हम यदि उनके विषय में कुछ अधिक लिखें तो अनुचित ही होगा क्योंकि जिस साहित्य के पाठकों ने पर साहित्य के विद्वान् की लेखनी के चमत्कार का पूर्ण आलोकन देखा है उनके सामने उस विश्व-शिरोमणि की प्रशंसा से पुल बाँधना असंगत सा प्रतीत होता है । अतः हम सूक्ष्म में उनका परिचय देकर अपने कथन को समाप्त कर देंगे । अनातोले फ्रांस के पिता पेरिस नगर के एक विद्वान् पुस्तक विक्रेता थे । सन् १८४४ ई० की १६ वीं अप्रैल को उनके यहाँ एक बालक का जन्म हुआ । बालक का नाम जेक्वा अनातोले थीबा रक्खा गया । अनातोले के पिता साहित्य मर्मज्ञ थे । उनके यहाँ रात्रि के समय पेरिस के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध साहित्यिक विद्वानों की मण्डली एकत्रित होती और नित्य प्रति कई साहित्यक विषयों पर वार्त्तालाप होता । बालक जेक्वे दिन-रात इस चर्चा को सुनता रहता था । अभिमन्यु ने माता के गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन क्रिया सीख ली थी । फिर बालक जेक्वे पर इस साहित्यिक परिस्थिति का असर कैसे न पड़ता ? धीरे-धीरे उसमें साहित्यिक चित्त वृत्ति और साहित्यिक रुचि का आविर्भाव हुआ । अंकुर जमा और वह पल्लवित होने लगा । सन् १८६८ ई० अर्थात् केवल २४ वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक आलोचनात्मक निबंध की रचना की । फिर पाँच वर्ष बाद सन् १८७३ ई० में उनका एक काव्य ग्रन्थ निकला । इसके बाद तो सरस्वती का वरदान मिल गया और एक के बाद एक ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे ।

अनातोले फ्रांस केवल लेखक अर्थात केवल मौलिक ग्रन्थ प्रणेता ही नहीं थे । वे अपने समय के अद्भुत इतिहास विशारद और गहन समालोचक थे । संसार भर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध समाचार पत्रों में आलोचनात्मक निबन्ध छपा करते थे ।"

(१ नवम्बर, सन् १९२४ ई०)

दशम परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएँ

(क) संस्कृत ग्रन्थ

(१) ऋग्वेद ।
(२) अथर्ववेद ।
(३) शुक्ल यजुर्वेद ।
(४) श्रीमद्भागवत गीता ।
(५) योगवशिष्ठ ।
(६) दुर्गासप्तशती ।
(७) रामायण ।
(८) महाभारत ।
(९) नैषधीय चरितम् ।
(१०) शिशुपाल वध ।
(११) वेणी संहार ।
(१२) रघुवंश ।
(१३) अभिज्ञान शाकुन्तलम् ।

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

(१४) अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—समाचार पत्रों का इतिहास ।
(१५) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—सन्दर्भ सर्वस्व ।
(१६) आस्वाद ।
(१७) आचार्य 'सनेही' अभिनन्दन ग्रन्थ ।
(१८) आगरकर स्मृति-ग्रन्थ ।

(१९) उमाकांत—मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता।

(२०) उदयभानुसिंह—महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग।

(२१) उदयशंकर भट्ट—विसर्जन, राका, भक्ति पंचरत्न।

(२२) ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ—माखनलाल चतुर्वेदी।

(२३) कन्हैयालाल—कांग्रेस के प्रस्ताव।

(२४) कमलाकांत पाठक—मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य।

(२५) केशवदेव उपाध्याय—'नवीन' दर्शन।

(२६) केसरीनारायण शुक्ल—आधुनिक काव्य-धारा।

(२७) गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—राष्ट्रीयवीणा, त्रिशूल तरंग।

(२८) गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और
करुणाशंकर दीक्षित—संतरण।

(२९) गोपाल सिंह 'नेपाली'—हिमालय ने पुकारा।

(३०) गोपाल कृष्ण कौल और
रामावतार त्यागी—राजधानी के कवि।

(३१) गंगाप्रसाद पाण्डेय—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य।

(३२) गूंजे जयजयकार।

(३३) गीतांजलि।

(३४) जयशंकर 'प्रसाद'—स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, कामायनी।

(३५) जगमोहननाथ अवस्थी—स्वतंत्रते, सीमासंग्राम।

(३६) जवाहरलाल नेहरू—राष्ट्रपिता।

(३७) जावड़ेकर—आधुनिक भारत।

(३८) तुलसीदास—कवितावली, रामचरित मानस।

(३९) दयानन्द सरस्वती—सत्यार्थ प्रकाश।

(४०) दवे प्रताप नागर—जवानी देश की।

(४१) द्वारकाप्रसाद मिश्र—कृष्णायन।

(४२) द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी—सत्य की जीत।

(४३) देवव्रत शास्त्री—गणेशशंकर विद्यार्थी।

(४४) दौलतराम गुप्त—तिलक वियोग में शोकाश्रु।

(४५) नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी; आधुनिक

साहिय; नया साहित्य : नये प्रश्न; कवि निराला; राष्ट्रीय साहित्य और अन्य निबंध।

(४६) नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दो कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ।
(४७) नरेन्द्रदेव—राष्ट्रीयता और समाजवाद।
(४८) नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—हिन्दो साहित्य का विकास और कानपुर।
(४९) नर्मदाप्रसाद खरे—ज्योति गंगा।
(५०) नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी—चाँदनी का जहर।
(५१) नारायण प्रसाद अरोड़ा अभिनन्दन ग्रन्थ।
(५२) पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—मैं इनसे मिला।
(५३) पट्टाभि सीतारमैय्या—कांग्रेस का इतिहास।
(५४) प्रतापनारायण मिश्र—ब्रैडला स्वागत।
(५५) प्रभुशंकर शुक्ल और लालजीराम मालवीय—चेतना के स्वर।
(५६) प्रभाकर माचवे—अनुक्षण।
(५७) बनारसीदास चतुर्वेदी—रेखाचित्र, गणेश स्मारक ग्रन्थ, अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल'।
(५८) बल्देवप्रसाद 'कौशिक'—शंखनाद।
(५९) बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—हार्दिक हर्षादर्श, प्रेमधन सर्वस्व।
(६०) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—कुंकुम, ऊर्म्मिला, हम विषपायी जनम के; विनोबा स्तवन; प्राणार्पण।
(६१) बालेश्वर प्रताप सिंह—स्वराज्य दर्शन।
(६२) बैजनाथ सिंह 'विनोद'—द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र।
(६३) भगवानदास अरझरिया 'बालेन्दु'—श्रद्धा के फूल।
(६४) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड), 'भारत जननी' (नाटक), भारत दुर्दशा।
(६५) भारतेन्दु मुकुर।
(६६) भारत गीत।
(६७) भारत को आज़ादी के लिये खतरा।
(६८) मनोज—पंचायती राज के गीत।
(६९) मन्मथनाथ गुप्त—भारत के क्रान्तिकारी।
(७०) महेन्द्र भटनागर—संतरण।

(७१) महात्मा गांधी—मेरे समकालीन ।
(७२) महावीर प्रसाद द्विवेदी—रसज्ञ रंजन ।
(७३) माखनलाल चतुर्वेदी—माता, हिमकिरीटिनी, युग चरण, समर्पण, अमीर इरादे, गरीब इरादे ।
(७४) माधव शुक्ल—जागृत भारत, भारत गीतांजलि ।
(७५) मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव—वृहद् हिन्दी कोश ।
(७६) मुंशीराम शर्मा 'सोम'—सोम सुधा ।
(७७) मिश्रबन्धु विनोद ।
(७८) मेहताबसिंह 'क्षत्रिय'—स्वराज्य वीणा ।
(७९) मैथिलीशरण गुप्त—वीरांगना, मेघनाद वध, रूबाइयात उमर खय्याम, स्वदेश संगीत, वक संहार, साकेत, भूमि भाग ।
(८०) रणभेरी ।
(८१) राष्ट्रीय रत्न पंचक ।
(८२) रामचरित उपाध्याय—राष्ट्रभारती ।
(८३) राधाचरण गोस्वामी—लोकोक्टि शतक ।
(८४) राष्ट्रीय कविताएँ ।
(८५) रामबहोरी शुक्ल तथा
भगीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास ।
(८६) रामानुजलाल श्रीवास्तव—प्रतिनिधि शोक गीत ।
(८७) रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
(८८) रामधारी सिंह 'दिनकर'—रेणुका, हुँकार, सामधेनी, कुरूक्षेत्र, वट पीपल, परशुराम की प्रतीक्षा ।
(८९) राम अधार सिंह—महात्मा महाप्रयाण ।
(९०) रामकुमार वर्मा—विचार दर्शन, कृत्तिका, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास ।
(९१) रामलाल सिंह—आधुनिक निबंध ।
(९२) रामअवध द्विवेदी—हिन्दो साहित्य के विकास की रूपरेखा; साहित्य रूप ।
(९३) राजेन्द्र प्रसाद—बापू के कदमों में; आत्मकथा ।
(९४) राधाकृष्ण—गणेशशंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबन्ध ।
(९५) राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ ।
(९६) रोमा रोला—महात्मा गांधी ।

(९७) रुद्र काशिकेय—चीन को चेतावनी।

(९८) लक्ष्मी नारायण दुबे—साहित्य के चरण, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्ति एवं काव्य।

(९९) लक्ष्मीशंकर व्यास—पराड़कर जी और पत्रकारिता।

(१००) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य।

(१०१) विद्यानाथ गुप्त—हिन्दी-कविता में राष्ट्रीय भावना।

(१०२) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—हिन्दी साहित्य का अतीत (शृंगार काल); हिन्दी का समसामयिक साहित्य।

(१०३) विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'—जय काश्मीर।

(१०४) विपिन जोशी—साधना के स्वर।

(१०५) व्यौहार राजेन्द्रसिंह—नक्षत्र।

(१०६) शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ।

(१०७) शिवनारायण मिश्र—राष्ट्रीय वीणा।

(१०८) शिवपूजन सहाय—शिवपूजन रचनावली।

(१०९) श्रीराम शर्मा—संघर्ष और समीक्षा।

(११०) श्रीकृष्ण 'सरल'—राष्ट्र भारती; सरदार भगत सिंह।

(१११) सद्गुरुशरण अवस्थी—हिन्दी गद्य-गाथा।

(११२) सुखसम्पत्तिराय भण्डारी—भारतवर्ष और उसका स्वातन्त्र्य-संग्राम।

(११३) सुषमानारायण मिश्र—भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति।

(११४) सुधाकर पाण्डेय—जय जवाहर; हिन्दी साहित्य और साहित्यकार।

(११५) सुमित्रानन्दन पन्त—आधुनिक कवि (द्वितीय भाग); मुक्ति यज्ञ; लोकायतन।

(११६) सुधीन्द्र—हिन्दी कविता में युगान्तर।

(११७) सुरेशचन्द्र गुप्त—आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त।

(११८) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—अपरा।

(११९) सियाराम शरण गुप्त—आत्मोत्सर्ग।

(१२०) स्वतन्त्रता की पुकार।

(१२१) हरदेव बाहरी—हिन्दी की काव्य-शैलियों का विकास।

(१२२) हरिकृष्ण 'प्रेमी'—आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि: माखनलाल चतुर्वेदी।

(१२३) हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)।

(१२४) 'क्षेम'—छायावाद के गौरव-चिह्न ।
(१२५) क्षेमचन्द्र 'सुमन'—चीन को चुनौती ।

(ग) बंगला ग्रन्थ

(१२६) ब्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय तथा सजनीकान्त कान्त दास—मेघनाद वध (सम्पादित) ।

(घ) अंग्रेजी ग्रन्थ

(1) Encyclopaedi a Britanicca.
(2) Encyclopaedia of Religion and Ethics.
(3) World Dictionary.
(4) Oxford Dictionary.
(5) Gitanjali.
(6) Constituent Assembly Debates : official Report.
(7) 'Parliamentary Depates': official Reports.
(8) Indian Mutiny.
(9) The Renaissance in India.
(10) The Teachings of Shri Ram Krishna.
(11) Dr. Radha Krishnan—Mahtma Gandhi.
(12) Jawaharlal Nehru—Discovery of India.
(13) Balraj Madhok—A study in Indian Nationalism.
(14) E. H. Carr—Nationalism.
(15) Dutta and Sarkar—Text Book of Modern History.
(16) N. C. Ganguly—Raja Ram Mohan Roy.
(17) R. Palme Dutt—India Today.
(18) Gurumukh Nihal Singh—Land Marks in Indian constitutional and National Development.
(19) Dr. A. K. Desai—Social Background of Indian Nationalism.
(20) Dr. Ram Ratan Bhatnagar—The Rise and Growth of Hindi Journalism.
(21) Yusuf Ali—History of India.
(22) Vinay Kumar Sarkar—Creative India.

(च) पत्र-पत्रिकाएँ

(१) हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ

(१) **दैनिक पत्र :**

'प्रताप', नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, नवराष्ट्र ।

(२) **साप्ताहिक पत्र :**

'प्रताप', रामराज्य, सारथी, आज, हिन्दुस्तान, योगी, ग्राम्या, रणभेरी, प्रणवीर धर्मयुग, न्याय, जनयुग, योजना ।

(३) **मासिक :**

प्रभा, सरस्वती, वैश्योपकारक, स्वदेश बांधव, आनन्द कादम्बिनी, महारथी, हिन्दी प्रदीप, संगीत सौरभ, माधुरी, सुधा, हंस, प्रतिभा, त्यागभूमि, विक्रम, नई धारा, वीणा, साहित्य संदेश, आगामी कल, नर्मदा, आजकल, ज्योत्स्ना, कृति, चिन्तन, हिन्दी मनोरंजन, इन्दु, विशाल भारत, श्रीशारदा, अवन्तिका, राष्ट्रभारती, राष्ट्रवाणी, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन मासिक विवरणिका, लहर, ज्ञानोदय, सूत्रकार, नया जीवन, किशोर, राष्ट्रधर्म ।

(४) **द्विमासिक :**

देश और समाज ।

(५) **त्रैमासिक :**

श्रीकृष्ण संदेश, जनभारती, हिन्दी अनुशीलन, मन्तव्य ।

(६) **वार्षिक :**

ज्योति ।

(२) अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ

(1) 'The Banaras Hindu University Journal', November, 1942.

(घ) विविध

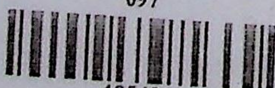
(१) पाण्डु-लिपि ।

(२) व्यक्तिगत सूचनाएँ एवं संस्मरण ।

(३) व्यक्तिगत पत्र

(४) अन्य सन्दर्भ-सूत्रादि ।




097
185484